प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य

[सागर विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

लेखक

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'.

एकाधिकारी वितरक



अनुसन्धान प्रकाशन

आचार्यनगर कानपुर

युगवाणी प्रकाशन, कानपुर

मूल्य पन्द्रह रुपए केवल

पुस्तक
प्रतापनारायण : जीवन और साहित्य
लेखक डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल
प्रकाशक
युगवाणी प्रकाशन
१०७/११ जवाहरनगर, कानपुर
मुद्रक
इरा प्रेस लखनऊ।

भूमिका

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल का शोध प्रबंध आवश्यक संक्षिप्तीकरण के साथ पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। यह प्रबंध भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रतापनारायण मिश्र पर लिखा गया था। मिश्र जी की साहित्यिक कृतियां धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ में चली जा रही थीं और उनकी जीवनी तथा व्यक्तित्व आदि का ज्ञान भी लुप्त होता जा रहा था। मिश्र जी जैसे अल्पजीवी किन्तु विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक का इस प्रकार तिरोहित होना किसी प्रकार वांछनीय नहीं कहा जा सकता परन्तु स्थिति कुछ वैसी ही थी। तभी मेरी प्रेरणा से डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल मिश्र जी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। उन्होंने उनकी समस्त रचनायें खोज निकालीं और उसकी जीवन घटनाओं और सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्रियाकलापों का एक सुन्दर आकलन तैयार किया, जो इस पुस्तक में यथास्थान संकलित है। डा० शुक्ल का यह प्रयास विशेष परिश्रम-साध्य रहा है, परन्तु उन्हें मिश्र जी की जीवनी प्रस्तुत करने में अच्छी सफलता मिली है।

जहाँ तक मिश्र जी की साहित्यिक रचनाओं का प्रश्न है, सुरेशचन्द्र ने उनके विवेचन में यथेष्ट संतुलित और विचारपूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है। निबंध और नाट्य रचना के क्षेत्र में प्रतापनारायण मिश्र अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में रहे हैं। उनकी प्रतिभा स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा से टक्कर लेती थी। इस साहित्यिक तथ्य को सुरेशचन्द्र शुक्ल ने विवेचनपूर्वक स्पष्ट किया है। कतिपय अन्य क्षेत्रों में भारतेन्दु जी का कार्य अधिक विशद और प्रांजल है। इसकी स्थापना भी प्रस्तुत प्रबन्ध में की गई है।

मिश्र जी के साहित्यिक कार्य को विभिन्न साहित्य रूपों में विभक्त कर इनकी पृथक पृथक विवेचना की गई है। प्रत्येक साहित्य रूप की विशेषता तथा उसकी विकासात्मक परंपरा का उल्लेख करते हुए शोधकर्ता ने प्रतापनारायण मिश्र की उस साहित्य विधा पर अपने विचार प्रकट किये हैं। संभव है, विविध साहित्य विधाओं का स्वरूप और इतिवृत्त देने में, लेखक अपने विषय से कुछ दूर चला गया हो पर शोधकर्ता की जिज्ञासा के लिए इस प्रकार की भूमिकायें अनेक बार आवश्यक

हो जाती है। डा० शुक्ल ने इसी विशद पथ का अनुसरण कर अपने विषय की स्थापना की है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा गया प्रसाद शुक्ल सनेही के साथ प्रताप नारायण मिश्र पर किया गया यह शोधकार्य सागर विश्वविद्यालय द्वारा उत्तर प्रदेश के और विशेषकर कानपुर के तीन प्रमुख साहित्यिकों के पर्यालोचन का प्रयास है। आशा है इस पुस्तक के द्वारा प्रताप नारायण मिश्र के ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रदेय को स्थायित्व प्राप्त होगा और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-समाज में समुचित समादर प्राप्त करेगी।

सागर

विजयादशमी सं० २०२१ — नन्ददुलारे वाजपेयी

पूज्य पितामह

स्व० पं० गोविन्दप्रसाद जी शुक्ल

की

पावन स्मृति

को

सादर समर्पित

वक्तव्य

पं० प्रतापनारायण मिश्र पर प्रबन्ध लिखने की प्रेरणा मुझे पूज्य गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी से मिली। उन्होंने ही मिश्र जी के साहित्यिक व्यक्तित्व से अवगत कराकर मुझे इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया। शोध-कार्य में अवतीर्ण होने पर प्रताप-साहित्य के विषय में फैली हुई, साहित्य-जगत की अनेक भ्रांतियों का मुझे परिज्ञान हुआ और उनके निराकरण की प्रेरणा मिली। जब मैंने शोध-कर्ताओं को अपने प्रबन्धों में मिश्र जी कृत 'मन की लहर' और 'प्रेम पुष्पावली' कविता पुस्तकों को एकांकी नाटक लिखते देखा[1] तो मुझे आश्चर्य हुआ कि ऐसे समर्थ और युग प्रवर्तक साहित्यकार के विषय में ऐसी भ्रांतियां हैं! मिश्र जी पर फैली हुई बहुत सी भ्रांतियों का दिग्दर्शन शोध प्रबन्ध में यथास्थान कराया गया है।

हिन्दी-साहित्य में मिश्र जी का स्थान साहित्य-मर्मज्ञों से छिपा नहीं है। मिश्र जी भारतेन्दु-युग के प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। आधुनिक हिन्दी-साहित्य का प्रथम उत्थान-काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र से ही गौरवान्वित है। मिश्र जी ने तन, मन और धन की बाजी लगाकर जो हिन्दी साहित्य और समाज की सेवा की है वह कभी भुलाई नहीं जा सकती। हिन्दी-साहित्य के उन्नायकों में उनका नाम अमर रहेगा। भारतेन्दु और भट्ट पर पर्याप्त अनुसंधान-कार्य हो चुका है तथा उनका समुचित मूल्यांकन भी किया गया है परन्तु मिश्र जी पर अभी तक छिटपुट लेखों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिखा गया। उनके कवि और नाटककार रूप को तो साहित्यकारों ने भुला ही दिया है केवल निबन्धकार के

१—डा० रामचरण महेन्द्र—हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास पृष्ठ ६५ ६६

रूप म उनका नाम लिया जाता है जबकि उनका काव्य और नाटक भी अपने युग में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। सुनने म आया है कि कुछ वष पूव दो-एक विश्वविद्यालयों मे मिश्रजी पर पी-एच०डी० के लिए शोध काय प्रारम्भ हुआ था पर जीवन-सूत्र और कृतियों के शोध म कठिनाई होने के कारण शोध-कर्ता काय से विरत हो गए। वस्तुत मिश्र जी के जीवन-सूत्र और कृतियो का पता लगाना आज दुरूह हो रहा है। मुझ भी सामग्री की खोज म कई बार बनारस इलाहाबाद कानपुर, उन्नाव आदि स्थानों का भ्रमण करना पड़ा है और अनेक कठिनाइयों का सामना करने के उपरान्त यह शोध प्रबन्ध पूरा किया जा सका है।

यह शोध-प्रबन्ध दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड परिचयात्मक है। द्वितीय खण्ड में मिश्र-साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। प्रथम खण्ड म तीन अध्याय हैं। पहले अध्याय म मिश्रजी का विस्तृत जीवन-वृत है जिसमे जन्म गोत्र वश-परम्परा, बाल्यकाल शिक्षा गाहस्थ्य जीवन कायक्षेत्र व्यक्तित्व स्वर्गारोहण और मित्र-मण्डली आदि का उल्लख है। दूसरे अध्याय म तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक स्थितियों का अध्ययन कर उनका मिश्रजी पर प्रभाव दिखाया गया है। मिश्रजी क निवास-स्थान कानपुर की तत्कालीन स्थिति का पर्यालोचन विशेष रूप से किया गया है। तीसरे अध्याय म मिश्रजी जी की मौलिक तथा अनूदित कृतियों का विवरण—क्रम विकास और मूलवर्ती प्रवृत्तियों के साथ दिया गया है।

द्वितीय खण्ड में पाँच अध्याय हैं। पहले अध्याय म मिश्र जी की कविताओं की समीक्षा है। मिश्र जी की कविताओं का परीक्षण युगीन पृष्ठभूमि की दृष्टि म रखकर किया गया है। प्राचीन और आधुनिक काव्य शैली मे रचित कविताओं का पृथक पृथक विवेचन है। दूसरे अध्याय म मिश्र जी के नाटकों पर विचार किया गया है। नाटकों क वस्तु विषय चरित्र निर्माण उद्देश्य भाषा अभिनेयता आदि पर विचार करते हुए मिश्र जी का नाट्य-साहित्य म स्थान निर्धारित किया गया है। तीसरे अध्याय म मिश्र जी के निब धों का विवेचन है। प्रथम हिन्दी निबन्ध का विकास देकर मिश्रजी के समग्र निबन्ध-साहित्य का वर्गीकरण करके गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चौथे अध्याय में मिश्रजी क पत्रकारिता

सम्बन्धी कार्य की समीक्षा की गयी है। इसमे मिश्र जी के पत्रकार जीवन की कठिनाइयो के बीच उनकी पत्रकारिता को देखा गया है। पाँचवें अध्याय मे मिश्र जी के अन्य स्फुट साहित्य पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत समालोचना साहित्य और अनूदित साहित्य का विवेचन है।

इसके बाद उपसहार है जिसमे भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो के बीच मिश्र जी को देखने का प्रयत्न किया गया है। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों के दृष्टिकोण और साहित्य से मिश्र जी की तुलना की गयी है तथा भारतेन्दु-युग मे उनका स्थान निर्धारित किया गया है। तत्पश्चात् प्रमुख परवर्ती लेखकों पर मिश्र जी का प्रभाव दिखाया गया है। अन्त मे दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट १ के अन्तर्गत मिश्र जी के अप्रकाशित साहित्य का उल्लेख है और परिशिष्ट २ मे सहायक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओ की सूची दी गयी है।

इस शोध प्रबन्ध की विशेषता यह है कि मिश्र जी और उनके साहित्य को भारतेन्दु-युग के परिवेश मे देखा गया है। पूरे शोध प्रबन्ध मे भारतेन्दु-युग मिश्र जी के चारों ओर चक्कर लगाता दिखाई देगा।

यह शोध प्रबन्ध श्रद्धेय गुरुवर्य आचार्य नन्ददुलारे जी वाजपेयी (अध्यक्ष हिन्दी विभाग सागर विश्वविद्यालय) के निर्देशन मे लिखा गया है। उन्होंने बडी सहृदयता, स्नेह और तन्मयता से मेरा पथ प्रदर्शन किया है। जब भी कभी उलझनें आयी हैं उन्होंने बडी आत्मीयता से उन्हें सुलझाया है। कहने की आवश्यकता नही कि यदि इतना स्वस्थ निर्देशन मुझे न प्राप्त होता तो यह प्रबन्ध पूरा होना असम्भव था। इस प्रबन्ध में उन्ही की प्रेरणाएँ साकार हो गयी हैं। इस शोध प्रबन्ध के लिखने मे उन्होंने जो सहयोग एव प्रेरणा दी है उसके लिए कृतज्ञता ज्ञापन करना तो केवल परम्परा का निर्वाह ही होगा मैं तो जीवन पर्यन्त उनका शिष्यत्व प्राप्त कर गौरव का अनुभव करता रहूँगा।

पूज्य श्री परमानन्द जी वाजपेयी (डिप्टी रजिस्टार, सागर विश्वविद्यालय) को तो मैं अपना संरक्षक ही मानता हूँ। उनसे मुझे पुत्रवत् स्नेह मिला है। उन्ही की इच्छा से मैंने सागर विश्वविद्यालय मे शोध-कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने

मुझे हर प्रकार से सहायता पहुँचाई है। इस कार्य के पूरा होने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। इस उपकार के लिए मैं उनका यावज्जीवन ऋणी रहूँगा।

सर्व श्री विजयशंकर मल्ल (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी (भू० पू० अध्यक्ष इतिहास विभाग क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर) का भी मैं अत्यंत आभारी हूँ। मल्ल साहब से मुझे प्रतापनारायण ग्रन्थावली द्वितीय खण्ड की पर्याप्त सामग्री देखने को प्राप्त हुई है। त्रिपाठी जी ने भी इस कार्य में मुझे अनेक सुझाव और परामर्श दिये हैं साथ ही टंकित प्रबन्ध का भी आद्योपांत अवलोकन किया है।

सर्व श्री गयाप्रसाद ज्योतिषी (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय), डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल डी ए वी कालेज कानपुर), नरेन्द्र चतुर्वेदी (कानपुर) रामकिंकर दीक्षित (बजगांव उन्नाव) पार्वती देवी (मिश्र जी के दत्तक-पुत्र की पत्नी) आदि से भी मुझे इस शोध-प्रबन्ध में बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए मैं उनका आभार प्रदर्शित करता हूँ।

इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), भारतीय भवन पुस्तकालय (प्रयाग) साहित्य सम्मेलन संग्रहालय (प्रयाग) नवजीवन पुस्तकालय (कानपुर), गयाप्रसाद लाइब्रेरी (कानपुर), हिन्दी साहित्य पुस्तकालय मौरावाँ (उन्नाव) और सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं व्यवस्थापकों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनसे मुझे बहुत सी उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई है।'

महाशिवरात्रि
२०१९ वि०

—सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'

विषय-सूची

प्रथम खण्ड परिचय

द्वितीय खण्ड समीक्षा

प्रथम खण्ड

.

परिचय

पहला अध्याय

जीवन-वृत्त

जीवन और साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है। कोई भी साहित्यकार कितना ही तटस्थ क्यों न हो फिर भी साहित्य मे उसके जीवन के कुछ न कुछ अंश आ ही जाते हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व तो उसके साहित्य मे निहित होता ही है। इसलिए उसके साहित्य के मूल म पहुचने के लिए पहले उसके जीवन म पहुचने की आवश्यकता होती है। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र व्यक्तित्व प्रधान साहित्यकार थे। उनका साहित्य उनके सबल व्यक्तित्व और गहन अनुभवयुक्त-जीवन का ही परिणाम है। जिस प्रकार उनका जीवन अकृत्रिम स्पष्ट उदार और हास्यपूर्ण था वैसा ही उनका साहित्य भी है। जीवन के जिन स्रोतो से मिश्र जी का साहित्य उद्भूत हुआ है और जिन तत्वो को लेकर वह तरंगायित है उनको बिना समझे उनके साहित्य के मूल-तत्वो को समझना असम्भव है। मिश्र जी का जीवन-वृत्त उनके साहित्यिक-कार्य के समान ही रोचक है इसी रोचकता के ही कारण पण्डित रमाकान्त त्रिपाठी ने उनके जीवन को 'एक उपन्यास की भाँति'[1] माना है। रोचक और साहित्याध्ययन के लिए आवश्यक होते हुए भी मिश्र जी का जीवन-वृत्त आज तक पूर्ण नही हो सका। यद्यपि लिखने का प्रयास कई विद्वानो ने किया पर परिश्रम तथा शोध के अभाव के कारण वह अब भी अपूर्ण है। सर्व प्रथम मिश्र जी ने स्वत अपना जीवन चरित्र—'प्रताप चरित्र' नाम से सन् १८८८ ई० मे लिखना प्रारम्भ किया था जो 'ब्राह्मण' पत्र के खण्ड ५ संख्या २, ३, ४ म प्रकाशित हुआ पर इसमे मिश्र जी अपने पूर्वजो तक का ही चरित्र लिख सके, किन्ही कारणो से इसे पूरा नही किया। पूर्वजो का भी चरित्र बहुत संक्षेप म—केवल चार पृष्ठो म—लिखा गया है।

मिश्र जी की मृत्यु के उपरान्त उनके प्रिय शिष्य स्वर्गीय पाण्डे प्रभुदयाल ने उनका जीवन चरित्र लिखने का विचार किया और महाराज कुमार बाबू रामदीनसिंह आदि की सहायता से उन्होने प्रामाणिक सामग्री भी एकत्रित कर ली। पर जीवन चरित्र लिखने के पूर्व ही पाण्डे जी की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु के साथ ही उनके द्वारा एकत्रित की हुई सामग्री भी अप्राप्य हो गयी[2]। इसके बाद पण्डित

१—रमाकान्त त्रिपाठी हिन्दी गद्य मीमांसा (१९३२ ई०) पृष्ठ २५४

२—बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ २३

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'पण्डित प्रताप नारायण मिश्र'[१] शीर्षक एक लेख लिखा और उसे सरस्वती' माच १९०६ के अंक में प्रकाशित किया। इस लेख में मिश्र जी के जीवन और साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। आगे चलकर यही लेख सन् १९१९ में निबन्ध नवनीत पहिला भाग की भूमिका में संकलित होकर अभ्युदय प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ। सन १९०७ में बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने मिश्र जी का जीवन चरित्र लिखकर पं० प्रतापनारायण मिश्र शीर्षक से भारत मित्र में प्रकाशित किया। इस चरित्र में गुप्त जी ने ब्राह्मण से प्रताप चरित्र संकलित किया और स्वतः सात पृष्ठों में मिश्र जी के जीवन पर प्रकाश डाला है। इसके अनन्तर बाबू श्यामसुन्दर दास ने सन् १९०९ ई० में मिश्र जी का चरित्र हिन्दी कोविद रत्न माला (पहिला भाग) में निकाला। फिर पं रमाकान्त त्रिपाठी ने १९३३ ई० में मिश्र जी के प्रमुख लेखों तथा कविताओं का सम्पादन प्रताप पीयूष में किया और इसी ग्रन्थ की भूमिका में—उपयुक्त ग्रन्थों के आधार पर तथा कुछ अन्य संस्मरणों को जोड़—मिश्र जी का जीवन चरित्र और समीक्षा लिखकर प्रकाशित कराया। जून १९३८ ई० में एक लेख गोपालराम गहमरी का लिखा हुआ स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र शीर्षक से सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। इस लेख में कालाकांकर के कुछ नये संस्मरण गहमरी जी ने दिये हैं क्योंकि जिस समय मिश्र जी 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक थे गहमरी जी ने भी मिश्र जी के साथ कुछ समय तक कार्य किया था।[२] इसलिए ये संस्करण वास्तविक तथा प्रामाणिक हैं। आगे फिर निबन्ध-नवनीत और 'प्रताप पीयूष' से सामग्री लेकर प्रेमनारायण टंडन ने मिश्र जी का चरित्र और उनके साहित्य की आलोचना लिखी और उसे प्रताप-समीक्षा की भूमिका में सन १९३९ में निकाला। इसके बाद नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकांत त्रिपाठी ने सन् १९४७ में 'प्रतापनारायण मिश्र' शीर्षक से मिश्र जी के प्रमुख लेखों का सम्पादन किया। इसमें मिश्र जी के जीवन पर सम्पादकों की ओर से तो कोई प्रकाश नहीं डाला गया पर मिश्र जी की मित्र-मण्डली विषयक सामग्री (कानपुर से सम्बन्धित) इसमें अच्छी दी गई है। इसके अतिरिक्त उपयुक्त ग्रन्थों के ही आधार पर लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में मिश्र जी के जीवन से संबंधित सामग्री एक-दो पृष्ठों में प्राप्त होती है।

जितने भी लेखकों ने मिश्र जी का जीवन चरित्र लिखा है उन्होंने अपनी ओर से कुछ विशिष्ट सामग्री न देकर द्विवेदी जी के ही लेख[२] की सामग्री का कुछ

१—सरस्वती' जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी।
२—सरस्वती' माच, १९०६ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र'
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

हर फर न साथ उपयोग किया है इसलिए मिश्र जी के जीवन का सम्पूर्ण चित्र कोई भी जीवनीकार उपस्थित न कर सका। यहाँ तक कि मिश्र जी के गार्हस्थ्य-जीवन पर किसी ने एक शब्द भी न लिखा।

इस शोध प्रबन्ध म जब मिश्र जी की जीवनी लिखने का समय मेरे समक्ष आया और मैंने उपयुक्त सामग्री का अध्ययन किया तो अनेक सन्देह और संशय मेरे मस्तिष्क म उत्पन्न हुए। जैसे-जन्म-स्थान और मृत्यु तिथि का पृथक-पृथक मिलना आदि—जिनका समाधान होना असम्भव-सा दिखाई पड़ने लगा। आज मिश्र जी को मृत्यु क ६८ वर्ष हो गये और अब उनके समय का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं रहा जो उनके विषय म कुछ बता सके। ऐसी स्थिति म एक वर्ष तक सामग्री के अभाव म मैं बड़ा उदासीन रहा। अन्त म मैंने जब मिश्र जी की कृतियों का शोध किया तो उनम मुझे अनेक जीवन-कण लहराते हुए दिखाई दिये जिनसे मुझे इस कार्य म बड़ा ही प्रोत्साहन मिला और उन जीवन-कणों को मैंने एकत्र किया। इसके साथ ही दो स्रोत मुझे और मिले जिनसे मुझे जीवनी लिखने म बड़ी सहायता मिली। एक बैजे गाँव (उन्नाव) निवासी श्री रामकिंकर दीक्षित हैं जो प्रतापनारायण मिश्र के चचेरे भाई के प्रपौत्र (लड़की के पुत्र) हैं जिनकी अवस्था इस समय ७१ वर्ष की है ये आजकल मिश्र जी की बैजेगाँव की सम्पत्ति के अधिकारी हैं। इनसे मुझे मिश्र जी के पूर्वजों के विषय म मौखिक बहुत-सी बातें ज्ञात हुई। दूसरी श्री पार्वती देवी हैं जो प्रतापनारायण जी के दत्तक पुत्र स्व० रामगोपाल की धर्मपत्नी हैं और मिश्र जी के नौघड़ा वाले मकान म रहती हैं। इनकी अवस्था ६५ वर्ष की है और मिश्र जी की कानपुर की सम्पत्ति की यही अधिकारिणी हैं। यह और मिश्र जी की पत्नी साथ साथ २० वर्ष तक रही हैं। इनके द्वारा मिश्र जी के गार्हस्थ्य जीवन तथा मित्र-वर्ग के विषय म बहुत-सी अज्ञात बातें मौखिक रूप से ज्ञात हुई हैं।

जन्म और नामकरण

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ९ चन्द्रवार, सम्वत् १९१३ वि० (२४ सितम्बर १८५६ ई०) को हुआ था[१]। मिश्र जी का नामकरण उनकी चाची (श्री मदुनन्दन जी की पत्नी) ने किया था। ये श्री रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय की थी क्योंकि उनके पितृकुल के सभी लोग इसी धर्म को मानते थे इसलिए मिश्र जी का नाम भी उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही रखा था[२]। मिश्र जी का

१ जन्म तिथि सभी पुस्तकों म एक-सी मिलती है लेकिन वह केवल विक्रमी तिथि म है अंग्रेजी तिथि और दिन १९१३ वि० के पंचांग से निकाले गये हैं। यह पंचांग हस्तलिखित भारती भवन पुस्तकालय इलाहाबाद म प्राप्त हुआ।

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ४ प्रताप-चरित्र प्रतापनारायण मिश्र।

नाम 'नारायण' शब्द उनके सम्प्रदाय का ही द्योतक है। इस नाम के अतिरिक्त मिश्र जी ने स्वत अपने कई उपनाम भी रक्खे थे जिनमें 'ईश्वराश्रन्वित और प्रमदास' अधिक प्रसिद्ध है। संक्षेप में वे अपने को 'प्रताप मिश्र और प्रताप कानपुरी' भी लिखते थे। कविता के स्थान छन्द और मात्रा की दृष्टि से भी इन्होंने अपने नाम को प्रतापहरी प्रताप परताप, परतापनारायन प्रतापजू आदि रूपों में प्रयुक्त किया है। आल्हा में वह अपना उपनाम 'अखण्ड अलहैत' रखते थे। उर्दू में मिश्र जी का तखल्लुस 'बरहमन' था। इसी से वे उर्दू में रचनाएँ करते थे। लेकिन साहित्य जगत में वे प्रतापनारायण मिश्र के ही नाम से प्रसिद्ध हैं।

वर्ण, गोत्र आदि

पं० प्रतापनारायण वर्ण से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म बजगांव के मिश्र कुल में हुआ था। यह परमनाथ (या पवननाथ) के असामी (वंशज) थे और इनका गोत्र कात्यायन था।[1] इसलिए ये कभी-कभी अपने नाम से पहले 'श्री मतमहर्षि कात्यायन कुमार' भी लिखते थे और अन्य लोगों को भी ऐसे-ऐसे विशेषण नाम से पूर्व लिखने के लिए प्रेरित करते थे, जिससे आत्मगौरव का स्मरण होता रहे[2]। मिश्र-वंश की कुलदेवी गार्गी, कुलदेवता बूढ़े बाबू यजुर्वेद और धनुरउपवेद धर्म ग्रन्थ तथा शिव इष्ट देवता है[3]।

वंश परम्परा

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का वंश महर्षि विश्वामित्र से प्रारम्भ होता है यही इनके आदि पुरुष है[4]। कहते हैं कि जब विश्वामित्र को कठिन तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त हो गया (वैसे जन्म से विश्वामित्र क्षत्रिय थे) तब ब्राह्मणों ने भी अपनी लड़कियों का ब्याह इनसे किया और इन लड़कियों से उत्पन्न सन्तानों की गणना ब्राह्मणों में हुई। विश्वामित्र के पिता गाधि और पितामह कुशिक कान्यकुब्ज देश के राजा थे। और इनकी राजधानी कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) थी[5]। कान्यकुब्ज देश को पहले मध्यदेश कहते थे। यह देश कन्नौज अयोध्या (अवध) दिल्ली और आगरा तक फैला हुआ था इसी देश के रहने वाले ब्राह्मण कान्यकुब्ज कहलाये।[6] आगे चलकर विश्वामित्र के वंश में कात्यायन, मित्र और परमनाथ (पवननाथ) बड़े

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ३ 'प्रताप-चरित' प्रतापनारायण मिश्र

२ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ५४७ ४८

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ३ 'प्रताप चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३ 'प्रताप-चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ३ 'प्रताप चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

६ नारायणप्रसाद मिश्र 'कान्यकुब्ज वंशावली' (१९५९ई०) पृष्ठ ९

यशस्वी पुरुष हुए ।[1] कात्यायन का वंश कात्यायन गोत्रीय ब्राह्मणों के नाम से प्रसिद्ध हुआ । यहाँ इतना कह देना अनुचित न होगा कि विश्वामित्र न तो ऐतिहासिक पुरुष ही हैं और न इनके ऊपर कोई प्रामाणिक सामग्री ही मिलती है केवल जनश्रुतियों और वंशावलियों में ही उक्त उल्लेख मिलता है । सम्भव है मिश्र जी ने भी जन श्रुतियों के ही आधार पर विश्वामित्र को अपना आदि पुरुष माना हो ।

मिश्र जी के आदि पूर्वज कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) में रहते थे ।[2] बाद में जीविकोपार्जन हेतु कान्यकुब्जपुर छोड़कर विभिन्न स्थानों में बस गये । बैजेगाँव के मिश्रों की उत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—कात्यायन गोत्र में चतुर्भुज द्विवेदी बड़े प्रतापी पुरुष हुए और टिकरिया ग्राम में रहने के कारण टिकरिया-दुबे कहलाये । इनके पुत्र गार्गीदत्त टिकरिया ग्राम छोड़कर कजपुर चले गये और ये कजपुर के मिश्र कहलाये । इन्हीं के पौत्र पवननाथ बजगाँव में आकर बस और ये बजेगाँव के मिश्र कहाये । इसके बाद पवननाथ का वंश भी बजगाँव के मिश्रों के नाम से विख्यात हुआ । इसीसे बजगाँव के मिश्र अपने को पवननाथ का असामी कहते हैं ।[3]

बजगाँव उन्नाव जिले में पूर्व की ओर पाँच कोस पर है यद्यपि अब बजगाँव एक साधारण गाँव है पर अनुमान होता है कि किसी समय यह बड़ा दर्शनीय स्थान और विद्वानों का गाँव रहा होगा । इसी से मिला हुआ वहदस्थल (वयर) और इससे कुछ ही दूर पर विग्रहपुर (बिगहपुर) गाँव है । गाँव के चारों ओर मन्दिर और तालाब हैं तथा कई मीलों तक बागें हैं । बजगाँव के पास ही एक बहुत पुराना किला है जो अब गिर कर टीले के आकार में बदल गया है इसमें खोदने पर महाराज चन्द्रगुप्त के समय के सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं ।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के वृद्ध पितामह का नाम सवसुख मिश्र प्रपितामह का सवपनाथ मिश्र पितामह का रामदयाल मिश्र और पिता का संकटाप्रसाद मिश्र था ।[4] रामदयाल के एक भाई शिवप्रसाद थे व दूसरे घर में रहते थे । उनके जयगोपाल और रामसहाय दो पुत्र थे जो संकटाप्रसाद (प्रतापनारायण के पिता) का बड़ा हित करते थे । संकटाप्रसाद के दो बड़े भाई और थे द्वारिकाप्रसाद और यदुनन्दन । द्वारिकाप्रसाद निस्सन्तान स्वर्गवासी हुए । यदुनन्दन के अम्बिकाप्रसाद एकमात्र पुत्र थे जो सोलह वर्ष की अवस्था में ही परलोक सिधारे । इसलिए इनका भी यहीं वंश समाप्त हो गया । शिवप्रसाद का वंश अब भी बजगाँव में चल रहा है ।

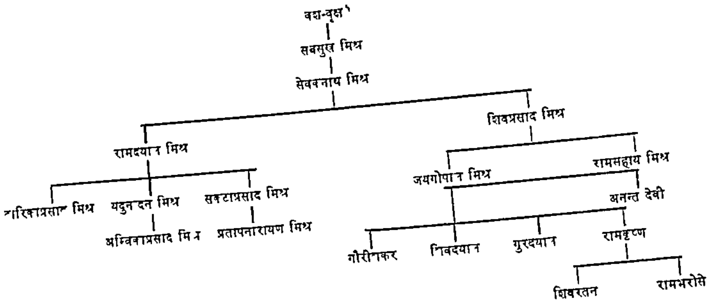
---

१ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ प्रताप चरित्र प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ कन्नौज में तीन दिन' प्रतापनारायण मिश्र

३—नारायणप्रसाद मिश्र कान्यकुब्ज वंशावली' (१९२९ ई०) पृष्ठ ६७

४—ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ प्रताप चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र


वंश-वृक्ष[1]
सबसुख मिश्र
सेवकनाथ मिश्र
रामदयाल मिश्र
शिवप्रसाद मिश्र
द्वारिकाप्रसाद मिश्र
यदुनन्दन मिश्र
सकटाप्रसाद मिश्र
अम्बिकाप्रसाद मिश्र
प्रतापनारायण मिश्र
जयगोपाल मिश्र
रामसहाय मिश्र
अनन्त देवी
गौरीशंकर
शिवदयाल
गुरुदयाल
रामकृष्ण
शिवरतन
रामभरोसे

मिश्र जी के पूर्वजों का मुख्य काम बाग लगाना और पशु पालना था। वे सुबह से शाम तक बागों में रहते, नये-नये पेड़ लगाने और उनका पालन पोषण करते थे। आम की फसल के समय तो रात्रि में भी बागों में ही सोते थे। उनके पास कई एक बागें थी। जमीन बिलकुल नहीं थी क्योंकि वे लोग खेती करना हेय समझते थे। उनके पास गायें बहुत अधिक संख्या में थी जिनको अहीर चराते थे। इनके भोजन के मुख्य अंग आम, आम की गुठली (जिनको सुखाकर रख लेते थे और थोड़े दिन बाद उसी को फोड़ कर गूदी निकालकर फिर उसे उबालकर खाते थे) महुआ बेल कथा बेर दूध आदि थे। भोजन में दूध वे लोग अधिक मात्रा में लेते थे। दूध बेचना पाप वे नियम करते थे इसलिए दूध न बेचकर घी तैयार करके बेचते थे। और जो उसमें पैसा आता था उसी से अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीदते थे। अधिकतर में कूटे हुए जौ की रोटी खाई जाती थी। बड़े त्योहार उत्सव आदि में खाया जाता था और चावल जब कभी समधी, मेहमान आते थे तब पकता था। चक्की घर में ही औरतें चलाती थीं। साल में जो पैसा बचता था नातेदारियों में काम काज में मिल जाता उससे कपास खरीदी जाती थी और ओटनी (कपास ओटने का यंत्र जिसमें बिनौले अलग किये जाते हैं) से कपास ओटकर तथा रुई निकालकर रहटे में सूत काता जाता था। रहटा औरतें ही चलाती थी और जो औरत जितना सूत कातती थी उसीसे उसके पति तथा बच्चों के कपड़े बनते थे। अब भी मिश्र जी के घर (बैजेगांव) में कई पुराने रहटे टूटे हुए रखे हैं। जब घर में कोई ब्याह आदि करना होता था तो कुछ पहले से ही गायों के बछड़े बेचकर धन एकत्रित किया जाता था।

मिश्र जी के पूर्वज बड़े धार्मिक और साहित्यानुरागी थे। गृहकार्य से जो भी समय बचता था उसे भजन-पूजन में लगाते थे। सुनने में आया है कि बाग में आकर बच्चों तक को पुराण सुनाया करते थे और जब पेड़ लगाते थे तो उनके कल्याणार्थ मन्त्रों का उच्चारण करते थे। गायत्री उनका मुख्य मंत्र था, जिसका वे जप करते थे। शिव पर उनकी विशेष आस्था थी और रुद्राक्ष की बड़ी-बड़ी गुरियों की गले में माला पहनते थे। नवरात्रि में दुर्गा का पाठ विशेष रूप से करते थे।

मिश्र जी के पितामह रामदयाल मिश्र अच्छे कवि थे पर उनका काव्य प्रकाश में नहीं आया। संग्रह के अभाव में सब लुप्त हो गया।[1] मिश्र जी ने अपने पितामह को नहीं देखा क्योंकि जब संकटाप्रसाद (मिश्र जी के पिता) केवल नौ वर्ष के थे तभी उनका देहान्त हो गया था। संकटा प्रसाद जी की माता का भी देहान्त पिता के देहान्त के थोड़े ही दिन बाद हो गया। इसलिए संकटाप्रसाद के पालन-पोषण का भार इनके दोनों भाभियों पर आ गया। दोनों भाभी इनका बड़ा स्नेह करती

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १ 'प्रताप-चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

थी। लेकिन एक भाभी (द्वारिकाप्रसाद जी की पत्नी) का शीघ्र ही स्वर्गवास हो गया। दूसरी भाभी (यदुनन्दन जी की पत्नी) सदा संकटाप्रसाद जी को पुत्रवत् मानती रहीं।[1] बैजेगाँव से एक मील दूर मवैया गाँव है वहाँ पं० दयानिधि जी रहते थे उन्हीं के पास संकटा प्रसाद जी पढ़ने जाने लगे। केवल एक वर्ष तक पढ़ सके फिर एक पेड़ पर से गिर पड़ने से बड़ी चोट आयी और कई महीने तक पड़े रहे। अन्त में पैर तो ठीक हो गया पर लंगड़ाने लगे। इनकी दूसरी भाभी कानपुर के परम प्रतिष्ठित श्री प्रयागनारायण तिवारी के चाचा श्री द्वारिका प्रसाद तिवारी की कन्या थी। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उनकी (दूसरी भाभी ने) संकटा प्रसाद को कानपुर भेज दिया। इस समय संकटा प्रसाद की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी।[2] वहाँ शिवप्रसाद अवस्थी और रेवतीराम त्रिपाठी (प्रयागनारायण के पिता) ने इन पर बड़ी कृपादृष्टि रक्खी। कुछ दिन बाद अवध के बादशाह श्री गाजीउद्दीन हैदर के दरोगा जनाब आजमअली खाँ साहब के दीवान श्री महाराज फतेहचन्द के यहाँ इनको नौकरी मिल गया।[3] यह नौकरी इनको बड़ी फलीभूत हुई। थोड़े ही दिन में इनकी स्थिति सुधरने लगी। इस नौकरी के साथ ही साथ इन्होंने ज्योतिष का भी अध्ययन प्रारम्भ किया और शीघ्र ही ज्योतिष का अच्छा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

संकटाप्रसाद का विवाह रायबरेली जिले के बराहिमपुर (इब्राहीमपुर) नामक गाँव में काशीराम के वाजपेयी-वंश में हुआ था। इनकी पत्नी श्री मुक्ताप्रसाद वाजपेयी की कन्या थी।[4] प्रारम्भ में संकटाप्रसाद रेवतीराम त्रिपाठी के ही साथ रहते थे। विवाह हो जाने के बाद इन्होंने रामगंज नामक मुहल्ले में किराये पर एक मकान ले लिया और वहीं पत्नी सहित रहने लगे। कुछ दिन बाद दीवान फतेहचन्द से खटपट हो जाने के कारण इन्होंने नौकरी छोड़ दी और ज्योतिषी का कार्य करने लगे। ज्योतिष विद्या में धीरे-धीरे इन्हें बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। यहाँ तक कि अंग्रेज भी इनके प्रशंसक हो गये। कानपुर के जूट मिल के मैनेजर बीयर साहब तो इनके ज्योतिष के गुणों पर बहुत ही मोहित थे। एक बार बीयर साहब को तार मिला कि उनकी मेम विलायत में बहुत बीमार हैं। साहब बहुत घबड़ाये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। उनके हिन्दुस्तानी क्लर्कों ने उनसे पण्डित संकटादीन मिश्र (संकटाप्रसाद मिश्र) की बात कही। साहब ने मिश्र जी को बुलाया और अपनी मेम

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ४ 'प्रताप-चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ४, 'प्रताप चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ४ 'प्रताप-चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ४ 'प्रताप चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

की बीमारी के विषय में उनसे प्रश्न किया। सकटाप्रसाद ने थोड़ा ही देर में उत्तर दिया कि आपकी मेम आपसे मिलने के लिए बहुत जल्द आना चाहती है। साहब को मिश्र जी की बातों पर विश्वास न हुआ। उन्होंने समझा कि यह बात वाहियात है। पर दो ही दिन में जब मेम साहब उनके सामने आ खड़ी हुईं तो बीमार साहब बहुत चकराये और तब से वह सकटाप्रसाद जी का बड़ा आदर करने लगे।[१] ज्योतिष से सकटाप्रसाद जी ने बड़ा धन कमाया। ये राजाओं तथा बड़े-बड़े धनाढ्य लोगों की कुण्डलियाँ बनाते थे और इन्हें एक-एक कुण्डली से पाँच-पाँच सौ रुपये तक प्राप्त होते थे। धीरे धीरे इन्होंने नौघड़ा (कानपुर) में छोटे छोटे पाँच मकान खरीद लिये। पहले ये मकान खपड़ैल के बने हुए थे। आज इन्हीं पाँच मकानों के स्थान पर तीन बड़े मकान बने हुए हैं जिनका विवरण आगे दिया जायगा।

बजगाँव में सकटाप्रसाद जी के दोनों भाई एक ही गृह में रहते थे।[२] जब बड़े भाई द्वारिकाप्रसाद और उनकी पत्नी का देहान्त हो गया तो छोटे भाई यदुनन्दन वहाँ की सम्पूर्ण सम्पत्ति की देख रेख करने लगे। सकटाप्रसाद जब कानपुर में अच्छी तरह जम गये और उनके निजी मकान भी हो गये तो बजेगाँव की सम्पत्ति का पूरा अधिकार उन्होंने अपने बड़े भाई यदुनन्दन को दे दिया और कहा कि अब बजगाँव की सब सम्पत्ति आपकी है। आप जैसे चाहें इसका उपयोग करें। बजगाँव में यदुनन्दन जी के पास एक बड़ा मकान कुछ बागें और गायें थीं इन्हीं से उनका जीवन यापन होता था। आगे चलकर जब यदुनन्दन जी की पत्नी और उनके चौदह वर्षीय एकमात्र पुत्र अम्बिकाप्रसाद का स्वर्गवास हो गया तब उन्होंने अपनी सब सम्पत्ति शुकदेव (चचेरे भाई के पौत्र) को दे दी। शुकदेव से यह सम्पत्ति उनकी (शुकदेव की) लड़की को प्राप्त हुई। लड़की के पति—लालताप्रसाद दीक्षित अपने सम्पूर्ण परिवार (भाई और भतीजे) सहित शुकदेव के पास रहने लगे। लालताप्रसाद के कोई सन्तान न हुई तब यह सम्पत्ति उनके भतीजे रामकिंकर दीक्षित को मिली। यही आजकल मिश्र जी की बेजेगाँव की सम्पत्ति के अधिकारी हैं। रामकिंकर जी के पास अब भी कुछ बागें और वही पुराना मकान है। यह मकान लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। इसका मुख्य दरवाजा पूर्व की ओर है। बाहर बैठक का कमरा है। उस कमरे के आगे काठ के नक्काशीदार खम्भों की चौपाल थी जो अब गिर गयी है। इस मकान के भीतर चार आँगन हैं और बहुत से कमरे तथा दालानें हैं सभी दालानों में काठ के नक्काशीदार खम्भे हैं। पहले दो कच्चे कुएँ भी थे। अब बैठ गये हैं। मकान का बहुत-सा भीतरी हिस्सा गिर गया है। रामकिंकर जी इस मकान को

१ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ११

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३—प्रताप-चरित्र प्रतापनारायण मिश्र।

बड़ी हिफाजत रखते हैं क्योंकि वह प्रतापनारायण जी के बड़े भक्त है। इन्होंने मिश्र जी की स्मृति म प्रताप साहित्य मण्डल' नाम से एक पुस्तकालय स्थापित किया था जो अब भी भग्नावशेष रूप मे श्रीनिवास शास्त्री (वेयर) के यहाँ है पर अब उसमे कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नही है।

सकटाप्रसाद जी के शादी होने के बाद बहुत समय तक कोई सन्तान नही हुई। कहते हैं एक समय एक महात्मा जी आये और उन्होंने सकटाप्रसाद जी को एक फल दिया जिसे उन्होंने अपनी पत्नी को खिलाया। इसी के कुछ समय बाद प्रताप नारायण जी का जन्म हुआ। प्रतापनारायण इनके इकलौते पुत्र थे। सकटाप्रसाद जी बहुत सादे और सरल स्वभाव के थे। इनके यहाँ सुबह से शाम तक भाग्यचक्र पूछने वालो की भीड लगी रहती थी। बहुत दूर-दूर से लोग इनके पास भविष्य पूछने आते थे। प्रतापनारायण जी जब १९ वर्ष के थे तब इनकी मृत्यु हुई।[1] सुनने म आया है कि सकटाप्रसाद जी ने गणना करके अपनी मृत्यु तिथि पहले ही बता दी थी। मृत्यु से डेढ घण्टे पहले उन्होने कहा कि मुझे गगातट पर ले चलो सब लोग उन्ह गगातट (कानपुर के) ले गय और वही उन्होने प्राण छोड।

जन्मभूमि और निवास स्थान

यह तो निर्विवाद है कि कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) छोडने के बाद मिश्र जी के पूर्व पुरुषो की जन्म भूमि बैजेगाँव रही। पर प्रतापनारायण की जन्म भूमि वस्तुत कहाँ रही इस पर विद्वानों मे मतभेद है। मिश्र जी की जन्म भूमि के विषय म तीन मत हैं। पहला मत बजगाँव मानता है, दूसरा कानपुर और तीसरा मवइया (उन्नाव)। यह मतभेद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[2] के समय स प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] बालमुकुन्द गुप्त[4] श्यामसुन्दरदास[5] आदि ने मिश्र जी की जन्म भूमि बजगाँव मानी और इसके बाद भी नरेशचन्द्र चतुर्वेदी[6] आदि बजगाँव ही मानते चले आ रहे हैं। आचार्य शुक्ल न लिखा है कि प्रतापनारायण मिश्र के पिता उन्नाव स आकर कानपुर म बस गय थ जहाँ प्रतापनारायण जी का

---

१ निबन्ध-नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

२ आचाय रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास' (स० २००६) पृ० ४६४

३ 'सरस्वती' मार्च, १९०६ प्रतापनारायण मिश्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

४ 'भारत मित्र १९०७ ई०, पं० प्रतापनारायण मिश्र' बालमुकुन्द गुप्त

५ डा श्यामसुन्दर दास 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' पहला भाग, द्वितीय स०, पृ ५८

६ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७) पृ २०८

जन्म स० १९१३ म और मृत्यु स० १९५१ म हुई।[1] फिर इसके बाद नारायण प्रसाद अरोड़ा[2] लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी[3] किशोरीलाल गुप्त[4] आदि ने भी शुक्ल जी की ही परम्परा म मिश्र जी का जन्म भूमि कानपुर मानी। पर अपने मत की पुष्टि म इन लोगो ने कोई प्रमाण नही दिय। तीसरा मत जो आजकल बैजगाँव मवइया और कानपुर क साहित्यानुरागियो म जोर पकड रहा है वह मवइया निवासी स्व० डा० रामशकर जी शुक्ल का है। यद्यपि यह मत अभी तक किसी पुस्तक म प्रकाशित नहा हुआ पर मौखिक साक्ष्य के आधार पर इसकी लोगो म बडी चर्चा है। इन पंक्तियों क लेखक की भी डा० साहब स बातचीत हुई थी। डा० साहब कहते थ कि मिश्र जी का ननिहाल मवइया म डम्बर दुबे क वश म था। जिस समय प्रतापनारायण की माता क बच्चा होन वाला था वे अपन मायक चली आई थी। इसीसे यही मवइया म ही प्रतापनारायण का जन्म हुआ।

तीसरा मत जो मवइया म मिश्र जी के जन्म का है निरा भ्रामक है। इसके कही कोई प्रमाण नहीं मिलते। डा० रमाशकर का यह कहना कि मिश्र जी का ननिहाल मवइया म था बिल्कुल असत्य है। कारण मिश्र जी ने स्वत अपने 'प्रताप चरित' म लिखा है कि हमारे पिता ने अवध प्रान्त क इब्राहीमपुर नामक गाँव म काशीराम के वाजपयी वश में विवाह किया।[5] अत मिश्र जी का ननिहाल इब्राहीमपुर म था। पहला मत जो बैजगाँव म जन्म होन का है इसके भी कोई प्रमाण प्राप्य नहा केवल पूर्वजो का स्थान होन क कारण लखको न इनका भी जन्म-स्थान बैजगाँव मान लिया। दूसरा मत जो कानपुर क पक्ष म है उसके भी किसी ने कोई प्रमाण नही दिय। पर हम शोध म कुछ एस प्रमाण मिल हैं जिनसे पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि प्रतापनारायण का जन्म भूमि कानपुर ही थी। प्रतापनारायण जी न एक पुस्तक 'कानपुर माहात्म्य' आल्हा-छन्द म लिखा है इसम कानपुर की महिमा का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक क प्रारम्भ म देवताओं की वन्दना करत हुए वे लिखत हैं—

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (स० २००६) पृ० ४६४

२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ २६

३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २६

४ किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६) पृ० ३८२

५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ स० ४

गाजी पीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जन्म भूमि को प्रभु गावहु हौं भूले भण्डार देव बताय॥[१]

यदि कानपुर मिश्र जी की जन्म भूमि न होती तो वे कभी ऐसा न लिखते। दूसरे पार्वती देवी (मिश्र जी के दत्तक पुत्र की पत्नी) भी मिश्र जी की जन्म भूमि कानपुर ही बताती है (यह बात उन्हें मिश्र जी की पत्नी से ज्ञात हुई है) मिश्र जी का जहाँ पर जन्म हुआ था वह जगह भी पार्वती देवी को ज्ञात है। उन्होंने बताया *कि नौघड़ा में जो मन्दिर वाला मकान है और उसके पीछे जो गोदाम है उसी स्थान* पर पहले एक कमरा खपरैल से छाया हुआ था उसी में मिश्र जी का जन्म हुआ था। इस प्रकार अन्तसाक्ष्य और मौखिक-साक्ष्य दोनों से यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रतापनारायण की जन्म भूमि नौघड़ा (कानपुर) है।

प्रतापनारायण जी जन्म से लेकर मृत्यु तक कानपुर में ही रहे केवल एक वर्ष के लिए (सन् १८८९ ई० में) कालाकांकर दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक होकर गये थे[२]। कानपुर के तत्कालीन जीवन से मिश्र जी का जीवन घुल मिल कर एक हो गया था। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते हैं— कानपुर नगर की उत्पत्ति व आतुर श्रीवृद्धि की कथा ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के गुण-दोष की कहानी है[३]। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी ने कानपुर में केवल निवास ही नहीं किया बल्कि उस निवास के योग्य भी बनाया।

बाल्यकाल और शिक्षा

शिशु प्रतापनारायण बड़ी चपल प्रकृति के थे। वे एक स्थान पर अधिक देर तक नहीं ठहरते थे। सदा मस्त और प्रसन्न रहते थे। जब वे कुछ बड़े हुए तो इनके पिता ने विद्याध्ययन के लिए इन्हें एस० पी० जी० स्कूल (जो उस समय नयागंज में था अब नहीं है—टूट गया) में भर्ती कराया।[४] पर इनका मन पढ़ने में न लगता था। नियमित रूप से स्कूल भी न जाते थे। इन सब कारणों से ये कई बार अपने अध्यापकों के कोपभाजन भी बन चुके थे[५]। अन्त में कुछ हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करके इन्होंने स्कूल छोड़ दिया। तब इनके ज्योतिषी पिता ने इन्हें घर पर ही ज्यो

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९) पृष्ठ २०५
२ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९३७) पृष्ठ १२७
३ 'रामराज्य' (कानपुर) २२ अक्टूबर १९५६ पृ० 'प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
४ प्रेमनारायण टंडन 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) पृष्ठ २
५ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

तिष पढाना प्रारम्भ किया । कुछ दिन तक प्रतापनारायण 'शीघ्र बोध' और 'मुहूर्त चिन्तामणि' पढ़ते रहे पर इसमे प्रतापनारायण जी का मन न लगता था । प्रताप नारायण सरस प्रकृति के थे । जन्म पत्र बनाना और ग्रह-नक्षत्र की गणना करना इनके वश की बात न थी । फिर इनके पिता ने इन्हे अग्रजी स्कूल म दाखिल कराया ।[1] उन्होने वहाँ कुछ सीखा जरूर पर मेधा के प्रताप से ।[2] इनका मन पढ़ने म कभी नही लगा । सन् १८७१ ई० म बिना कोई परीक्षा पास किये इन्होने पढ़ना छोड दिया । इनकी स्कूली शिक्षा अधूरी ही रह गई ।[3]

स्कूल म इनकी पहली भाषा अग्रजी दूसरी हिन्दी थी ।[4] इसके अतिरिक्त घर पर इन्होन अपन पिता से संस्कृत पढी ।[5] सन् १८७५ ई० म इनके पिता का देहान्त हो गया ।[6] इसके बाद सन् १८८३ ई० तक ('ब्राह्मण' निकालने के पूर्व) ये कानपुर की सामाजिक गोद म रहे । कानपुर के प्रतिष्ठित लोगो स मिलना जनवाणी को सुनाना तथा उस पर विचार करना ही इनका मुख्य काय था । इन्होन अपना सुदृढ जन-सम्पर्क स्थापित कर लिया । कानपुर का इन्होने अच्छी तरह अध्ययन किया और इसकी पूरी गतिविधि स इनका परिचय हो गया । साहित्यिक-रुचि के कारण साहित्यकारो स भी इनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया । इसी बीच इन्होन उर्दू और फारसी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । मिश्र जी के भाषा ज्ञान पर विचार करते हुए बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है— वह अग्रजी खासी बोल सकते थे । आप घण्टा घण्टा घण्टा बराबर अग्रजी म ही बातें किये जाते थे कभी इच्छा करते तो अनुवाद भी कर लेते थे पर बडी अनिच्छा से । अग्रजी पोथियाँ और अखबारो के पढ़ने म वह जरा मन न लगाते थे । कोई इनर लिए दबाता था तो भी परवाह न करते थे । मुह बना के कागज या पोथी फेंक देते थे । यदि वह साल दो साल जी लगाकर अग्रजी पोथियाँ या अखबार पढ़ने तो अच्छे अग्रजी पढ़ो म उनकी गिन्ती होती । यही हाल उनकी संस्कृत का था । छन्द और आर

---

१ वीर भारत ७ अक्तूबर १९४७ 'पंडित प्रतापनारायण' मिश्र । लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धवली' (प्रथम भाग) पृष्ठ १२

३ 'राम राज्य (कानपुर) १५ अक्टूबर १९५६ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण । लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी ।

४ निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

५ निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

६ 'वीर भारत' ७ अक्तूबर १९४७ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी ।

आठ साल से जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितो को कथा कहते युग बीत गये थे उनके साथ हमने प्रतापनारायण जी को बातें करते देखा है। यह उनसे कुछ जल्दी बोलते थे और अच्छा बोलते थे पर रुचि आपकी संस्कृत पुस्तको म भी वैसी ही थी जैसा अंग्रेजी पुस्तको म। उर्दू म भी वह बन्द न थे। उर्दू म इनकी बहुत सी कविता मौजूद हैं। गजल लिखते थे लावनियां लिखते थे मसनवी लिखते थे। फारसी गजलो पर अपने उर्दू मिसरे लगा कर उनसे मुखम्मस वगैरह बनाते थे।[1]

प्रतापनारायण जी का हिन्दी पर तो अपूर्व अधिकार था ही साथ ही उर्दू भी वह अच्छी जानते थे। इसके अतिरिक्त फारसी संस्कृत और अंग्रेजी का भी इन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रान्तीय भाषाओ म बगला महाराष्ट्री पजाबी का भी इन्हे सामान्य ज्ञान था। बगला के बकिमचन्द्र के उपन्यासो का तो इन्होंने अनुवाद ही किया है। महाराष्ट्री और पजाबी भाषा ज्ञान के दर्शन भारत दुर्दशा' रूपक के रचना म होते है।[2] मुडिया[3] और बुन्देलखण्डी[4] भी जानते थे। ब्रजभाषा और बैसवाडी तो इनकी अपनी भाषा ही था। मिश्र जी अंग्रेजी अधिक नही जानते थे इसका प्रमाण उनके ब्रडला स्वागत' के अन्त म दी इस टिप्पणी स मिलता है— अंग्रेजी न मेरी मातृभाषा है न मैं उस उत्तम रीति से जानता हू। एक मित्र (जिनका नाम प्रकाशित करना आवश्यक नही है) ने कृपा करके अनुवाद कर दिया है अत अंग्रेजी की अशुद्धि म मेरा दोष नही है पर यदि हो सके तो क्षमा का प्रार्थी हू।[5]

प्रतापनारायण मिश्र जब स्कूल के छात्र थे तभी उनका परिचय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध पत्रिका कविवचन सुधा स हुआ। कविवचन सुधा' का प्रकाशन सन १८६८ ई० म प्रारम्भ हुआ था उस समय प्रतापनारायण की अवस्था १२ वर्ष की थी। ये कविवचन सुधा' का बडा रुचि से पढते थे और इसी से उन्हे काव्य रचना की प्रेरणा मिली।[6] इस पत्रिका के ही कारण यह प्रारम्भ से ही भारतेन्दु के बडे प्रशसक हो गये और उन्हे अपना गुरु तथा आराध्यदेव मानने लगे।[7] आगे चलकर

---

१ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १३

२ प्रतापनारायण मिश्र भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अक, पहला दृश्य

३ ब्राह्मण खण्ड ४, सख्या ८ सुनने लायक बात' प्रतापनारायण मिश्र

४ स० प्रतापनारायण भरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २ ३

५ प्रतापनारायण मिश्र ब्रडला स्वागत' (१८८१ ई०) पृष्ठ १६

६ निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३

७ 'राम राज्य' (कानपुर) १५ अक्टूबर १९५६ ई पं० 'प्रतापनारायण मिश्र' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी।

इन्होंने अपनी रचनायें भी 'कविवचन सुधा' में भेजी जो उसके १४वें अंक मे प्रकाशित हुई।[1] इसी समय कानपुर में पंडित ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित' के धनुष यज्ञ की धूम थी। 'ललित' बड़े अच्छे कवि थे— वह कविता की रचना करके और उसे लीलागत पात्रों के मुह से सुनाकर सुनने वालों के मनको मोहित कर लेते थे। प्रताप नारायण भी इस लीला मे शामिल होते थे और 'ललित' जी की कविता का पाठ करते थे।[2] 'ललित' जी से ही मिश्र जी ने छन्द-शास्त्र के नियम सीखे। मिश्र जी इनको अपना काव्य-गुरु मानते थे।[3] प्रतापनारायण जी का पिंगल-शास्त्र का बड़ा विशद ज्ञान था। उनके द्वारा विभिन्न छन्दों मे लिखी हुई कविताए इसका प्रमाण है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने 'आल्हा आल्हा'[4] नामक लेख मे जो आल्हा-छन्द का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है वह भी इस प्रसग मे सराहनीय है। कानपुर मे लावनी बाजों का भी उस समय बड़ा जोर था उनकी कई जमातें थी। लावनी के प्रसिद्ध कवि 'बनारसी' भी उस समय अधिकतर कानपुर मे ही रहा करते थे। लावनी वाला के दो दल इकट्ठे हो जाते थे और दोनों प्रतिस्पर्धा स्वरूप बढ़ चढ़ कर लावनी गाते थे। ऐसे समय में इनके जवाब सुनने वाले होते थे। प्रतापनारायण भी इन सभाओं की जमातों मे कभी-कभी जाते थे। इस प्रकार प्रतापनारायण के हृदय मे हरिश्चन्द्र के लेख पढ़ने 'ललित' जी की लीला में भाग लेने तथा उनसे छन्द शास्त्र के नियम पढ़ने और लावनी वालों की लावनी सुनने से कविता का बीज अच्छी तरह अंकुरित हो गया।[5]

यह सत्य है कि मिश्र जी अपने छात्र-जीवन मे सफल नहीं हो सके और पुस्तकें रटने में उनका मन नहीं लगा। पर जन-सम्पर्क एवं साहित्यकारों के सत्सग द्वारा जो उन्होंने सामाजिक अनुभव और ज्ञान अर्जित किया वह उनके आगामी जीवन के उत्थान मे बड़ा सहायक हुआ। इसी स्वतः अनुभव जन्य सुदृढ़-ज्ञान के ही कारण मिश्र जी निर्विकार के साथ अपने भावों और विचारों का स्पष्ट रूप मे पाठकों के सामने रखते रहे। उन्हें आत्म विश्वास और स्वतन्त्र कथन की जो शक्ति समाज द्वारा मिली वह किताबी और स्कूली ज्ञान द्वारा कभी सम्भव न था। जन-सम्पर्क से मिश्र जी का बड़ा आत्मिक विकास हुआ। वह व्यष्टि से दूर समष्टिवादी हो गये।

---

१ किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५९ ई०) पृ० १८७

२ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग, (१९१९ ई०) पृष्ठ ३४

३ निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ४

४ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (१९१४ वि०) पृष्ठ २४७-२४१

५ निबन्ध नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ४

गार्हस्थ्य जीवन

मिश्र जी के दो विवाह हुए थे।[1] पहला विवाह इनके पिता के समय में हुआ था। यह पत्नी विवाह के बाद केवल चार-पाँच महीने जीवित रही। दूसरा विवाह इनके पिता की मृत्यु के बाद हुआ। पहले विवाह के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं हो सका। मिश्र जी का दूसरा विवाह उन्नाव जिले के पुरा थाना नामक ग्राम में पं० रामसहाय शुक्ल की पुत्री सूरजकुँअरि से हुआ। मिश्र जी की यह पत्नी बड़ी सुन्दर तथा धार्मिक प्रवृत्ति की थी पर प्रकृति से बड़ी तेज थी। कहते हैं कि जब मिश्र जी घर आते थे तो सबसे पहले यही पूछते थे कि सूरज गरम है कि ठंढ ? (सूरज से नाम की ओर संकेत है) इस विवाह के कुछ वर्ष बाद (नवम्बर १८८४ ई० में) प्रतापनारायण जी की माता का भी देहान्त हो गया।[2]

माता के देहान्त के बाद मिश्र जी के परिवार (कानपुर के) में केवल दो ही व्यक्ति रह गये—मिश्र जी और उनकी पत्नी। मिश्र जी की दूसरी ससुराल वाले कानपुर में ही सीसामऊ मुहल्ले में रहते थे इसलिए वह कभी-कभी आया जाया करते थे। मिश्र जी की पत्नी अपने मन बहलाव के लिए अपनी छोटी बहन मूला को भी कुछ समय के लिए बुला लेती थीं। मिश्र जी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। मुख्य रूप से मकानों के किराये से ही उनका जीवन यापन होता था। मकानों का किराया लगभग चालीस रुपये के आता था। सस्ता समय था एक-एक दो-दो रुपये में कमरे उठते थे। प्रारम्भ में मिश्र जी ने कई वर्षों तक विभिन्न स्कूलों में अध्यापन-कार्य भी किया था।[3] पर स्वच्छन्द प्रकृति के होने के कारण अधिक समय तक नौकरी नहीं कर सके। नौकरी छोड़ने का उल्लेख १५ फरवरी १८७६ ई० के 'ब्राह्मण' में इस प्रकार मिलता है—'हमारे पाठकों में से बहुतों को ज्ञात है कि हम कोई लखपती नहीं हैं आजकल नौकरी भी छोड़े बैठे हैं।'[4] इसके बाद जुलाई १८८९ ई० में हिन्दुस्तान के सहकारी सम्पादक होकर कालाकाँकर गये। वहाँ इन्हें तीस रुपये मासिक वेतन मिलता था साथ ही कानपुर से मकानों का किराया भी आ जाता था।[5] कालाकाँकर में मिश्र जी सपत्नी एक वर्ष रहे। इसके पश्चात् कानपुर

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (सं० १९४७ ई०)-पृष्ठ १२३

२ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९ १० क्षमा कीजिए प्रतापनारायण मिश्र

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९ बाल शिक्षा' प्रतापनारायण मिश्र

४ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १२ सूचना प्रताप नारायण मिश्र

५ सरस्वती जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र —गोपालराम गहमरी

लौट आये। कानपुर आने पर इन्होंने फिर कहीं नौकरी नहीं की। केवल इधर-उधर ट्यूशन करते रहे। मुख्य रूप से ये अंग्रेजों के ट्यूशन करते थे और उन्हें उर्दू पढ़ाते थे।[1] ५ जनवरी सन् १८९२ ई० के पत्र में मिश्र जी बाबू बालमुकुन्द गुप्त को लिखते हैं—'गुजारे का बन्दोबस्त पिता जी खुद ही कर गये हैं ऊपर से दो घण्टे मात्र की मेहनत पर एक अंग्रेज बहादुर पन्द्रह रुपया महीना भी देते हैं।'[2] ये अंग्रेज बहादुर क्राइस्टचर्च कालेज की स्थापना (१८९२ ई०) करने वाले जी० एच० वेस्टकट (George Herbert Westcott) साहब थे।[3] इनको पढ़ाने के कारण कुछ लोग मिश्र जी पर ईसाई होने का सन्देह करने लगे। धीरे-धीरे यह बात मिश्र जी के पास पहुँची। मिश्र जी ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि कौन सा काम हम हिन्दू धर्म में रह कर नहीं कर सकते? सभी काम करने की छूट तो हिन्दू धर्म में है। मांस, मदिरा आदि पंचविकार की आवश्यकता हो तो वाममार्गी हो सकते हैं मल मूत्र खाना हो तो अघोरपंथी हो सकते हैं। यह सब होकर भी हिन्दू धर्म में बने रहेंगे, फिर इससे अच्छा और कौन धर्म होगा? यह सुनकर सब लोग चुप हो गये।

मिश्र जी 'सादा जीवन उच्च विचार' के अनुयायी थे। उनमें ऊपरी तड़क भड़क नहीं था। कभी-कभी तो बड़े गन्दे कपड़े पहने रहते थे। जब खुद कोई धो देता तो धो देना अन्यथा उन्हें कोई परवाह नहीं रहती थी। धोती कुरते फटे पहने रहते थे पर किसी से सीने को न कहते थे। इनकी पत्नी स्वतः जो कुछ समझती करती रहती थीं पर यह उनसे कुछ न कहते थे। वे एक विरक्त की भांति अपना जीवन बिताते थे। उनकी सादगी के कारण जो नये व्यक्ति उनसे मिलने आते थे वे ऊपरी वेष भूषा में पहचान ही न पाते थे कि यही प्रतापनारायण मिश्र हो सकते हैं। एक बार कोट बूट पहने एक महाशय मिश्र जी से मिलने आये। उस समय वे बहुत सादी पोशाक में अपनी मित्र-मण्डली के बीच बैठे थे। आगन्तुक ने कहा— हम पण्डित प्रतापनारायण से मिलना चाहते हैं। यह सुनकर प्रतापनारायण अपनी देहाती बोली में बोल उठे— 'भाई उनसे मिले को खातिर पन्द्रह रुपया का एक टिकट लेइ का परत है तब उइ मिलित हैं।'[4] इस पर सब लोग खूब हँसे। मिश्र जी के जिस मकान (नौघड़ा के) में आजकल मन्दिर बना हुआ है उसी मकान में वह रहते थे और उसी के बगल वाले मकान में वहाँ किशोरीचन्द हींगवाले की प्रसिद्ध दुकान है मिश्र जी का बैठका था।

---

१ नारायणप्रसाद अरोड़ा—'मेरे गुरुजन' (१९४५ ई०)-पृष्ठ ३१

२ बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०)-पृष्ठ ५०

३ 'रामराज्य' (कानपुर ३ दिसम्बर १९५६ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण -लक्ष्मीकांत त्रिपाठी।

४— निबंध-नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १४—१५

इन्होंने अपने बैठके के कमरे का नाम 'ब्राह्मण-कुटीर' रखा था।[१] यह बैठका कागजों और अन्य बिखरी हुई चीजों से भरा रहता था। धूल आदि भी पूरे कमरे में छायी रहती थी। एक बार पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर इनसे मिलने आये। इन्होंने हाथ से थोड़ा सा स्थान झाड़ दिया और उनसे कहा बैठिये। फिर दो पैसे के पेड़े मगवा कर उन्हें जलपान कराया। इसके बाद लगभग दो घण्टे तक मिश्र जी और उनमें धाराप्रवाह बंगला में बात-चीत होती रही।[२] मिश्र जी नियमित रूप से स्नान भी न करते थे। जब मौज आयी तब कर डाला। गंगा स्नान तो वे कभी जाते ही न थे। कालाकांकर में डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गंगा जी बहती थी और इनके मित्र नित्यप्रति गंगा स्नान करने जाते थे। इनसे भी चलने के लिए आग्रह करते थे पर ये टाल जाते थे। एक बार इनके मित्र जबरदस्ती इनको गंगातट पर ले गये और स्नान करने के लिए बाध्य किया। तब इन्होंने कहा— मैं तभी स्नान करूंगा जब तुम लोग मुझे इस प्रकार गंगा में फेंको कि मेरा सिर पहले जल में गिरे पैर बाद में।' फिर सब मित्रों ने वैसा ही किया।[३]

मिश्र जी का जीवन बड़ा अनियमित था। भोजन आदि करने का उनका कोई निश्चित समय नहीं था। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन दिन बिना भोजन किये ही रह जाते। कभी केवल दूध पीकर ही दिन बिता देते थे। भोजन भी जब करते तो दो तीन रोटियों से अधिक न खा पाते थे। चिरौंजी की दाल और गरी के लच्छे के चावल जब-तब बनवा कर खाते थे। प्रात जलपान में कभी-कभी शर्बत पीते थे, वह भी दो-ढाई छटांक से अधिक नहीं। अपने साहित्यिक-कार्य में जब वह व्यस्त होते थे तब भोजन आदि की उन्हें कोई परवाह न रहती थी। पत्नी के बार-बार बुलाने पर भी वह टालते जाते थे। यदि अधिक ज़ोर देने पर जाते भी तो भोजन करते-करते अपने भावों में इतना मग्न हो जाते कि भोजन करना ही भूल जाते और कौर हाथ ही में लिए रह जाते। जब उनकी पत्नी कुछ खटका देतीं तब भाव-मुद्रा टूटती और फिर खाने लगते। इसी अनियमितता के कारण वह सदैव अस्वस्थ बने रहते थे।

प्रतापनारायण जी को नास सूंघने की आदत थी। सुंघनी भरा बेल सदा खद्दर के कुरते वाले पाकेट में रखते थे और जब चाहा बेल निकाल कर हथेली पर नास उड़ेलते और सीधे नाक में सुरक जाते थे।[४] अधिक नास सूंघने के कारण इनकी दाढ़ी और मूंछों के बालों पर भी नास छपा रहता था। कुछ लोगों ने मिश्र जी को शराब

१—'निबंध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १४
२—प्रेमनारायण टंडन साहित्यकों के संस्मरण (१९४३ ई०) पृष्ठ ८
३—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी
४—सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी

पीने की लत लिखी है। पर वह कभी शराब नहीं पीते थे।[1] नाटकों में अभिनय के लिए लाल शर्बत पीने के कारण कुछ लोग भ्रांति से उन्हें शराबी समझने लगे थे पर वस्तुत ऐसी बात नही थी। एक बार लाला राधेलाल से मनमुटाव हो जाने के कारण दोनो ने होड म अपनी अपनी नाटक-मण्डली बना ली और लाला जी ने अपनी नाटक मण्डली की ओर से एक प्रहसन खेला जिसमें वह स्वय घसियारा बने और अपनी स्त्री से कहा—

कहां गई मेरी मास की पुडिया, कहां गई मेरी बोतल।
उसको पीकर नाचू, जसे टट्टू कोतल॥

इसे प्रतापनारायण जी ने अपने ऊपर ताना समझा। कुछ दिन बाद अपनी मण्डली द्वारा आयोजित प्रहसन में वह मल्लाह बने और लाला जी के ताने का इस प्रकार उत्तर दिया—

क्षत्री, ब्राह्मण सबै पियत हैं बनिया अग्रवाला।
हम मल्लाहन पी लई तो हँसेगा क्या कोई साला॥

इस प्रसग स भी लोगों को इन पर शराब पीन का संदेह हुआ।[2] पर यह उत्तर भी उसी प्रकार व्यग्य पूर्ण है जसे पीछे ईसाई होने के आक्षेप का था। 'हम मल्लाहन' शब्द से ध्वनि निम्न समाज की ओर निकल रही है न कि मिश्र जी की ओर। मिश्र जी ने तो शराब और मांस को सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा है।

कलिया और शराब बिना नहिं कौर उठावत।
केन मेघ मह निपट मजाकत नितहिं दिखावत[3]॥

यदि मिश्र जी स्वत शराबी होते तो ऐसा न लिखते। हां भग अवश्य मिश्र जी कभी-कभी खाते थे पर नियमित आदत के रूप म नहीं मिश्र जी को खान-पान म कोई परहेज न था। यहां तक कि बीमारी हालत में भी वह परहेज न कर पाते थे। किसी अन्य के यहां भी खाने में उन्हें कोई परहेज न था। वह केवल प्रम देखते थे और जो कुछ भी मिल जाता वह सहर्ष खा लेते थे।

मिश्र जी के कोई सन्तान नहीं हुई। सन् १८५४ ई० म जब मिश्र जी बहुत बीमार पडे तो उन्होंने मृत्यु से एक माह पूर्व अपने साले रामगोपाल शुक्ल को गोद लिया और अपनी पत्नी से कहा इसी को पुत्रवत् पालन करना मेरा दुख न करके

---

१ सं० रमाकान्त त्रिपाठी—'प्रतापपीयूष' (१९३३ ई०) पृष्ठ १७

२—स० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ ४३—४४

३—स० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४७ ई०) पृष्ठ ४४ ('ककाराष्टक' से)

इसी को देखना। जिस समय रामगोपाल को मिश्र जी ने गोद लिया वह केवल एक वर्ष के थे फिर मिश्र जी की पत्नी ने ही रामगोपाल का पालन-पोषण किया। राम गोपाल के एक बड़ी बहन और थी जिसका नाम मूना था। मूना मिश्र जी की पत्नी से छोटी थी। रामगोपाल के पिता के दस सन्तानें और हुई थी पर वे जीवित नहीं रही। रामगोपाल अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे। प्रतापनारायण मिश्र का स्वास्थ्य जब बहुत अधिक गिर गया और उन्हें अपने बचने की कोई आशा न रही तब उन्होंने अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति के सम्बन्ध म एक 'विल' लिखवा कर २१ जून सन् १९९४ ई० को कानपुर के सब रजिस्ट्रार के यहां रजिस्टर करवाया (यह 'विल' उर्दू मे लिखी गई थी और उसके मजमून क लेखक फुरसवां (कानपुर) के मुन्शी रामसहाय निगम थे। इसमे मिश्र जी ने अपनी द्वितीय पत्नी को अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया और उन्हें इस बात का पूर्ण अधिकार दिया कि वे उसे जिस तरह चाहें बेचें या दान करें या रक्खें।[1] मिश्र जी के निधन के बाद उनकी पत्नी सम्पूर्ण सम्पत्ति (मकानों आदि) की स्वामिनी हुईं।

कार्य-क्षेत्र

मिश्र जी का कार्य-क्षेत्र बड़ा व्यापक था। सभी क्षेत्रों में उनकी पहुंच थी। कानपुर के जन सामान्य मे तथा देश के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों से मिश्र-जी का परिचय था सभी प्रकार के व्यक्तियों से मिलने के कारण इनका सामाजिक ज्ञान बहुत विस्तृत हो गया था। वह साहित्यिक राजनीतिक सामाजिक-सभी प्रकार के कार्यों में भाग लेते थे।

साहित्यिक जीवन

मिश्र जी का साहित्यिक जीवन बड़ा महत्वपूर्ण है, इसी से व साहित्य-जगत म अमर हैं। मिश्र जी हिन्दी (खड़ी बोली) के प्रारम्भिक लेखक हैं। जिस समय इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया उस समय हिन्दी की प्रयोगावस्था थी। लिखने वाले तो थोड़े थे ही पढ़ने वाले उनसे भी कम थे। ऐसी स्थिति में लेखकों को लिखने के साथ-साथ पढ़ने वाले भी तैयार करते पड़ते थे। मिश्र जी ने दोनों ही कार्य बड़ी सफलता के साथ किया। मिश्र जी सुधारवादी साहित्यकार थे इन्होंने जो कुछ भी लिखा जन हिताय लिखा। इनकी कला जीवन के लिए थी। व कहते थे—

> 'पढ़ि कमाय कीन्हों कहा हरे न देश कलेश। —
> जसे कन्ता घर रहे तैसे रहे विदेश॥[2]

१—स० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १२३—२४

२—प्रतापनारायण मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ १

उपदेश प्रधान होते हुए भी इनका साहित्य नीरस नहीं होने पाया। हास्य और व्यंग्य के पुट में आवेष्टित होने के कारण वह बौद्धिक और आत्मिक विकास के साथ-साथ—पाठकों का मनोरंजन भी करता रहा। जन सामान्य तक पहुंचाने के उद्देश्य से मिश्र जी ने बड़ी सरल और प्रचलित भाषा को अपने साहित्य का माध्यम बनाया। ग्रामीण-शब्दों का प्रयोग कर इन्होंने अपने जागरण-मन्त्र को गाँव-गाँव पहुंचाया। उस समय जितने भी साहित्यकार थे उनमें सबसे अधिक जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली मिश्र जी की ही भाषा थी। यह नागरी को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे। इनका कहना था कि नागरी की उन्नति के बिना देश की उन्नति असम्भव है।[1] नागरी के प्रचार के लिए ही उन्होंने १५ मार्च १८८३ ई० को 'ब्राह्मण' मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया और इसे जीवन पर्यन्त निकालते रहे। इस पत्र के प्रकाशन में मिश्र जी को अनेक आर्थिक कष्ट उठाने पड़े। इसके लिए साल भर तक कालाकाँकर में स्वभाव विरुद्ध बनवास करना पड़ा।[2] पर वह इसकी रक्षा में तन मन धन से लगे रहे।

मिश्र जी की प्रतिभा और साहित्य-सेवा से प्रभावित होकर राजा रामपाल सिंह ने १८८९ ई० इन्हें हिन्दुस्तान के सम्पादक-मण्डल में कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया। यद्यपि मिश्र जी नौकरी नहीं करना चाहते थे। पर उस समय वे अर्थाभाव से बहुत पीड़ित थे। ब्राह्मण के प्रकाशन में इन्हें हर साल घाटा उठाना पड़ता था और अब उसका चलना भी असम्भव दिखाई पड़ने लगा था। अतः ब्राह्मण के रक्षार्थ मिश्र जी ने राजा साहब का आमन्त्रण स्वीकार किया और जुलाई १८८९ ई० में वह 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक होकर कालाकाँकर चले गये।[3] फिर कालाकाँकर से ही ब्राह्मण का भी सम्पादन करने लगे। वे हिन्दुस्तान' पत्र के काव्य भाग के सम्पादक और उसके फसली लेखक थे। जब कोई त्यौहार जैसे जन्माष्टमी पितृमोक्ष पर्व दशहरा, दीपावली होना आती तब इन अवसरों पर उनसे कविता या लेख लिये जाते थे।[4] उस समय हिन्दुस्तान' के प्रधान सम्पादक पं० मदनमोहन मालवीय थे। सम्पादक-सम्पादक-मण्डल में स्वयं प्रतापनारायण मिश्र और पण्डित राधाचरण चौबे पण्डित गुलाबचन्द चौबे, पं० रामलाल मिश्र बाबू शशि भूषण चटर्जी बाबू बालमुकुन्द गुप्त पं० गुरुदत्त शुक्ल आदि थे[5] बाबू शशिभूषण

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १० 'असम्भव है' प्रतापनारायण मिश्र
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ अंतिम सम्भाषण प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १२ आवश्यकीय सूचना' ब्रजभूषण गुप्त
४ 'सरस्वती' १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी
५ 'सरस्वती' जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी

चटर्जी प्रतापनारायण मिश्र और बाल मुकुन्द गुप्त एक ही स्थान (बाबू बाल मुकुन्द गुप्त के निवास स्थान पर) पर बैठकर लेख आदि लिखते थे।[१] मिश्र जी बंगला साहित्य की तरह हिन्दी-साहित्य को भी उत्कृष्ट बनाना चहते थे। हिन्दी की गिरी स्थिति से उन्हें बड़ा दुख होता था। उन दिनों बंग भाषा में दैनिक 'चन्द्रिका' निकलती थी। उसमें समाचार और राजनैतिक लेखों के सिवा साहित्यिक लेख भी खूब रहते थे। मिश्र जी ने राजा रामपालसिंह को इसे दिखाकर 'हिन्दुस्तान' में भी साहित्य-स्तंभ का कालम सन्निवेश कराया। आगे खड़ी बोली कविता पर हुआ विवाद इसी कालम में प्रकाशित हुआ।[२] कालाकांकर में रहकर मिश्र जी ने पर्याप्त साहित्य सृजन किया जो 'हिन्दुस्तान' और 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुआ। यही सुप्यन्ताम और 'बड़ना स्वागत' नामक प्रसिद्ध पुस्तकें भी लिखी जो क्रमशः उक्त पत्रों में निकली। इसके अतिरिक्त मिश्र जी राजा रामपाल सिंह को पिंगल शास्त्र पढ़ाते थे और उनके द्वारा लिखी कविताओं का संशोधन करते थे।[३] कालाकांकर का वातावरण इनके साहित्यानुकूल था फिर भी वह वहाँ अधिक समय तक नहीं रह सके इसका कारण उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व था। मिश्र जी के कालाकांकर छोड़ने के प्रसंग में दो घटनाएं प्राप्त होती हैं। एक घटना गोपालराम गहमरी की लिखी हुई है और दूसरी कविवर बचनेश की। दोनों घटनाओं में कौन प्रमाणिक है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अतः यहाँ दोनों को उद्धृत कर रहा हूँ।

१—एक बार राजा रामपाल सिंह हिन्दुस्तान पत्र के लिये अग्र लेख लिखा रहे थे। जो कुछ वे बोले जाते थे उसको लिखने में जो दोबारा कुछ भी पूछता था उस पर बहुत बिगड़ जाते थे। मैं (गहमरी) तेज लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफर में भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गये लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनने लगे तब वहाँ मैंने सुधार कर लिया था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पण्डित जी (प्रताप नारायण मिश्र) वहाँ बैठे थे। उन्होंने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर पंडित जी से बोले—'आप बड़े गुस्ताख हैं।' पंडित जी ने छूटते ही जवाब दिया—अगर सच्ची बात को सच कहना आपके

१—बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (१९०७ वि०) पृष्ठ ३५०

२—'सरस्वती' जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी।

३—'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र बचनेश।

रबार म गुस्ताखी है तो मैं सग गुस्ताख हूँ। राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले—'निकल जाव यहां से।' पण्डित जी बोल—"हम यह चले।" यह कह कर उसी दम बारादरी से उठे और चले आये। फिर कभी उनके यहाँ नही गये और थोड़े दिन में अपना हिसाब चुकाकर कानपुर को चले गये। बाबू बाल मुकुन्द गुप्त पण्डित रामलाल मिश्र आदि किसी की बात उन्होंने नहीं सुनी।[1]

२—मिश्र जी की जीवनी म उनके स्पष्ट भाषण और स्वाभिमान की एक मजेदार घटना यह है जो मुझे (बचनेश जी) अपनी १६ वर्ष की उम्र मे कालाकाकर जाने पर ज्ञात हुई थी। मैं राजा रामपाल सिंह की उनकी कविता सशोधन और छन्द शास्त्र की शिक्षा देने के लिए नियुक्त हुआ था। मुझसे पहले इसी काम पर मिश्र जी नियुक्त थे। एक बार वह राजा साहब की कविता म कुछ सशोधन कर रहे थे। राजा साहब उसे मान नही रह थ। इस पर खिन्न होकर मिश्र जी ने कहा कि पहले आप इस शराब के प्याल को हाथ से अलग कीजिए तब आपकी समझ म आवैगा। राजा साहब ने कहा आप हमारा अपमान करते हैं जानते हैं मैं कौन हूँ? यह सुनते ही उसी समय कवि न इस्तीफा लिखकर मेज पर रख दिया और अपने घर का रास्ता लिया।[2]

इनमें पहली घटना गहमरी जी क सामने की है और दूसरी घटना बचनेश जी की सुनी हुई। वसे दोनों घटनायें कुछ हेर-फर से एक ही सी हैं। लेकिन गहमरी जी की अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है। वैसे मैं गहमरी जी की घटना को पूर्ण प्रामाणिक मानता पर गहमरी जी उसी लख म लिखते हैं— उनका दर्शन मुझे कालाकाकर मे हुआ था। जब मैं १८९२ ई० म कालाकाकर—नरेश तत्रभवात राजा रामपाल सिंह की आज्ञा से 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में काम करने को पहुचा तब वहाँ साहित्यिकों की एक नवरत्न कमेटी सी हो गयी थी। उस समय वहाँ पं० प्रतापनारायण मिश्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पडित रामाचरण चौबे पं० गुलाब चन्द चौबे, पडित रामलाल मिश्र बाबू शशिभूषण चटर्जी प० गुरु त शुक्ल और स्वय राजा साहब आदि लोग थे।[3]

गहमरी जी १८९२ ई० में मिश्र जी का कालाकांकर में होना लिखते हैं जब

१—'सरस्वती' जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र—गोपालराम गहमरी।

२—'राष्ट्र राज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' कविवर बचनेश।

३ 'सरस्वती जून १९३८ ई० 'स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र' गोपालराम गहमरी

कि मिश्र जी जुलाई १८९० ई० में ही कालाकांकर छोड़ कर चल आये थे।[1] अब या तो गहमरी जी अपना कालाकांकर आने का समय भूल गये हैं या छपने में अशुद्धि हो गया है। यह भी हो सकता है कि उन्होंने जन प्रचलित घटना को अपने साथ मिला लिया हो। कुछ भी हो मिश्र जी ने कालाकांकर राजारामपाल सिंह से प्रतिवाद होने के कारण ही छोड़ा।

मिश्र जी ने पत्रों के सम्पादन द्वारा तो नागरी का प्रचार किया ही साथ ही सुधारवादी लावनियाँ गा गाकर भी अशिक्षित तथा अर्द्ध शिक्षित जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया और उनमें जागृति का शंख फूंका। इसके अतिरिक्त नाटकों के अभिनय द्वारा भी मिश्र जी ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया। वह बड़ी सरल भाषा में नाटक लिखते और उनका स्वतः अभिनय भी करते थे। अभिनय के लिए उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से एक नाटक मण्डली तैयार कर ली थी जिसमें इनके तथा अन्य लेखकों के लिखे नाटक खेले जाते थे। यह मण्डली सन् १८८४ में स्थापित हुई थी और इसका नाम 'भारत एन्टरटेनमेण्ट क्लब' था।[2] इसके द्वारा आयोजित नाटक 'स्टेशन थियेटर हाल' में खेले जाते थे। यह थियेटर हाल ठण्डी सड़क पर—जहाँ पर आजकल तार घर की नयी इमारत है—स्थित था। यह हाल अंग्रेजों का था पर हिन्दी नाटकों के अभिनय के लिए मिल जाता था।[3] आगे चलकर मेम्बरों में परस्पर फूट हो जाने के कारण क्लब के दो भाग हो गये और फूटी हुई शाखा एम० ए० क्लब के नाम से प्रसिद्ध हुई। पहली का नाम दो एक हिन्दी रसिकों के उत्साह से 'श्री भारत मनोरंजनी सभा' हो गया।[4]

मिश्र जी को लावनी गाने और नाटकों में अभिनय करने का बड़ा शौक था। आप नयागंज मूलगंज चौक आदि, कानपुर के खास-खास चौरस्तों पर खड़े होकर बड़े उच्च-स्वर से लावनी गाते थे। लावनी गाते समय इनकी वेश भूषा एक विशेष प्रकार की होती थी और इनके गाने का ढंग भी बड़ा निराला था। बड़ी-बड़ी जुल्फें रखाये कन्धों तक तेल चुचुआये बाँकी टोपी सिर पर दिये बड़ी नजाकत से कान पर हाथ रक्खे एक हाथ में इकतारा लिये मधुर और तीव्र स्वर से लावनी गाते थे। आपका लावनी गाने वालों में प्रमुख स्थान था। आप अपने समय के लावनी-आचार्य

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १२ 'सूचना ! सूचना !! सूचना !!!'—प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' प्रतापनारायण मिश्र

३ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ ३६

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' प्रतापनारायण मिश्र

समाप्त जाते थे। कानपुर में बहुधा लावनी बाजों के दो दलों में लावनी बाजी हुआ करती थी। कभी-कभी एक दल वाले उनको अपनी तरफ बिठा लेते थे और उस दल के इच्छानुसार विरोधी दल का गाना समाप्त होते-होते वे नयी लावनी तयार कर देते थे। कभी दूसरे दल वाले भी ऐसा ही करते थे।[1] अपने समय में कानपुर के सार्वजनिक जीवन को सजीव रखने में तथा जनता को सजग जाग्रत रखने में मिश्र जी का प्रमुख स्थान था। शहर के दैनिक जीवन में एक खास तरह की स्फूर्ति रखने में उनकी लावनी बाजी बड़ी सहायक थी।[2] एक बार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मिश्र जी से मिलने गये। द्विवेदी जी के साथ उनके एक मित्र भी थे। जिस समय द्विवेदी जी मिश्र जी के यहाँ पहुँचे मिश्र जी अपने बैठके में बैठे थे। द्विवेदी जी भी अपने मित्र सहित वहाँ जाकर मिले। बैठक की दीवार पर एक इकतारा टंगा था द्विवेदी जी के मित्र ने उसे उठाकर छेड़ना शुरू किया। कोई दो मिनट बाद प्रतापनारायण से न रहा गया। उन्होंने उसे उनके हाथ से छीन लिया और कहा— यहि तना नहीं बजावा जात। यह कह कर आप खड़े हो गये और उसे बजाते हुए लावनी गाने लगे।[3]

कानपुर में मिश्र जी ने कई नाटक खेले। १८७६ ई० के लगभग प० राम नारायण तिवारी 'प्रभाकर' के प्रयास से कानपुर में पहले-पहल भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' खेले गये। इसके बाद तिवारी जी गोरखपुर चले गये और नाटकों के अभिनय का कार्य यहीं रुक गया। तदुपरान्त १८८२ ई० में प० प्रतापनारायण के प्रयास से 'नील देवी' और 'अंधेर नगरी' नाटक खेले गये। इनमें मिश्र जी ने अभिनय भी किया। १८८५ ई० में 'भारत एन्टरटेनमेण्ट क्लब' स्थापित हो जाने के बाद मिश्र जी के ही प्रयास से 'अजाम बन्नी नाटक (फारसी वालों के ढंग का नाटकाभास) खेला गया।[4] फिर २६ नवम्बर १८८७ ई० को श्री भारत मनोरंजनी सभा' द्वारा 'हठी हम्मीर' नाटक और 'जयनार सिंह' प्रहसन अथवा २८ नवम्बर १८८७ ई० को 'कलि प्रवेश नीति रूपक' एवं 'गो संकट रूपक' खेले गये। इनमें 'हठी हम्मीर' और 'कलि प्रवेश नाटि रूपक' मिश्र जी के लिखे थे। इन नाटकों में मिश्र जी ने अभिनय भी किया।[5] मिश्र जी सफल अभिनय के पक्षपाती थे। वे स्वतः अभिनय की सफलता के लिए कठिन प्रयास करते थे। १५ अक्टूबर

---

१ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १९-२०

२ स० रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रताप-पीयूष' (१९३३ ई०) प्रस्तावना पृ० ५

३ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १५

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' प्रताप नारायण मिश्र

५ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है' प्रताप नारायण मिश्र

१८८५ ई० म बगानी-समाज द्वारा कानपुर में भारतेन्दु कृत 'भारत-दुर्दशा' नाटक खेला गया। इसका अभिनय बड़ी निम्नकोटि का रहा। इससे मिश्र जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने ब्राह्मण में 'भारत दुर्दशा की दुर्दशा' शीर्षक एक लेख निकाला। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं— "रिहर्सल न होने के कारण अप्रबन्ध तो सपेड़ा और बाहना रानी के स्वांगों का सा था। बीस पचीस लोग कहते थे भाई हमको तो कुछ सुनी न पड़ा। इसके सिवाय योगी के मुंह से गजल गवाना भारत का कड़क-कड़क कर बोलना स्त्री पात्रों के दण्डा एस (बिना चूड़ी) हाथ और नित्य की अंगरखी तथा धोती का खुल-खुल जाना, भारतेन्दु जी के गाना के बदले पूर्ण उर्दू के बेसुरे बेतुके बेमानी गीतों का गाना कलिराज (यह 'भारत दुर्दैव' का नाम रक्खा गया था) कि सभा म मुबारक बाद का गाया जाना केवल एक गीत के लिए सीन बदलना इत्यादि अभिनेताओं की बुद्धिमता का ठीक परिचय देता था। जिनको अद्वितीय नाटयकार होने का कुछ-कुछ सच्चा अभिमान है उन्होंने 'भारत भाग्य' की आरम्भ वाली लावनी (रोवहु सब मिलि के इत्यादि) का एक चौक गाया और गला फाड़ फाड़ के भारतेन्दु जी की कविता का श्राद्ध प्रदान करने लगे।"[1] इस उद्धरण से मिश्र जी के अभिनय ज्ञान का सहज ही परिचय मिल जाता है। कहते हैं इसी 'भारत दुर्दशा' की दुर्दशा देखकर ही मिश्र जी ने १८८५ ई० म लाला गयेलाल अग्रवाल, लाला बिहारी लाल आदि की सहायता से—श्री भारत मनोरंजनी सभा की स्थापना की थी।[2] एक बार बाबू रामदीन सिंह के प्रयत्न से बाँकीपुर (पटना) मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र का और प्रतापनारायण मिश्र ने रोहिताश्व का अभिनय अत्यन्त सफलता के साथ किया था।[3] मिश्र जी स्त्री और पुरुष, दोनो पात्रों का अभिनय पूर्ण सफलता के साथ करते थे। पर स्त्री पात्रों के अभिनय में वे अधिक दक्ष थे। कहते हैं कि एक बार इन्हें स्त्री का पार्ट करना था और उसके लिए इन्हें मूछ मुड़वानी थी तो अपने पिता के पास गये और बहुत विनीत स्वर में बोले यदि आज्ञा हो तो इन्हें मुड़वा दूं। मुड़वाना जरूरी है। पिता जी सब स्थिति समझ गये और उन्होंने हंसकर आज्ञा दे दी।[4] स्त्री पात्रों का अभिनय मिश्र जी इतनी सफलता के साथ करते थे कि दर्शकों को भ्रम हो जाता था और वे उन्हें वास्तविक समझने

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ८ (१५ अक्टूबर, १८८५ ई०)

२ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०)—पृष्ठ ४३

३ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ई०) पृष्ठ—२१२ १३

४ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०)—पृष्ठ २०

लगते थे। एक बार उन्होंने 'उर्दू बीबी' का पार्ट किया था। उस समय उनके और मुसलमान वेश्या के वेष में कोई अन्तर न था। दर्शकों में बैठी हुई एक प्रसिद्ध वेश्या से 'बुआ सलाम' कहकर उन्होंने सलाम किया तो वह सहसा बोल उठी 'बेटी जीती रह।'[1] इस प्रकार मिश्र जी नाटककार के साथ-साथ एक कुशल अभिनेता भी थे।

मिश्र जी नागरी प्रचार के हेतु जनता में भाषण भी देते थे और उसके गुणों से जनता को अवगत कराते थे। नागरी प्रचार के लिए मिश्र जी ने कई यात्रायें भी की थीं। दिल्ली और कानपुर में आयोजित नागरी प्रचार-सभाओं में भी वे सम्मिलित हुए थे और उनमें भाषण भी दिया था। कालाकांकर की तो इनकी साहित्यिक-यात्रा प्रसिद्ध ही है। इनके अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक कार्यों से भी मिश्र जी ने कई यात्रायें कीं, जिनका विवरण आगे दिया जायगा। मिश्र जी ने नागरी प्रचार में बड़ा कार्य किया, पर निर्धनता के कारण इन्हें उपयुक्त साधन न प्राप्त हो सके और वे अपनी इच्छानुसार काम न कर सके। वे कहते थे—'भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-व्यय से थोड़े ही दिनों में खूब फली। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिन्दी में बहुत कुछ काम करता। हिन्दी में पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रन्थकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता। वे दिन भी हिन्दी में कभी आवेंगे जब हिन्दी के पाठक बंगला के पाठकों की तरह खूब बढ़ेंगे, जिनके भरोसे हिन्दी के ग्रन्थकार फलेंगे फूलेंगे और उदर भरण की चिन्ता से मुक्त होकर हिन्दी में ग्रन्थ रत्न संग्रह करके गरीबिनी हिन्दी को उन्नत करेंगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आयें।'[2] मिश्र जी के इस कथन से उनकी करुणा और हिन्दी के प्रति निष्ठा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

राजनीतिक जीवन

राजनीतिक क्षेत्र में भी मिश्र जी ने बड़ा कार्य किया। इन्होंने ही कानपुर में कांग्रेस समिति की स्थापना की और इसकी ओर से पहले पहल कानपुर के प्रतिनिधि बनकर कांग्रेस के तृतीय-अधिवेशन में—जो दिसम्बर १८८७ ई० में हुआ था, मद्रास गये।[3] यह कांग्रेस के बड़े भक्त थे। इन्होंने कांग्रेस में सक्रिय भाग लिया। मद्रास के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए इन्होंने 'ब्राह्मण' के प्रकाशन की भी परवाह न की थी और उसे अपूर्ण ही प्रकाशित कर दिया था।[4] मिश्र जी प्रत्येक देश-हितैषी व्यक्ति तथा संस्था के पोषक और प्रशंसक थे। उनका कहना था—'प्रत्य

---

१ निबन्ध-नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०)—पृष्ठ २१ २१

२ 'सरस्वती' जून १७३८ स्व० प० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ५ 'जरा सुनो'—प्रतापनारायण मिश्र

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'जरा सुनो'—प्रतापनारायण मिश्र

जीवन उन्ही का है जो तन मन धन, धर्म, बल विद्या, बुद्धि अपने देश पर वार देते हैं। जगत पिता जगदीश्वर उन्ही से प्रसन्न होगा जो जगत को प्रसन्न करे। जिन का आज हम पूजते हैं जिनके नाम की महिमा करते हैं मानव वे भी थे पर उनमे विशेषता केवल यही थी कि उनके काम और उनके वचन हम लोगों की भलाई के लिए थ। हम भी उनके सच्चे अनुगामी तभी होंगे जब उनकी रीति पर देश वत्सल हों।[1]

मिश्र जी ने सर्व प्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया।

सब तजि गहो स्वतन्त्रता नहि चुप लातें खाव।
राजा कर सो न्याव है पांसा पर सो दाव॥[2]

मिश्र जी कानपुर की राजकीय समितियों में भी जाते थ और उनके कार्यों की आलोचना करते थे। एक बार कानपुर की म्यूनिसिपलिटी म इस बात पर विचार हो रहा था कि भैरव घाट म मुर्दे बनाये जायें या नही। (गंगा जी का प्रवाह उस घाट से कानपुर की बस्ती की ओर है)। तरह-तरह क प्रस्ताव होते-होते किसी ने कहा कि जले हुए मुर्दे की पिण्डी यदि इतने इंच से अधिक न हो तो बहाया जाय। दर्शकों म प्रतापनारायण मिश्र भी उपस्थित थ। आप खडे होकर बोले— अरे दया रे दैया। मरेउ पर छाती नापी जाई।[3] सरकारी कर्मचारियों के दुर्व्यवहारों का भी भडाफोड करन म मिश्र जी न चूकते थ बड कटु शब्दों म उनकी आलोचना करते थे। २७ अप्रैल १८८३ ई की बात है कानपुर में एक कहार को तीन सिपाहियों ने बेगार के लिए पकड़ा। उसका विवरण मिश्र जी इस प्रकार देते हैं—'उन्होंने इस अपराधी दीन पराये नौकर को बेगार की अबाध्य अथारिटी पर पकड़ा था उन्हे क्या डर था? उस बिचारे बंधुए न बहुत हाथ पाँव जोड और गिड़गिड़ा के अपना सच्चा हाल कहा और छोड देने के लिए विनती की। हे पाठकगण! जब एक तुच्छ कहार उनस उज्र करे तो उनकी क्रोधाग्नि के भड़कन का क्या ठिकाना था। बस किसी ने सींवा चोटया पकड़ी किसी ने हाथ-पाँव पकड और घसीटते हुए चौक की तरफ ले चले फिर नही मालूम कि वह क्या कर छूटा।[4] एस ही १० मई १८८४ ई० की एक घटना और मिश्र जी लिखत हैं—अजमेर के स्टेशन पर भीड चढ़ी थी। एक गाड़ी म परसोत्तमदास नामक एक आर्य भाई (जो एकजामिनर्स आफिस के क्लर्क

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ६ 'जातीय महासभा'—प्रतापनारायण मिश्र
२ प्रतापनारायण मिश्र लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)—पृष्ठ २
३ 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई०, पं० प्रतापनारायण मिश्र'—महावीरप्रसाद द्विवेदी

थ) बठे थ। या ही भीड के मारे आठ आदमियो के ठौर पर नौ जन थे तिस पर भी वहाँ के एसिस्टेंट स्टेशन मास्टर ए० एच० बरवार साहब ने दो और घुसेडन चाहे। तब बिचारे परसोतमदास जी ने कहा साहब हमे तकलीफ होगी अब भी तो नियम विरुद्ध एक मनुष्य अधिक है। इतना सुनते ही चाडाल ने उनको गालियाँ भी दी पवित्र शिखा (चोटी) भी नोची लातें भी मारी और पुलिस के सुपुर्द भी करा दिया। हम तो जानते हैं वहाँ भी हमारा हितू कौन बठा है जो धर्माधम विचारेगा।[1] ऐसी ही एक और घटना यहाँ पर देनी अनुपयुक्त न होगी। वह यह कि एक बार आसाम देश के बेव साहब ने एक कुली की युवती स्त्री को बल पूवक रात भर अपने शयनागार में रक्खा। उसके पति ने अपनी धमपत्नी का सतीत्व रक्षण करना चाहा। उसे भी पीट उठाया। स्त्री बिचारी लज्जा और दुःख के मारे मर भी गई पर किसी ने यथोचित न्याय न किया। इस पर मिश्र जी लिखते हैं— हाय! हम देश हितैषी केवल मुख और लखनी मात्र के हैं। नहीं तो जिस दुष्ट ने हमारे देश भाई की स्त्री का पातिव्रत भ्रष्ट किया उससे बढ़ के हमारा शत्रु कौन होगा? क्या ऐसे-ऐसे पुरुषों के दमन करने मे तन मन धन न लगा देना चाहिए? पर बिना सच्चे देश भक्त के यह काम हर एक का नहीं है।[2] इसी प्रकार अनेक दुष्कर्मों की भर्त्सना मिश्र जी अपने 'ब्राह्मण' म किया करते थ। जिसस जनता को सरकार क काले कारनामे अवगत होते रहते थे। कभी-कभी मिश्र जी की आलोचना के परिणाम स्वरूप सुधार भी हो जाया करत थ। सन् १८८३ की बात है ईस्ट इण्डिया रलवे और फरुखाबाद रेलवे के फाटक (कानपुर) पर सिपाही लोग रेलगाडी आने के घण्टों पहल स लदो हुई और छुटटा गाडियों को खड़ा रखते थे और देहातियों का परेशान करते तथा पैसा ऐंठते थ। इस कृत्य को मिश्र जी न अपन ब्राह्मण' म निकाला[3] जिसके परिणाम स्वरूप सिपाहियों को दण्ड मिला और देहाती सदा के लिए उक्त कष्ट स मुक्त हो गय।[4] मिश्र जी से जनता का कष्ट न देखा जाता था। जब सरकार जनता पर कोई टैक्स लगाती थी तो मिश्र जी उसकी कड़ी आलोचना करते थ। राजनीतिक और कांग्रेस के कार्यों द्वारा मिश्र जी का परिचय बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ तथा राजकीय कर्मचारियों स हो गया था जिसस वे जनता क हित क काय बड़ी सरलता स करा लेते थे।

सामाजिक जीवन

मिश्र जी पूर्णत सामाजिक थे उनके जीवन का प्रत्येक क्षण समाज के साथ

---

[1] 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ४ (सबे सहायक सयल के कोड म निबल सहाय)
[2] 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ४ —वही—
[3] 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ७ ('कानपुर')
[4] —वही— ५ 'चन्द्रपाद' - प्रतापनारायण मिश्र

जीवन उन्हीं का है जो तन, मन धन, धर्म, बल, विद्या, बुद्धि अपने देश पर वार देते हैं। जगत पिता जगदीश्वर उन्ही से प्रसन्न होगा जो जगत को प्रसन्न करे। जिन को आज हम पूजते हैं जिनके नाम की महिमा करते हैं मानव वे भी थे पर उनमें विशेषता कवल यही थी कि उनके काम और उनके वचन हम लोगों की भलाई के लिए थे। हम भी उनके सच्चे अनुगामी तभी होंगे जब उनकी रीति पर देश वत्सल हो।'[1]

मिश्र जी ने सर्व प्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया।

'सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लात खाव।
राजा कर सो न्याव है पांसा पर सो दाव ॥[2]

मिश्र जी कानपुर की राजकीय समितियों में भी जाते थे और उनके कार्यों की *आलोचना* करते थे। एक बार कानपुर की म्यूनिसिपैलिटी में इस बात पर विचार हो रहा था कि भैरव घाट में मुर्दे बहाये जायें या नहीं। (गंगा जी का प्रवाह उस घाट से कानपुर की बस्ती की ओर है)। तरह-तरह के प्रस्ताव होते-होते किसी ने कहा कि जल हुए मुर्दे की पिण्डी यदि इतने इंच से अधिक न हो तो बहाया जाय। दर्शकों में प्रतापनारायण मिश्र भी उपस्थित थे। आप खड़े होकर बोले— अरे दया रे दैया। मरेउ पर छाती नापी जाई।[3] सरकारी कर्मचारियों के दुर्व्यवहारों का भी भण्डाफोड़ करने में मिश्र जी न चूकते थे बड़े कटु शब्दों में उनकी आलोचना करते थे। २७ अप्रैल १८८३ ई० की बात है कानपुर में एक कहार को तीन सिपाहियों ने बेगार के लिए पकड़ा। उसका विवरण मिश्र जी इस प्रकार देते हैं—'उन्होंने इस अपराधी दीन पराये नौकर को बेगार की अवाध्य अयाग्टी पर पकड़ा था उन्हें क्या डर था? उस बिचारे बधुए ने बहुत हाथ पाँव जोड़ और गिड़गिड़ा के अपना सच्चा हाल कहा और छोड़ देने के लिए विनती की। हे पाठकगण! जब एक तुच्छ कहार उनसे उज्र करे तो उनकी क्रोधाग्नि के भड़कन का क्या ठिकाना था। बस किसी ने झोंटा चोटया पकड़ी किसी ने हाथ-पाँव पकड़े और घसीटते हुए चौक की तरफ ले चले फिर नहीं मालूम कि वह क्यों कर छूटा।[4] ऐसे ही १० मई १८८४ ई० की एक घटना और मिश्र जी लिखते हैं— अजमेर के स्टेशन पर भीड़ खड़ी थी। एक गाड़ी में परमोनमल्स नामक एक आर्य भाई (जो एक्जामिनर आफिस के क्लर्क

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ६ 'जातीय महासभा'—प्रतापनारायण मिश्र
२ प्रतापनारायण मिश्र मोकोवित शतक' (१८९६ ई०)—पृष्ठ २
३ 'सरस्वती' माघ १९०६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र'—महावीरप्रसाद द्विवेदी
४ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ३ (बेगार')

लिए गाव-गांव जाकर उपदेश देने [1] बाल्य और स्त्री शिक्षा का प्रचार करने और देशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर ये विशेष बल देते थे।[2] इसके अतिरिक्त समाज में फैले हुए छल और भ्रष्टाचार से भी सीधी-सीधी जनता को सावधान रखते थे। अढ़तियों की मीठी-मीठी बातों से व्यापारियों के फँसाने का [3] लम्पट बाबा (साधुओं) के बनावटी वेष और कुकृत्यों का [4] देशी घी में मिलावट करने वाले व्यापारियों का [5] नकली सोने से देहातियों को फँसाने वाले ठगों का [6] बनावटी सभा स्थापित करके पैसा कमाने वाले देश हितैषियों का [7] कच्चा चिट्ठा खोलने में मिश्र जी सदैव दत्तचित्त रहते थे। यहां तक कि अपने सम्बन्धियों तक के कार्यों की भर्त्सना करने में मिश्र जी न चूकते थे। एक बार इन्होंने अपने सगे सम्बन्धी प्रयाग-नारायण तिवारी की फक्कड़ और मगड़ दीपक नाम में बड़ी छीछालेदर की थी।[8] इस पर इनकी पत्नी ने कहा— आप सभी की बुराई किया करते हैं और दुश्मनी बढ़ाते हैं यदि किसी ने कुछ करा दिया तो क्या होगा? इस पर मिश्र जी ने कहा—'वह भी मेरा सौभाग्य होगा कोई कुछ कराये तो। मिश्र जी सत्य बात कहने में कभी न चूकते थे। संवत् १९४० में एक ज्योतिषी ने घोर अनावृष्टि की भविष्यवाणी की इस पर मिश्र जी ने एक बड़ी सुन्दर टिप्पणी लिखी। जो इस प्रकार है— होगा तो वही जो ईश्वर करेगा पर पण्डित जी ने अभी से भोले भालों को डराकर अपनी टट्टी जमाने का ढंग निराला। पाठकगण इनकी बातों में डरें नहीं ये उन्हीं में से हैं जो जन्मपत्री द्वारा सभी अच्छे गुण मिला के ब्याह कराते हैं तिस पर भी लाखों रांडें इनके जन्म को रो रही हैं।[9] इस प्रकार मिश्र जी जनता का धैर्य बंधाते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कभी-कभी उसे उत्तेजित करने के लिए कटु-व्यंग्य भी कसते थे। एक बार डाक्टर बकस के एक शिकारी ने जूदगांव (अहमदाबाद) के पास एक हिरन को मार डाला। इस पर जूदगांव के निवासियों ने शिकारी की बन्दूक छीन ली जिसके परिणाम स्वरूप गांव वालों पर खूब मार पड़ी और धन-दण्ड भी दिया गया।

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १० 'धरती माता की पूजा' 'धरती माता की पूजा
२ प्रतापनारायण मिश्र लोकोक्ति शतक (१८९७ ई०)-पृष्ठ ५
३ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या १० 'मुक्ति के भागी प्रतापनारायण मिश्र
४ ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० '—वही— —वही—
५ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ४ 'गुप्त ठग' '—वही—
६ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ १० 'ठगों के हथकण्डे —वही—
७ ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९ १० —वही— '—वही—
८ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या
९ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ७ (विविध समाचार)

था। वह समाज क कष्टो को सुनत देखते और दूसरा तक पहुचाते थ तथा उनक निराकरण का उपाय भी बताते थ। समाज म फले हुए अनाचार पाखण्ड, विद्वेष, असमानता, सकीर्णता आदि का दूर करके वह उस विश्व-बन्धुत्व के पवित्र-बन्धन मे बाँधना चाहते थ। उनका कहना था— आपके पास विद्या बल, धन, बुद्धि कुछ भी न हो पर एका हो तो सब हो सकता है। वह देश धन्य है जहाँ ऐक्य की प्रतिष्ठा हो। बहुत स लोग एक हो के पाप भी करें तो भी पुण्य फल पावेंगे। बहुत लोग एक होके मर जाय तो भी अनवमदूषित-जीवन स अच्छा है।[1] मिश्र जी के साहित्य म उनका समाज सुधारक और उपदेशक रूप स्पष्ट दिखाई देता है। वह देशवासियो को समझात न समझने पर झुंझलाते और कोसते दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं व्यग्य बाणो का प्रहार कर जाग्रत करते कहीं अतीत का गुणगान कर उनम स्वाभिमान उत्पन्न करते हैं। मिश्र जी बाल्यविवाह क विरोधी और विधवा विवाह क समर्थक थे। वह इनके दुष्परिणामो को बताकर जनता को इनसे बचने का पाठ पढ़ाते थे। जनता को आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता मिले इसके लिए जातीय भण्डार खोलने को उस प्रोत्साहित करते।[2] तथा बेकाम न बैठ कुछ करते रहने की सलाह देते थे।[3] यद्यपि मिश्र जी शरीर से कमजोर थ फिर भी मल्ल विद्या के प्रमी थ। कानपुर म जहाँ कहीं दगल होते मिश्र जी उन्हें देखन अवश्य जाते थे। उन्होने दगल खण्ड' नाम की एक पुस्तक भी आल्हा छन्द म लिखी। वे स्वास्थ्य रक्षा पर बड़ा जोर देते थ।[4]

मिश्र जी वीरता के भी पक्षपाती हैं। वे कहते हैं— आपस म लडना महा पाप है पर तो भी लड़ाई को भूल जाना भी नामरदी है। निरी शांति ऋषियो को चाहिए। गृहस्थ को तो भविष्यत् का विचार परम धर्म है। क्या जाने कल को कोई दुष्ट हम सताना चाह तब क्या करेंगे? हाथ-गोड़ दुरुस्त न रहे तो कचहरी ही कौन दौडेगा अत लड़ाई का भी कुछ-कुछ अभ्यास जरूर चाहिए।[5] समाज को स्थिति को देखते हुए मिश्र जी सदा उस उचित सलाह देते रहते थ। चेचक की बीमारी पर टीका क महत्व को समझाते और उसके लगवाने पर जोर देते थे।[6] पृथ्वी की उर्वराशक्ति नष्ट न हो इसके लिए कम लगान[7] ग्रामीणो की उन्नति के

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ११ (एक')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ८ (जातीय भण्डार')
३ 'ब्राह्मण खण्ड १ सख्या १२ ('बेकाम न बैठ कुछ किया कर')
४ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४० ई) पृष्ठ २२१
५ ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ४ (रामलीला और मुहर्रम)
६ 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या २ विस्फोटक प्रतापनारायण मिश्र
७ ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ६ 'ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य' प्रतापनारायण मिश्र

लिए गाव-गाव जाकर उपदेश देने[1] बाल्य और स्त्री शिक्षा का प्रचार करने और देशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर ये विशेष बल देते थे।[2] इसके अतिरिक्त समाज में फैले हुए छल और भ्रष्टाचार से भी सीधी-सीधी जनता को सावधान रखते थे। कहानियों की मीठी-मीठी बातों से व्यापारियों के फसाने का[3] लम्पट बाबा (साधुओं) के बनावटी वेष और कुकृत्यों का[4] देशी घी में मिलावट करने वाले व्यापारियों का[5] नकली सोने से देहातियों को फंसाने वाले ठगों का,[6] बनावटी सभा स्थापित करके पैसा कमाने वाले देश हितैषियों का[7] कच्चा चिट्ठा खोलने में मिश्र जी सदैव दत्तचित्त रहते थे। यहां तक कि अपने सम्बन्धियों तक के कार्यों की भर्त्सना करने में मिश्र जी न चूकते थे। एक बार इन्होंने अपने सगे सम्बन्धी प्रयाग-नारायण तिवारी की पक्कड़ और भगड़ शीर्षक लेख में बड़ी छीछालेदर की थी।[8] इस पर इनकी पत्नी ने कहा— आप सभी की बुराई किया करते हैं और दुश्मनी बढ़ाते हैं यदि किसी ने कुछ करा दिया तो क्या होगा? इस पर मिश्र जी ने कहा—'यह भी मेरा सौभाग्य होगा कोई कुछ कराये तो। मिश्र जी सत्य बात करने में कभी न चूकते थे। संवत् १९४० में एक ज्योतिषी ने घोर अनावृष्टि की भविष्यवाणी की इस पर मिश्र जी ने एक बड़ी सुन्दर टिप्पणी लिखी। जो इस प्रकार है— होगा तो वही जो ईश्वर करेगा पर पण्डित जी ने अभी से भोले भालों को डराकर अपनी टही जमाने का ढंग निकाला। पाठकगण इनकी बातों से डरें नहीं ये वही महात्मा हैं जो जन्मपत्री द्वारा सभी अच्छे गुण मिला के ब्याह कराते हैं तिस पर भी लाखों रांडें इनके जन्म को रो रही हैं।[9] इस प्रकार मिश्र जी जनता का धैर्य बंधाते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कभी-कभी उसे उत्तेजित करने के लिए कटु-व्यंग्य भी कसते थे। एक बार डाक्टर बकम के एक शिकारी ने जूदगांव (अहमदाबाद) के पास एक हिरन को मार डाला। इस पर जूदगांव के निवासियों ने शिकारी की बन्दूक छीन ली जिसके परिणाम स्वरूप गांव वालों पर खूब मार पड़ी और धन-दण्ड भी दिया गया।

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १० 'धरती माता की पूजा' 'धरती माता की पूजा
२ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९७ ई०)-पृष्ठ ५
३ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० 'मुक्ति के भागी' प्रतापनारायण मिश्र
४ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० '—वही—' —वही—
५ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ४ 'गुप्त ठग' '—वही—
६ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ १० 'ठगों के हथकण्डे' —वही—
७ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९ १० —वही— —वही—'
८ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९
९ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या २ (विविध समाचार)

इस घटना का देते हुए मिश्र जी लिखते है— साहब बहादुर ने उन कलूटो को मारा एव धन-दण्ड दिया सो बहुत अच्छा। हिन्दू तो इसीलिए बनाया गया है। काले रग वालो को मारना कोई जुर्म है? कौआ सभी कोई उडा देता है। बाल सभी कोई कतर डालता है। कोयला सभी कोई आग म झाक देता है। इसमें साहब न क्या बुरा किया।[1]

मिश्र जी मौलिक सेवा क साथ-साथ समाज की सक्रिय सवा भी करते थ। इन्होन अनाथालय खोलने क लिए बडा प्रयत्न किया। प्रत्येक द्वार पर जाकर उन्होने चन्दा मागा। जानवरो के पानी पीने के लिए मिश्र जी न विन्ध्याचल से कूड मगवाय और कानपुर क बडे बडे चौरस्ता पर उन्ह रखवाया। मिश्र जी कई कार्य करना चाहते थ पर धनाभाव के कारण न कर पाते थे। वह अपने 'कानपुर कुछ कुन मुनाया है' लख म लिखते है— 'हमारी बहुत दिना से इच्छा थी कि एक चिरस्थायी हिन्दी पत्र एक सबके सुभीते का पुस्तकालय एक आय कन्याओ की पाठशाला और एक गोशाला एव नाट्य सभा यहा हो जाती तो उसम या पर अपन पास तो राम जी का नाम ही मात्र ठहरा हो तो क्या हो। यहा के लोगो की वृद्धि भी परमेश्वर ने न जाने किस हिमाकत म कसी बनाई है कि विदेशियो के लिए तो चाह कुछ कर भी दें पर अपन सच्चे हितैषी की सहायता न बन पडेगी।[2] इन कार्यों म जसे-तसे मिश्र जी ने हिन्दी पत्र गोशाला और नाट्यसभा स्थापित कर ली थी। इसक अतिरिक्त मिश्र जी अनेक सभा-समितियो की स्थापना कराते और उनमे सहयोग देते थे। सन् १८७९ ई० म कानपुर म आर्य समाज की स्थापना हुई इसमे इन्होंने बडा काय किया और यह इसक प्रथम सदस्य हुए।[3] आर्य समाज के धर्म प्रचार और शुद्धी-कार्य स मिश्र जी बहुत प्रसन्न थ लकिन यह उसके मूर्ति खण्डन को अच्छा नही समझते थे। वे लिखते है— यदि समाजस्थ सज्जन मतमतान्तरकी निन्दा स्तुति के बदल केवल 'सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात' क उपदेश किया करें तो सोन म सुगन्ध हो जाय।[4] ३ फरवरी १८८४ ई० म 'स्वदेश हितवर्धिनी सभा' का आयोजन हुआ इसम प्रतापनारायण जी न बडा सुन्दर भाषण दिया और उसके कार्यो की प्रशसा की।[5] इसके बाद जनवरी १९६२ ई० म (कानपुर म) श्री भारत धर्म महामण्डल के व्याख्यान हुए। इस व्याख्यान-समारोह म प्रतापनारायण जी न कानपुर म भी श्री भारत धर्म महामण्डल स्थापित करने का निवेदन किया। मिश्र जी के इस प्रस्ताव

१ 'ब्राह्मण खण्ड २ सख्या ३ (टेढ जानि शका सबका हू')
२ ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ५
३ रामराज्य (कानपुर) ८ अक्तूबर १९२६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
४ ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ८ 'कानपुर' प्रतापनारायण मिश्र
५ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १२ 'कानपुर' प्रतापनारायण मिश्र

का सभी न अनुमोदन किया और ३१ जनवरी १८९२ ई० को कानपुर श्री भारत धर्म महामण्डल स्थापित हो गया।[1] मिश्र जी काय सभी सस्थाओ म करते थ पर किसी एक सस्था के होकर नहा चलते थ। एक बार इन्होंने कानपुर म सनातन धम क प्रचारक प० दीन दयाल शर्मा 'व्याख्यान वाचस्पति' का बुलाकर एक सभा कराई जिसक परिणाम स्वरूप कानपुर म सनातन धम सभा का स्थापना हुई। प० दीन दयाल शर्मा ने नवस्थापित सनातन धर्म सभा का भार मिश्र जी के कधों पर रखना चाहा। इस पर मिश्र जी न तत्क्षण उत्तर दिया— हम नही इस लीला म फसते।[2] इसका तात्पय यह कि मिश्र जी सभी देश हितैषी सस्थाओ के पोषक थ।

कानपुर सन् १८९१ म प्रतापनारायण मिश्र और उनक मित्रो क प्रयत्न स एक और साहित्यिक सभा स्थापित हुई जिसका नाम रसिक समाज रखा गया। इसका उद्देश्य केवल भाषा का प्रचार और साधु रीति स सभापन का चित्त प्रसन्न रखना था। इस समाज की ओर स 'रसिक वाटिका' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी।[3] जिसम मिश्र जी की अनेक कवितायें प्रकाशित हुई थी। मिश्र जी न गोरक्षा के हेतु—कानपुर तथा अन्य स्थानों म सभायें स्थापित की थी गोरक्षा पर मिश्र जी का कार्य बड़ा ही स्तुत्य है। इसक प्रचार के लिए मिश्र जी बाहर भी जाते थ और भिन्न भिन्न सभाओ म व्याख्यान देते थ। गोरक्षा पर मिश्र जी ने बहुत सी हृदय स्पर्शी कवितायें और लेख लिखे। गोवध से मिश्र जी के हृदय म विद्रोह की अग्नि धधक उठी थी। व लिखते हैं—

> 'अतिशय निबल निदोस पर, छुरी चलावत हाय।
> क्यों फिर जग परमिष्ट बनि दया दया चिल्लाय।[4]

मिश्र जी किसी मत क विरोधी नही थे। मूर्तिपूजा पर भी उन्ह पूर्ण आस्था था। व कहते हैं— जिस देश म शिल्प विद्या का प्रचार और जहा लोगो क जी म स्नेह एव सहृदयता का उद्गार होगा वहा मूर्तिपूजा किसी क हटाये नही हट सकता।[5] सन् १८८३ म मौरिस साहब (जज) की आज्ञा स—शपथ दिलान क लिए—शालिग्राम की मूर्ति कचहरी म लाई गई। इस मूर्ति क लान म ब्राह्मणो की भी सम्मति थी। मिश्र जी को यह बात बहुत बुरा लगी। उन्होंने ब्राह्मण म एक मत निकाला और उसम धर्मध्वजियो की खूब खिल्ली उड़ाई। उसकी कुछ पक्तियाँ इस

---

१ ब्राह्मण खण्ड ८ सख्या ८ 'असर इसको कहत हैं' प्रतापनारायण मिश्र
२ स० प्रेमनारायण टडन साहित्यिकों क सस्मरण (१९४३ ई०)-पृष्ठ ७
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या २ ३ 'रसिक समाज' प्रतापनारायण मिश्र
४ स नारायण प्रसाद अरोड़ा— प्रताप लहरी (१८९० ई०) पृष्ठ २४
५ प्रतापनारायण मिश्र 'गौ सवस्व' (१८ ०) उपक्रम से

प्रचार हैं— जिनकी पूजा बड़ी पवित्रता के साथ स्नान करके की जाती है उनको ईसाई मुसलमानों के बीच एवं ऐसे ठौर पर ले जाना जहां कि पवित्रता केवल भंगी के झाड़ से होती है हिन्दू धर्म के विरुद्ध तो हम कैसे कहें कि नहीं है पर हां ऐसी व्यवस्था देना कलजुगहा पंडितों के धर्म के धर्म विरुद्ध तो नहीं है । [1] देवमन्दिरों के प्रति भी इन्हें बड़ी ममता थी । काशी के राममंदिर तोड़ने के प्रस्ताव को सुनकर उन्होंने लिखा—'अब तुम्हारे देवमंदिर टूटने के लिए बिकने लगे । यदि अब की उपेक्षा करोगे तो कल को परमेश्वर न करे विश्वनाथ और जगन्नाथ बद्रीनाथ के मंदिर भी कोई किसी सड़क अथवा आफिस के लिए मोल लेके साफ कर दिये जायेंगे। इससे चाहिए कि धर्म रक्षा के लिए उन्मत्त हो जाओ और नगर-नगर में बड़ी से बड़ी सभायें करके गवर्नमेंट को अपना दुःख प्रकाश करो।[2]

मिश्र जी के समय में ईसाइयों के प्रचार का बड़ा ज़ोर था। कानपुर के प्रमुख चौरस्तों पर अधिकतर ईसाइयों के उपदेश हुआ करते थे। ये लोग अशिक्षित जनता को अपने धर्म की अच्छाइयां बताकर बहकाया करते थे और हिन्दू धर्म को गलत ढंग से निकृष्ट सिद्ध करते थे जिससे कुछ जनता इनकी अनुगामिनी होती जा रही थी। मिश्र जी भी कभी-कभी जाकर श्रोताओं में खड़े हो जाते थे और उपयुक्त प्रसंग आते ही उनसे उलझ जाते थे। मिश्रजी में ऐसी तार्किक शक्ति थी कि फिर ईसाइयों को भगते देर न लगती थी। एक बार एक ईसाई पादरी चौक में खड़े एक ग्रामीण भाई को समझा रहे थे कि रामायण खरीद कर क्या करोगे ? उसमें ईश्वर और मुक्ति का रास्ता कहां है ? इतने में मदनचन्द्र खन्ना उधर से निकल पड़े और पादरी साहब से उलझ गये। जब पादरी साहब का किसी तरह वश न चला तो पीछे खड़े व्यक्ति (प्रतापनारायण मिश्र) से कहा— इनको समझा दीजिए कि शास्त्रार्थ और बात है पर लड़कों का धर्म-तत्व समझाना सहज नहीं है। इस पर मिश्र जीने बड़ी नम्रता से कहा— औषधि की आवश्यकता रोगी ही को होती है। यदि लड़कों और अज्ञानियों ही को न समझाइएगा तो किसे समझाइएगा ? आपका काम ही यह है। इसके उत्तर में पादरी साहब अंग्रेजी बोल चले। तब मिश्र जी ने कहा— हिन्दी में ही कहिए नहीं तो यह सब जो खड़े हैं न समझेंगे। अब उन्हें और भी उलझन पड़ी। फिर बोले— अच्छा आप इस लड़के को लेकर मेरे बंगले पर आइए मैं वखूबी समझाऊंगा। मिश्र जी ने कहा—'कृपा करके यहां समझाइए तो इन चालिस-पचास भाइयों का (जो धीरे धीरे एकत्रित हो गये हैं) और उपकार हो। वहां हमीं तीन जन होंगे। जब पादरी

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७ (शालिग्राम जी का कचहरी में जाना ठीक है कि नहीं ?)

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ८ (देवमन्दिरों के प्रति हमारा कर्तव्य)

साहब ने देखा किसी तरह बस नहीं चलता तो बोले—'बाबा मिहरबानी करो अब जाने दो और चल दिये।[1]

ऐसे ही एक पादरी साहब जनरलगंज में मिश्र जी से उलझ गए। वह बोले—आप गाय को माता कहते हैं ? मिश्र जी कुछ गम्भीर होकर बोले 'जी हाँ'। तब पादरी साहब ने कहा—तो बैल को आप पिता कहेंगे ? मिश्र जी सावधानी से बोले—जी हाँ, बेशक। इस पर पादरी साहब मुस्करा कर बोले—हमने तो एक दिन अपनी आँख से एक बैल को मैला खाते देखा था। इस पर मिश्र जी शीघ्रता से बोले—अजी साहब यह बैल ईसाई हो गया होगा। हिन्दू समाज में ऐसे भी बैल होते हैं। पादरी साहब चुप हो गये। सुनने वाले लोग खूब हँसे।[2]

कभी-कभी मिश्र जी अपनी वाकशक्ति द्वारा गलत बात भी सिद्ध कर देते थे। एक ईसाई ने मिश्र जी से पूछा कि आप कौन-सा शास्त्र मानते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—मैं तो कोकशास्त्र मानता हूँ। इसी के अनुसार हम सबकी सृष्टि होती है। हम लोग ईसामसीह की तरह कोकशास्त्र के विरुद्ध पैदा होने वाले नहीं हैं। तब ईसाई साहब ने कुछ बहस की। इस पर मिश्र जी ने बहुत से सामान्य धर्म कर्म कोकशास्त्र के अन्दर ही कह सुनाये। यह सब सुनकर पादरी साहब बहुत छके।[3] इस प्रकार मिश्र जी की पादरियों से अक्सर बहस हो जाया करती थी। पादरियों के छल से जनता को सतर्क रखने के लिए ही मिश्र जी उनके पीछे पड़ते थे। उनका कहना था कि 'छोटे छोटे कोमल प्रकृति वाले नासमझ बालकों को बचाना हम हिन्दू मुसलमानों का परम कर्त्तव्य है। ऐसा न हो परमेश्वर न करे पादरियों की चिकनी चुपड़ी बातें असर कर जाएँ तो हमारी नई पौध निकम्मी हो जायगी।[4]

मिश्र जी का धर्म बड़ा व्यापक था। वह सभी को उसमें स्थान देते थे। हिन्दू और मुसलमान में जातिगत कोई भेद नहीं मानते थे। एक बार एक मियाँ जी ने इनसे कहा—'क्या आप हमको अपने धर्म में ले सकते हैं ? इन्होंने कहा—धर्म में लेने वाले हम कौन ? धर्म तो परमेश्वर का है उसकी कृपा से आप इस पवित्र धर्म की महिमा जान लेंगे तो आपसे आप इसे मानने लगेंगे। हाँ हम अपने समूह में प्रायश्चित्त कराके आपको मिला सकते हैं। इस पर मियाँ जी ने कहा—फिर आप हमारे साथ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ६ 'पादरी साहब का व्यर्थ यत्न' प्रतापनारायण मिश्र।

२ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २१

३ 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ 'बड़ी हुई आग' प्रतापनारायण मिश्र

खाने-पीने वगैरह का परहेज तो न करेंगे ? तब मिश्र जी ने कहा—आप सच्चे आर्य हुआ चाहते हैं या नकली ? किसी असली हिंदू से पूछिए तो क्या वह दूसरे हिन्दू के साथ खाता फिरता है ? जब आप आर्य ही गये तो क्या कर अपना समाज नियम तोड डालेंगे ? आपकी इच्छा हो किसी का छुआ खान की न होगी ।[1]

मिश्र जी ने देशोद्धार के निमित्त अपने जीवन में कई यात्रायें कीं । राजनीतिक या कांग्रेस के कार्य से मद्रास इलाहाबाद बम्बई कलकत्ता का साहित्यिक काम से ...कर तथा कई बार बाँकीपुर की और सामाजिक काम से दिल्ली बाँकीपुर और कन्नौज की यात्रा की। सामाजिक यात्राओं का मुख्य कारण गोरक्षा प्रचार था। कन्नौज की यात्रा मिश्र जी ने स्वामी भास्करानन्द के साथ 'गोरक्षणी सभा' में सम्मिलित होने के लिए की थी । इस सभा में मिश्र जी का बड़ा सफल भाषण हुआ जिसका जनता पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा ।[2]

मिश्र जी अपने युग के जागरूक द्रष्टा थे । प्रत्यक्ष स्थिति के चित्र हम उनके साहित्य में देखने को मिलते हैं । देशवासी जब बार-बार उपदेश देने पर भी न ध्यान देते और बराबर पतन ही की ओर अग्रसर होते जाते तो मिश्र जी खीझ उठते और अपने ही को कोसने लगते थे साथ ही ईश्वर से शिकायत करते कि सुगामी टट्टू क्यों न बनाया कि किसी समय पुरुष का ठाकुर-सुहाता बातों में लगाने और योग्यता के न होने पर भी बड़े-बड़े खिताब पाते । बाबा लम्पटदास का चेला क्यों न बनाया कि मनमानी मौज करते तिसपर भी साक्षात् देवता कहलाते । कुपढ धनी क्यों न बनाया कि ...का खिलौना बन बैठे गप्पें हाँका करते देश की चिन्ता में व्यर्थ अपना मह तो न सुखाते । मियां भाई क्या न बनाया कि धन बल विद्या और समाज सभी बातों में न्यून होने पर भी सरकार की नजर में श्रेष्ठ गिने जाते हिन्दुओं पर भी रोब जमाते कुदाते और सौ-सौ बहाने में मनमानी धमाचौकड़ी मचाते ।[3] इस उदाहरण से दशा-दशा तथा मिश्र जी की कमठता का सहज ही परिचय मिल जाता है ।

व्यक्तित्व

प्रतापनारायण जी गोरे रंग के इकहरे शरीर वाले दुबले-पतले व्यक्ति थे । इनका कद ठिगना था । रुग्णता के कारण कमजोर इतने अधिक थे कि छाती के नीचे हड्डियाँ उभर आने से गड्ढा हो गया था । इनकी नाक बड़ी मुँह लम्बा-पतला पर तेजस्वी था । कमजोरी के कारण युवावस्था में ही कमर झुक गई थी ।[4] इनकी चाल

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १, 'प्रश्नोत्तर' प्रतापनारायण मिश्र
२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १, ('कनौज में तीन दिन')
३ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ५ (सुवा से शिक्वा हमें किस कदर है क्या कहिए ?)
४ 'सरस्वती भाग १९ ६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

बड़ी आरपार थी—एक विशेष प्रकार से झूमते हुए चलते थे।[1] सिर पर बड़े-बड़े पट्टेदार बाल रखते थे जिनके आगे दोनों तरफ काकुलें रहती थीं। बालों में तेल बहुत अधिक छोड़ते थे जिसके कारण कभी तब तक चुचुआया करता था।[2] यह नियमित बालों का बनाव शृंगार नहीं करते थे जब कहीं बाहर जाना होता था तभी सवारते थे। मूछ और दाढ़ी के बाल भी ये रखाये रहते थे। कभी-कभी सिर पर चौगानिया टोपी भी लगाते थे। इनकी प्रमुख पोशाक अंगरखा और धोती थी। इनका एक चित्र भी अंगरखा धोती और चौगानिया टोपी से युक्त मिलता है जो मार्च १९०६ ई० की सरस्वती में—द्विवेदी जी के लेख के साथ—प्रकाशित हुआ था। मिश्र जी का एक रेशमी अंगरखा अभी तक नौबस्ता (कानपुर) में उनके दत्तक-पुत्र की पत्नी के पास था। स्वदेशी वस्तुओं के अनुयायी और प्रचारक होने के कारण मिश्र जी कभी कभी खद्दर का लम्बा कुरता और धोती भी पहनते थे।[3] अचकन भी मिश्र जी जब कभी कानपुर से बाहर जाने पर पहनते थे।

मिश्र जी बड़े अलमस्त, मौजी और स्वच्छन्द प्रकृति के थे। उनमें चुलबुलापन मसखरापन फक्कड़पन और अल्हड़पन कूट-कूट कर भरा था पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह उच्छृंखल थे। यह सब उनकी विनोद प्रियता का कारण था। इसके विपरीत मिश्र जी में गम्भीरता की कमी न थी। वह विवेकशील, परोपकारी और निश्छल स्वभाव के व्यक्ति थे। किसी दोष को छिपाना वह बुरा समझते थे। उनके मन में जो कुछ आता उसे स्पष्ट कह जाते थे। मिश्र जी धैर्य और विद्वता के पीछे पड़ने वाले नहीं थे। वह आत्मबल पर विश्वास करते थे। यही कारण है कि वह किसी काम के करने में पीछे न रहते थे। साथ ही जो काम प्रारम्भ करते थे उसे तन मन-धन से पूरा भी करते थे। सादगी मिश्र जी को विशेष प्रिय थी देहातीपन में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। अपने मित्रों से अधिकतर वह बैसवाड़ी में ही बातचीत करते थे। एक बार मिश्र जी मांधीपुर (पन्ना) गये। वहाँ बाबू रामदीनसिंह के आदमी इन्हें स्टेशन पर लेने आये। उस समय मिश्र जी बड़े साधारण वेश में थे। यह हाथ में एक कमरी और लोटा लिये थे। बाबू रामदीनसिंह के आदमी इन्हें पहचान न सके। बड़ी परेशानी में वह मिश्र जी को—गाड़ी में—इधर-उधर ढूँढ़ रहे थे और मिश्र जी यह सब तमाशा देख रहे थे। जब वे लोग काफी परेशान हो गये तब प्रतापनारायण जी ने पूछा—"आप किसे ढूँढ़ रहे हैं?" उन्होंने बताया—कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र को। मिश्र जी ने कहा—"यही कम्बू का परतापवा आय। फिर सब लोग इन्हें

---

१ 'सरस्वती', जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी

२ 'सरस्वती', जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी

३ 'सरस्वती', जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी

सत्कार के साथ ले गये। मिश्र जी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के पक्षपाती थे। उनका कहना था—

> छोड़ि नागरी सुगुन आगरी उर्दू के रंग राते।
> देशी वस्तु बिहाय बिदेसिन सों सर्वस्व ठगाते ॥
> मूरख हिंदू कस न लहैं दुख जिन कर यह ढंग दीठा।
> घर की खांड़ खुरखुरी लागै चोरी का गुड़ मीठा ॥[1]"

विनोदप्रिय होते हुए भी मिश्र जी बड़े क्रोधी थे। कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बात पर बिगड़ जाते थे और चिढ़कर खूब सुनाते थे। इसके साथ ही मिश्र जी बड़े संयम हीन अनियमित तथा आलसी थे। इसी से वे सदैव बीमार बने रहते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'मिश्र जी अव्वल नम्बर के काहिल थे। उठने-बैठने की जगह भी कूड़ा का ढेर लगा रहता था। अखबार चिटिठ्या कागज बिखरे पड़े रहते थे। उनके यहां आने जाने वाले उनके मित्र अगर उन्हें उठाकर जगह को साफ कर देते थे तो कर देते थे। खुद प्रतापनारायण ने शायद ही कभी इनको उठाकर यथास्थान रक्खा हो। लोगों की चिटिठयों का उत्तर तक वे बहुधा नहीं देते थे। प० दुर्गाप्रसाद मिश्र को इन्होंने एक चिटठी लिखी थी। उसे 'खड्गविलास प्रेस' ने छापकर प्रकाशित किया है। उसमें एक जगह चिटिठ्यों का उत्तर न देने के विषय में आप लिखते हैं— को सारेन की सैहसि मा पर।[2] अस्वस्थता के कारण मिश्र जी लिखते बहुत कम थे। उनका यह नियम था कि जब कोई उनके पास आ जाता तो झट उसे कागज कलम दे देते और उस समय जो विषय उनके ध्यान में आ जाता उसे लिखाना प्रारम्भ कर देते।[3] वे प्रायः लेटे ही लेटे पढ़ते थे बैठ कर लिखने-पढ़ने की शक्ति उनमें कम थी। उनके अक्षर एक विशेष सूरत शक्ल के होते थे। लेटे-लेटे लिखने के कारण पंक्तियां सीधी नहीं होती थीं और टेढ़ी भी यहां तक होती थीं कि दो-दो ढाई ढाई अंगुल का अन्तर पड़ जाता था फिर उनके नीचे टेढ़ी पंक्तियां ही लिख चल जाते थे। उर्दू हिन्दी में ऐसा अधिक होता था अंग्रेजी में कम[4]। जब मिश्र जी बैठकर लिखते तो कभी-कभी पंक्तियां बड़ी घनी और अक्षर बड़े छोटे-छोटे तथा सुन्दर होते थे। एक बार इन्होंने बाबू बालमुकुन्द गुप्त को एक पोस्टकार्ड लिखा जो वर्तमान कार्ड से छोटा था और एक ही ओर लिखा गया था फिर भी उसमें लिखा मजमून आध

---

१ प्रतापनारायण मिश्र लोकोक्ति शतक (१८०६ ई०) पृष्ठ ५
२ निबन्ध-नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १५
३ सं० प्रेमनारायण टण्डन साहित्यिकों के संस्मरण (१९४३ ई०) पृ० ९
   प० प्रतापनारायण मिश्र'—रमाकान्त त्रिपाठी।
४ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि) पृष्ठ १३ १४

पृष्ठ से अधिक था। यह कार्ड बड़े छोटे अक्षरों और घनी पंक्तियों में लिखा गया था। किन्तु यह उनकी मौज थी सदा इसके पाबन्द भी न थे।[1] मिश्र जी अपनी कविताओं का संग्रह न करते थे और न पुस्तकों का ही उचित ढंग से रखते थे। कविताएं कागज के टुकड़ों में लिखकर इधर उधर डाल देते थे जिन्हें या तो इनके मित्र संग्रहीत कर लेते थे या अपने घर उठा ले जाते थे इसी से इनका बहुत-सा साहित्य अनुपलब्ध हो गया है।

मिश्र जी बड़े मस्तमौला थे। बिना इच्छा के कोई काम नहीं करते थे। अपने मित्रों के खुशामद करने पर भी उनके घर न जाते और जब इच्छा होती तो बिना बुलाये ही पहुंच जाते और दिन दिन भर पड़े रहते। कहते हैं ये जिस अंग को चाहते थे उसे यथेष्ट हिलाते या फरकाते थे। ऐसा करने में और अंग स्थिर रहते थे तथा सांस बन्द करके घंटों तक मुर्दा से पड़े रहते थे। ये अपने कानों को उंगली की तरह हिलाते थे जिससे पास में बैठे हुए लोगों का मनोरंजन हो जाया करता था। इससे किसी किसी का मत है कि ये योग विद्या जानते थे[2] पर मिश्र जी ऐसे असंयमित का योग विद्या जानना असम्भव है। यह सब केवल अभ्यास का परिणाम था।

प्रतापनारायण जी विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। अधिक पढ़े लिखे न होते हुए भी उन्होंने अपनी प्रतिभा के ही बल से जीवन में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। सांसारिक अनुभव द्वारा उनका ज्ञान इतना पुष्ट हो गया था कि प्रत्येक विषय का प्रतिपादन वे बड़े सामर्थ्य के साथ करते थे। उन्होंने अपनी प्रबल आत्मिक शक्ति द्वारा अपने और पाठकों के बीच ऐसा सीधा और घनिष्ट सम्बन्ध बना लिया था कि उन्हें बाह्य चमत्कार की कोई आवश्यकता न रह गयी थी। वे सीधे अपने विषय पर आ जाते थे और अपनी प्रतिभा द्वारा छोटे से छोटे विषय को सजीव बना देते थे। कवि के लिए विद्वत्ता से अधिक प्रतिभा की आवश्यकता होती है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— कवि के लिए जिस बात की सबसे अधिक जरूरत होती है वह प्रतिभा है और इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रतापनारायण मिश्र में प्रतिभा थी और थोड़ी नहीं बहुत थी। विद्वत्ता होने से कविता शक्ति में कोई विशेषता नहीं आ सकती उल्टा हानि चाहे उसमें कुछ हो जाय।[3] मिश्र जी अधिक अध्ययन नहीं करते थे पर उनमें ऐसी ग्राहिका शक्ति थी कि कठिन से कठिन विषय को आसानी से समझ लेते थे। यही कारण है कि पिंगल-शास्त्र से कठिन तथा नीरस विषय पर मिश्र जी का पूर्ण अधिकार था। वे खड़ी बोली के विरोध में श्रीधर पाठक

---

१ 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५०

२ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २२

३ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १०

को उत्तर देते हुए लिखते हैं— आप छन्दपूर्ण जैसी कोई भी पिंगल-शास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी 'हिन्दुस्थान' में प्रत्येक छन्द का उदाहरण खड़ी बोली में दीजिए और मैं व्रज भाषा में देता हूं।'[1]

मिश्र जी की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। मुन्शी इन्द्रमणि आर्यसमाजी की फारसी में लिखी हुई 'तोहफतुल इसलाम' और 'सदाए इसलाम' पुस्तकों के कुछ अंशों का इन्होंने हिन्दी में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया था जिनका सुनकर मुन्शी जी ने इनकी बड़ी प्रशंसा की थी।[2] मिश्र जी बड़ी जल्दी कविता करते थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं— वह बात करते-करते कविता करते थे चलते चलते गीत बना डालते थे। सीधी-सीधी बातों में दिल्लगी पैदा कर देते थे। तब से कितने ही विद्वानों, पंडितों कवियों से मेल-जोल हुआ है बातें हुई हैं और कितनों में ही उनका-सा एक-आध गुण भी देखने में आया है पर उतने गुणों से युक्त और हिन्दी साहित्य-सेवी देखने में न आया।[3] एक बार एक साधु ने यह पद गाया—

तजहु मन हरि—विमुखन को संग।
जिनकी संगति सदा पाय के परत भजन में भंग।'

पंडित प्रतापनारायण ने उसी समय इस पूरे पद के अर्थ को बिल्कुल ही उलट कर इस तरह गाया—

तजहु मन हरि भक्तन को संग।
जिनकी संगति सदा पाय के होत रंग में भंग।[4]

इस तरह मिश्र जी समयानुसार बड़ी जल्दी कविता बना लेते थे। उन्हें आशुकविता की शक्ति प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त मिश्र जी की सूझ बड़ी अनोखी थी। छोटी-छोटी वस्तु भी उनकी दृष्टि से न बचती थी। बहुज्ञता भी उनमें कम न थी अपने समय के प्रत्येक आवश्यक विषय का उन्हें थोड़ा-न-थोड़ा ज्ञान था। साथ ही हिन्दी की पुस्तकें और अखबार पढ़ने का उन्हें बड़ा शौक था। यहां तक की रद्दी अखबार और पुस्तकें यदि कहीं पड़ी मिल जाती तो उन्हें भी उठाकर पढ़ने लगते थे। मिश्र जी का बात करने का ढंग बड़ा बांका था। बात करते समय सबका ध्यान अपनी ओर खींच लेने की उनमें शक्ति थी।[5] उनके व्यक्तित्व में एक अद्भुत आकर्षण था। इसी कारण उन्होंने अपने समय में ही अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। उनके

---

१ हिन्दुस्थान २१ मार्च १८८८ ई०
२ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग २००७ वि० पृष्ठ १३
३ 'बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली प्रथम भाग २००७ वि०, पृष्ठ २
४ निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २०
५ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १०

हास्य और व्यंग्य से युक्त लेख और कवितायें लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। कहना न होगा कि प्रतापनारायण के बराबर प्रतिभा सम्पन्न लेखक उस युग में दूसरा न था।

इन उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त और कई प्रमुख विशेषतायें मिश्र जी में थीं जिनका उल्लेख करना उनके व्यक्तित्व को भली प्रकार समझने के लिए आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं—

स्वाभिमानी

मिश्र जी बड़े स्वाभिमानी थे। निर्धनता के कारण, अनेक कष्टों को सहते हुए अपने ब्राह्मण को निकालते रहे पर किसी धनाढ्य के आगे हाथ नहीं फैलाया। उनका कहना था— हम वास्तव में न विद्वान हैं न धनवान न बलवान पर हमारा सिद्धान्त है कि अपने जीवन को तुच्छ न समझना चाहिए क्योंकि इसका बनाने वाला सर्व शक्तिमान् सर्वोपरि परमात्मा है।[1] एक बार बैजगाव के राजा शम्भुनाथ मिश्र कान पुर आये और उन्होंने पं० प्रतापनारायण मिश्र को अपने निवास स्थान (जहाँ वह ठहरे थे) पर बुलवाया। जो व्यक्ति राजा की आज्ञा से मिश्र जी को बुलाने आया था उससे मिश्र जी ने बनवाड़ी में कहा— हमका बोलाएनि है तो हम तो चाह चली मुला हम जब उनका बानइव तो का उइ हमरे हिया नहीं आइन जो हमरे हिया नहीं आ सकिन।[1] मिश्र जी में देश जाति भाषा और जाति धर्म के लिए स्वाभिमान तथा जोश था। वे बड़े उत्साह से इनकी सेवा करते थे और कहते थे — सब कुछ खो जाय तो कुछ परवाह नहीं पर निजता (अपनापन) मत खोओ। जैसे किसी को मर्म भेदी वाक्य कहना अपने लिए हानिकारक है वैसे ही ऐसी बातों को सहना भी नपुंसकता का अंग है।[2] कहीं-कहीं मिश्र जी अपनी अत्यधिक स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कारण आत्म प्रशंसा की सीमा तक पहुँच जाते हैं। संगीत शाकुन्तल के सूत्रधार का यह कथन वस्तुतः ऐसा ही है—

कौशिक कुल अवतंस श्री सक्टादीन।
जिन निज बुधि विद्या विभव बस प्रशसित कीन॥
तासु तनय परताप हरि परम रसिक बुधराज।
सुघर रूप सन कविन बिन जिहिं न रचत कछु काज॥
प्रेम परायन सुजन प्रिय सहृदय नव रस सिद्ध।
निजता निज भाषा विषय अभिमानी परसिद्ध॥

---

१ प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ७१३
२ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ५ (प्रशंसनीय सिद्धान्त')

श्री मुख जासु सराहना कीन्हीं श्री हरिचन्द।
तासु कलम करतूति लखि लहै न को आनंद ॥[1]

इस कथन को देखकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— प० प्रताप नारायण ने मतलब में कुछ ज्यादा अपनी तारीफ कर डाली है। अपने को 'पंडितवर' लिखा है। परम रसिक सहृदय और नवरस सिद्ध इत्यादि विशेषण तो ठीक ही है। पर 'सुघर रूप' में विलक्षणता है।[2] द्विवेदी जी के इस कथन का उत्तर देते हुए सन् १९०६ के भारत मित्र में आत्मारामीय टिप्पण के अन्तर्गत बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं— जरा गुबार दूर करके एक बार प्रताप की कविता पर फिर ध्यान दीजिए। देखिए वह अपने रूप की प्रशंसा नहीं करता है। वह कहता है उसका बेटा प्रताप हरि परम रसिक युवराज है। जिसे सुघर रूप और सत कविता के बिना कोई काम नहीं रहता।[3] ऐसे ही एक स्थान पर मिश्र जी लिखते हैं— बाज बाज लोग हम श्री हरिश्चन्द्र का स्मारक समझते हैं। बाजों का ख्याल है कि उनके बाद उनका-सा रंग-ढंग कुछ इसी में है। हमको स्वयं इस बात का घमण्ड है कि जिस मदिरा का पूर्ण कुम्भ उनके अधिकार में था उसी का एक प्याला हमें भी दिया गया है और उसी के प्रभाव से बहुतेरे हमारे दर्शन की, देवताओं के दर्शन की भांति इच्छा करते हैं।[4] बस मिश्र जी के उपरोक्त दोनों कथन अतिशयोक्ति पूर्ण न होकर वास्तविक हैं। उनके समय में उनकी इतनी प्रसिद्धि थी कि लोग उन्हें कविकुल मुकुटमणि, 'पण्डितवर' हिन्दी भाषा भूषण प्रतिभारतेन्दु, 'रसिक राज, भाषाचार्य, आदि[5] विशेषणों से विभूषित करते थे। अब प्रश्न यह है कि उन्होंने अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्यों की? इसका कारण यह है कि उस समय हिन्दी के पारखी बहुत कम थे। वह हिन्दी का प्रचार काल था। इसलिए अपने कथनों को बलिष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए मिश्र जी ऐसा करते थे। और मिश्र जी ही नहीं उस काल के अनेक लेखक यही करते थे जिससे जनता अधिक सावधानी से उनके कथनों को हृदयंगम करे। अतः मिश्र जी स्वाभिमानी अवश्य थे पर अभिमानी नहीं थे।

स्पष्टवादी

मिश्र जी बड़े निस्संकोची थे, गलत बात को मुंह पर कहने में लगा लिपटी बातें करना उन्हें पसन्द न था। खुशामद से वे कोसों दूर थे। अनैतिक पुरुष तथा संस्था

---

१ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) पृष्ठ ३
२ निबन्ध नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १२-१३
३ 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०), पृष्ठ ४९४
४ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०), पृष्ठ ७१३-१४
५ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ७१४-१५

या वे प्रबल विरोध करते थे चाहे उसके परिणाम में उन्हें हानि भले उठाना पड़े।
वे यह स्वतंत्र और छल कपट से दूर थे। गलत बात का वे कभी समर्थन न करते थे।
इसी से बचपन में उन्हें मिशन स्कूल छोड़ना पड़ा था। वहाँ एक पादरी साहब शिक्षक
थे। हिन्दू धर्म के विरुद्ध उन्होंने कुछ बातें कहीं जिनको सुनकर अन्य विद्यार्थी तो
चुप रह गए पर मिश्र जी से न रहा गया और उन्हें मुँह तोड़ जवाब देकर वे अपने घर
वापस चले आए।[1] मिश्र जी बड़े निडर थे। किसी के दोषों की बुराई करने में वे
कभी न डरते थे।। जनता पर टक्सों आदि के बढ़ाए जाने पर सरकार की बड़ी
कटु आलोचना करते थे। ढोंगी पण्डितों कनौजियों और बनावटी लोगों की वे
खूब खबर लेते थे। कनौजियों की भर्त्सना करते हुए वे लिखते हैं—

करुणानिधि पद विमुख देव देवी बहु मानत।
कन्या अरु कामिन सराप सहि पाप न जानत॥
कवल दायज लेत और उद्योग न भावत।
कर बकरा नन्दन निज पेटहिं कबर बनावत॥
का ला गा घा हू बिन पढ़े तिरबेदी पदवी धरन।
कहु प्रिय जयति कनौजिया भारत कहं गारत करन॥[2]

इस उद्धरण में मिश्र जी का स्पष्टवादी रूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

सहृदय

मिश्र जी बड़े कोमल और दयालु हृदय के थे। भारतवासियों की करुण
चीत्कार सुनकर उनका हृदय दहल उठता था और वे उनके कल्याण का ईश्वर से
प्रार्थना करने लगते थे—

विधवा बिलपैं नित धेनु कटैं कोउ लागत हाय गुहार नहीं।
पट भूषण यदि भर घर को सबहू लखिए ब्यौपार नहीं॥
महँगी दुरभिक्ष, कुरोगन तें भर पेट जुरात अहार नहीं।
निजता दृढ़ता बल बुद्धि नहीं तिहि ऊपर हाय हथ्यार नहीं॥
सबही बिधि दीन मलीन महा निसि बासर चित्त चिता जरिए।
हम भारत भारत बासिन पै अब दीनदयाल दया करिए॥[3]

मिश्र जी में अपने देशवासियों के प्रति बड़ा अपनत्व था। वे सभी को एकता
के सूत्र में बाँधना चाहते थे। हिन्दू और मुसलमान में भेद बिल्कुल नहीं समझते थे।

---

1 स. प्रेमनारायण टण्डन प्रताप-समीक्षा (१९३९ ई०) 'स्वभाव और चरित्र से'
2 सं० प्रेमनारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ९८
3 स. नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १००

हम और मुसलमान मानो भारतमाता ही के सतान हैं । सतान भी ऐसे कि हमारे बिना उनका निर्वाह नहा उनके बिना हमारा बचाव नही ।[1] पर जब मुसलमान देशद्रोही होकर हिन्दू धर्म पर कुठाराघात करने लगते थे तो मिश्र जी उनके विरुद्ध हो जाते थे और उन्हे खूब सुनाते थे । मिश्र जी देश हितैषियो की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते और उनकी विरदावली गाते थे । मिश्र जी देश की निःस्वार्थ सेवा करते थे । वे किसी प्रलोभन के वशीभूत नही थे । इसके अतिरिक्त उनका अपने शिष्यों पर भी बड़ा स्नेह था । वे अपने शिष्यो के बड़े शुभ चिंतक थे । १८९३ ई० में बाबू बाल मुकुन्द गुप्त जब हिन्दी-बगवासी के सहकारी सम्पादक होकर कलकत्ता जा रहे थे[2] तब मिश्र जी ने उनसे कहा कि हमारा शिष्य प्रभुदयाल भी वहा है, उसका ध्यान रखना ।[3] मिश्र जी बड़ परोपकारी थे उन्होने अपना पूरा जीवन परोपकार में ही बिताया । वे कभी अपना और अपने परिवार की चिन्ता न करते थे । उनके लिए सम्पूर्ण देश ही उनका परिवार था ।

सत्यव्रती

प्रतापनारायण जी बड़े सत्यभाषी थे । वे कभी भूलकर असत्य नही बोलते थे और सदा अपनी बात पर अटल रहते थे । वे सत्य को पकड़ कर चलने वाले अडिग पुरुष थे । एक बार कालाकाकर के जगल में प्रतापनारायण मिश्र और गोपाल राम गहमरी साथ-साथ घूम रहे थे । एकाएक मिश्र जी ने गमहरी जी से कहा— बच्चा मेरे पास एक अनमोल वस्तु है । जिसे मैंने बेदाम लिया है लेकिन उसकी तुलना में ससार की दौलत भी पलडे पर रखी जाय तो वह हल्की होगी । उसका हम भी बदाम देने को तयार हैं लेकिन कोई लेने वाला नही मिलता । गोपालराम ने आश्चर्य से पूछा— वह कौन चीज है पण्डित जी ? जरा मुझे तो नाम बतलाइए। मिश्र जी ने कहा— भा नाम जानकर क्या करोगे ? तुम लेते हो तो मैं अलबत्त देने को तयार हूँ । गमहरी जी ने कहा— इतना महान पदार्थ जिसकी तुलना में दुनियाँ भर की सम्पत्ति हल्की है मैं कहाँ पा सकता हूँ । मिश्र जी बोले नहीं वह कोई भारी या मायाव चीज नहा है जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे । वह संसार में अतुलनीय और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जो जब चाहे ले ले । उसमें कुछ दाम नहीं लगेगा न कुछ बोझ ही उठाना पड़ेगा । गमहरी जी कुछ समझ न सके उन्होंने आश्चर्य से कहा— अगर मेरे साध्य का हो मैं सभाल सकता हूँ तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूँ । मिश्र जी ने भूत झाड़ने वाले आशाओं

---

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ७ मोहरम से सदा बचावें प्रतापनारायण मिश्र

३ बालमुकुन्द गुप्त —स्मारक-ग्रंथ (२००७ वि०) पृष्ठ ६८

४ बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली (प्रथम भाग (२० ७ वि०) पृष्ठ २८

की तरह हुमक कर कहा— ले बच्चा। यह सत्य भाषण है। गहमरी जी अवाक रह गये, फिर थोड़ी देर में बोले— पण्डित जी! है तो यह जरूर अनमोल और जगत में इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है लेकिन बहुत ही कठिन नहीं बल्कि असाध्य भी है। मिश्र जी बोले— नहीं बच्चा!' यह असाध्य नहीं और कष्ट साध्य भी नहीं। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे। गहमरी जी ने कहा— 'पण्डित जी! रात दिन मैं झूठ बोला करता हूं। यहाँ तक कि बेजरूरत झूठ बोलने की बान सी पड़ गई है। जिसका झूठ ही ओढ़न डासन और चबेना है वह कैसे सत्य भाषण कर सकता है? मिश्र जी ने उसी दम कहा— इसका रास्ता तो मैं बताये देता हूं। तुम आज से ही सच बोलने की मन में ठान लो और जब मुंह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाव तब यह याददाश्त के लिए लिख लिया करो मुझे सन्ध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोले। बस इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नहीं है। इसके बाद गहमरी जी ने ऐसा ही किया और महीने भर में उन्हें 'सत्य भाषण' का अभ्यास हो गया। तब से इस विषय में गहमरी जी उन्हें अपना गुरु मानने लगे थे।[1] प्रताप नारायण जी इतने सत्य परायण थे कि हंसी दिल्लगी में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे।

अहिंसा प्रेमी

मिश्र जी हिंसा के घोर विरोधी थे। मांस मछली खाने वालों की बड़ी निन्दा करते थे। गायों की रक्षा का तो उन्होंने व्रत ही लिया था। हिंसावृत्ति के कारण वे मुसलमानों के खिलाफ थे—

> बछिके गाइन की रक्षा ते को करिहि सके धरम कहुं आय।
> जेहिके करते हुतु लोकन मो कीरति फलो सुगन्धित आय॥
> सुरह तोरही की घर निरिया राजा नाम धर पजि बयार।
> मन समझावत कछु ना लाग म करतूति छुरा के धार॥[2]

निर्लोभी

मिश्र जी में लोभ किंचित भी नहीं था। देश, धर्म की रक्षा के लिए पैसा व्यय करने में वह न हिचकिचाते थे। घाटे पर घाटा और अनेक कष्ट सहते हुए वह ब्राह्मण को निकालते थे। उनका कहना था— सहृदयों और प्रेमियों का आय-व्यय तो सदा ही बराबर हो जाता है। रुपया जोड़ने के लिए चाहिए धर्म कर्म, लज्जा प्रतिष्ठा आमोद, प्रमोद, मेल मिलाप सब ताक पर रख दिये जांय। सो प्रेम सिद्धान्ती से हो नहीं सकता।[3]

---

1 सरस्वती जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी

२ रा० नारायण प्रसाद अरोड़ा — 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २७०
(कानपुर माहात्म्य)

३ 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ११ हमारे उत्साह-वर्द्धक' प्रतापनारायण मिश्र

स्वावलम्बी

मिश्र जी बड़े स्वावलम्बी विचारों के थे। वह अपना काम स्वयं करने के पक्षपाती थे। देशवासियों को सदा स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दिया करते थे। उनका कहना था—

> 'अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
> परदेशिन परधमिन ते आशा नहि कोई॥
> धन धरती जिन हरी सुकरिहैं कौन भलाई।
> जोधी कासे मीत कलंदर केहि के भाई॥'[1]

मिश्र जी हतोत्साह कभी नहीं होते थे। वे कहते थे— प्रत्येक वस्तु का स्वाभाविक गुण जानने का यत्न करना चाहिए। तदनन्तर उसके अनुकूल उद्योग करते रहना चाहिए। फिर निश्चय काम सिद्ध हो ही रहेगा। आज नहीं तो कल कल नहीं तो परसों इधर उधर जाय सार न टूटने पावे तो उद्योग में परमेश्वर ने कार्य सिद्धि की शक्ति रक्खी है। मनुष्य को हतोत्साह तो कभी होना न चाहिए। जिस बात में मनसा वाचा कर्मणा जुट जाओगे कर ही के छोड़ोगे।[2]

प्रेमोपासक

मिश्र जी मतमतान्तरों से दूर प्रेमोपासक थे। मतों को वह देश की उन्नति में बाधक समझते थे— देशोन्नति का बड़ा भारी बाधक तो मत ही है। जब तक उसका भ्रमजाल लगा है तब तक मुख स्वरूप प्रेमदेव से भेंट कहाँ? किसी मत का अगुवा कब चाहेगा कि मेरे अतिरिक्त दूसरे की बात जमे।[3] वह शैव शाक्त वैष्णव गाणपत्य और सूर्योपासकों में मेल स्थापित करना चाहते थे। वे कहते थे— भारत का क्या ही सौभाग्य था यदि यह पाँचो मत एकता धारण करके पंच परमेश्वर बनते।[4] मिश्र जी का द्वेष किसी मत से न था वे केवल सभी में समन्वय चाहते थे। मूर्ति पूजा के विषय में वे लिखते हैं— मतमतान्तर के झगड़ों को हम कदापि अच्छा नहीं समझते। न हम अहम् ब्रह्मास्मि हो मानते हैं पर प्रतिमाओं से हमारा लाखों ब्राह्मणों का भला होता है। सहस्रों ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुरुषों के रूप गुण स्वभाव का स्मरण होता है। अतः प्रतिमा सिद्धि हो वर्तमान देश काल के उपयोगी है।[5] मिश्र जी का शिव पर कुछ अधिक झुकाव था। इसका पहला कारण देश की अधिकांश जनता का शैव होना

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २

२ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या १२ ('बकाम न बठ कुछ किया कर')

३ प्रतापनारायण प्रथावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ २९ (देशोन्नति)

४ प्रतापनारायण ग्रंथावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२७ 'नवसवत्'

५ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८, पृष्ठ २

था। दूसरे इनके कुल के इष्ट देवता भी शिव थे।[1] पर मिश्र जी पक्के शैव नहीं थे क्योंकि वे लिखते हैं— हमारा कोई मत नहीं है क्योंकि हमारे गुरु श्री हरिश्चन्द्र ने हम यह सिखलाया है कि मत का अर्थ है नहीं।[2] मिश्र जी सभी मतों में तत्व हितैषी तत्व ढूंढते थे। सनातन धर्म पर उनकी विशेष आस्था थी— सनातन धर्म में किसी के साथ द्वेष करने की कहीं शिक्षा ही नहीं है 'विशेषत अपनी ओर से छेड़कर झगड़ा मोल लेना भारत सन्तान ने आज तक नहीं सीखा।[3] पर सनातन धर्म के आडम्बरों के मिश्र जी विरोधी थे। एक बार कानपुर में रामलीला हुई उस पर मिश्र जी लिखते हैं—'परेट पर और धुन्नू गुरुप्रसाद जी के मन्दिर में रामलीला हुई सैकड़ों रुपया उठ गया पर व्यर्थ न इह लोकाय न पर लोकाय यदि इतने रुपये से कोई नाट्य-समाज स्थापित होता तो मजा भी इससे सौ गुना होता और उपकार भी पर हां मुसलमान आतशबाज और खिलौना मियां का हक खूब अदा हो।[4] मिश्र जी मत-मतान्तरों के विभेद को मिटाने के लिए ही प्रेमदेव की उपासना करते थे। उन्होंने सभी मतों की जड़ को पकड़ लिया था जिससे कोई मत उनसे बाहर न जा सके। प्रेम को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते हैं— प्रेम परमेश्वर का रूप है वह पाप पुण्य सुख-दुःख आदि से लाखों कोस दूर है। प्रेमलीला शुद्ध चित्त वालों के अनुभव का विषय है न कि मौखिक वाग्जाल का।[5]

मिश्र जी प्रेमदेव के अनन्य भक्त थे। वह निश्छल मन से उनकी उपासना करते थे। उनका कहना था— सांसारिक सम्बन्ध में अत्यन्त चतुरता, दक्षता एवं सावधानता से काम करो परन्तु ईश्वरीय सम्बन्ध में महा सरल निरभिमान वरंच सब प्रकार पागल होने का उद्योग करो।[6] मिश्र जी प्रेम को ही अपना सर्वस्व समझते थे—

हमारे सरबसु केवल प्रेम।
सपनेहु नहिं जानें नहिं मानें लोक वेद के नेम॥
ब्रह्म जीव अद्वैत, द्वैत, मो भावत नहिं बकवाद।
परख कौन पायरु प्यारे तव मदिरा को स्वाद॥[7]

१— ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ प्रताप चरित्र प्रतापनारायण मिश्र
२— प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४ (नवसंवत्)
३— ब्राह्मण खण्ड ८ संख्या ८ (असर इसको कहते हैं')
४— ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ (कानपुर)
५— 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ११ ('एक कथा')
६— ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ५ (अवलम्बनीय सिद्धांत')
७— ना० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४ ई०) पृ० १०८ प्रेमप्रसाद

प्रेम की व्यापकता और महत्व को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते हैं— जहा तक सहृदयता से विचारिएगा वहां तक यही सिद्ध होगा कि प्रेम के बिना वेद झगड़े की जड़ धर्म बे सिर पर के काम स्वर्ग शेखचिल्ली का महल और मुक्ति प्रेत की बहिन है।[१] उनका कहना है— सब दुखो की परमौषधि और सब अभावों का पूर्ण कर्त्ता, सब बातो का शिरोमणि प्रेम है।[२] प्रेम म ही मिश्र जी अरूप ब्रह्म को देखने का सुझाव देते हैं—

> 'जो कोउ ब्रह्म अरूप कों देख्यों चहै सरूप।
> नेह नयन सों लेहि लखि जग के सुंदर रूप॥[३]

ससार सभी सम्बन्ध प्रेम से ही हैं—

> प्रेम बिना नहिं देखेहु भावत,
> पूत कपूत जो आतम जात है।
> प्रेम भये निज सर्बसु वारिये
> तापर, जासों न नेकहु नात है।
> ब्रह्म सदा सबही से परे
> सोऊ प्रेम के नाते सखा पितु मात है।
> 'नेह लगा सो सगा' बस सत्य है
> सत्य है, प्रेमहि ते सब बात है।[४]

मिश्र जी घोर आस्तिक विचारो के थे 'होइहै वही जो राम रचि राखा' के अनुसार वह सभी कुछ ईश्वराधीन ही मानते थे। 'फक्कड़ और मगहं' मे कथन म वह कहते हैं— अभी नहीं गाव म कौन किस मिलायेगा। होता वही जो जगदीश्वर की इच्छा होती है। वाह-वाह और थुड़-थुड़ू चाहे जो करा ले कुछ दिन मे देख लेना तेरी नब राह वही न राह।[५]

गुण-ग्राहक

मिश्र जी अपने गुणा स दूसरो को प्रभावित करते थे और दूसरो के गुणों से स्वय प्रभावित भी होते थ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र क गुणा से व विशेष प्रभावित थ और उनस प्रेरणा भी लेते थे। भारतेन्दु की मृत्यु पर मिश्र जी लिखते हैं—

१— प्रतापनारायण ग्रथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृ० ६३२ 'शैवसर्वस्व
२—'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ५ ('अखण्डनीय सिद्धांत')
३—ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ४, ('प्रेम स्तोत्र')
४— ब्राह्मण खण्ड १ सख्या ७ पृष्ठ ८१
५—'ब्राह्मण खण्ड १ सख्या ९

इक-इक तव गुन सुमिरि हाय नित उठत करेजे दाहु।
तुम्हरे संग जिन जिन बातन में उपजत रह्यो उछाहु।
अब सब दुखद देखियत जबते छोड़ि गये तुम नाहु॥
सहज बानि कित गई रही जो सुख दायिनि सब काहु।
अपनो अपना जाहि कह्यो तुम आज सतायो ताहु।[1]

एक बार कन्नौज में स्वामी भास्करानंद ने गोरक्षा पर भाषण दिया। उस पर मिश्र जी लिखते हैं— स्वामी जी महाराज की भाषण-शक्ति अवश्य ही श्लाघ्य है कि एक प्रकार की जादू कहना चाहिए। इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या होगा कि श्रीमुख के उपदेशों से समझदार बधिकों को भी दया उत्पन्न हो जाती है। हसनू कसाई ने गोवध छोड़ दिया।[2] मिश्र जी दूसरे लेखकों की लिखी सुन्दर पंक्तियाँ भी कण्ठस्थ कर लेते थे। मेरठ निवासी पं० गौरीदत्त जी की निम्न लिखित पंक्तियाँ वह अधिकतर गाया करते थे और प्रसन्नता से हँसा करते थे—

मंजु गोविन्द हरे हरे माई मंजु गोविन्द हरे हरे।
इव नागरी हित दुःख धन को दूध न देगा घरे घरे॥[3]

विनोदप्रिय

मिश्र जी बड़ी विनोदी प्रकृति के थे। फाल्गुन में इकतारा लेकर वे उपदेश पूर्ण पद हास्य जनक-होली कबीर पद आदि गाया करते थे।[4] कभी-कभी मस्ती में आकर-होली में बड़ी अश्लील कबीरें गाने लगते थे। एक बार चौक (कानपुर) के एक बड़े दुकानदार बाबू देवीप्रसाद खत्री को इन्होंने कबीरें गा-गाकर बहुत परेशान किया। ज्यों-ज्यों देवीप्रसाद का क्रोध बढ़ता गया त्यों-त्यों मिश्र जी का कबीर गाना भी जोर पकड़ता गया। मामला यहाँ तक बढ़ा कि देवीप्रसाद ने मिश्र जी की शिकायत शहर के कोतवाल से कर दी। कोतवाल अकराहुसेन मिश्र जी के परम दोस्तों में से थे। उन्होंने मिश्र जी से शिकायत का हाल कहा। दूसरे दिन मिश्र जी देवीप्रसाद की दुकान पर पहुँचे और अपना सिर झुकाकर उनके पैरों पर रखने लगे और साथ ही यह भी कहते जाते थे— आप मुझे जूतों से मारिये। देवीप्रसाद जी को बड़ी शर्म मालूम हुई और उनके मुँह से एक बात न निकली। मिश्र जी कई मिनट तक यही वाक्य दोहराते रहे। अंत में हँसी-खुशी सब झगड़ा खत्म हो गया।[5] इस घटना से

१— सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा — प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृ० २३१ शोकाश्रु
२— 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ८ ('कन्नौज में तीन दिन')
३— बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४
४— 'निबन्ध नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २०
५— सं० प्रेमनारायण टंडन— 'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९५३ ई०) पृ० ६७
पं० प्रतापनारायण मिश्र : रमाकांत त्रिपाठी

मिश्र जी की विनोद प्रियता और नम्रता का एक साथ परिचय मिलता है। होली के अवसर पर अपने घर में भी पत्नी को विढ़ान के लिए—का खाऊं ससम क हाड घरमा गह नही पमित गाया करते थे। कभी-कभी मेलो म देखा गया है कि पर्दे से ढके हुए इक्के म बठे स्त्रियों की तरह झांकते हुए आप चले जा रहे हैं।[1] श्रावण और भाद्रपद पर जब-तब मेंहदी भी हाथो म रचाते थे। कालाकांकर मे एक बार मिश्र जी हाथों म महदी रचाये हुए गोपालराम गहमरी के यहां गये। महदी रचाये देखकर गहमरी जी ने कहा—पंडित जी मेंहदी भी आप हाथों म तीज म रचाते हैं। मिश्र जी ने छूटते ही कहा—अरे भाई! महदी न रचाऊं तो मेहरिया मारन लगे। यह उसी की आज्ञा से तीज की सौगात है।[2]

मिश्र जी सामान्य बाता में भी विनोद की सामग्री ढूढ लेत थ। एक बार प० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (भानपुर) मिश्र जी स मिलने गये। मिश्र जी यह जानते हुए भी कि त्रिपाठी जी बाजार की अन्न की मिठाई नही खाते—उनके जलपान के लिए जलबिया मगवाया। जब नाश्ता आ गया तो बनावटी स्वर म लान वाले से बोल—तुम्हे मालूम नही त्रिपाठी जी अन्न की मिठाई नही खाते? तुमस य जलबिया लान को किसन कहा था? लाने वाला बेचारा सकपका गया।[3] मिश्र जी बच्चा के साथ भी बड आनद से खेला करते और उन्हें हसाया करत थे। कहत हैं जब वह अपन ननि हाल बराहिमपुर (इब्राहीमपुर) जाते तो लडके उन्हें घेरे रहते थ। मिश्र जी भी उनके साथ एक कुए पर बैठकर, कभी कान हिलाते कभी उन्हें बिराया करते थे। इस प्रकार उनम सहज का मनोरंजन होता था। प्रकृति से विनोदप्रिय होने के कारण मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य भी हास्य और व्यग्य म परिपूर्ण है। पर उनका हास्य और व्यग्य केवल मनोरंजन के लिए न होकर सुधारात्मक है या यो कहना चाहिए कि उनके हास्य और व्यग्य का शरीर रजनात्मक है और हृदय उपदेशात्मक है।

कुशलवक्ता

मिश्र जी म अपूर्व भाषण शक्ति थी। उनके भाषण अधिकतर सभाओ म हुआ करते थे और उनके भाषणो का जनता पर बडा गहरा प्रभाव पड़ता था। कोमल हृदय होने के कारण-करुण प्रसग आने पर-मिश्र जी की आंखो म आंसू निकलने लगते थ जिनको देखकर जनता भी द्रवित होकर रोने लगती थी। कन्नौज म जुलाई १८८८ ई० म मिश्र जी का गोरक्षा पर भाषण हुआ जिसम उन्होने

---

१ निबंध नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ७०

२ 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० प० प्रतापनारायण मिश्र' गोपाल राम गहमरी

३ स्व० प्रेमनारायण टंडन— साहित्यिकों के संस्मरण (१९४३ ई०) पृ० ८९

४ 'प्रतापनारायण मिश्र'—प० रमाकांत त्रिपाठी

'या वा वरि तण नाबि दात सा टुनित पुकारत गाई है नामक लावनी को यही शोक पूर्ण मुद्रा से गाया, जिसको सुनकर जनता के आंसू निकल आए।[1] कभी कभी मिश्र जी अपने भाषण को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए घर से इलायची के तेल से भीगा हुआ रूमाल भी अपने साथ ले जाते थे और करुणा प्रसंग आने पर उसी को आंखों में लगाकर आंसू निकालते थे जिससे सभा श्रोतागण रोने लगते थे।[2] मिश्र जी के भाषण देने का ढंग बड़ा वैज्ञानिक था। वह तर्कपूर्ण ढंग से बड़ी गम्भीरता के साथ अपने विचारों को जनता के सामने रखते थे। धार्मिक-नेता का वह प्रचार को दृष्टि से न देखकर वैज्ञानिक दृष्टि से देखते थे जिससे अंग्रेजी पढ़े लिखे आधुनिक सभ्यता वाले भी उनके भाषणों में रुचि लेते थे। एक बार एक प्रतिमा द्वेषी ने मिश्र जी से तर्क किया कि औरंगजेब ने सकड़ों मन्दिर तोड़वाये पर उसे कुछ न हुआ तो फिर हम कैसे विश्वास करें कि आपकी प्रतिमाओं में शक्ति है? इसके उत्तर में मिश्र जी सहास बोले— हम जिसे मानते और पूजते हैं वह प्रतिमा नहीं है प्रतिमा केवल चिन्ह मात्र है। सो बाह्य चिन्ह तो सब नाशवान हुई है उन्हें क्या औरंगजेब न तोड़ता तो भी समय पाकर आपसे आप बिगड़ जाते। इससे हम पर क्या असर हो सकता है।[3] मिश्र जी प्रत्येक तर्क का वैज्ञानिक उत्तर देते थे और उन्हें उत्तर देने में किंचित देर न लगती थी। वह बड़े हाजिर जवाब थे। जवाब देने के लिए उन्हें सोचना न पड़ता था। भाषण देते समय भी वह जनता को तर्क के लिए बराबर अवसर देते थे और उसी समय उनके तर्कों का समाधान करते थे।

जीवनोद्देश्य

मुख्यतः मिश्र जी के जीवन के दो उद्देश्य थे। पहला-परमेश्वर के प्रेम में मग्न रहना। दूसरा-देश के लिए अपने को उत्सर्ग कर देना। इन्हीं दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में मिश्र जी आजीवन लगे रहे। वे कहते हैं—'अपना तो दृढ़ निश्चय यह है कि परमप्रिय परमेश्वर के प्रेमानन्द में मग्न होना ही सच्चा जीवन मुक्ति के सुख से उत्तम है। और मुक्ति का क्या ठीक कि होती है या नहीं कौन जाने, किसी ने किसको भजी है? रहा धर्म सो देश भक्ति से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।[4] देशोन्नति के जितने भी कार्य हो सकते थे सभी का करना उनका उद्देश्य था।

नागरी का प्रचार वे इसलिए करते थे कि भारतवासी ज्ञान सम्पन्न होकर अपने निजत्व और भाषा की रक्षा करें। हिन्दुत्व का श्रेष्ठ इसीलिए बनाते थे कि

1 ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ७ कन्नौज में सौत हिमं प्रतापनारायण मिश्र
2 रमाकान्त त्रिपाठी हिन्दी गद्य मीमांसा (प्रथम संस्करण) पृष्ठ २४४
3 ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १०, 'प्रश्नोत्तर' प्रतापनारायण मिश्र
4 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ६ ('भावचन्द्र और प्रेमचन्द्र')

भारतीय स्वाभिमानी होकर एकता के सूत्र म बधे और देश का उद्धार कर । उनका कहना था—

तबहि सुधरिहैं जन्म निदान । तबहि भला करिहैं भगवान ।
जब रहिहैं निशि दिन यह ध्यान । हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान । [1]

हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान मिश्र जी का प्रिय नारा था । इन्ही तीन क प्रति देशवासियों म अपनत्व जाग्रत करना उनका परम उद्देश्य था । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध लिखते हैं— देश-ममता जाति ममता और भाषा प्रेम उनकी रग रग मे भरा था । आजीवन उन्होने इसको निबाहा । इन तीना विषयो पर इन्होने बडी सरस रचनायें की हैं । जितनी पंक्तियाँ उन्होने अपने जीवन म लिखी वे चाह गद्य की हो या पद्य की उन सबा म इन तीनो विषयों की धारा ही प्रबल वेग म बहती दष्टिगत होती है । वे मूर्तिमन्त देश भक्त थे । इसलिए उनकी सब रचनायें इसी भाव स भरी हैं । [2] हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' के प्रति प्रेम उनकी अनन्य देश भक्ति का परिचायक है । इन्ही तीना के कल्याण की ईश्वर से याचना करते हुए व लिखते हैं—

जदपि जाचना के बिना देत सब कछु सोय ।
प हम बरागी नहीं जिनके चाह म होय ॥
याते मागहि जोरि कर धरि उर आस महान ।
हिंदी हिंदू हिंद कर करहू नाथ ! कल्यान ॥ [3]

प्रमदेव की उपासना भी वह एकता की ही दृष्टि से करते थे और सम्पूर्ण भारतवासिया को एक प्रेम म बांधना चाहते थे । अत मिश्र जी का सम्पूर्ण जीवन देशमय था और वह जो कुछ करते थे देश के लिए करते थ ।

रुग्णावस्था और स्वर्गारोहण

मिश्र जी प्राय बीमार बने रहते थे । उसका कारण उनका अनियमित जीवन था । वह स्वास्थ्य पर कोई ध्यान न देते थे । सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों म व्यस्त रहने के कारण न ठीक समय से भोजन करत और न उपयुक्त विश्राम ही लेते थ । शरीर पर उनका कहना था कि उसका नाम ही है शरीर अर्थात् शरारत करने वाला (फारसी म) वह तो अपनी शरारत दिखायेगा ही ।[4] यह कहकर सदा वह

---

२ 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या १२ (अंतिम सम्भाषण')

३ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी भाषा और साहित्य का विकास (द्वितीय संस्करण), पष्ठ ५१४

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ (मंगलपाठ)

२ बालमुकुंद गुप्त-स्मारक ग्रंथ' (२० ७ वि) पृष्ठ ५० (मिश्र जी का पत्र गुप्त जी के नाम से)

इसकी अवहेलना किया करते थे। अधिक बीमारियों के कारण उनका स्वभाव भी बड़ा आलसी हो गया था जिससे दिन-पर-दिन वह स्वास्थ्य रक्षा मे उदासीन होते जाते थे। स्वयं वे कहते हैं— जिन्हें बाह्य जगत की इतनी चिन्ता नहीं रहती जितनी दिमागी दुनियां की रहती है उन्हें कोई-न कोई रोग न हो तो आश्चर्य है इससे रोगराज की हम पर भी या तो साधारण दया रहती ही है किन्तु तीसरे चौथे वर्ष विशेष कृपा हो जाती है। जिसमें आप राजसी ठाट-बाट मे चार छः महीने के लिए आ जाते हैं और उनकी भेंट के लिए रुपया तथा भोजन पान के लिए अपना रक्त मांस हमें अवश्य अर्पण करना पड़ता है। वरन उनके साथ नाना कल्पनामय विश्व मे घूमते घमाते अज्ञात लोक के द्वार तक भी कई बार जाना पड़ता है।[1] मिश्र जी बचपन मे ही बीमार रहा करते थे कई बार तो इतने बीमार हुए कि बचने की आशा तक न रही। इन्हें विशेष रूप से बवासीर की शिकायत थी[2] जो विविध प्रकार के इलाज करने पर भी जीवन पर्यन्त न ठीक हो सकी। नवम्बर १८८५ ई० में मिश्र जी बहुत बीमार हुए। तीन माह तक चारपाई से नहीं उठ सके।[3] इसके बाद स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हुआ पर उसके थोड़े ही समय बाद वे पुनः बीमार पड़े और साल भर तक वे रोग से मुक्त नहीं हो सके।[4] इस बीमारी मे 'ब्राह्मण' पत्र लगभग सवा साल तक बन्द रहा। सन् १८९१ ९२ ई० मे (३६ वर्ष) फिर मिश्र जी बीमारियो मे ग्रसित रहे। एक-के-बाद-एक बीमारी उन्हें सताती रही पर डा० भोलानाथ मिश्र के इलाज से सब दबती गई।[5] मार्च १८९३ ई० मे मिश्र जी बहुत बीमार हुए और उन्होंने अपने एक घनिष्ठ संन्यासी (वैद्य) मित्र का इलाज प्रारम्भ किया पहले चार-पाँच

१— ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ (आप बीती कहूँ कि जग बीती)

२— निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ४।

३— हम तीन माह से ऐसे रोग ग्रस्त हो रहे हैं कि जिसका बखान नहीं। पाठक यदि देखते तो त्राहि त्राहि करते। नित्य के मिलने वाले मित्रों से कोई पूछे जिन्हें किसी किसी दिन हमारी दशा पर रोना आता था।' (फरवरी १८८६ ई०) 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सं० १२ 'सूचना प्रतापनारायण मिश्र

४— वर्ष भर से बीमारियां हमें पीछा ही नहीं छोड़तीं। यदि एक ने कुछ मुंह मोड़ा तो दूसरी ने आ दबाया। हम यों ही बड़े बली थे तिसपर आजकल तो ताकत के मारे कोई हड्डी नहीं है जो मांस को अपने ऊपर आने दे।" (अगस्त १८८७ ई०) ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ आप बीती' प्रतापनारायण मिश्र

५— ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ (आप बीती कहूँ कि जग बीती) तथा बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५० (बालमुकुन्द गुप्त को लिखा हुआ मिश्र जी का पत्र)

न्नि तो उन्होने अच्छी दवा दी और उससे कुछ फायदा भी हुआ। आग जब सन्यासी जी ने देखा कि मित्रता म अधिक पसे न ऐंठ सकूगा तो उन्होने बदल कर दूसरी दवा दी जिससे मिश्र जी की हालत बिगडने लगी। कहन पर भी उन्होने दवा म कोई परिवतन न किया। बल्कि कहा—'इसी से ठीक हो जाओगे। पर वह दवा और 'गाद म लाभ होती गयी। मिश्र जी सन्यासी जी का सब राज समझ गये और उन्होने इलाज बद कर दिया।[1] कहना न होगा कि जब सन्यासी जी अपना औषधालय स्था पित करन क लिए कानपुर आय थ तो मिश्र जी न इनकी बडी सहायता की थी। और सन्यासी जी बाहर स बडी कृतज्ञता प्रकट करते थे पर भीतर से वह बडे कृतघ्न निकले। अन्त म मिश्र जी ने कालिकाप्रसाद त्रिपाठी से इलाज कराना प्रारम्भ किया। त्रिपाठी जी क इलाज म मिश्र जी को फायदा हुआ और रोग कुछ दब गया पर शरीर म ताकत नही आयी।[2] इस बीमारी क विषय म मिश्र जी लिखत हैं—हमन रोग और निबलता के कारण अबकी बार का सा कष्ट कभी नहीं उठाया और अब भी चार महीन हो गय पूण स्वास्थ्य क लक्षण नही देख पडत। इधर हम दवा और परहज तो कर ही रह हैं यदि कोई सज्जन पत्र द्वारा बीमारी का हाल पूछ के कोई शीघ्र गुणकारी पराक्षित औषधि बतलावेंगे तो भी हम उनका बडा गुण मानेंगे।[3] इसके बाद मिश्र जी पूण स्वस्थ नही हो सके। आग वह बालमुकुन्द गुप्त को पत्र म लिखते हैं— मैं आठ महीने स बीमार हूँ अब तबियत कुछ अच्छी है पर ताकत का नाम नही है।[4] मिश्र जी अपने जीवन म कभी पूण स्वस्थ नही रह सके। सन् १८९४ ई० म वह फिर सख्त बीमार पड (यह इनके जीवन की अन्तिम बीमारी थी) इस बार बड अच्छे-अच्छे अनुभवी वद्यो ने इलाज किया पर स्वास्थ्य म किंचित सुधार न हुआ। और इसी बीमारी म मिश्र जी न परमेश्वर की प्राथना म कुछ पद्यो की रचना भी की थी जो बडे सरस और भक्तिभाव पूण हैं।[5]

प्रामाणिक जीवनी क शोध म मिश्र जी की मृत्यु की दो भिन्न तिथियाँ प्राप्त हुई जो इस प्रकार हैं—

(१) संवत् १९५१ की आषाढ शुक्ल-चतुर्थी रविवार (अगस्त १८९४)[6]

६—'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या १२ ('आप बीती कहू कि जग बीती)

१—'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या १२ (आप बीती कहू कि जग बीती)

२—'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या १२ (आप बीती कहूँ कि जग बीता')

— बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ ६८

४—'सरस्वती' माघ १९०६ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र' महावीरप्रसाद द्विवेदी

५—'सरस्वती माघ १ ०६ ई प० प्रतापनारायण मिश्र' महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२) सन् १८९४ (६ जुलाई, आषाढ कृष्ण ४ सं० १९५१)[1]

इन उक्त तिथियो की विक्रमी तिथि' म पक्ष का अन्तर है और अग्रजी तिथि' म माह का। सवत् १९५१ वि० का पचाग देखने से ज्ञात हुआ कि यह दोनो ही तिथिया भ्रमपूर्ण हैं।[2] पचाग म आषाढ शुक्ल चतुर्थी, ६ जुलाई को पडती है और अरोडा जी ने भी ६ जुलाई दिया है अत द्विवेदी जी का अगस्त लिखना ठीक नही हैं। दूसरे द्विवेदी जी ने चतुर्थी रविवार को लिखा है जो पचांग के अनुसार शुक्रवार को पडती है। अत रविवार देना भी भ्रामक है। अरोडा जी अपनी तिथि म आषाढ कृष्ण ४ दिये हैं जो २२ जून को पडती है और अरोडा जी उस ६ जुलाई को लिखते हैं सम्भवत अरोडा जी भूल से शुक्ल पक्ष के स्थान पर कृष्ण पक्ष लिख गये हैं। साहित्य जगत मे अब-तक द्विवेदी जी की ही तिथि प्रयुक्त होती चली आ रही है अत उसम दिन और अग्रजी माह का संशोधन कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र का स्वर्गवास ३८ वर्ष की अवस्था म आषाढ शुक्ल ४ बुधवार सवत् १९५१ वि० (जुलाई ६ १८९४ ई०) को दस बजे रात्रि म हुआ।

मिश्र जी की मृत्यु से सम्पूर्ण देश को बडा दुख हुआ। भारत के सभी-साप्ताहिक, मासिक और दैनिक-पत्रो म शोक-गीत और लेख प्रकाशित हुए।[3] बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने मिश्र जी की मृत्यु पर एक बडा मार्मिक गीत लिखा जो ३० जुलाई १८९४ ई० के हिन्दी बगवासी पत्र म प्रकाशित हुआ। उसकी कुछ पक्तिया इस प्रकार हैं—

'पुंज-पुंज सब पुण्य अहो कवि ! आगे आये।
पुण्यमयी कविता ने अपनो बल बिखरायो॥
हे जसभागी ! उहाँ ठाँव सुरपुर में पाई,
इहां भूमि पर रहो रावरी की रति छाई।
मर्त्य-गान जो मर्त्य-कलेवर महँ तुम गाये
अच्छर अच्छर जिनके अमृत माहि डुबाये।
सुनिहैं तिन कहँ नित्य दिन मर्त्य कलेवर धारी
जब लौं रहे प्रान को तन म नातो जारी।[4]

१—सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा एवं लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ १२७

२—मदन दीक्षित पचांग १९५१ वि० (श्री काशिस्थ ब्रह्म सभा द्वारा निर्मित)

३—'हिंदी प्रदीप' जिल्द १७ सख्या ६-७ ८ पृ ५२ 'ब्राह्मण सम्पादक प० प्रतापनारायण बालकृष्ण भट्ट

४—'बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृ० ६५४-५५ (स्व० कवि प० प्रतापनारायण मिश्र के शोक में)

पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने भी मिश्र जी की मृत्यु पर एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जिसमें जीवन और कार्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वे लिखते हैं— 'नागरी हिन्दी के संकुचित समाज में ऐसा कौन होगा जिसे कान्यकुब्ज कुल-केतु प० प्रताप नारायण मिश्र का सताप न व्यापा हो—प्रातः स्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्र को जो दीन हिन्दी का जन्मदाता कहें तो प्रतापनारायण मिश्र को निःसंदेह उस स्तनन्धया दूध मुहीं बालिका का पालन पोषण कर्त्ता कहना ही पड़ेगा क्योंकि हरिश्चन्द्र के उपरान्त इसे अनेक रोग दोष से सर्वदा नष्ट न हो जाने से बचा रखने वाले यही देख पड़े और गद्य, पद्य मय अपने सरल लेख से परिरक्षित इसका भण्डार उसी तरह पर भरते रहे जिस ढंग से उक्त बाबू साहब ने आरम्भ किया था—प० प्रतापनारायण में बड़ी तारीफ की बात यह थी कि ये निस्पृह और निज नाम की किंचिन्मात्र इच्छा न रख हिन्दी की उन्नति में लगे हुए थे जो बात इस समय के स्वार्थ तत्पर लोगों की चलन के विरुद्ध है। यह आत्म त्याग मिश्रित उदार भाव के नमूना थे—हिन्दी साहित्यार्णव के महान वास थे—विमल सौहार्द भाव के आदर्श थे—ऐसे सत्पुरुष का अल्पायु होना निःसंदेह हमारी आर्य भाषा का अभाग्य नहीं तो इसे फिर क्या कहना चाहिए। धन्य हैं ऐसे बड़ भागी पुरुष जिनके लिए आज इतने लोग शोक प्रकाश कर रहे हैं।'[1] वास्तव में मिश्र जी एक महान साहित्यकार थे यदि उन्हें जीवन का कुछ और अवसर मिलता तो निस्संदेह वह हिन्दी-साहित्य के लिए बहुत कुछ कर जाते। उनका साहित्यिक जीवन केवल १५ वर्ष का रहा जिसमें आधे से अधिक समय बीमारियों में बीता। इतने अल्प समय में भी उन्होंने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की वह वस्तुतः सराहनीय है। उनका साहित्य हिन्दी-साहित्य का अक्षय कोश है।

मिश्र जी की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी और दत्तकपुत्र

मिश्र जी की मृत्यु के बाद मिश्र जी के सास-ससुर (मिश्र जी की द्वितीय पत्नी के माता पिता) उनकी पत्नी के ही पास रहने लगे। इसका कारण यह था कि सास-ससुर के भी पुत्रों में रामगोपाल ही थे जिनको प्रतापनारायण जी ने अपना दत्तक-पुत्र स्वीकार कर लिया था और मिश्र जी की पत्नी रामगोपाल का पालन पोषण कर रही थीं। दूसरे मिश्र जी की पत्नी को भी अकेले परेशानी हो रही थी। दो परिवार एक में मिल जाने से दोनों को जीवन-यापन में बड़ी सुविधा हो गई। मिश्र जी की पत्नी के पास नौघड़ा में छोटे-छोटे पाँच मकान थे जिनमें से आगे चलकर तीन मकान उन्होंने बेच दिये और उनसे प्राप्त पैसे से शेष दोनों मकानों को तुड़वा कर उसी स्थान पर एक बड़ा (पक्का) मकान बनवाया। इसी मकान

१— हिन्दी प्रदीप' जिल्द १७ संख्या ६-७-८ पृ० ६१ ६२ ब्राह्मण सम्पादक पं० प्रतापनारायण मिश्र' प० बालकृष्ण भट्ट।

ये एक भाग में (जिस स्थान पर मिश्र जी की मृत्यु हुई थी) उन्होंने—मिश्र जी की स्मृति में एक मन्दिर बनवाया। यह मकान और मन्दिर आषाढ़ सुदी १० सम्वत् १९६२ वि० (१९०५ ई०) का बनकर तयार हुआ था।[1] आजकल इस मन्दिर वाले मकान पर म्यूनिसिपलिटी का ४९।७१ नम्बर पड़ा हुआ है। तीन बचे हुए मकान भी इसी मकान के बराबर पर ही थे। आजकल जिस मकान पर ४९।७३ नम्बर पड़ा हुआ है उस स्थान पर दो मकान थे और जिस पर ४९।७४ पड़ा है उस स्थान पर एक मकान था। मकान और मन्दिर बनवाने के बाद जो पैसा बचा उससे मिश्र जी की पत्नी ने तीर्थाटन (बद्रीनाथ आदि) और ब्रह्मभोज किया। इन कार्यों के करने में इन्हें मुन्ना के पति (मिश्र जी की पत्नी की छोटी बहन के पति) से बड़ा सहयोग मिला। इन्हीं के साथ मिश्र जी की पत्नी तीर्थाटन करने गयी थी। मिश्र जी की पत्नी अपने अधिकांश समय मन्दिर में भजन-पूजन में बिताती थी। मकान का कुछ हिस्सा किराये पर उठा था जिससे उनका खर्च चलता था।

रामगोपाल (मिश्र जी के दत्तक पुत्र) कुछ मामूली-सी शिक्षा प्राप्त करके एक म्यूनिसिपलिटी स्कूल में अध्यापन कार्य करने लगे। वह मिश्र जी की पत्नी को माता की तरह ही मानते थे। आगे चलकर इन्होंने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया और कचहरी में स्टैम्प का काम करने लगे। वह अपने समय के सबसे बड़े स्टाम्पवेंडर थे। इस काम में इन्हें बड़ा लाभ हुआ। इसके बाद सन् १९२५ ई० के लगभग मिश्र जी की पत्नी बीमार पड़ी और पक्षाघात के कारण उनका आधा शरीर शून्य हो गया। अब वह चलने फिरने में असमर्थ हो गयीं। उनका अन्तिम जीवन बड़े कष्ट में बीता। रामगोपाल और उनकी पत्नी ने मिश्र जी की पत्नी की इस अन्तिम अवस्था में बड़ी सेवा की। मिश्र जी की पत्नी का नित्यप्रति गंगा स्नान करने का नियम था और यह नियम अपंग अवस्था में भी रामगोपाल के प्रयत्न से नहीं टूटने पाया। वह नित्यप्रति इन्हें गंगा स्नान कराने ले जाते थे। मिश्र जी की पत्नी जब बीमार पड़ीं तो बैजेगाँव वालों (मिश्र जी के चचेरे भाई के लड़कों) ने उनकी सम्पत्ति हस्तगत करनी चाही। जिसके परिणाम स्वरूप कानपुर की दीवानी अदालत में दो वर्ष तक मुकदमा चला। मिश्र जी की पत्नी की ओर से स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ तिवारी और भतीजों की ओर से बाबू सिद्धेश्वर बनर्जी वकील थे। अन्त में

---

१ मन्दिर की बाहरी दीवाल पर एक संगमरमर की पट्टी लगी है—यह पट्टी सन् १९४६ ई० में 'प्रतापनारायण स्मारक समिति' की ओर से लगवाई गई थी इसमें मन्दिर का निर्माण काल इस प्रकार लिखा है—इस मन्दिर को स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र की धर्मपत्नी ने अपने पति की स्मृति में निर्माण कराया असाढ़ सुदी १० सं० १९६२।

विजय मिश्र जी की पत्नी की ही हुई।[1] आगे चलकर मिश्र जी की पत्नी ने अपनी सब सम्पत्ति (मकानादि) रामगोपाल के नाम लिखा दी।

मिश्र जी की पत्नी का स्वर्गवास ७० वर्ष की अवस्था में सन् १९३० ई० के लगभग हुआ और इनकी मृत्यु के दो वर्ष बाद रामगोपाल का भी देहान्त हो गया। रामगोपाल के तीन छोटी-छोटी लड़कियाँ थीं जिनका ब्याह आगे चलकर उनकी विधवा पत्नी ने किया। आजकल मिश्र जी के मकान में रामगोपाल की विधवा पत्नी अपने दामाद (बड़ी लड़की के पति) के साथ रहती हैं। वे मन्दिर के पीछे ऊपरी हिस्से में रहती हैं और शेष मकान दूकान किराये पर उठा दिया है। मन्दिर के आगे (बगल में) तीन दुकान हैं वह भी किराये पर उठी हैं। इसी किराये से विधवा का निर्वाह होता है और मन्दिर की व्यवस्था की जाती है। रामगोपाल की पत्नी स्वयं इस मन्दिर में पूजा करती है।

मिश्र जी के परिवार में कोई योग्य-व्यक्ति न होने के कारण उनके साहित्य का समुचित प्रचार नहीं हो सका। वैसे उनकी स्मृति में कानपुर और उसके बाहर बहुत से आयोजन किये गये पर उनमें मिश्र-साहित्य के स्थायित्व की ओर कोई कार्य नहीं किया गया। नवम्बर १९१३ ई० में मिश्र जी की ही स्मृति में कानपुर से 'प्रताप' पत्र का निकलना प्रारम्भ हुआ। यह पत्र गणेशशंकर विद्यार्थी और नारायणप्रसाद अरोड़ा के प्रयास से निकला था। स्मृति के रूप में अरोड़ा जी ने इसके प्रथम अंक में मिश्र जी पर एक परिचयात्मक लेख लिखकर प्रकाशित कराया था।[2] मिश्र जी की स्मृति में आश्विन कृष्ण १० सम्वत् १९७१ (१९१४ ई०) को बांकीपुर (पटना) में मिश्र-जयन्ती भारतेन्दु-जयन्ती की ही भाँति बड़ी धूम धाम से मनाई गयी।[3] और आगे भी कई वर्षों तक मनायी जाती रही। इसके बाद कानपुर में भी नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के प्रयत्न से प्रताप नारायण स्मारक समिति की स्थापना हुई और इसी के तत्वावधान में प्रतिवर्ष मिश्र-जयन्ती मनाई जाने लगी। आगे चलकर इसी समिति की ओर से २८ सितम्बर १९५६ ई० को 'प्रतापनारायण जन्म शताब्दी समारोह' बड़ी सज धज के साथ मनाया गया। इसमें देश प्रसिद्ध विद्वानों के भाषण हुए, साथ ही नाटक साहित्यिक प्रदर्शिनी काव्य एवं संगीत-गोष्ठी विधिवत सम्पन्न हुई।[4] बैजेगांव (उन्नाव) में

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकांत त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०)—पृष्ठ १२४

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा 'मेरे गुरुजन' (१९४५ ई०)— पृष्ठ २७

३ 'सम्मेलन पत्रिका' भाग २ अंक १ (आश्विन सं० १९७१)—पृष्ठ ४

४ 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई०

भी मिश्र जी की स्मृति म 'प्रताप-साहित्य-मण्डल' स्थापित हुआ और इसके कई उत्सव मनाये गये। कहने का तात्पर्य यह कि मृत्यु के बाद मिश्र जी का साहित्य जगत् और समाज मे पर्याप्त सम्मान हुआ और अब भी हो रहा है।

मित्र-मण्डली

प्रतापनारायण जी बड़े मिलनसार व्यक्ति थे। सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक—सभी क्षेत्रो म कार्य करने के कारण इनका परिचय बहुत से लोगो से था। कानपुर म तो इनके अनेक मित्र थे ही जिनसे ये बराबर मिलते रहते थे, कानपुर के बाहर भी देश-विदेश के प्रमुख लोगो से इनकी घनिष्टता थी जिनसे इनका पत्र व्यवहार तो होना ही था कभी-कभी एक-दूसरे से मिलना भी हो जाता था। मिश्र जी के मित्रो म एक ओर यदि ह्यूम जैसे राजनीतिज्ञ और भारतेन्दु जैसे साहित्यकार थे तो दूसरी ओर लावनी बाजो जैसे सामान्य व्यक्ति भी थे पर सभी म मिश्र जी का विधिवत् सम्मान था। मिश्र जी की इस व्यापकता का कारण उनकी देश हितचिन्ता और हिन्दी प्रचार था। मिश्र जी के समय म बड़े-बड़े साहित्यकारो की अपनी अपनी मण्डलियां थी और सभी मण्डलियां देश-सेवा म सलग्न थी। इन मण्डलियो का आपसी सगठन बड़ा सुदृढ था। सभी साहित्कार एक-दूसरे के गुणों के प्रशसक थे। सभी का उद्देश्य सम्मिलित रूप से 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का उद्धार करना था। उद्देश्य की एकता और सच्ची निष्ठा के कारण इस युग के साहित्यकार किसी के दोषो की बुराई करने म भी न चूकते थे। इनकी मित्रता व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक थी चाहे कितना ही घनिष्ट मित्र क्यो न हो यदि वह देश द्रोही है तो वे खुलकर उसका विरोध करते थे। देश-द्रोहिता के ही कारण प्रतापनारायण मिश्र ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की जो इनके घनिष्ट मित्र थे कटु आलोचना की थी।[1] उस समय की मण्डलियो म काशी स्थित मण्डली सर्वप्रमुख थी जिसके कर्णधार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र थे इससे सभी मण्डलियां प्रेरणा ग्रहण करती थी। कानपुर की मण्डली के कर्णधार पं० प्रतापनारायण मिश्र थे। इसमें शहर के सभी देश सेवी और प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित थे। इस मण्डली के सभी व्यक्ति मिश्र जी के ही पथानुगामी थे और उनके कार्यों में सहयोग देते थे। नीचे इस मण्डली से सम्बन्धित मित्रो तथा इसके प्रमुख सहयोगियों का संक्षेप म वर्णन करेंगे।

ललिता प्रसाद त्रिवेदी 'ललित'

ललित' जी (सन् १८३१ १९०१ ई०) मल्लावां (जिला हरदोई) के निवासी थे। कानपुर म यह एक गल्ले की दुकान म मुनीमत करते थे[2] यहीं पर इनसे मिश्र

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ६ 'कांग्रेस की जय' - प्रतापनारायण मिश्र

२ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०)—पृष्ठ ११

जी का परिचय हुआ। मिश्र जी इनके साहित्यिक ज्ञान से बहुत प्रभावित थे। इन्हीं से मिश्र जी ने पिंगल शास्त्र सीखा था। इन्हें यह अपना काव्य-गुरु मानते थे।[1] ललित जी भी मिश्र जी की प्रतिभा के समर्थक थे। इनके प्रत्येक कार्य में वह सहयोग देते थे। ब्राह्मण के प्रकाशन में इनका प्रमुख हाथ था। 'रसिक समाज' के भी ललित जी सर्वप्रथम सभापति चुने गये थे।[2] कानपुर की साहित्यिक गतिविधि में इनका अच्छा स्थान था। मिश्र जी के सहयोग द्वारा इन्हें कानपुर में अच्छी ख्याति मिली।

रामनारायण तिवारी 'प्रभाकर' उर्फ लल्लूमास्टर

प्रभाकर जी (१८५५-१९४२ ई०) पटकापुर (कानपुर) के निवासी थे। ये और मिश्र जी कई वर्ष तक अंग्रेजी स्कूल में साथ साथ पढ़े थे।[3] सहपाठी होने के कारण दोनों में बड़ी मित्रता थी। प्रभाकर जी को नाट्याभिनय से बड़ा शौक था, इन्होंने ही कानपुर में सर्व प्रथम सत्यहरिश्चन्द्र और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक बड़ी सफलता के साथ खेला था।[4] प्रभाकर जी मिश्र जी की काव्यकला से बहुत प्रभावित थे और इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे।

गदाधर प्रसाद ब्रह्मभट्ट 'नवीन'

गदाधरप्रसाद नवीन (१८४१-१९२१ ई०) का जन्म जिला फर्रुखाबाद में हुआ था। आगे चलकर यह कानपुर में बस गये थे।[5] ये हिन्दी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। रसिक समाज में इनका प्रमुख स्थान था। मिश्र जी का इनसे परिचय गोरक्षा आन्दोलन से हुआ था। दोनों ही व्यक्ति गोरक्षा के हिमायती थे। प्रायः दोनों साथ-साथ गोरक्षा के प्रचार के लिये जाते थे। १८८८ ई० में आयोजित 'गोरक्षणी सभा' में सम्मिलित होने के लिए ये लोग साथ-साथ कन्नौज गये थे। मिश्र जी लिखते हैं— हमारे प्रिय मित्र हरिशंकर वर्म्मा एवं श्याम सुन्दर वर्म्मा तथा कविवर गदाधर के कारण रेल के तीन घण्टे सो ऐसे आनन्द से बीते कि मीरासराय स्टेशन पर उतरने को जी न चाहता था।[6] नवीन जी समस्या पूर्तियाँ भी बड़ी सुन्दर करते थे। 'रसिक समाज' की स्थापना से इनकी मिश्र जी से और अधिक घनिष्टता हो गयी थी।

---

१ 'रसिक-नवनीत' पहिला भाग' (१९१९ ई०)—पृष्ठ ४

२ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ १११

३ सं० नराङ्गा और त्रिपाठी – 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १५

४ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ कानपुर और नाटक' – प्रतापनारायण मिश्र

५ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी – 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) —पृष्ठ ११४

६ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ (कन्नौज में तीन दिन')

नाथूराम शर्मा 'शंकर'

नाथूराम जी (१९२९–१९३२ ई०) कानपुर के आर्य समाज के प्रमुख सदस्य थे। आप समाज के कार्यों द्वारा ही इनका परिचय प्रतापनारायण मिश्र से हुआ। धीरे-धीरे दोनों इतना घुल मिल गये कि लंगोटिया-यार से प्रतीत होने लगे।[1] नाथूराम जी जीविकोपार्जन के हेतु कानपुर के नहर विभाग के दफ्तर मे नौकरी करते थे। इनका जनता से बड़ा अच्छा सम्पर्क था। ब्रजभाषा में यह बड़ी सुन्दर कविता करते थे और कवि-समाजों में भी जाकर यह अपनी कविताएं सुनाते थे।[2] 'रसिक समाज' से भी इन्हें बड़ी रुचि थी और उसके कार्यों में यह मिश्र जी की बड़ी सहायता करते थे।

दीनदयाल मिश्र

दीनदयाल मिश्र का जन्म कानपुर जिले के बिरामऊ नामक स्थान में हुआ था। आप प्रतापनारायण जी से आठ वर्ष छोटे थे। इनके समय में कानपुर में आर्य समाज का बड़ा जोर था। यह भी उसके कार्यों से प्रभावित होकर १८८३ ई० में उसके सदस्य हो गये। आगे चलकर उन्होंने आर्य समाज में बड़ा कार्य किया। यह आर्य समाज के एक प्रसिद्ध वक्ता थे और उनके प्रचार में दूर-दूर तक जाते थे। कानपुर की 'गोरक्षणी सभा' से भी इनकी बड़ी रुचि थी और यह उसके प्रमुख उपदेशक थे। प्रतापनारायण जी पहले से ही उक्त दोनों सभाओं में कार्य कर रहे थे इससे दीनदयाल जी की थोड़े ही दिन में मिश्र जी से बड़ी मित्रता हो गयी। इसके अतिरिक्त प्रतापनारायण जी भी समाजों आदि में अधिकतर व्याख्यान देने जाते थे वहां भी दीनदयाल से इनका समागम हो जाता था। कभी-कभी घण्टों सत्संग भी होता रहता था। एकबार दीनदयाल जी प्रतापनारायण जी के साथ भारतेन्दु से मिलने बनारस भी गये थे।[3] दीनदयाल जी की मिश्र जी पर बड़ी श्रद्धा थी वे इनका बड़ा आदर करते थे।। साथ ही गुरु रूप में यह प्रतापनारायण को मानते थे।

लाला देवीदास भगत

यह कानपुर के अपने समय के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। इनका परिचय मदन मोहन मालवीय मोतीलाल नेहरू आदि बड़े-बड़े लोगों से था। ये लोग प्रायः इनके यहां आया जाया करते थे। प्रतापनारायण जी से भी इनका बड़ा अच्छा सम्पर्क

---

१ 'रामराज्य' कानपुर ८ अक्तूबर १९२६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' एक ऐतिहासिक विश्लेषण—समीक्षात्मक त्रिपाठी

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००६ वि०) पृष्ठ ६२६

३ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २१-२५

था।[१] भगत जी मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे। साथ ही देश और धर्म के कार्यों में पर्याप्त सहायता भी करते थे।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

पूर्ण जी (१८६८-१९२० ई०) कानपुर के बड़े प्रभावशाली वकीलों में से थे। इनकी ब्रजभाषा पर बड़ी आस्था थी और ब्रजभाषा में यह बड़ी सरस रचनायें करते थे। काव्य-रचने की शिक्षा इन्होंने प्रतापनारायण मिश्र जी से ग्रहण की थी और इस विषय में यह उनके शिष्य थे। पूर्ण जी सदा मिश्र जी को गुरुवत् मानते थे। रसिक समाज के संस्थापकों में पूर्ण जी प्रमुख थे और इन्हीं की देखरेख में इस समाज की 'रसिक-वाटिका' पत्रिका निकलती थी जिसमें उस समय के प्रायः सब ब्रजभाषा कवियों की रचनायें छपती थी।[२] आगे चलकर इन्होंने खड़ी बोली में भी पर्याप्त रचनायें की। सामाजिक कार्यों में इनकी बड़ी रुचि थी। कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड के ये सदस्य और उपाध्यक्ष भी रहे थे।[३]

बद्रीदीन शुक्ल

शुक्ल जी शिक्षा विभाग की ओर से अकबरपुर (कानपुर) परगने के सब डिप्टी इंस्पेक्टर थे।[४] अगस्त १८८७ ई० से सितम्बर १८८८ ई० तक यह ब्राह्मण के मैनेजर रहे। इन्होंने ब्राह्मण के ग्राहक बढ़ाने का बड़ा प्रयत्न किया। मिश्र जी की इनसे बड़ी गहरी मित्रता थी। मिश्र जी इनका बड़ा सम्मान करते थे। इनकी देश सेवा से प्रसन्न होकर कई बार मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' में इन पर टिप्पणियां निकाली थीं। इनका धन्यवाद देते हुए मिश्र जी लिखते हैं— श्री मत्पण्डितवर बद्रीदीन जी शुक्ल महोदय को भी जितने धन्यवाद दें थोड़े हैं। जभी हमने क्षेत्र से असहाय होके भागना चाहा है तभी इन पूज्यपाद ने कहा है क्यों घबिआते हो, हम सब प्रकार तुम्हारे साथ हैं।[५] मिश्र जी शुक्ल जी पर बड़ा विश्वास करते थे। वे कहते हैं—' कोई एक कारणों से ब्राह्मण का सब काम मैंने अपने हाथ में ले लिया है इससे जो साहब रुपया या लेख इत्यादि कोई चीज भेजें मेरे नाम से भेजें या प० बद्रीदीन जी शुक्ल को अक

---

१ स० अरोड़ा और त्रिपाठी— प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २३
२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल— हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ६२३
३ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी— हिन्दी साहित्य का विकास कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ ११७-१८
४ स० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १९
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('धन्यवाद')

बरपुर मे भेजें तीसरे के पास कोई वस्तु भेजी जायगी उसके जवाब देह हम नही हैं । १ मिश्र जी इनके कार्यों की बडी प्रशसा करते थ । २० २१ दिसम्बर १८८५ को पुवस जी के निवास स्थान पर एक धर्मोत्सव' बड़ी धूम धाम से मनाया गया जिसकी मिश्र जी ने अपन ब्राह्मण' म बड़ी सराहना की ।२

राधलाल अग्रवाल

राधलाल जी कानपुर के प्रसिद्ध व्यापारी चम्पनलाल के बहनोई थ । इनकी चौक म फ ण्ड ५ष्ठ को नाम की एक दर्जी की दूकान थी इसी स इनका जीवन यापन होता था । य मिश्र जी के घनिष्ट मित्रा म से थ ।३ इन्ही के सहयोग से १८८५ई० म मिश्र जी ने भारत एनटरटेनमट क्लब की स्थापना की थी । अग्रवाल जी मिश्र जी के साथ नाटको म अभिनय भी करते थे । आगे चलकर मिश्र जी से इनका मन मुटाव हो गया और इन्होने अपना अलग क्लब स्थापित कर लिया । अलग होने पर भी मिश्र जी इनके गुणा की सदा प्रशसा करते थ ।४

मास्टर न हेमल 'सुखदावलम्बित

ये कानपुर क पुरान बाशिन्दे और जाति के अग्रवाल वैश्य थ तथा सवाईसिंह के हाते म रहते थ । आप क्राइस्ट चर्च स्कूल (कानपुर) में अग्रजी के अध्यापक थे । इनकी अग्रजी की योग्यता बहुत अच्छी थी ।५ प्रतापनारायण जी ने भी इनस कुछ भिन्न अग्रजी पढ़ी थी और इनका सम्मान भी व गुरु की तरह ही करते थ पर सुखदावलम्बित' जी इन्हें मित्र-रूप म मानते थ । मिश्र जी ने इनक उपनाम के ही आधार पर अपना उपनाम 'ईश्वरावलम्बित' रक्खा था । मिश्र जी इनक गुणों से बहुत प्रभावित थे । ये हिन्दी और उर्दू दोना म कविता करते थ । इन्होने बहुत सी लावनियां और गजलें लिखी थीं जिनका उस समय बडा आदर था पर अब वे सब अप्राप्य है ।६ न हेमल जी ने सुखदवार्ता नामकी एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी जिसकी आलोचना मिश्र जी ने ब्राह्मण' में निकाली थी ।७

व्रजभूषण लाल गुप्त

गुप्त जी अक्टूबर सन् १८८८ से अगस्त १८९० ई० तक ब्राह्मण' के मैनेजर

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ३ ('जरूर पढ़िये')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ११ 'धर्मोत्सव'—प्रतापनारायण मिश्र
३ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—प्रतापनारायण मिश्र' (१९४० ई०) पृष्ठ १३ १४
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या १ कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र
५ स० अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४० ई०) पृ० ११
६ सं अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायन मिश्र' (१९४० ई) पृ० ११
७ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ७ (समालोचना)

रहे। इनकी मिश्र जी से बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। कुछ दिनो तक गुप्त जी प्रताप नारायण जी के नौघडा वाले मकान के एक हिस्से के किरायेदार भी रहे।[1] आप 'रसिक समाज' के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं मे-से थे। कुछ वर्षो तक आप रसिक वाटिका के भी मैनेजर का काम करते रहे। गुप्त जी 'भूषण' उपनाम से कवितायें भी लिखते थे इनकी कई समस्या पूर्तियां 'रसिक वाटिका' मे प्रकाशित हुई थीं।[2]

गोपीनाथ खन्ना

ये लाला शीतलप्रसाद के पुत्र थे। सवाईसिंह के हाते (कानपुर) मे इनका निजी मकान था यहीं पर ये रहते थे।[3] मार्च १८८३ ई० मे मिश्र जी ने जब ब्राह्मण निकाला तो यह उसके प्रथम मैनेजर बनाये गये और आठ माह तक यह उसकी सेवा करते रहे। इस अवधि तक ब्राह्मण का कार्यालय इनके घर पर ही रहा। इसके बाद खन्ना जी पर्यटन के हेतु बाहर चले गये और उनके स्थान पर मनोहरलाल मिश्र मैनेजर हुए। इसकी सूचना ब्राह्मण मे इस प्रकार प्रकाशित हुई थी। श्री बाबू गोपीनाथ खन्ना बाहर गये हुए हैं और सवाईसिंह के हाते में सुभीता न रहने के सबब हमने 'ब्राह्मण' आफिस का स्थान बदल दिया है।[4] प्रतापनारायण जी के खन्ना जी से बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। खन्ना जी सदैव मिश्र जी की सहायता के लिए तत्पर रहते थे।

लाला माधौराम अरोड़ा

लाला माधौराम हाथरस के रहने वाले थे। यह कानपुर— मूलचन्द्र मक्खन लाल' फर्म के मुनीम होकर आये थे। आगे चलकर इन्होंने अपनी अलग फर्म स्थापित कर ली थी। यह बड़े समाज सेवी व्यक्ति थे पीड़ितो और दुखियों की सहायता करना ये अपना धर्म समझते थे। गोरक्षा के भी ये प्रचारक और समर्थक थे। सामाजिक कार्यो से ही लालाजी का मिश्र जी से परिचय हुआ था। प्रतापनारायण जी ने आप ही की संरक्षता और आप ही की कोठी मे सर्व प्रथम गोरक्षणी सभा की स्थापना की थी। लाला जी मिश्र जी से बड़ी श्रद्धा रखते थे और मिश्र जी भी इनके यहां सदैव आते-जाते थे तथा सामाजिक कार्यो पर विचार-विमर्श करते थे।[5] लाला जी अर्थ सम्पन्न व्यक्ति होने के नाते देशोपकारी-कार्यों मे आर्थिक सहायता भी देते थे।

---

१ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १४
२ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १४
३ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १७-१८
४ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९ विशेष सूचना' मनोहर लाल मिश्र
५ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई) पृ० २१-२२

बिहारीलाल उर्फ बल्लू बाबू

यह हटिया (कानपुर) निवासी बाबू पूरनचन्द के सुपुत्र थे। कानपुर के प्रसिद्ध रईसों में इनकी गणना थी।[1] बिहारीलाल जी मिश्र जी के स्कूल के साथियों में से थे। इन दोनों लोगों ने अंग्रेजी की शिक्षा एक ही स्कूल में प्राप्त की थी।[2] प्रभाकर जी के साथ बिहारीलाल जी ने पहले-पहल कानपुर में नाटकों के अभिनय का श्रीगणेश किया था।[3] यह एक कुशल अभिनेता थे। बिहारीलाल जी का जनता पर बड़ा प्रभाव था। यह कानपुर म्यूनिसिपल बोर्ड के सर्वप्रथम गैर सरकारी चेयरमैन निर्वाचित किये गये थे।[4]

मनोहरलाल मिश्र

मनोहरलाल जी 'रसिक-समाज' (कानपुर) के प्रतिष्ठित सदस्य थे। यह नवम्बर सन् १८८३ से अप्रैल १८८४ ई० तक 'ब्राह्मण' पत्र के मैनेजर भी रह चुके थे।[5] कुछ वर्षों के अनन्तर इन्होंने रसिक प्रेस और फिर 'कानपुर इण्डियन प्रेस' खोला। रसिक समाज की 'रसिक वाटिका' पत्रिका इसी कानपुर इण्डियन प्रेस में ही प्रकाशित होती थी।[6] प्रारम्भ में मनोहरलाल का प्रतापनारायण जी से बड़ा अच्छा सम्पर्क था पर आगे चलकर कुछ मनमुटाव हो गया। मनोहरलाल जी कवितायें भी अच्छी लिखते थे और 'रसिक मित्र' नाम की एक पत्रिका भी निकालते थे पर यह पत्रिका अधिक दिनों तक चल नहीं सकी।

रंगनारायण वाजपेयी

वाजपेयी जी पिता उन्नाव के रहने वाले थे और मिश्र जी की ही भाँति प्रयागनारायण तिवारी के साथियों में से थे। मिश्र जी से इनका परिचय तिवारी जी के ही यहाँ से हुआ। रंगनारायण जी मिश्र जी से बहुत प्रभावित थे और मिश्र जी की नाटक मण्डली के प्रमुख सदस्यों में से थे।[7]

राधामोहन लाल अग्रवाल

५ अगस्त १८९० से लेकर जुलाई १८९१ ई० तक 'ब्राह्मण' के मैनेजर

---

१ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृ० २२

२ 'वीर भारत' ७ अक्टूबर १९४७ ई० पृ० 'प्रतापनारायण मिश्र'—सत्यकांत त्रिपाठी

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' प्रतापनारायण मिश्र

४ अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ २२

५ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ३ 'जरूर पढ़िये' प्रतापनारायण मिश्र

६ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ १४

सं० अरोड़ा और त्रिपाठी – प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ २२

रहे। यह मिश्र जी के घनिष्ठ गोल्ला में से थे। इन पर मिश्र जी बड़ा विश्वास करते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु की देश-सेवा और हिन्दी प्रचार से मिश्र जी इतना प्रभावित थे कि इन्हें पूज्यपाद प्रेमदेव और प्रेमाचार्य तक मानने लगे थे। इनकी ओर मिश्र जी का झुकाव बचपन में ही था। विद्यार्थी जीवन में भारतेन्दु की 'कवि-वचन-सुधा' को ये बड़े प्रेम से पढ़ा करते थे और इसी से इन्हें कविता की प्रेरणा मिली।[1] भारतेन्दु जी के मिश्र जी हाथ तक जोड़ते थे और अपने को इनका सेवक कहते थे। इस पर कुछ ब्राह्मणों ने आक्षेप भी किया पर मिश्र जी ने उनकी कुछ परवाह न की। मिश्र जी का भारतेन्दु की जाति से कोई सम्बन्ध नहीं था वह तो उनके गुणों के उपासक थे। भारतेन्दु जी इनको सदा मित्र की तरह मानते थे। मिश्र जी की 'प्रेम पुष्पावली' की इन्होंने बड़ी प्रशंसा भी की थी।[2] भारतेन्दु की मृत्यु पर मिश्र जी ने 'शोकाश्रु' शीर्षक से एक बड़ी लम्बी कविता लिखी थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रसंग में दृष्टव्य हैं—

'भारत शशि प्यारे ! क्यों हमरी सुधि बिसराय
हम तो नाथ सदा के सेवक रहे तुम्हार कहाय ॥
चल गये कहँ रोवत तजि के हमते बाँह छुड़ाय।
कहि-कहि हमहिं मित्रवर प्रियवर राखहु नित हुलसाय ॥'[3]

भारतेन्दु जी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में मिश्र जी ने 'हरिश्चन्द्र सम्वत्' चलाया। यही सवत् 'ब्राह्मण' के प्रत्येक अंक में निकलता था। स्मरण स्वरूप मिश्र जी ने अपने कई ग्रंथों के आदि में 'श्री गणेशायनमः' के स्थान पर 'श्री हरिश्चन्द्रायनमः' भी लिखा है। इसमें मिश्र जी की भारतेन्दु के प्रति अपूर्व श्रद्धा का सहज ही परिचय मिल जाता है।

मदनमोहन मालवीय

मालवीय जी (सन् १८६१-१९४६ ई०) से मिश्र जी का परिचय बहुत पहले से था पर एक साथ कार्य करने का सुयोग इन्हें कालाकांकर में प्राप्त हुआ। जब मिश्र जी १८८९ ई० में 'हिन्दुस्थान' में सहकारी सम्पादक होकर कालाकांकर गये उस समय 'हिन्दुस्थान' के प्रधान-सम्पादक मालवीय जी ही थे। मालवीय जी मिश्र जी को गुरुवत् मानते थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को कालाकांकर बुलाते समय मालवीय जी ने गुप्त जी से कहा था— 'आपको 'हिन्दुस्थान' पत्र में हमारे साथ काम करना

---

१ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३

२ प्रतापनारायण मिश्र— 'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) प्रशंसा पत्र

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२

चाहिए। कानपुर से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र को भी हम बुलाते हैं।[1] कालाकांकर में मालवीय जी मिश्र जी के यहां ही भोजन करते थे। कालाकांकर में मिश्र जी की पत्नी भी साथ ही थी इससे भोजन बनाने की सुविधा थी। कालाकांकर छोड़ने के बाद भी मालवीय जी कानपुर में मिश्र जी से मिलने आते थे और एक-आध दिन उनके यहां ठहरते भी थे।[2]

बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी से मिश्र जी का परिचय १८८९ ई० में कालाकांकर में हुआ। गुप्त जी भी मिश्र जी के आने के कुछ दिन बाद 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक होकर आये थे। मिश्र जी जब तक कालाकांकर में रहे गुप्त जी का रहना सहना उठना बैठना लिखना पढ़ना सब एक-साथ होता था।[3] कालाकांकर में आने से पूर्व गुप्त जी केवल उर्दू जानते थे हिन्दी इनको न आती थी।[4] मिश्र जी ने ही गुप्त जी को हिन्दी पढ़ायी थी। इसी से गुप्त जी मिश्र जी को अपना आरम्भिक गुरु मानते थे।[5] वे लिखते हैं— इस लेखक पर (गुप्त जी पर) मिश्र जी की बड़ी कृपा थी और यह भी उनपर बहुत भक्ति रखता था।[6] लेकिन मिश्र जी ने सदा गुप्त जी से मैत्री सम्बन्ध ही रखा।[7] कालाकांकर छोड़ने के बाद मिश्र से बराबर इनका पत्र-व्यवहार होता रहा। कई बार गुप्त जी मिश्र जी से मिलने कानपुर भी आये। यहां पर मिश्र जी के एक पत्र का जो गुप्त जी को ५ जनवरी १८९२ ई० को लिखा गया था— कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ जिससे उनकी घनिष्ठता का सहज ही परिचय मिल जायगा।

अपनी कथा तो कहिए। दुकान पर प्राप्ति का क्या ढंग है? शरीर घर पत्नी भ्राता पुत्रादि सब प्रसन्न हैं? दिन कटने की क्या राह है? हम तो 'सायंग सन्ध्या बंग भाषा पुस्तकानुवाद' तथा कविता की मौज में रहते हैं यदि दुनिया के झमेलों ने सताया इधर उधर से बैठ उसमें भी जी न लगा तो एक साहब भी है बस। महात्मा रूपराम कहां हैं? कैसे हैं? क्या करते हैं? अब तो ज्यादा पास्ट

---

१ बाल मुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४७
२ 'बाल मुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ ५०
३ बाल मुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ २
४ —वही— '—वही— पृष्ठ ४७
५ बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ४९
६ 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ७
७ 'बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ ४९

बाद तो आया जवाब नस्वाहराज' अब इधर म जवाब म देर हो तो कारण केवल आलस्य अथवा जगज्जाल ममझिएगा। और बस फिर कभी।[1]

मिश्र जी की मत्यु पर गुप्त जी ने बडा ही हृदयस्पर्शी शोक-गीत लिखा था जो ३० जुलाई १८९४ ई० के हिन्दी बगवासी' म प्रकाशित हुआ था।[2] इसके अनन्तर १९०५ ई० स अपनी फुटकर कविताओ की सग्रह पुस्तक स्फुट कविता' मिश्र जी की पवित्र आत्मा को श्रद्धा पूर्वक समर्पित की थी और इसे भारत मित्र के ग्राहको को उपहार बाटा था।[3] अब भा गुप्त जी के सग्रहालय (१४७ हरिसन रोड कलकत्ता) म मिश्र जी क पांच पत्र (गुप्त जी को लिख हुए) सगृहीत हैं।

बालकृष्ण भट्ट

हिन्दी प्रदीप' सम्पादक बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण जी से उम्र म १२ वष बड थ। मिश्र जी की भट्ट जी मे बडी मित्रता थी। दोना ही समान रूप स एक दूसरे का मम्मान करते थे। कभी भट्ट जी मिश्र जी को कभी मिश्र जी भट्ट जी को गुरु कहकर सम्बोधित करते थ। सन् १८८७ में खिसार शीर्षक निबन्ध म भट्ट जी लिखते हैं— हमार कानपुर क सहयोगी सम्पादक शिरोमणि ब्राह्मण भी' पर अपन कलम की कारीगरी का उम्दा नमूना दिखला चुके है उन्ही को अपना शिक्षा गुरु मान हम भी आज खिसार पर अपनी लखनी की बानगी का दो एक नमूना अपने पाठको को दिया चाहते हैं।[4] इसी प्रकार सन् १८८८ ई० मे मिश्र जी काम' शीर्षक निबन्ध म लिखते हैं— हिन्दी प्रदीप के सम्पादक विद्या बुद्धि वय और स्नेह आदि की रीति से हमम ऐसे श्रेष्ठ हैं कि सनातन शिष्टाचार (श्रेष्ठ रिवियो का आचार) के अनुसार हम उन्हे अहकार पूर्वक गुरु या पिता समझ सकते हैं। उन्होंने एक बार 'मन क वणन में अपने कलम की कारीगरी दिखाई थी और हमारे आर्य कवियों ने काम' का नाम मनोभव अर्थात् मन का पुत्र लिखा है, अत हम अपन निज अधिकार (रुतबा दर्जा) क अनुसार काम का बखान करते हैं।[5] इसके अतिरिक्त मिश्र जी क देहावसान पर भट्ट जी ने अपने जो हृदयोद्गार व्यक्त किये उनके एक-एक शब्द म प्रम लिपटा हुआ दिखाई देता है।[6] मिश्र जी और भट्ट जी दोना ही दूसरे के गुणा क प्रशसक थ और दोना म मित्रत्व का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

---

१ 'बालमुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ १०

२ 'बाल मुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग २००७ वि) पृष्ठ ६५४ ५६

३ 'बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ३१

४ हिन्दी प्रदीप नवम्बर से दिसम्बर १८८७ ई० पृष्ठ १५

५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ५ काम —प्रतापनारायण मिश्र

६ हिन्दी प्रदीप जिल्द १७ सख्या ६ ७ ८ पृष्ठ ४२

श्रीधर पाठक

पाठक जी से भी मिश्र जी के अच्छे सम्बन्ध थे पर खड़ी बोली और ब्रज भाषा को लेकर इनसे और मिश्र जी में बड़ा वाद विवाद हुआ था पर वह विवाद साहित्य से सम्बन्धित था, व्यक्तिगत कोई द्वेष नहीं था। 'ऊजड़ गाँव' (कविवर गोल्ड स्मिथ कृत 'डजर्टेड विलेज' का पद्यमय अनुवाद) की आलोचना करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—'इस ग्रंथ को हमारे प्रिय मित्र पंडितवर श्रीधर पाठक ने बड़ी रसज्ञता से लिखा है। भाषा का माधुर्य कविता का लावण्य सहृदय मनोहारित्व इत्यादि गुणों के अतिरिक्त योरपीय विचारों का एतद्देशीय लोगों को पूर्ण स्वादु देने में भी सच्ची दक्षता दिखलाई है।'[1] मिश्र जी से पाठक जी का पत्र व्यवहार भी होता था। १२ जुलाई १८८८ ई० के पत्र में मिश्र जी पाठक जी को लिखते हैं—'हुजूर का प्रसाद शिरोधार्य है इसका क्या कहना है यह तो अपना धर्म-ग्रंथ ठहरा यहाँ श्रीधर पाठक द्वारा विरचित श्री हरिश्चन्द्राष्टक' कृति की ओर संकेत है। यह कृति श्रीधर पाठक के द्वारा मिश्र जी के पास समीक्षार्थ भेजी गई थी। इसकी समीक्षा मिश्र जी ने 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १२ (१५ जुलाई १८८८ ई०) में निकाली थी। ब्राह्मण के साथ बांटना चाहिए सो २०० दो सौ प्रति भेज दीजिए।[2]

राधाकृष्ण दास

ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। प्रतापनारायण जी भारतेन्दु से मिलने काशी आया करते थे वहीं राधाकृष्ण जी से मिश्र जी की मित्रता हुई। राधाकृष्ण जी मिश्र जी का बड़ा सम्मान करते थे। 'प्रेम पुष्पावली' पर अपनी सम्मति देते हुए वे लिखते हैं— प्रेमपात्र प्रिय पात्र श्रीयुत पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी प्रणीत 'प्रेम पुष्पावली' देखकर चित्त प्रेम से परिपूर्ण हो गया। इसके प्रति अक्षर में प्रेम, भक्ति सहृदयता और रस टपका पड़ता है।[3] राधाकृष्ण से मिश्र जी बड़ा स्नेह करते थे उक्त सम्मति पर वह कहते हैं— यह सब प्यारे कृष्णदास की प्रशंसा में लिखे योग्य हैं।[4]

राजा रामपाल सिंह

राजा साहब मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे और मिश्र जी भी उनका

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ६ (समालोचना)

२ प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) प्रारम्भ में संकलित

३ प्रतापनारायण मिश्र प्रेम पुष्पावली (१८८३ ई०) राधाकृष्ण दास की राय सम्मति

४ प्रतापनारायण मिश्र- प्रेम पुष्पावली (१८८३ ई०) राधाकृष्णदास की सम्मति पर मिश्र जी के विचार

देश हितमिता मे बहुत प्रसन्न थे। मिश्र जी लिखते हैं— तीन जनवरी को 'हिन्दोस्थान' देख कर और भी खेद हुआ कि यह बिचारा फरवरी से समाप्त ही हुआ चाहता है। केवल एक सौ बीस ग्राहकों के आसरे दैनिक पत्र के दिन चले ? तीन वर्ष चला भी तो कुछ हिंदुस्तानियों की करतूत से नहीं केवल श्रीमान विद्वज्जन भूषण समर विजयी राजा रामपाल सिंह महोदय के उत्साह से चला। यदि वे प्रति मास सैकड़ो रुपए की हानि सह के इसे जीवित न रखते तो अब तक कब का हो बीता होता। पर वे कब तक इस नित्य की हानि को सहेंगे।[1] राजा रामपाल सिंह 'हिन्दोस्थान' दैनिक पत्र के मालिक थे। जब मिश्र जी कालाकांकर हिन्दोस्थान के सहकारी सम्पादक होकर गये तो रामपाल सिंह इनसे छन्द शास्त्र पढ़ते थे और अपनी कविताओं का संशोधन कराते थे।[2] आगे चलकर राजा साहब से मिश्र जी का मनमुटाव हो गया और वह कालाकांकर छोड़कर चले आये। फिर भी वे राजा साहब से द्वेष नहीं रखते थे। वे अपने पाठकों से कहते हैं— हिन्दोस्थान के साथ वैसी ही स्नेह दृष्टि रखनी चाहिए जैसे तब रखते थे जब मैं कालाकांकर में था।[3] सत्यवादी और चाटुकारिता से दूर होने के कारण उनका प्रायः लोगों से मनमुटाव हो जाता था। मनमुटाव होने पर भी मिश्र जी में किसी प्रकार की प्रतिशोध भावना नहीं रहती थी।

बाबू रामदीन सिंह

बाबू साहब का जन्म बलिया जिले के रपुरा मालुम में हुआ था। बड़े होने पर ये पटना चले आये और वहीं—बाँकीपुर में 'खड्ग विलास प्रेस' की स्थापना की।[4] हिन्दी से उन्हें बड़ी रुचि थी। उनकी सदा यही इच्छा रहती थी कि उनका प्रेम हिन्दी के काम में सबसे आगे बढ़ जाय। पुस्तकों के ऐसे प्रेमी थे कि शरीर की धूल न झाड़ते थे पर पुस्तकों की धूल झाड़ते थे। वे ब्राह्मणों के बड़े भक्त थे।[5] उनके हिंदी प्रेम ने ही मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया था। बाबू साहब मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे। १८९१ ई० में जब 'ब्राह्मण' की स्थिति बहुत बिगड़ गई और उसके बन्द होने की सूचना निकल गई तो रामदीन सिंह ने उसका पूरा भार अपने ऊपर

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ (महद् कष्टमपरिचितता विधे)

२ 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९२६ ई० पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र कविवर बचनेश

३ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या १२ ('सूचना ! सूचना !! सूचना !!!)

४ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि) पृष्ठ २१

५, —वही— —वही— —, ३१

ले लिया और वह खड्ग विलास प्रेस के प्रबन्ध मे प्रकाशित होने लगा। तबसे मिश्र जी इनके बड़े प्रशंसक हो गये।[1]

मिश्र जी ने अपनी सम्पूर्ण पुस्तकों का भी अधिकार रामदीन सिंह को दे दिया था और सभी पुस्तकें खड्गविलास प्रेस से ही प्रकाशित होती थी।[2] मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी उनका बहुत सा साहित्य खड्गविलास प्रेस से छपकर प्रकाशित हुआ पर उसकी अव्यवस्था के कारण प्रचार नही हो सका। रामदीन सिंह मिश्र जी के बड़े भक्त थे। वह मिश्र जी की सचित्र जीवनी निकालना चाहते थे पर वह इसे पूरा न कर पाये और स्वर्गवासी हो गये।[3]

शिवनाथ शर्मा

शर्मा जी 'आनन्द' (लखनऊ) पत्र का सम्पादन करते थे और हास्य रस के कुशल लेखक थे। मिश्र जी से इनकी खूब पटती थी। मिश्र जी जब लखनऊ जाते थे तब इन्ही के यहाँ ठहरते थे।[4] शर्मा जी और मिश्र जी की प्रकृति मे बहुत-कुछ साम्य था दोनो ही मिलनसार स्वाभिमानी तथा हास्य और विनोदप्रिय थे। साथ ही दोनो एक-दूसरे का बड़ा सम्मान करते थे।

शशिभूषण चटर्जी

चटर्जी जी भी मिश्र जी के साथ कालाकांकर मे 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक थे। इनमे मिश्र जी की बड़ी दोस्ती थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त शशि बाबू और प्रतापनारायण मिश्र एक ही स्थान पर (प्राय गुप्त जी के निवास स्थान पर) एकत्रित होकर—हिन्दोस्थान के लिए लेख आदि लिखते थे।[5] सायंकाल गंगा तट पर टहलने भी सभी लोग साथ-साथ जाते थे। कभी-कभी चान्दनी रात्रि मे रेती पर टहलते हुए विभिन्न प्रकार की अच्छी अच्छी बातें करते थे। कालाकांकर मे ये लोग बड़े स्नेह से एक परिवार की तरह जीवन व्यतीत करते थे।

पाण्डे प्रभुदयालु

प्रभुदयालु जी आगरा जिले के पिनाहट नामक कसबे के निवासी थे। इनके पिता कानपुर मे रहते थे इसस पाण्डे जी ने कानपुर मे ही पिता के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की।[6] यहीं पर इनका प्रतापनारायण जी से सत्संग हुआ और मिश्र जी ने इनको हिन्दी पढ़ायी। इनका मिश्र जी से शिष्य गुरु का सम्बन्ध था। पाण्डे

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ ('मंगल पाठ')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ४ (जरा पढ़ लीजिए)
३ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३१
४ प्रतापनारायण टंडन प्रताप समीक्षा (१ ३९ ई०) शान्तिप्रिय मिश्र
५ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३१०
६ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ २६

जी मिश्र जी का पिता गुरु-सभी कुछ मानते और उनकी सेवा करते थे। आगे चलकर मिश्र जी के ही प्रयत्न से पाण्डे जी हिन्दी-बंगवासी (कलकत्ता) के सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। मिश्र जी का इन पर पुत्रवत् प्रेम था। बालमुकुन्द गुप्त जब हिन्दी-बंगवासी के लिए कलकत्ता जा रहे थे तब मिश्र जी ने कानपुर में उनसे कहा था— हमारा प्रभुदयाल भी वहीं है उसका ध्यान रखना।[1] पाण्डे जी की भाषा-शैली आदि पर मिश्र जी की पूरी छाप थी।

इन उपर्युक्त मित्रों के अतिरिक्त गयाप्रसाद कपूर[2] डॉ० भोलानाथ मिश्र[3] स्वामी ब्लाकटानन्द[4] कल्लूमल[5] चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र[6] रामकृष्ण खत्री[7] भगवान दास[8], बंशीधर[9] भवप्रसाद वर्मा[10], रामदास[11], रवीप्रसाद शुक्ल[12] जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी[13] अमृतलाल चक्रवर्ती[14] एम० डी० मोल[15] शिवराम पण्ड्या[16], त्रिलोकनाथ बनर्जी[17] अलीहुसन[18], रामनारायण महसरी[19] लाला सीताराम[20]

---

१ 'बालमुकुन्दगुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००६ वि०) पृष्ठ २८
२ 'ब्राह्मण खण्ड २, संख्या १ वर्षारम्भ' प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १ धन्यवाद प्रतापनारायण मिश्र
४ स० अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४६ ई०) पृ०१६ १७
५ 'ब्राह्मण खण्ड १, संख्या ५ दोहा प्रतापनारायण मिश्र
६ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८ आवश्यक सूचना प्रतापनारायण मिश्र
७ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ 'सबकी देख लो —वही—
८ —वही— —वही—
९ 'ब्राह्मण खण्ड २ संख्या १ वर्षारम्भ —वही—
१० ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ कानपुर और नाटक —वही—
११ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ सबको देख लो —वही—
१२ वीर भारत ७ अक्टूबर १९४७ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
१३ स० प्रेमनारायण टंडन प्रताप समीक्षा (१९३९ ई०) साहित्यिक मित्र
१४ —वही— —वही— —वही—
१५ ब्राह्मण खण्ड ३, संख्या ८ सबके जी से धन्यवाद' —वही—
१६ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ६ पृष्ठ ७१
१७ स० अरोड़ा और त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई० पृ० १९
१८ स० प्रेमनारायण टंडन साहित्यिकों के संस्मरण (१९४३ ई०) पृ०१ ७
१९ 'ब्राह्मण खण्ड १, संख्या ३ 'कानपुर' प्रतापनारायण मिश्र
२० तेरहवां हिन्दी-साहित्य सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण (दूसरा भाग) कानपुर का ऐतिहासिक महत्व' लाला सीताराम पृष्ठ ५

राधाचरण गोस्वामी,[1] शिवप्रसाद सितारेहिन्द[2] गोपालराम गहमरी[3] मिस्टर ए० ओ० ह्यूम[4] माधवप्रसाद मिश्र[5] देवकीनन्दन तिवारी[6] ईश्वरचन्द्र विद्यासागर[7] अम्बिकादत्त व्यास[8] मुन्शी समयदान[9] सत्यानन्द अग्निहोत्री[10] दुर्गाप्रसाद मिश्र[11] बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'[12] गोविन्दनारायण मिश्र[13] अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'[14] स्वामी भास्करानन्द सरस्वती[15] आदि भी मिश्र जी के मित्र मण्डल में थे। मिश्र जी की इस मित्र-मण्डली को देखकर उनकी मिलनसारिता, सामाजिकता और सहृदयता का सहज ही परिचय मिल जाता है। उनकी देश हितैषिता और निस्वार्थ सेवा से प्रभावित होकर सामान्य जनता तक उनकी प्रशंसा करती थी। देश के प्रायः सभी सुधारकों से इनकी मित्रता थी—चाहे वे पूँजीपति हों अथवा रंक—किसी में किसी प्रकार का ये विभेद नहीं मानते थे। यहाँ तक कि यदि अज्ञानी भी देश-सेवी है तो मिश्र जी उसके भक्त थे। देश-सेवियों की मिश्र जी बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा भी करते थे जिससे वे उत्साहित होकर, अधिक तत्परता से देश-सेवा में रत हो सकें। सहयोग के पक्षपाती होने के कारण मिश्र जी अपने मित्रों को प्रेरणा देते भी थे और उनसे प्रेरणा लेते भी थे। इसलिए उनकी मण्डली इतनी व्यापक और सुगठित थी।

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ११ 'प्रयाग हिन्दू-समाज का महोत्सव' प्रताप नारायण मिश्र

२ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १०

३ सरस्वती जून, (१९३८ ई०) स्व० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' गोपालराम गहमरी

४ सं० प्रेमनारायण टंडन 'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९४३ ई०) पृष्ठ ८

५ 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५४

६ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृ० १८

७ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई) पृष्ठ १०

८ '—वही—' '—वही— पृष्ठ १०

९ '—वही— —वही— पृष्ठ १०

१० '—वही—' —वही— पृष्ठ १०

११ —वही— —वही— पृष्ठ १०

१२ —वही— '—वही— पृष्ठ १०

१३ सं० प्रेमनारायण टंडन 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) साहित्यिक मित्र

१४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १२ (हरिऔध जी का पत्र)

१५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १ 'कन्नौज में तीन दिन' प्रतापनारायण

दूसरा अध्याय

तत्कालीन परिस्थितियाँ

कवि या लेखक अपने समय का द्रष्टा और स्रष्टा दोनो ही होना है । वह अपने समय से प्रभावित भी होता है और उसे प्रभावित भी करता है । उसका तत्कालीन स्थिति से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । जसी समाज की स्थिति होनी है उसी के अनुरूप उसके विचारो का सृजन होता है । सामाजिक प्राणी होने के नाते कवि या लेखक पर उसके समय की प्रत्येक गति विधि का प्रभाव पड़ता है और वही प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके साहित्य में अभिव्यक्त होता है । हितेन सह सहित के अनुसार साहित्य लोक-कल्याण से पृथक नही जा सकता । साहित्यकार सदैव यह प्रयत्न करता है कि उसका साहित्य अधिक से अधिक मानवमात्र के लौकिक या पार लौकिक जीवन का सम्बल बन सके । और यह तभी हो सकता है जब साहित्यकार अपने समय की प्रत्येक स्थिति के प्रति जागरूक हो तथा लोक की आवश्यकता के अनुसार अपने साहित्य का निर्माण करे । अत किसी भी साहित्यकार के साहित्य के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है की उसके समय की प्रत्येक स्थिति का जिसमे रह कर साहित्यकार का साहित्य पल्लवित पुष्पित और फलित हुआ है—सम्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय । बिना साहित्यकार की तत्कालीन स्थिति को देखे उसके साहित्य की मूलवर्तिनी प्रवृत्तियों का अवगाहन नही किया जा सकता । साहित्यकार पर उसके समय की राजनीतिक सामाजिक धार्मिक-साहित्यिक सभी स्थितियो का प्रभाव पड़ता है। यहाँ पर हम प्रतापनारायण जी के समय की प्रमुख प्रमुख स्थितिया का विवेचन करेंगे जिससे उनके साहित्य को समझने मे सहूलियत हो सके । साथ ही इन स्थितिया का मिश्र जी के ऊपर कहां तक प्रभाव पड़ा ? यह भी उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए स्पष्ट किया जायगा ।

राजनीतिक स्थिति

मिश्र जी का जीवन-काल सन् १८५६ से १८९४ ई० तक है । मिश्र जी के जन्म के एक वर्ष बाद-सन् १८५७ ई० मे देश-व्यापी सिपाही-विद्रोह हुआ । जिसका प्रभाव देश के सभी कार्य-क्षेत्रो पर पड़ा । राजनीतिक क्षेत्र मे तो इसका प्रभाव अविस्मरणीय है । इस विद्रोह के बाद राजनीतिक ढाँचा एक नये सिरे से निर्मित हुआ ।[1] इसलिए इस विद्रोह के बाद की ही स्थिति का विवेचन यहाँ उपयुक्त होगा ।

---

1 Jawahar Lal Nehru 'The Discovery of India (1960) P 328 29

सन् १८५७ के विद्रोह को अंग्रेजों ने शक्ति के बल से बड़ी अमानुषिक रीति से दबाया जिससे भारतीयों को बड़ा असंतोष हुआ। वे समझने लगे कि अंग्रेजी राज्य से भारत का कल्याण असम्भव है पर शक्ति के अभाव में वे कुछ कर न सके। विद्रोह के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य समाप्त हो गया और भारत का शासन ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के हाथ में चला गया। लार्ड कैनिंग (१८५६ से १८६१) भारत के प्रथम वाइसराय तथा गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। भारत में फैले हुए असन्तोष को शान्त करने के लिए पहली नवम्बर १८५८ को ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र घोषित किया गया और उसके द्वारा यह विश्वास दिलाया गया कि प्रजा के लोग चाहे वे किसी जाति, रंग और धर्म के हों बिना किसी रोक-टोक और भेद भाव के सरकारी नौकरियों में शिक्षा योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भरती किये जायेंगे। देशी राजाओं के अधिकारों प्रतिष्ठा तथा गौरव को अपने अधिकारों प्रतिष्ठा तथा गौरव के समान ध्यान रक्खा जायगा। किसी व्यक्ति को उसकी धार्मिक भावनाओं तथा विश्वासों के कारण पक्षपात अथवा घृणा अथवा अयोग्यता की दृष्टि से नहीं देखा जायगा। सब लोगों को कानून की ओर से समान तथा पक्षपात रहित सुरक्षा प्राप्त होगी।[1] इस घोषणा-पत्र द्वारा भारतीयों के प्रति बड़ी सहृदयता और स्नेह के भाव व्यक्त किये गये। इस घोषणा पत्र से भारत की निराशा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुकृत्यों से विक्षुब्ध जनता को बड़ा आश्वासन मिला और उसने महारानी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की।

कैनिंग ने विद्रोह के समय की दमन नीति को छोड़कर शांतिपूर्ण नीति को अपनाया जिससे इनके समय में देश में पूर्ण शांति रही। इन्होंने कई सुधारात्मक कार्य भी किये। पाश्चात्य शिक्षा का भी इनके समय में बड़ा प्रचार हुआ। कलकत्ता बम्बई मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। कृषि सुधार में विशेष ध्यान दिया गया। कैनिंग बड़ा परिश्रमी कर्त्तव्यपरायण और उदार हृदय वाला व्यक्ति था इसने बड़े धैर्य के साथ भारत की स्थिति को अपने वश में करने का प्रयत्न किया। सन् १८६१ में पंजाब राजपूताना आगरा और अवध के कुछ भागों में भीषण अकाल पड़ा जिसमें जनसंख्या का लगभग १० प्रतिशत भाग मृत्यु का ग्रास बना।[2] १८६२ ई० में लार्ड एल्गिन वाइसराय हुए। इनके समय में कोई विशेष सुधार नहीं हुए। इन्होंने कैनिंग की ही नीति को अपना आधार बनाया।

---

१ डा० वी० डी० महाजन तथा डा० आर आर० सेठी - भारत का संवैधानिक इतिहास (१९५७ ई०) पृष्ठ १० ३१

२ डा० वी० डी० महाजन और डा० आर आर० सेठी ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०) पृष्ठ २२९

सन् १८६४ से १८६९ ई० तक सर जान लारेंस भारत के वाइसराय रहे। ये बड़े ही कमठ और दूरदर्शी थे। इनके समय में कृषि-सम्बन्धी बहुत से सुधार हुए। पंजाब काश्तकारी अधिनियम में किसानों के अधिकार कुछ मामलों में स्वीकृत किये गये। लेकिन इसी बीच भूटान और एबीसीनिया के साथ युद्ध होने के कारण भारत पर बहुत-सा कर्ज हो गया। १८६६ ई० में उड़ीसा तथा १८६८ ६९ में राजपूताना और बुन्देल खण्ड में भयंकर अकाल पड़ा जिसमें सैकड़ों मनुष्यों की जानें गयी पर इसके रोकने का सरकार की ओर से कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया गया।[1] जनता में इससे बड़ा असंतोष फैला। लारेंस के बाद लार्ड मेयो (१८६९ ७२ ई०) भारत के वाइसराय हुए। इनको बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। इन्होंने भारतीय नरेशों के बालकों की शिक्षा के लिए अजमेर में मेयो कालेज की स्थापना की। इनके काल में देश में शान्ति तो अवश्य रही पर आर्थिक दृष्टि से कोई सुधार नहीं हुआ। विकेन्द्रीकरण के आयोजन (१८७० ई०) से जनता पर नये-नये प्रान्तीय कर लगाये गये।[2] इससे लोगों में बड़ा असंतोष फैला। सन् १८६९ में उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा जिसमें बहुत से लोग अकाल काल-कवलित हुए। फिर भी मेयो की शान्ति-पूर्ण-नीति से देश में किसी प्रकार का विद्रोह नहीं हुआ।

मेयो के बाद लार्ड नार्थब्रुक (१८७२ ७६ ई०) भारत के वाइसराय होकर आये। ये एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। इनके समय में भी बंगाल में (१८७ ई०) भीषण अकाल पड़ा।[3] भारतीयों की आर्थिक स्थिति सुधारने का इन्होंने भी कोई प्रयत्न नहीं किया। इनके बाद लार्ड लिटन के समय में (१८७६ ८० ई०) भारत में बड़ी ही अशान्ति रही। लिटन की पक्षपातपूर्ण और प्रतिक्रियावादी नीति से जनता को बड़ी ठेस पहुंची। इनके ही समय में द्वितीय अफगान-युद्ध हुआ जिसमें भारत को धन जन से बड़ी हानि उठानी पड़ी। यह युद्ध लिटन की साम्राज्यवादी नीति का परिणाम था। इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों और तारों की व्यवस्था हो जाने से भारत और इंग्लैंड की दूरी बहुत कम हो गयी। विदेशी वस्तुएं अधिक मात्रा में देश में आने लगी जिसमें शोषण-नीति में वृद्धि हुई। सन् १८७८ में सरकार ने मिल-मालिकों के जोर देने पर भारतीय मिलों के कपड़ों पर कर लगा दिया दिया गया जिसमें भारतीय कपड़े की खपत कम हो गयी। लन्दन

---

१ डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६ ई०) - पृष्ठ २३१

२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय— आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ ५८

३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९५४ ई) पृ ५०

म होने वाली सिविल सर्विस की परीक्षा म बठने वालों की उम्र घटाने का कारण भारतीयों को इस परीक्षा म न बठने देना ही था। इससे भारतीयो म बडी प्रतिक्रिया हुई।[1] सन् १८७७ म लिटन ने दिल्ली म एक शानदार दरबार किया और विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया जिससे देशी राजाओ की स्थिति में सन्देह उत्पन्न होने लगा। इस दरबार मे भारत का बहुत-सा धन व्यय हुआ और वह भी ऐसे समय में जब मद्रास हैदराबाद मध्यप्रदेश पंजाब बम्बई और मैसूर म भयकर अकाल तथा बुखार और चेचक की बीमारियां फल रही थी।[2] इधर भारतीय काल के गाल म समा रहे थे उधर लिटन धन का अपव्यय करके ब्रिटिश शासको पर अपनी टही जमा रहा था। सन १८७८ म लिटन ने 'वर्नाक्यिुलर प्रेस ऐक्ट' बना कर भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्रों की स्वाधीनता भी छीन ली। लिटन क इन सब कार्यो से जनता म असतोष तो बढा ही राष्ट्रीय चेतना क भी बाज अंकुरित होने लगे। लिटन का शासन भारत के लिए बडा कष्टकर रहा।

लिटन के जाने के बाद लाड रिपन (सन् १८८० स १८८४ ई०) भारत क वाइसराय नियुक्त हुए। इन्होंने अपनी उदारवादी नीति से जनता म पुन शान्ति स्थापित करली। इनके समय म साम्राज्यवादी नीति बिल्कुल समाप्त हो गयी और द्वितीय अफगान-युद्ध भी स्थगित कर दिया गया। इन्होने १८८२ ई० म लिटन द्वारा लगाये गये प्रस ऐक्ट' को रद्द कर दिया। रिपन के इस काय की भारतवासियो ने मुक्त-कंठ स प्रशसा की और इनमे बडी श्रद्धा करने लग।[3] शिक्षा के क्षेत्र म भी रिपन ने बड़ा कार्य किया। इनके कायकाल म शिक्षा-सस्थाओ को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी गयी और स्थानीय स्वायत्त शासन' (१८८२) स्थापित करन का प्रयत्न किया गया। इन्ही क समय म (१८८३ ई०) 'इलबर्ट-बिल का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसम इन्होंने पूरी सहानुभूति दिखायी। १८८४ ई० मे जब इन्होंने अपना पद छोडा तब सम्पूण देश म बडा शोक मनाया गया।[4] इनका सा जनमत और आदर किसी भी वाइसराय को नही प्राप्त हुआ। इनके बाद लाड डफरिन (१८८४ १८८८ ई०) भारत के वाइसराय हुए। अधिक वद्ध होन क कारण डफरिन अपन काय-काल म कोई महत्वपूर्ण कार्य नहा कर सके। रेलों और सैनिकों क व्यय म वृद्धि हो जान क

---

१ 'रामराज्य (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र का बाह्मण' लक्ष्मीकांत त्रिपाठी

२ राम गोपाल भारतीय राजनीति (२०११ वि०)-पृष्ठ ८०

३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९५४ ई०)-पृष्ठ ९१

४ डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी "ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०) पृष्ठ २४६

कारण भारत पर कर्ज पहले से भी अधिक बढ़ गया। सन् १८८५ में इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ और डफरिन ने भी कांग्रेस की नीति का समर्थन किया। इनके कार्य-काल में जनता प्राय शान्त रही। १६ फरवरी, १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की रजत-जयन्ती मनायी गई जिसमें सम्पूर्ण भारत ने सहयोग दिया। डफरिन के जाने के बाद लार्ड लैंसडाउन (१८८८ १८९३ ई०) भारत के वाइसराय नियुक्त हुए। यह भी लिटन की भाँति घोर प्रतिक्रियावादी थे। इनसे भी भारत का कोई कल्याण नहीं हुआ। सन् १८९४ में लार्ड एलगिन द्वितीय भारत के वाइसराय हुए और इसी वर्ष जुलाई में प्रतापनारायण जी का देहान्त हो गया। इससे आगे की स्थिति का यहाँ उल्लेख करना कोई मूल्य नहीं रखता।

प्राय सभी वाइसरायों ने (उदारवादियों को छोड़कर) भारत पर दोहरी नीति से शासन किया। ऊपर से तो वे जनता के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाते और बड़े-बड़े प्रलोभन देते पर भीतर से उनकी जड़ें काटते। १८५७ के विद्रोह से अंग्रेज यह भलीभाँति समझ चुके थे कि भारत पर शासन करना टेढ़ी खीर है इसलिए वे भीतर ही भीतर शोषण नीति को अपनाते चले जा रहे थे और पूरी तरह से भारतीय धन के अपहरण में दत्तचित थे। कहना न होगा कि अपने शासन काल में अंग्रेज रूपी घुन ने भारत रूपी वृक्ष को पूरी तरह से खोखला कर दिया। अब उसका केवल जीर्ण शीर्ण ढाँचा ही शेष था। अंग्रेजों की शोषण नीति को जागरूक भारतीय जल्दी ही समझ गये। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण जनता में एक राष्ट्र के भाव उत्पन्न हुए और उसके एक सूत्र में बंधने का प्रयत्न किया। ब्रिटिश शासन से भारत का सम्पर्क पाश्चात्य देशों से प्रारम्भ हुआ और भारतीय उनकी राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता की ओर आकृष्ट हुए। इसी समय जर्मनी और इटली को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई इससे भारतीयों के हृदय में भी स्वतन्त्रता के भाव जगे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भी लोगों को दूसरे देशों के साथ विचार-विनिमय करने में सहायता मिली। यातायात के साधनों ने भी भारत को अन्य देशों से मिलाया और भारत को अन्य देशों से तुलना करने का अवसर दिया। धार्मिक-आन्दोलनों ने अतीत की स्वर्णिम-झाँकी भारतीयों के सामने उपस्थित की जिससे उनमें स्वाभिमान और आत्मिक-बल का संचार हुआ। समाचार पत्रों के विकास से राष्ट्रीयता के प्रचार में सहायता मिली। आर्थिक कष्ट बेकारी और अकालों से त्रस्त जनता में प्रतिकार की भावना जगी। शासन की कठोरता और निर्ममता और अंग्रेजों की भेद-नीति से देश में बड़ा असंतोष फैला।[1] अन्त में इन्हीं सबके परिणाम स्वरूप भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ।

---

१ डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी– भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ ३३३ ३५

कानपुर की स्थिति

प्रतापनारायण की जन्मभूमि कानपुर सन् १८५७ के विद्रोह का प्रमुख केन्द्र थी। नाना साहब के नेतृत्व में एक भयंकर संघर्ष का श्री गणेश हुआ।[1] सैकड़ों अंग्रेज मृत्यु के घाट उतारे गये। कम्पनी बाग का कुआ अंग्रेजों की लाशों से पट गया। नाना साहब के सामने अंग्रेज टिक न सके। ब्रिटिश सैनिकों ने हथियार डाल दिये। पर अचानक कम्पबेल की विशाल सेना के आ जाने से नाना साहब के सैनिकों के पैर उखड़ गये। और अंग्रेजों ने बड़ी निर्ममता के साथ कानपुर में प्रवेश किया।[2] निरीह जनता के साथ अनेक अत्याचार किये। निरपराध लोग गोलियों के शिकार हुए और कानपुर पर अंग्रेजों ने पुनः अधिकार जमा लिया। इस पराजय से जनता बड़ी निराश हो गयी और कानपुर विद्रोह के बाद से अंग्रेजों की आँखों में खटकने लगा। आगे चलकर कई वर्षों के बाद अनेक सुधारकों के प्रयत्न से कानपुर में फिर से चहल पहल का संचार हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलनों में कानपुर कभी पीछे नहीं रहा। काग्रेस के जन्म के साथ ही उसकी एक शाखा की स्थापना कानपुर में हुई। इस शाखा ने राष्ट्रीयता के प्रचार में सक्रिय और सराहनीय कार्य किया।

देश का एक बड़ा शहर होने के कारण कानपुर में (१८७५ से १८९८ के बीच) शासन द्वारा अनेक निर्माण-कार्य किये गये। सन् १८६१ में सरसैया घाट पर नई कचहरी बनी। इसी वर्ष २२ नवम्बर को प्रथम बार कानपुर में म्यूनिसिपल-कमेटी नियुक्त हुई। १८६२ ई० में गंगा नदी पर पहले-पहल पीपा का पुल बना जिससे आवागमन की सुविधा हो गई। आगे चलकर १८७५ में गंगा जी पर लकड़ी और लोहे का पुल बना।[3] तथा रेलगाड़ी की व्यवस्था हुई। वर्ष १८६२ ई० में ही कानपुर में ईस्ट इण्डियन रेलवे का आवागमन प्रारम्भ हो गया था। लोहे का पुल बन जाने से बंगाल और नार्थ वेस्टर्न रेलवे की भी व्यवस्था हो गई। रेलगाड़ी का प्रबन्ध हो जाने से ही यातायात को बड़ा प्रोत्साहन मिला इसके पूर्व गंगा नदी में नाव द्वारा ही व्यापार होता था। व्यापार की सुविधा के लिए ही १८२४ ई० में गंगा की नहर निकाली गई थी और कानपुर के पास इसे गंगा में मिलाया गया था।[4] इस नगर में एक बड़

---

१ 'वीरभारत' ७ अक्टूबर १९४७ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२ डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०)—पृष्ठ २१३

३ लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और नारायण प्रसाद अरोड़ा—कानपुर का इतिहास (१९५० ई०) पृष्ठ १२१ २४

४ तेरहवां हिंदी-साहित्य-सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण दूसरा भाग (१९-२३ ई) पृष्ठ ७ १ कानपुर का ऐतिहासिक महत्त्व'-लाला सीताराम

भूभाग की सिंचाई हो जाती थी। यह नहर अब भी विद्यमान है। उक्त निर्माणों के अतिरिक्त कानपुर में डाकघरों का भी अच्छा प्रबन्ध किया गया था सन् १८७९ तक कानपुर जिले में २९ डाकघर स्थापित हो चुके थे।[1] आगे चलकर १७९० ई० में फूल बाग का बनना प्रारम्भ हुआ।[2] इन निर्माणों के ही परिणाम स्वरूप कानपुर बहुत शीघ्र विकसित होकर एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी जिस समय विद्याध्ययन छोड़कर सामाजिक क्षेत्र में आये (१८७५ ई० के लगभग) उस समय कानपुर ही क्या सम्पूर्ण देश में अशान्ति के बादल मंडरा रहे थे। ब्रिटिश शासन की कठोरता और शोषण-नीति से जनता की सहानुभूति को समाप्त कर दिया था। मिश्र जी को चारों ओर निरुत्साह निराशा और अकर्मण्यता का वातावरण मिला जिसे उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से मिटाने का प्रयत्न किया। मिश्र जी के जीवन पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का दो रूपों में प्रभाव पड़ा। पहला राजभक्ति के रूप में दूसरा देशभक्ति के रूप में जब ब्रिटिश शासकों द्वारा देश में कोई सुधार-कार्य किया जाता उस कार्य से देश के उत्थान की आशा होती तो मिश्र जी उनको हृदय से धन्यवाद देते तथा मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते। मिश्र की राजभक्ति के भी मूल में देश भक्ति ही थी। उन्होंने जहां कहीं अंग्रेजों की प्रशंसा की है उनकी देश हितैषिता के ही कारण की है। उनका अंग्रेजों से कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था और न वह चाटुकार ही थे। प्रत्येक देश हितैषी की प्रशंसा करना और उसे प्रोत्साहित करना वह अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसके विरीत देश द्रोही को मिश्र जी अपना शत्रु समझते थे जब शासकों का दमन नीति से जनता त्रसित होती तो मिश्र जी शासकों की खूब खबर लेते और उनके विरुद्ध जनता को प्रोत्साहित करते प्रतिक्रियावादी वाइसरायों की शोषण नीति को देख कर मिश्र जी अच्छी तरह समझ गये थे कि इस जाति (अंग्रेज) से देश का कल्याण नहीं हो सकता। इसी के परिणाम स्वरूप इनमें देश भक्ति के भाव उत्पन्न हुए और इन्होंने अंग्रेजों की कटु आलोचना की।

राजभक्ति

मिश्र जी पूरे राजभक्त थे लेकिन उसी राजा के भक्त थे जो प्रजा को पुत्र की तरह मानता हो। सच्चे राजा को मिश्र जी ईश्वर का अंश मानते थे। वे कहते हैं— 'राजा ईश्वर का अंश है जिस राजा ने हमको तनिक अच्छी तरह रखा हम उसी के उपासक हो जाते हैं। अकबर को मुसलमान इतिहासवेत्ता शाह जो कह पर हमारे

1 त्रिपाठी और सराफ़ 'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृष्ठ २१३
2 —वही— १७०

यहाँ के बड़े उच्चकुल के अभिमानी वीर राजपूतों ने उन्हें दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा कहा है। हम साहङ्कार कह सकते हैं कि हम निस्सन्देह सच्चे राजभक्त हैं।'[1] इसी सिद्धान्त के अनुसार मिश्र जी महारानी विक्टोरिया से बड़ी श्रद्धा रखते थे। विक्टोरिया के घोषणा-पत्र ने मिश्र जी के हृदय में अच्छा स्थान बना लिया था। मिश्र जी का ख्याल था कि विक्टोरिया भारत को पुत्र की तरह चाहती है पर उनके द्वारा नियुक्त कार्यकर्ता भारत के साथ अनीति करते हैं और इन कार्यकर्ताओं की अनीति विक्टोरिया तक नहीं पहुँचती। वे लिखते हैं—

> "महारानी विक्टोरिया यद्यपि महा दयाल।
> चाहति कियो प्रजान का पुत्र सरिस प्रतिपाल॥
> प हमरी दुरभाग ते दूर बसति वह हाय।
> किमि जाने भारत विपति केहि विधि कर उपाय॥[2]

इसी से आगे दिवालिया में कहते हैं—

> 'भरि म लेत को पेट निज याम का करतूत
> जे परस्वारथ हित कछु करहिं सु होहिं सपूत॥
> यातें सब निज देश हित जतन करहु सब रीति।
> जयति राज राजेश्वरी, मानहु सदा सप्रीति॥[3]

मिश्र जी का पूरा विश्वास है कि—

> महिमा सम्पन्न नाहिं जु श्री विजयिनि महारानी।
> सुनत रहैं भारत वासिन की आरत बानी॥
> तौ अवश्य अति दया भया उनके उर आवै।
> जाते सहजहि सब हमार संकट कटि जावै।[4]

मिश्र जी लार्ड रिपन के भी बड़े प्रशंसक थे। लार्ड रिपन की उदारतापूर्ण नीति और प्रजावत्सलता ने मिश्र जी के हृदय में घर कर लिया था। मिश्र जी रिपन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

> सब बसर सरकार के आय सहजही घोय।
> राजा राज प्रजा सुखी अस सुफल तब होय॥"[5]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ (हम राजभक्त हैं)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ५ (स्वागतन्ते महाशयन)
५ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ० ('जन्म सुफल कब होय ?')

कहना न होगा कि रिपन के इसी उद्देश्य ने मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया था। मिश्र जी रिपन को रामचन्द्र की पंक्ति तक म पहुचा देत हैं--

'रामचन्द्र कहू अरु अकबर कहू साह रिपन कहूँ।
को आदर सों नहिं सुमिरत आरज अवनी मह ॥' [१]

लार्ड रिपन की न्यायप्रियता पर मिश्र जी पूरा विश्वास करत थे इसीलिए वह इसकी बडा चढाकर उनकी प्रशंसा करते थे। वे देश-वासियो को विश्वास दिलाते हुए कहत हैं-- हमारे देशानुरागियो का परम धर्म है कि किसी सज्जन धर्मिष्ठ भारत भक्त को लेजिसलेटिव कौंसिल का मैंबर नियत करने के लिए सरकार से निवेदन करें और पूर्ण विश्वास है कि महात्मा लार्ड रिपन ऐसे निवेदन को अवश्य सुनेंगे। [२] लार्ड रिपन की भी भक्ति मे मिश्र जी देशभक्ति ही प्रधान है। भारती के माध्यम से देश-दुर्दशा का वर्णन करत हुए मिश्र जी देशोद्धार की रिपन से प्रार्थना करते हैं--

आलस्य और एक ते एक कन्त हमारे।
अपनो सवसु परदेशिन के कर हारे॥
धन बल विद्या बसव सब मूलि बिसारे।
मम दुरगति देखत बैठि रहे मन मारे॥
प्रभु करौं कौन विधि आस कहु इन केरी।
अब वेगि रिपन महराज खबरि लेउ मेरी॥ [३]

इसी प्रकार सन् १८८९ ई० म (जाडे के दिनों म) राजकुमार विक्टर का भारत म आगमन हुआ। उनके आगमन पर मिश्र जी न युवराज कुमार स्वागतने नाम से एक लम्बा स्वागत गान लिखा। *यह गीत 'ब्राह्मण' पत्र के १५ नवम्बर १८८९* के अक म प्रकाशित हुआ। इस स्वागत गीत म राज भक्ति के साथ-साथ तत्कालीन देश-दशा के भी दर्शन होत हैं। मिश्र जी राजकुमार का स्वागत करत हुए लिखत हैं--

स्वागत! स्वागत!! श्री विक्टोरिया के प्रान पियारे।
स्वागत प्रिंस आफ वेल्स अखियन के तारे॥
आवहु आवहु भलो करी इहि दिसि पग धारे।
सब विधु बदन विलोकि भये धन भाग हमारे॥
भारतमाता आज तुम्हें वर साथ जुडानी।
जुग-जुग जीयहु हृदय कमल सूरज सुखदानी॥ [४]

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ५, (स्वागतंते महात्मन्')
२ ब्राह्मण खण्ड १ सख्या १२ (बेकाम न बैठ कुछ किया कर')
३ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ (भारतो गाती है--गाती क्या है अपने जनम को रोती है)
४ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ (युवराज कुमार स्वागतने)

स्वागत करने के बाद मिश्र जी अपनी देशभक्ति को छिपा नहीं पाते और थोड़े शब्दों में देश-दुर्दशा का वर्णन कर जाते हैं और अंत में कहते हैं—

छिन्न कियो हम चहत नाहिं तव कोमल मनकहं।
याते ह्यां की कथा सुनाई सनछेपहि महं॥
भली होय तुम भली भांति भारत न निहारो।
बालक हौ कहुं सहमि जाय जनि हृदय तिहारो॥ १

इसके बाद मिश्र जी राजकुमार से विक्टोरिया के लिए समाचार भी कहते हैं। जिसके एक-एक शब्द में दैन्य और विनम्रता टपकी पड़ती है—

अहो कुंवर! जब ह्यां ते तुम उनके ढिग जायो।
सुचित देखि कछु बात चीत को अवसर पायो॥
कहियो भारत की आरत गति धरि पद माथा।
अपनाय की लाज देखि अब तुम्हरे हाथा॥
रखहु रखहु भारत आरत शरण तिहारी।
अब सब ह्यां की प्रजा अहै दीन दुखारी॥ २

इसी वर्ष दिसम्बर में इंग्लैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० चार्ल्स ब्रैडला का भारत में शुभागमन हुआ। इनके भी आगमन पर मिश्र जी ने 'स्वागतं महात्मन्' नाम से एक स्वागत गान लिखा। यह 'ब्राह्मण' पत्र में १५ दिसम्बर १८८९ ई० में प्रकाशित हुआ। इस स्वागत गीत में भी पूर्व गीत के ही समान देश-दशा का चित्रण किया गया है पर इसमें पहले की अपेक्षा विस्तार अधिक है। श्री युत ब्रैडला का स्वागत करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

स्वागत! स्वागत!! स्वागत! श्री भारत हितकारी।
आवहु निभ्रम न्याय निरत नित सत पथ धारी॥
आवहु-आवहु भली करी इहि ओर पधारे।
बहुत दिनन के भये मनोरथ सफल हमारे।
चिर दिन सों अति आस रही तव मुख दरशन की।
धन्य विधाता आजु साध पूरी नयनन की॥ ३

ब्रैडला को मिश्र जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। कुछ लोगों के यह कहने पर कि ब्रैडला नास्तिक है फिर भी आप उनकी प्रशंसा करते हैं मिश्र जी ने

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ४ (युवराज कुमार स्वागतम्)
२ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ (युवराज कुमार स्वागतम्)
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ५ ('स्वागतं महात्मन्')

कहा—मैं देश द्रोही आस्तिकों से देशप्रेमी नास्तिकों को अधिक अच्छा समझता हूं। स्वागतम् महात्मन् में वे लिखते हैं—

''जदपि अनीश्वरवाद दोष सब तुमहिं लगावैं।
प प्यारे तव मुख्य मम बिरले कोउ पावै॥
सासन बन मुखसे निस ईश्वर ईश्वर करहीं।
प स्वारथ सनि पर सरबसहु कह हरतहि रहहीं॥
तुम सम पर दुख देखि द्रवहिं सोई हरि कह प्यारे।
को जानहिं या परम धरम लघ मति मतवारे॥'[1]

सन् १९९१ में ब्रडला का देहान्त हुआ। इससे मिश्र जी को बडा दुख हुआ। मिश्र जी ने एक बहुत ही करुण शोकगीत लिखकर १५ फरवरी १८९१ ई० के ब्राह्मण' में प्रकाशित कराया। जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

हाय विधाता फाटि पर्‌यो यह बजर कहा ते।
उमड़ि उठयो हा दैव! शोक सागर चहुधा ते॥
अरे काल कराल तरस तोहि नेक न आया।
निरबल बूढ़ रोग ग्रसिन पर दांत लगायो॥
आय अभागी हिन्द! भाग्य तेरो ऐसे ही।
वेगहि जात बिलाय हाय तव सहृत्र सनेही॥'[2]

मिश्र जी की राजभक्ति देशभक्ति के लिये थी। इन्होंने देश-हितपी ब्रिटिश शासकों या महापुरुषों की ही प्रशंसा की है। जिसने भारत का कुछ भी अहित किया है वह मिश्र जी के कटु-व्यंग्य और भर्त्सना से बच नहीं सका।

देशभक्ति

मिश्र जी अनन्य देश भक्त थे। निःस्वार्थ देश सेवा करना उनका लक्ष्य था। वे देश के लिए 'घर फूंक तमाशा देखने वाले' भक्तों में—से थे। देश का अहित उनसे देखा न जाता था। जब बार-बार समझाने पर भी देशवासी उनका कहना न मानते तो वे निराश होकर ईश्वर से भारत के कल्याण की प्रार्थना करने लगते—

निज करुणा रस बरसावो प्रभु! अब भारत को अपनाओ।
बलि दुदशा आरज कुल की वेगि दया उर लाओ॥
हे प्राणेश! पतित पावन प्रिय प्रेम पथ दरसावो।
वतमान दुरगुन अगनित गति नाथ! मो स्वाय जगावो॥[3]

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ५

२ ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या ७ (हा हन्त! हा हन्त!! हा हन्त!!!)

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ५ ('करुणा रस बरसाओ)

मिश्र जी ने जब यह देखा कि अंग्रेजों की शोषण-नीति दिन-पर दिन बढ़ती ही जाती है खुशामद का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब उन्होंने देश वासियों को उकसाना प्रारम्भ किया—

अपनो काम आपन ही हाथन मल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई॥"[1]

कानपुर की जनता में राष्ट्रीय चेतना भरते हुए मिश्र जी उसे १८५७ ई० के विद्रोह का स्मरण दिलाते हैं—

"दुर्गा की बात तौ दुश्मन रहि अब आगे को सुनौ हवाल।
सन् सत्तावन मा गलबा मौ मय सब हिंदू हाल बहाल॥
जितनी तिरिया कम्पू कटि गई सो तौ जानत है ससार।
बड़ बड़वन मालय काटे जिन मुह बड़े दूध को धार॥[2]

मिश्र जी ने जनता को उत्तेजित करने के लिए अंग्रेजों की चालों को स्पष्ट उनके सामने रखा। वे गौरागदेव उवाच में कहते हैं—

'नित हमरी सान सहैं हिन्दू सब धन खोय।
सुख न इगलिसिन पालसी जन्म सुफल तब होय॥[3]

मिश्र जी का अपने देश के प्रति महान गर्व है। देश की प्रत्येक वस्तु के प्रति उन्हें स्वाभिमान है। भारत को मिश्र जी सभी देशों का शिरोमणि मानते हैं—

'जय जय जगत शिरोमनि भारत।

*　*　*

जासु दिव्य उपदेश पाय सब, निज आचरत सुधारत॥
जासु सपूत पवित्र प्रीति पर, नित तन मन धन वारत।
जाकी सुता प्रेम परिचय हित जियत देह जिन जारत॥
भलहु पतन जह ससत ब्रह्ममय, सुमिरत सुलहि पसारत।'[4]

भारतीयों में स्वाभिमान जाग्रत करने के लिए मिश्र जी उनका मनका अतीत की ओर खींचते हैं और वर्तमान से उसकी तुलना कर वास्तविकता का ज्ञान कराते हैं—

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)-पृष्ठ २

२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९३० ई०)-पृष्ठ २०७
(कानपुर माहात्म्य —प्रतापनारायण मिश्र)

३ ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ९ ('जन्म सुफल कब होय ?')

४ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८ (भारत गीत)

जहं की भू महं देवहु तरसत जन्म ग्रहण करिबे को।
तहं कायर कलही कपूत उपजहिं केवल मरिबे को॥
रिग यजु साम अथर्व रहे जहं आकर सब विद्या के।
तहं ध्यमिधार ग्रन्थ फले अब मजनू अरु लैला के॥
ब्रह्म-ज्ञान त्रिभुवन ते बढ़कर जहं के रिषिन बतायो।
तहां विधर्मी प्रत पूजि सब ओगन ज्ञान गवायो॥ [1]

मिश्र जी को अपने विक्रमी सम्वत् तक स महान प्रम है। जब वह देखते हैं कि अग्रजी सम्वत् म नया दिन मनाया जाता है और भारतीय सम्वत् का पता ही नही लगता कि कब आया कब गया तो उन्हें बड़ा क्षोभ होता है। वे कहते हैं—

"है जो हमरो सम्वत है! जहिं हमरे पुरिखन थाप्यो।
जहि मह सहजहिं जगत रहत है नव शोभा सुख व्याप्यो॥
ताको गमन आगमन हू हा। केतिक लोग न जान।
जे जान तेऊ निजता बिन उचित प्रमोद न ठान॥
सुधि विक्रमादित्य को करिकै औरौ धरकति छाती।
जिनके राज माहि सब धरती रही धर्म धन छाई।
तिनको क्यहु दव वस अब हा! कतहूं न परत सुनाइ॥ [2]

मिश्र जी ने अपने समय की स्थिति का चित्रण बड़ी दीनता स—स्पष्ट शब्दों म किया है। वह जनता को तत्कालीन स्थिति से अवगत कराना चाहते थ। उनका यह विश्वास था कि जब भारतीय अपनी दशा को देखेंगे और समग्र रूप स उस पर विचार करेंगे तो निश्चय ही उनम राष्ट्रीयता क भाव जागेंगे। दश-दशा का वणन वह इस प्रकार करत हैं—

'हाय जहां क धनहि सों, धनी भय सब दश।
तहं दरिद्र छायो रहत सहत न बनत कलेश॥
चौथाई ते अधिक जन, भरि न सक निज पेट।
तेहि पर पुत्र कलत्र की चिन्ता देत चपेट॥
निज परधन एकत्र करि करहिं जो कछु रुजगार।
दुसह राज कर को परत तिन पर अतुलित भार॥ [3]

दुर्बलता स देश की स्थिति का वर्णन करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

तब लखिहों जहं रह्यो एक दिन कचन बरसत।
तहं चौथाई जन रूखी रोटी कहं तरसत॥

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या ३ (गाना समझो चाहे रोना)
२ 'ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ८ (नया सम्वत्)
३ 'ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या ४ ('महापव)

जहँ जामुन की गुठली अरु बिरछन की छाल।
ज्वार चून मह मेलि लोग परिवारहि पाल॥'
लोन तेलु लकरी घासहु पर टिकस लग जहँ।
चना चिरौंजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ॥'[१]

मिश्र जी को भारतीय-श्रमिकों की दशा पर बड़ा तरस आता था। उनकी दशा का चित्रण करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

'मोल भरत खचत सदा, बीतत दिन घहु घाम।
मानुष ह्वै करनो परत हम बल को काम॥
जब है पसीना सीस को, पायन लग पहुँचन।
हमें भूखे अन्न की तब लग आशा है न॥
घाम जेठ बैसाख को माघ पूस को शीत।
अपने सेखे जगत मे, सब बिधि कष्ट अभीत॥'[२]

अंग्रेजों और मुसलमानों द्वारा किये गये भारतीयों पर अत्याचारों को भी मिश्र जी स्पष्ट जनता के सामने रखने थे जिससे भारतीयों में प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय चेतना का विकास होता था—

निरुहिं तुरुक तेवहारन के मिस अनरथ करहिं अपार।
मंदिर ढाहहिं दुजन सतावहिं गाय हर्तहिं हरबार॥
माया जाल डारि धन खचत अंगरेजहु सरकार।
हृदय बिदारक दुसमह हमरे लागत कोऊ न गोहार॥'[३]

अंग्रेजों की शोषण नीति के विषय में मिश्र जी लिखते हैं— 'जिस भारत लक्ष्मी को मुसलमान सात सौ वर्ष में अनेक उत्पात करके भी न ले सके उसे उन्होंने सौ वर्ष में धीरे धीरे ऐसे मज़े के साथ उड़ा लिया कि हँसते-खेलते विलायत जा पहुँची।[४] इसीमें मिश्र जी आगे कहते हैं—

"सबसु लिए जात अंग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बातें का करती हैं कहू टटरन गाज टरती हैं॥'[५]

बेगारी के लिए शासकों द्वारा मजदूरों का पकड़ा जाना और उन्हें—काम के साथ-साथ नाना प्रकार से ताड़ना देना मिश्र जी का कोमल हृदय सह न सका और मिश्र जी को सहना ना पड़ा—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ५ ('स्वागतं ते महात्मन')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ७ ('बेगारी बिलाप')
३ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १० ('विचार-पंचक')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ७ (३)
५ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)-पृष्ठ ७

एक एक क काम मे बार बार गहि लेत।
पांय परत छांडत नहीं, मारत गारी देत ॥
घर बाहर के काम में हानि कसहू होय।
सीस पटकिबो रोइबो, हमरो मुनत न कोय ॥
काम लेत बरिआइ के दाम देत अति थोर।
कहां जाय कसे कर, हमें विपति अति घोर ॥ [1]

जब सरकार द्वारा जनता पर कोई नया टैक्स लगाये जाते तो मिश्र जी उनका बड़ा विरोध करते थे—

लैसन इनकम धुगी धन्धा पुलिस अदालत बरसा धाम।
सबके हाथन असन बसन जीवन ससय मय रहत सुवाम ॥
जो इनहू ते प्रान बचे तो गोली बोलति आय धड़ाम।
मृत्यु देवता नमस्कार तुम सब प्रकार बस तप्यन्ताम ॥ [2]

*   *   *

नांव न लीज धन दौलति को टिकस दीज काढि करयाज।' [3]

सन् १८५७ के विद्रोह के बाद सरकार द्वारा हथियारो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। कोई भी भारतीय बिना लाइसेन्स अस्त्र शस्त्र नहीं ले सकता था। आज्ञा क उलघन पर कठिन दड का विधान था। इस पर मिश्र जी ने कई बार आक्षेप किया—

सर जह चक्र त्रिसूल धर धम ग्रन्थ धनु वेद।
तह अब धरिहू न देखियत खेद-खेद हा भेद ॥
जह सिगार रस मह कहहिं रसिक सुकवि मतिमान।
नारिन की भृकुटी धनुष, सूधी चितवनि बान ॥
हाय तहां ससस्त्र बिन मिलत नाहिं हथियार।
निशि मह चाहै चोर सब लूटि लेहिं घरबार ॥ [4]

सन् १८८३ म मि इलबर्ट न भारतीय तथा यूरोपीय मजिस्ट्रटो का समानाधिकार दिलान क लिए एक विधेयक तयार किया जो 'इलबर्ट बिल' क नाम स प्रसिद्ध हुआ। इस बिल का ब्रिटिश जाति न प्रबल विरोध किया फिर भी कुछ परि

---

१ ब्राह्मण खण्ड १ सख्या ४ (बेगारी विलाप)
२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृ० ५६ (तृप्यन्ताम्)
३ —वही— वही पृ० २१२ (कानपुर महात्म्य)
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ५ (महापव)

यत्न के साथ यह स्वीकृति किया गया। इस पर मिश्र जी ने 'ऐंग्लो इण्डियन शक्ति' की ओर से इस बिल पर बड़ा अच्छा व्यंग्य किया है—

इलबर्ट मर जिहि यह मम अनरथ कीन्हा।
जस्टिस उजर अधिकार चहति मोर छीना॥
क्या रे। सबहिन अपन-अपन हक चीन्हा।
निरदई विधाता हाय दुसह दुख दीन्हा॥
करिहैं बिचार मम काफर कूर कुजाती।
यह बिल भई सवति हमारि जरावत छाती॥' १

१६ फरवरी १८८७ में विक्टोरिया की रजत-जयन्ती (जुबली) मनायी गयी। इसमें भारत का बहुत सा धन खर्च हुआ पर उसके प्रतिफल में भारत को कुछ न मिला। इस पर मिश्र जी अपने 'जुबिली' शीर्षक लेख में लिखते हैं—'यह दिन क्या रोज आवेगा जुबिली सदा हम याद आवे ऐसा कुछ करना महारानी को अवश्य है। यदि 'आर्म्स-एक्ट' उठा लिया जाय हम शस्त्रास्त्र संचालन की आज्ञा फिर हो जाय तो अथवा गोवध उठा दिया जाय तो अथवा जो बिल्ली की सी घात करने वाली उर्दू दफ्तरों से उठा दी जाय तो हम और हमारे समाज सदा यही कहेंगे कि साहस के बिना घृत दुग्धादि भोजन के बिना कचहरियों में यथातथ्य अक्षरों के बिना भारतवासियों के ज्यू (जीव) बिल्ली की भांति अपोरह थे मा महारानी की दया से वही जिउ बली अर्थात् बलिष्ट हो गये अथवा इनकम टैक्स ही से हमारा गला छूटे तो सच कहेंगे कि जिउ बली अर्थात जीव का बलिदान लेने वाला राक्षस महारानी के शासन सम्बन्धी उत्सव ही में मारा गया था सुनने और करने वाला हो तो ऐसे ऐसे अनेक उपाय हैं जिनसे जुबिली सार्थक जुबिली हो जाय। २

सन् १८८३ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने 'बंगाली' पत्र में सरकार के कुछ कार्यों की आलोचना की। इस पर सरकार ने इन्हें दो मास की सजा दी (सुरेन्द्रनाथ की देश भक्ति के कारण सरकार पहले से ही इनसे असन्तुष्ट थी। और इसी से इन्हें लिटन के काल में सिविल सर्विस से भी पृथक किया गया था) मिश्र जी को सरकार के इस कार्य से बड़ा असंतोष हुआ और उन्होंने सरकार की बड़ी भर्त्सना की— अपने धर्म की निन्दा का हाल सुनके किस सहृदय का जी नहीं दुखता ? ऐसे अवसर पर मनुष्य जो न कर उठावे थोड़ा है। फिर बाबू साहब ने कौन हत्या की थी जो ऐसे कठोर दंड के भागी हों। सुरेन्द्रनाथ कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। आनरेरी मैजिस्ट्रेट और सिविल सर्विस के मेम्बर रह चुके हैं। विद्या, बुद्धि और

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ लावनी (ऐंग्लो इण्डियन शक्ति गाती है)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १

प्रतिष्ठा भी उनकी ऐसी देश भर मे बहुत ही थोडे लोगों की है। ऐसे देशानुरागी सुमान्य व्यक्ति को ऐसी तेमी वार्तों के लिए ऐसा दण्ड कर देने में केवल एक ही की नही वरच आप मात्र की विडम्बना है। क्या यह बात अनुचित नही हुई ? निस्सन्देह सबके जी पर इसका दुख हुआ। पर क्या कीजिए बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।[१]

मिश्र जी के समय म बहुत स लोग नाम और प्रतिष्ठा के लिए देशी हितचिन्ता का ढोग बनाये फिरते थ इनसे देश उद्धार होना तो दूर था उलटे जनता म भ्रम और अनाचार का प्रचार हो रहा था। ये लोग जनता को लम्बे चौडे असार भाषणो स अपनी ओर आकृष्ट करते थे। इन पर मिश्र जी लिखत है— घर की मेहरिया कहा नही मानती चले हैं दुनिया भर का उपदेश देन, घर म एक गाय नही बाधी बाध जाती, गोरक्षिणी सभा स्थापित करेंगे तन पर एक सूत देशी कपडा नही है बन हैं देश हितैषी, साढ़ तीन हाथ का अपना शरीर है उसकी उन्नति नही कर सकत देशोन्नति पर मरे जाते हैं—कहा तक कहिए—करते धरते कुछ भी नही, बक बक नाचे हैं।[२] मिश्र जी सच्चे देश भक्त थे उन्हे बनावटीपन पसन्द नही था। उनका यह विचार था कि जब तक स्वत मनुष्य नही उठगा दूसरों को नही उठा सकेगा—

आपन चरित सुधारत नाहीं जग कहं उपदेशत म सजाहीं।
धिक पंडितन धिक बबुआई कासिहु क जोगी भाई भाई॥'[३]

बनावटी देश हितैषियों क उद्देश्य और कार्य का चित्रण मिश्र जी बड अच्छ शब्दो म करते हैं—

लेक्चर अपना व्यास वचन से तेज हो
फसन पर कुर्बान हरेक सहज हो।
साबुन मलना फट्ट से बोतल खोलना
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥'[४]

मिश्र जी देशोन्नति के लिए ऐक्य और प्रम को आवश्यक मानते थ। उनका कहना था— प्रम बिना कभी नही, किसी प्रकार किसी की उन्नति न हुई है न होगी न होती है।[५] इसीलिए ये प्रम और एक्य की प्रचारक सस्था—कांग्रेस क प्रबल अनुयायी थ।' कांग्रेस के प्रत्येक काय की ये हृदय से प्रशसा करते थे। कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन म मिश्र जी कानपुर के प्रतिनिधि होकर (१८८८ ई०) गये

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ४ (कचहरी म शालिग्राम जी)
२ ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या १ (पूरे क सता बिनै सनातन का ढोल बाँध')
३ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई)-पृष्ठ ५
४ 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या १ १० (इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
५ 'ब्राह्मण खण्ड २ सख्या २ (देशोन्नति')

थे।[1] यहा इसके कार्यों का देखकर ये बहुत प्रभावित हुए। वे लिखते हैं—'कांग्रेस की जय। क्या न हो कांग्रेस साक्षात् दुर्गा जी का रूप है क्योंकि वह देशहितैषी देव प्रकृति के लोगों की स्नेहान्वित से आविर्भूत हुई है दयानीन्द्रिय गण विनिष्टानां तेजा राशि समुद्भवा' है। फिर हम ब्राह्मण होकर इसकी जय क्या न बोलें।[2] कांग्रेस के गुणो को ही देखकर मिश्र जी ने कानपुर में कांग्रेस की शाखा की स्थापना की थी और इस शाखा की ओर से मिश्र जी कांग्रेस के कई अधिवेशनो में गये थे। कांग्रेस की देश हितैषिता से मिश्र जी इतना सन्तुष्ट थे कि इसे भगवती मानने लगे थे और इसकी इसी रूप में ये प्रार्थना भी करते थे—

जय जयति राज प्रबन्ध शोधन हेतु वर वपु धारिनी।
जय जयति भारत की प्रजा उर एकता सचारिनी॥
जय जयति सागर पार लौं निज रूप गुन विस्तारिनी।
जय जयति भगवति कांगरेस असस मगल कारिनी॥[3]

मिश्र जी कांग्रेस के अधिवेशनो में सम्मिलित होने के लिए जनता को भी प्रोत्साहित करते थे तथा तन मन धन से सहायता करने के लिए भी प्रेरित करते थे। इलाहाबाद अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए वह जनता से इस प्रकार कहते हैं—

साजि-साजि भूषन बसन सब मिलि चलहु प्रयाग।
तन मन धन अरु वचन सों करहु देश अनुराग॥
यह नाग ते यह बड़ो पव बड़ दिन माहिं।
ए हो प्रिय भारत भगति यहि मह संशय नाहिं॥
यथा शक्ति धन देइ के यहि मा लूटहु धम।
महादान कर पाइहौ बेगिहि अति फल रम॥[4]

मिश्र जी कांग्रेस के विरोधियो के घोर विरोधी थे। इन पर जब-तब मिश्र जी के व्यग्य-बाण चला करते थे। एक स्थान पर मिश्र जी ने विरोधियो को अपने पोप (राधा का शारीरिक पति जो राधा को कृष्ण से एकान्त में बातें करते देख कृष्ण को तलवार लेकर मारने आया था) राधा को जनता और कृष्ण को कांग्रेस कह कर बड़ा अच्छा उपहास किया है—कांग्रेस श्री कृष्ण हैं और प्रजा हितैषी इन भक्तो की जनता श्री राधा है अथवा विरोधियो का दल अपने पोप है जो देखता है कि इस

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ६ (कांग्रेस की जय)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ६ (कांग्रेस की जय)
३ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०)-पृष्ठ १७
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ५ (महापर्व)

सयोग म हमारे लिए कुयोग है। न ठकुरसुहाती कहके मनमानी पदवी पाने का योग है, न अपनी इच्छा ही को शासन प्रणाली का मूल मन्त्र बना के काले कलूटे मूख गुलामों पर स्वेच्छाचारिता का ढग जमाने का सुयोग है। धीरे धीरे सबकी आँखें खुलती जाती हैं। सब अपना स्वत्व पहिचानते जात हैं। सही सही बाता की पुकार सात समुद्र पार पहुच रही है। तो घोष महाशय रोषपूर्ण हो के वाणी-कृपाण धारण करते हैं और चाहते हैं कि कृष्ण का सिर उडा दें। फिर राधा तो हमारी हई हैं। पर राधा जी देखती हैं कि न्याय के आग स्वेच्छाचार न्भक्ति के आगे स्वार्थपरता महारानी के प्रबल प्रताप के सम्मुख हमारा दुख क्लेश निरा निमूल है इसम धय के साथ अपने इष्ट साधन म लग रहना चाहिए।[1]

मिश्र जी के समय में विदेशी वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा म देश म आने लगी थी और इनका प्रचार भी तेजी से होने लगा था जिसस देशी वस्तुओं की माग कम होती जा रही थी। साथ ही ब्रिटिश सरकार भी इस प्रचार में पूरा सहयोग दे रही थी। देशी वस्तुओं पर टक्स लगाकर उस विदेशी वस्तुओ की प्रतिस्पर्द्धा मे गिराया जा रहा था जिसके परिणाम स्वरूप देश म निर्धनता और बकारी बढ रही थी। ऐसी स्थिति म मिश्र जी ने टक्सा का विरोध तो किया ही साथ ही स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग के लिए भी जनता को प्रोत्साहित किया— भाइयो यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है आखिर कपडा पहिनाहीगे एक बर हमारे कहने स एक-एक जोडा देशी कपडा बनवा डालो। यदि कुछ सुभीता देख पडे तो मानना दाम कुछ दूने न लगेंगे चलगा तिगुन के अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प क उद्धार का फल सेंत मत।[2] पर जब जनता सम्मान स नहीं मानती तब मिश्र जी खिन्न होकर कहते हैं—'विदेशियो का यह दांव है कि अन्न औ जल भी हम इनक हाथ बचा करें और उधर हिन्दुस्तानियों की यह इच्छा है कि मिटटी और हवा भी विलायत से आवे तो खरीदना चाहिए। विलायती मिटटी की (चीनी के बर्तन दावात आदि) प्यारी लगती है अपने यहाँ का खाना भी अखरना है। जिसके घर म शेलो सारा सामान तो भी रुपय में बारह आन भर सामग्री विलायत ही की बना पावाग जिसमें दाम तो एक गुना क चार चार लगेंगे पर ठहरती देशी की अपना आधे दिन भी नही और तनिक बिगड़ जान पर सब स्वाहा।[3] मिश्र जी को सबसे बडा दुख तब होता है जब देश हितषी भी देशी वस्तुओं स घृणा करत हैं— देशी कारीगरी की देख ही वाम नही पूछत विज्ञापन जो छापो ठाव-ठाव कर ताली बजवा-बजवा

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ११ ('एक बपा)

२ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १२ (देशी कपड़ा)

३ 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) - पृष्ठ २७२

कर कागज के तख्ते रग रग कर देश हित म गीत गाते फिरते हैं वह और भी देशी-वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं । १

मिश्र जी बड़ जागरूक और मूर्तिमन्त देश भक्त थे । उनको अपने समय की प्रत्येक स्थिति का परिज्ञान था । देश म सम्बन्धित छोटी स छोटी बात पर वे गम्भीरता स विचार करते थे । दृष्टिकोण की व्यापकता और सहृदयता क कारण व भारत स्वरूप हो गये थ । देश का उद्धार करना ही उनके जीवन का एक लक्ष्य था और इसी लक्ष्य की ओर सदा वे लोगा को खीचते थे । वे कहते है— लोगा को चाहिए कि कट्टरपन और कचढिल्लापन छोड़के यह समझ रखें कि हम मुख और मन म चाहे जितना विदेश और विषम के पक्षपाती हो पर पदा भारत म हुए हैं और मरेंगे भारत ही म । अत भारत ही के भल से हमारा भी भला है ।२ इसी दूरदर्शिता के कारण मिश्र जी पर उस समय की प्रत्येक स्थिति का प्रभाव पड़ा है और इन्होंने बड़ी तल्लीनता के साथ उस पर विचार किया है ।

सामाजिक स्थिति

मिश्र जी के समय म समाज का ढाँचा पूर्ण-विशृंखलित था । सभी जातिया आपसी विद्वेष की अग्नि म जल रही थी । एक-दूसरे की बुराई करना ही उनका उद्देश्य था । दृष्टिकोण की सकीर्णता उन्हे निरन्तर अधोगति की ओर ले जा रही थी । ब्राह्मण अपन अतीत-गौरव म चूर थ । वे अन्य जातिया को हेय-दृष्टि स देखते थे । इनके द्वारा छुआछूत और अंध विश्वास म वृद्धि ही रही थी । य पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियो के पोषक थ । अन्य जातियों को अपने स नीच और पतित समझन क कारण इनके अत्याचार बराबर उन पर बढ़ते जा रह थे इसम अन्य जातिया म बड़ा असंतोष फल रहा था । ब्राह्मण ही उस समय समाज क कर्णधार थे समाज की सम्पूर्ण नीतियां उन्ही के हाथ म थी । शिक्षा-दीक्षा का भार इनका ध्यान म था, केवल ब्राह्मण कुल म जन्म लेना ही उनक लिए स्वाभिमान और प्रतिष्ठा की बात थी । ब्राह्मणा की विभेद-नीति के कारण सभी निम्न जातियां अपन बामा क प्रति उदासीन होती जा रही थी । ब्राह्मण नवीनता क प्रतिद्वन्द्वी थ वे अपने प्राचीन गुरुत्व और पोपाचार क सरक्षण म व्यस्त थ ।३ क्षत्री भी अपन वीरत्व को छोड़कर अग्रजो की चाटुकारिता म ही अपनी भलाई देख रह थे । वैश्या क व्यापार में भी अग्रजो की शोषण नीति के कारण अब कोई दम नहीं रह गया था ।

ब्राह्मणा की सकीर्णता क कारण सामाजिक उन्नति म बड़ी बाधा पड़ रहा

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ८ ('होली है')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ७ ('नेशनल कांग्रेस महासभा')
३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय— आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० ८१

थी। कोई भी व्यक्ति समुद्र यात्रा नहीं कर सकता था। यदि नियम को तोड़कर कोई समुद्र-यात्रा करता भी था तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। इससे भारतीयों के सम्बन्ध अन्य देशों से न स्थापित हो पाते थे। धार्मिक संकीर्णता और जातीयता के कारण समाज में एक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गई थी। समाज दो भागों में विभक्त हो गया था। उच्च वर्ग के लोग जातीयता और प्राचीनता के पोषक थे और निम्न वर्गीय लोग इनका कड़ा विरोध कर रहे थे।[1] आपसी एकता और संगठन बिलकुल समाप्त हो गया था, चारों ओर फूट और विद्वेष के बादल मंडरा रहे थे। इसके साथ ही समाज में व्यभिचार और नशा-खोरी भी जोरों से फल रही थी। ब्रिटिश शासक भी अपने साम्राज्य और शोषण-नीति को स्थायी रखने के लिए कूट-नीति से काम ले रहे थे। भारतीयों को आलसी और अकर्मण्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर मादक वस्तुओं का प्रचार किया जा रहा था और विभेद नीति को अपनाकर हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ाया जा रहा था।[2] इस प्रकार समाज में पूरी तरह अशान्ति छायी हुई थी।

मिश्र जी के समय में स्त्रियों की भी बड़ी दयनीय दशा थी। पर्दा प्रथा के कारण वे घर की चहार दीवारी में ही बन्द रहती थीं जिससे उनका बौद्धिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता था। साथ ही पतियों के दुर्व्यवहार से भी उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे। वे एक दासी की भांति अपना जीवन व्यतीत करती थीं। पतियों द्वारा उन्हें भर्त्सना और ताड़ना सदैव मिलती रहती थी। लड़कियों को पढ़ाना भी उस समय हेय समझा जाता था। लड़कों की भी शिक्षा बहुत सीमित थी इससे यदि कभी कोई लड़की पढ़ भी गई तो उसकी शादी होने में बड़ी परेशानी होती थी तथा पढ़ी लड़की से शादी करने में भी लोग एतराज करते थे। इसके अतिरिक्त समाज में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु विवाह की भी कुप्रथाएं फैली हुई थीं। बचपन में ही लड़के-लड़कियों की शादी कर दी जाती थी जिससे उनका शारीरिक पतन तो होता ही था साथ ही उनका आगामी विकास भी रुक जाता था। दहेज प्रथा के कारण निर्धन व्यक्ति अपनी लड़कियों की शादी वृद्ध पुरुषों से कर देते थे जिससे समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। बहु विवाह करने की उस समय एक परिपाटी सी बन गई थी। कई स्त्रियाँ रखने में लोग अपनी शान समझते थे। इससे स्त्रियों की इज्जत भी कम होती थी और उन पर अत्याचार भी अधिक किये जाते थे। इन कुरीतियों को दूर करने के लिए समाज सुधारकों ने

१ किशोरीलाल गुप्त—'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९६६ ई०) पृ० २३२

२ रामगोपाल—भारतीय राजनीति (२०११ वि०)—पृष्ठ १४८-४९

बह प्रयत्न किये। सन् १८७२ मे केशवचन्द्र सेन के प्रयास से बाल-विवाह और बहु विवाह पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध लगाया गया। आगे चलकर पारसी सुधारक एम० बी० मालाबारी तथा अन्य सुधारको के प्रयत्न से सन् १८९१ मे सहवास-कानून (Age of consent Act) पास हुआ जिसके द्वारा विवाह करने की आयु पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पर यह प्रतिबन्ध जनता द्वारा मान्य नही हुआ और न सरकार ने लोगो को मानने के लिए बाध्य ही किया।[1]

दहेज प्रथा का उस समय बडा जोर था। जिसके कारण निर्धन लोग अपनी लडकियो का विवाह ही न कर पाते थे। राजपूताना तथा देश के अन्य कुछ भागो मे तो विवाह की ही परेशानी के कारण कन्याओ का वध तक कर दिया जाता था। कन्या के जन्म लेते ही माताएँ उसे अफीम देकर मार डालती थी। कभी-कभी वंशवृद्धि के लिए पुत्रों की बलि भी दी जाती थी। दहेज के लोभ मे लोग अनेक विवाह करते और पत्नियो को मार भी डालते थे। काली चण्डी आदि की उपासना के लिए तान्त्रिक मत वाले नरबलि चढाते और नर मांस का प्रसाद लेते थे।[2] इस प्रकार समाज मे बहुत सी कुप्रथाएँ फैली हुई थी। सरकार ने इन नृशंस प्रथाओ को सर्वप्रथम १७९५ ई० मे बन्द करने का प्रयत्न किया पर कोई विशेष सुधार नही हुआ। इसके बाद १८ २ ई० मे सरकार ने पुन कानून बनाया और उसे कडाई से लागू भी किया पर ये प्रथायें पूर्ण बन्द नही हुई।

१९वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे बगाल राजपूताना और दक्षिणी भारत मे सती प्रथा विशेष रूप मे प्रचलित थी। पति के मरने के बाद यदि स्त्रियां स्वेच्छा से सती नहीं होती थी तो उन्हे जबरदस्ती चिता मे दहन किया जाता था। यदि कभी कोई स्त्री सती होने से बच भी गई तो उसे बडा कष्टमय जीवन व्यतीत करना पडता था। न तो वह अच्छे वस्त्र ही पहन सकती थी न अच्छा खा ही सकती थी। समाज भी उसे गिरी नजरो से देखता था। विधवा का जीवित रहना भी मृतक ही के समान था।[3] राजाराम मोहन राय ने इस प्रथा के विरोध मे एक बहुत-बडा आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप १८२९ ई० मे सरकार द्वारा इस प्रथा का दडनीय घोषित किया गया। सरकार द्वारा रोक लगाने से यह सती प्रथा

---

१ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०)—पृष्ठ २२१

२ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)—पृष्ठ २२२ २३

३ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१ ६० ई)—पृष्ठ २२३ २४

तो बहुत-कुछ कम हो गई पर विधवाओं की समस्या सामने आ खड़ी हुई। वृद्ध विवाह आदि द्वारा समाज में विधवाओं की संख्या बड़ी-तेजी से बढ़ने लगी। अट्ठारह अट्ठारह, बीस-बीस वर्ष की बाल विधवायें अपना जीवन भार स्वरूप बिता रही थी। यह देखकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह का आन्दोलन उठाया और सन् १८५६ में सरकार ने विधवा-विवाह को वैध करार किया।[1] फिर भी हिन्दुओं की धर्मान्धता के कारण इस दिशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

मिश्र जी के समय में भारतीय जनता निर्धनता से ग्रसित थी। मशीनों के आविष्कार और मिलों की स्थापना से भारतीय कुटीर धन्धे नष्ट हो गये थे। जिससे देश की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर हो गयी थी। कृषि की भी स्थिति अच्छी नहीं थी। अनावृष्टि और जंगलों के कट जाने आदि से पैदावार बहुत कम हो गयी थी, साथ ही लगान भी बहुत बढ़ गया था। जो कुछ भी साल में पैदा होता था वह लगान ही में निकल जाता था। इससे कृषकों पर कर्ज दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। यहाँ तक कि भारतीय कृषक कर्ज ही में पैदा होते और कर्ज ही में मर जाते थे। महंगाई भी कई-गुना अधिक हो गया थी। विदेशी-वस्तुओं के प्रचार के लिए, देशी-वस्तुओं पर बराबर कर लगते जा रहे थे। विदेशी वस्तुएं तो महंगी होती ही थी देशी-वस्तुएं भी (करों के कारण) महंगी होती जा रही थी। देश का अधिकांश कच्चा-माल विदेश जा रहा था और उसी से निर्मित वस्तुएं देश में आकर दुगुने और तिगुने दाम में बिकती थी जिसके परिणाम-स्वरूप देश का धन विदेश खिंचता जा रहा था। विदेशी वस्तुओं के बदले में (कच्चे माल में) विशेष रूप से अन्न बाहर भेजा जाता था जिससे देश में भुखमरी फैलने लगी थी।[2] वैसे ही भारत में अन्न बहुत-कम पैदा हो रहा था जो भारत ही की मांग के लिए पूरा नहीं था। समाज में रिश्वत-खोरी भी बढ़ रही थी। सरकारी कर्मचारी बिना रिश्वत लिए कोई काम नहीं करते थे। कचहरी और पुलिस विभाग तो रिश्वतखोरी में सबसे आगे थे। विदेशियों की नकल और फैशन में भी देश का बहुत सा धन व्यय हो रहा था। उक्त कारणों से हर साल अकालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तो अकालों का तांता सा लग गया था। साथ ही हैजा और प्लेग जैसी महामारियां भी फैल रही थी जिनसे हजारों की संख्या में लोग अकाल काल-कवलित हो रहे थे। सरकार भी अकालों को बढ़ाने में पूरी तरह तत्पर थी। अकाल के समय में सरकार की शोषण-नीति और भी बढ़ जाती थी।[3]

---

1 डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी— ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०)—पृष्ठ ५२४
2 राम गोपाल— भारतीय राजनीति (२०११ वि०) पृष्ठ ७२
3 राम गोपाल— भारतीय राजनीति (२०११ वि०) पृष्ठ ७२

समाज की विषम-परिस्थितियों से लोगों को मुक्त करने के लिए समाज सुधारकों के बराबर प्रयत्न हो रहे थे, साहित्यकार भी इस ओर विशेष दत्त-चित्त थे पर सरकार से असहयोग के कारण प्रगति बड़ी मन्थर गति से हो रही थी। समाज हितैषी-अंधविश्वास धर्मान्धता अनाचार आदि को दूर करने और ऐक्य प्रचार में तत्पर थे आंग्ल प्रभाव और अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क से भी जनता में चेतना का विकास होने लगा था। नवीनता के पोषकों का दृष्टिकोण पाश्चात्य देशों के प्रभाव से बहुत कुछ वैज्ञानिक हो गया था वे धार्मिक तत्वों और रूढ़ियों में वैज्ञानिकता खोजने लगे थे। उपदेशों आदि के परिणाम स्वरूप जनता के भी दृष्टिकोण में व्यापकता आने लगी थी और रूढ़ियों के बन्धन ढील पड़ने लगे थे। राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि के प्रचार से स्वाभिमान एकता और नवयुग की चेतना का विकास होने लगा था। जनता में सद्भाग के भाव जाग्रत होने लगे थे। इस युग के समाज सुधारकों और साहित्यकारों ने समाज की अनन्य सेवा की तथा इन्हीं के द्वारा समाज का एक नये सिर से निर्माण हुआ।

कानपुर की स्थिति

कानपुर का प्राचीन नाम कान्हपुर (कृष्ण के नाम पर) था। यह गंगा के किनारे जिसे आज कल पुराना कानपुर कहते हैं एक छोटा सा गाँव था। गंगा के किनारे बसे होने के कारण इसकी उन्नति बड़ी शीघ्रता से हुई। आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसार से यह एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया। यातायात के प्रचुर साधनों के कारण इसका व्यापार दूर-दूर के नगरों से प्रारम्भ हुआ। छावनी के उपलब्ध होने से अनेक मिलें भी स्थापित हो गयीं। कानपुर में सर्व प्रथम एलगिन मिल १८६२ ई० में स्थापित हुआ।[1] इसके बाद कानपुर ऊलेन मिल (१८७६ ई०) कूपर एलन एण्ड क० (१८८० ई०) कानपुर कॉटन मिल (१८८३ ई०) विक्टोरिया मिल (१८८६ ई०) आदि स्थापित हुए।[2] सन् १८८१ में कानपुर की जनसंख्या १५१४४४ थी।[3] इस जिले के बिल्हौर अकबरपुर और बिठूर कस्बों की भी आबादी ५००० से ऊपर थी।[4] औद्योगिक केन्द्र होते हुए भी कानपुर की सामाजिक स्थिति बड़ी दयनीय थी। कुछ को छोड़ कर सभी लोग निर्धनता की बेड़िया

---

१ लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और नारायणप्रसाद अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृष्ठ १५०

२ त्रिपाठी और अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृ० १५८-९

३ '—वही—' '—वही—' पृ० १७६

४ —वही— '—वही—' पृ० १०३

५ —वही— —वही— पृ० १००

म जकडे हुए थे । श्रमिकों की संख्या यहाँ अधिक थी जिनको पेट भर भोजन भी न प्राप्त होता था । फिर भी यहाँ की जनता में सहयोग की भावना नहीं थी । अनेक कष्ट उठाते हुए भी जनता सामाजिक कार्यों में भाग न लेती थी । छल और प्रपंच विशेष रूप से बढ़ रहा था।[1]

सन् १८६५ में इस क्षेत्र में महँगाई बहुत अधिक थी। इसके बाद कुछ सस्ता हुआ पर सन् १८७७-७८ में दुर्भिक्ष से भाव पुनः चढ़ गये।[2] सन् १८६८-६९ में *अति-वृष्टि तथा पाले से फसल नष्ट हो गयी।*[3] *जिसके परिणाम-स्वरूप कृषकों को* बहुत कष्ट उठाने पड़े। सन् १८८० में इस जिले में वृष्टि का औसत केवल ११.०९ था जो साधारण वर्षा का तिहाई था। इससे खरीफ की फसल नष्ट हो गयी।[4] १९ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में इस क्षेत्र में अनेक अकाल पड़े जिसमें जनता का बहुत बड़ा भाग भूखों मर गया। साथ प्लेग के प्रकोप से भी बहुत से लोगों की जानें गयीं। यह काल जनता के लिए बड़े-कष्ट और असंतोष का रहा। ऐसी स्थिति में प्रतापनारायण मिश्र और उनके सहयोगियों ने समाज-सुधार में बड़ा काम किया। अकालियों की सहायता के लिए चन्दा और अन्न वसूल किये गये। स्वदेशी प्रचार के लिए अनेक जातीय भंडार खोले गये। जनता में सहयोग और ऐक्य स्थापित करने के लिए बहुत-सी संस्थायें खोली गयीं इन्हीं समाज सुधारकों के प्रयत्न से जनता में राष्ट्रीयता का विकास हुआ। सन् १८९५ से प्रयागनारायण तिवारी बी० एच० गुड *(सुपरिण्टेण्डेण्ट)* हालसी (कलक्टर) आदि के प्रयत्न से कानपुर में दंगल लगने प्रारम्भ हुए।[5] दंगलों में इनाम का भी अच्छा प्रबन्ध किया जाता था जिससे जनता इनकी ओर विशेष आकृष्ट होती थी। इन दंगलों से स्वास्थ्य रक्षा को बड़ा प्रोत्साहन मिलता था।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी अपने समय के जागरूक द्रष्टा थे। समाज की प्रत्येक गतिविधि से उनका परिचय था। तत्कालीन सभी स्थितियों का उनके ऊपर प्रभाव पड़ा है क्योंकि उनकी समस्त रचनायें समाज की किसी न किसी समस्या की ओर संकेत करती हैं। समाज की तत्कालीन स्थिति का चित्र मिश्र जी ने इस प्रकार खींचा है—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १० *ककाराष्टक—प्रतापनारायण मिश्र*
२ त्रिपाठी और अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृ० २४९
३ —वही— —वही— पृ० २५४
४ —वही— —वही— पृ० २५४-५५
५ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृ० २२२

तन मन सों उद्योग न करहीं बाबू बनिबे के हित मरहीं।
परदेसिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे॥ १

*   *   *

सब प्रकार सों देखि दीनता लागति हिये जनु गोली है।
दिन दिन निबल निरधन निरबस होति प्रजा अति भोली है॥
परयो झोपड़ी माहिं क्षुधित नित रोवत छोरा छोरी है।
ज्यों-त्यों करि काटत दुख जीवन का प्रभाति सेहि होरी है॥ २

कानपुर की स्थिति को मिश्र जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

कोऊ काहू को न करहुं सतकर्म सहायक।
केवल घात बनाय बनत सहसन सब लायक॥
कुटिलन सों ठगि जाहिं ठगहिं सूधे सुहृदन कह।
करहिं कुकर्म करोरि छपावहिं न्याय धर्म महं॥
दुख देत माहिं जगदीश कहं करत कपट मय आचरन।
कलयुग रजधानी कानपुर भारत कहं गारत करन॥ ३

तत्कालीन स्थिति से मिश्र जी को बड़ा क्षोभ था। वे छुआछूत जाति-पाँति मान-पान आदि दुर्गुणों के विरोधी थे। ब्राह्मणों के अत्याचारों और अन्ध-विश्वासों की वे कटु आलोचना करते थे। ब्राह्मणों पर आक्षेप करते हुए वे कहते हैं— इनकी पैदाइश विराट् भगवान के मुख से है और मुख ऐसा स्थान है, जहां थूक भरा रहता है। फिर जो थूक के ठौर से जन्मेगा वह कहां तक थूकनापन न करेगा। ४ मिश्र जी जाति को श्रेष्ठ न मानकर कर्म और ज्ञान को श्रेष्ठ मानते थे। इसीलिए ब्राह्मणों की निरक्षरता से उन्हें बड़ी चिढ़ थी—

'क खा गा घा हू बिन पढ़, तिरवेदी पदवी धरन।
कलह प्रिय जिपति कनौजिया भारत कहं गारत करन॥ ५

ब्राह्मणों के कर्मों का भण्डाफोड़ करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

मद पियहिं मलेच्छन साथ मांस नित खाहीं।
साहू पर नहिं द्विज कगज बनत सजाहीं॥

---

१ नारायण प्रसाद मिश्र— लोकोक्ति शतक (१८९६ ई०) पृष्ठ ७
२ म० नारायण प्रसाद अरोड़ा— प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १३२ ३३ 'होली'
—प्रतापनारायण मिश्र
३ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १० ('कनाराष्टक')
४ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ९ ('कनाराष्टक')
५ —वही— ४ १० '—वही—

गनिका गह जातहि कलप बस धन नाहीं।
सत करम हेतु जनु घर मह अग्रहु नाहीं ॥'[1]

समाज सुधारक होने के नाते मिश्र जी लोगों की केवल बुराई ही नहीं करते थे बल्कि उन्हें सुगुणों से अवगत कराकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित भी करते थे। ब्राह्मणों के विषय मे वे कहते हैं—'हमारे कनवजिया भाई लाख गये बीते हैं तो क्या हुआ इनकी दृढ़ चित्तता अभी तक सर्वोपरि है केवल सुझाने वाला इनका चाहिए फिर देखना यह कैसे शीघ्र उन्नत होते हैं।'[2] मिश्र जी समाज को-डाट डपट समझा-बुझा हर तरह से रास्ते पर लाने का प्रयत्न करते थे। उनका सिद्धान्त था—

'काम निकासिय साम दाम भय भेद ते।
सब संग इक से रहत सहत नर खेद ते॥
परत्तल लखि चलिबो चतुरन की बात है।
आंधर भल भवाय के जोता जात है॥'[3]

क्षत्रियों और कायस्थों का उद्देश्य मिश्र जी इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

बालापन के मीत ललक हमसे कब
बस विद्या बिना कहै लोग क्षत्री सबै।
गाली छूट मुह से निकल कहि बोलना
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥

*　　　*　　　*

कलिया और शराब सदा मिलती रहै
जुज पूजा कोई रस्म न हिन्दू की रहै।
बो उर्दू के जाम हमेशा खोलना
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥'[4]

मिश्र जी के समय में भारतीय-नृपति वीरता से पृथक होते जा रहे थे। मुसलमानों और अंग्रेजों की चापलूसी करना ही उनका काम था। इस पर मिश्र जी लिखते हैं—

'जहाँ राज कन्यन के डोला तुरकन के घर जाय।
तहाँ दूसरी कौन बात है जहिमां लोग लजाय॥
ऐसा इन हिमरन ते कुछ होना है।'[5]

---

१ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ४ (गाना समझो चाहे रोना)
२ '—वही—', २, २ पृष्ठ २०
३ प्रतापनारायण मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९९ ई०) पृष्ठ २
४ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९ १० (इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना)
५ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ११८

अन्यत्र एक स्थान पर मिश्र जी प्रमुख जातियों की आलोचना करते हुए उनके दुष्कृत्यों की ओर संकेत करते हैं—

'द्विज ह्वै पढ़िबो लिखिबो तजि के जे प्रतिग्रह केवल जानत है।
नृप ह्वै रन रंग में रोवत जो गनिकान ही सों रतिमानत है॥
धन साथ के सातहू दोषन सों बनिया पर दुःख न मानत है।
निज धर्म भली बिधि सों जु नहीं पहिचानत हैं तिन्हैं खानत है॥'[1]

मिश्र जी को स्त्रियों की दयनीय स्थिति के प्रति भी सहानुभूति थी। वह स्त्री पुरुषों की समान उन्नति चाहते थे। समाज की उन्नति के लिए दोनों की उन्नति आवश्यक मानते थे। इसीलिए वह स्त्री शिक्षा के पक्षपाती थे। वे लिखते हैं—पुरुषों के लिए सब कहीं पाठशाला इनके लिए यदि है भी तो न होने के बराबर यदि आज सब लोग इधर मुँह फेरें तो शायद कुछ दिनों में कुछ आशा हो नहीं आज दिन के लेख तो हमें यही जान पड़ता है कि जैसे अर्धांगी नामक बीमारी से स्थूल शरीर आधा किसी काम का नहीं रहना है कि अधांगी स्त्री का नाम इसलिए रखा गया वैसे ही इस अर्धांगी के कारण मन बुद्धि आत्मा स्वातन्त्र्य उदार-चित्ततादि आधी (नहीं बिल्कुल) निकम्मी हो जाती है। मनुष्य केवल भय निद्रादि के काम का रह जाता है सो भी निज बस नहीं।[2] इसके अतिरिक्त बालविवाह के मिश्र जी प्रबल विरोधी थे। वे कहते हैं— आर्यावर्तीय जनों को सर्वथा अनिष्ट-कारक होने के कारण धर्मशास्त्र पुराण तो क्या बाल्यविवाह की विधि आज्ञा या प्रमाण वाल्हा तक में नहीं है। शीघ्रबोध के जिन श्लोकों को प्रमाण मान के हिन्दू भाई इस घोर कुरीति पर फिदा हैं जिसके लिए नई रोशनी वाले बिचारे काशीनाथ पर फब्ती बाजी करते हैं उनका ठीक-ठीक अर्थ ही कोई नहीं बिचारता नहीं तो उसमें तो बड़ा-बड़ा निषेध करके भयानक रीति से बाल्य-विवाह का निषेध ही है।[3] अधिक बाल विधवाओं के बढ़ने का कारण भी मिश्र जी बालविवाह ही मानते हैं— यदि बाल विवाह की प्रथा उठ जाय तो विधवा विवाह की बड़ी आवश्यकता ही न रहे।[4] बाल विधवाओं की दशा भी मिश्र जी के हृदय को विदीर्ण करती है और इसी से वे बाल-विवाह और वृद्ध विवाह के विपक्षी हैं—

'कौन करेगो नहिं करुनत मुनि बिपत बाल बिधवन की है।
ताते बढ़िकै करुना कान्य कुब्ज कन्यन की है॥
बर परे पितु मातु कमाई युवति बाल बदन की है।'

---

1 सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९०४ ई०) पृष्ठ ४३
2 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या २ (स्त्री)।
3 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ११ ('बाल्यविवाह विषयक एक बोध')
4 'ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ६ ('सोऽयम् कारकेण')

मधु सम समझो आति नहिं वनिता रिपि भशन की है ॥
काहे न कलप जियत ससम पर हा ! जेहि ससम रमाई है ।
दीन बन्धु बिन दीन को दीसत कोऊ न सहाई है ॥ [1]

सरकार में जब सहवास बिल के पास होने की बातचीत चली (और देश के बहुत से लोगों ने विरोध किया) तब मिश्र जी ने उसका बड़े जोरदार शब्दों में समर्थन किया और देशवासियों को भी उसके गुण बतलाकर उसकी ओर प्रेरित किया।[2] मिश्र जी बहुत-कुछ आधुनिक विचारों के थे, वे वर-कन्या की इच्छा से होने वाले विवाह को ही श्रेष्ठ समझते थे— इसमें उत्तम यही है कि विवाह केवल वर और कन्या ही की इच्छा से होना ठीक है, नहीं तो दोनों की जीवन-यात्रा में बाधा पड़ना सम्भव है।[3] इसके अतिरिक्त मिश्र जी दहेज प्रथा, अपव्यय, समुद्रयात्रानिषेध आदि के विरोधी थे। अपने समय की सम्यक स्थितियों पर दृष्टि डालते हुए मिश्र जी लिखते हैं— नाना भाँति के क्लेश और हानि सहना पर पुरानी लकीर से एक अंगुल भी बाहर न होना, बिरादरी में दो दिन की वाह-वाह के लिए ऋण काढ़ के सैकड़ों की आतिशबाजी छिन भर में फूंक के सन्तान के माथे कर्ज मढ़ जाना, केवल नाई और पुरोहित की प्रसन्नता के लिए साठ बरस और आठ बरस के वर-कन्या की जोड़ी मिलाना तथा दोनों का जन्म नशाना, पाँच बरस की विधवा का यौवन काल में व्यभिचार एवं भ्रूण हत्या टुकुर-टुकुर देखते रहना वरंच छिपाने का यत्न करना पर विधवा विवाह का नाम लेने वालों से मुंह बिचकाना, भूखों मर जाना पर अपना पराया धन लगा के छोटा-मोटा धंधा तथा दस पांच की नौकरी न करना, लड़कियों को जवान बिठला रखना, उनकी मनोवेदना जनित शाप सहना पर बराबर वाले अथवा कुछ अट्ठारह बीस विशुद्ध वंशज के साथ विवाह न करना, दहेज की दुष्ट प्रथा के मारे नई पौध की उन्नति मिट्टी में मिलाना, बन्धु-बान्धव होटलों में खाया करें, विधर्मिनी स्त्रियों के मुंह में मुंह मिलाया करें अथवा कोटि-कोटि कुकर्म कर-कर जेल में जाया करें कुछ चिन्ता नहीं, पर विद्या पढ़ने और गुण सीखने के लिए विलायत हो आवें तो उन्हें जाति में न मिलाना।[4]

समाज की निर्धनता के भी अनेक चित्र मिश्र जी ने अपने साहित्य में खींचे हैं। उनका कहना है— अब हमारा यह सिद्धान्त सत्य होने में किसी को कुछ सन्देह न होगा कि जितना दरिद्र मुसलमानों के सात सौ वर्ष के प्रचण्ड शासन द्वारा न फैला

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा— प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ९९
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ७ ('सहवास बिल अवश्य पास होगा')
३ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ ('स्त्री')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या २ (मलमसी')

था, उतना, वरन उससे अत्यधिक इस नीतिमय राज्य में विस्तृत है।[1] श्रमिक समाज की दशा का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं—

साग पात सग रूखो सूखो अन्न खाहिं नित।
नोन महग अति मिलत रहहिं तरसत तेहि के हित॥
गाय भैंस जो होति तासु घृत दूध न खाहीं।
ताहि बेंचि कछु अन्न लाय डारहिं घर माहीं॥
मठा होय अथवा काहू के घर ते आवै।
सोई खावै पावै रोटिन कर साथ पुरावै॥
सीतकाल में तन्दुलकर तृण ओढ़ रजाई।
राति बितावहिं बृद्ध तरुण, सिसु लोग लुगाई॥[2]

मिश्र जी के समय में व्यापार कृषि आदि में भी कोई लाभ नहीं था इससे निर्धनता और बढ़ रही थी—"कृषि वाणिज्य शिल्प सवारि किसी में भी कुछ तत्व नहीं है। खेतों की उपज अतिवृष्टि अनावृष्टि जगतों का घट जाना रोग और नहरों की वृद्धि इत्यादि ने मिट्टी कर दी है। जो कुछ उपजता भी है वह कर के खलिहान में नहीं आने पाता ऊपर ही ऊपर उड़ जाता है। रुजगार व्यौहार में कहीं कुछ दम नहीं पड़ता। जिन बाजारों में अभी दस बरस भी नहीं हुए कंचन बरसता था वहाँ अब दूकानें भायँ भायँ होती हैं।[3] कृषि की उस समय बड़ी ही दयनीय स्थिति थी। प्राय प्रत्येक वर्ष अतिवृष्टि या अनावृष्टि से कृषि नष्ट हो जाती थी। लोग इसे दैवी प्रकोप समझते थे और इस प्रकोप को शान्त करने के लिए अनेक अनुष्ठान किए जाते थे। मिश्र जी भी इन अनुष्ठानों में बड़ी तत्परता से भाग लेते थे—सन् १८७८ ई० (१९३५ वि०) में अवर्षण हुआ जिसके कारण कृषि नष्ट हो गई। चारों ओर त्राहि त्राहि मचने लगी। पानी बरसने के लिए प्रत्येक गावों में हवन पण्डितों और कुमारिकाओं के भोज आदि होने लगे। बथर (जिला उन्नाव) के सिद्धेश्वर मन्दिर में भी हवन किया गया। प्रतापनारायण जी भी इस हवन में सम्मिलित थे। जब हवन समाप्त हो गया तब मिश्र जी ने बड़े सुन्दर राग में दो मलार-गीत गाये। कहते हैं कि पण्डित और कुमारिकायें भोजन कर चुकी कि मूसलाधार जलवृष्टि होने लगी।[4] मिश्र जी द्वारा गाया गया एक मलार-गीत इस प्रकार है—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड [illegible] संख्या १२ ('इनकमटैक्स')
२ —वही— ६ ४ ('युवराजकुमार स्वागत')
३ —वही— [illegible] ८ ('होली है')
४ डा० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४० ई०) पृष्ठ २१ (प्रताप लहरी) में अवर्षण का काल १९५३ वि० दिया हुआ है जब कि मिश्र जी की मृत्यु १९५१ वि० में ही हो गई थी। अतः यह मुद्रण की अशुद्धि है। १९५३ के स्थान पर १९३५ होना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से भी १९३५ वि० भयंकर अवर्षण का काल था।)

जल बिन सूखत खेत गोपाल ।
बरसत नहीं मेघ जल केगव कृषक फिरत बेहाल ।
बरस्यो नहीं मघा महि जासों जल यस होत निहाल ॥
निकसि गये पूरवा अब पुनि मागे कौन हवाल ।
हे घनश्याम सघन घन आवत नीर न होत विशाल ॥
कृपासिंधु बरसावहु बहु जल मक्तन के प्रतिपाल ।
प्रेमदास कर जोरि नाथ सों गावत मेघ मलार ॥ १

*   *   *

मशीनों के हो जाने से कुटीर उद्योग धन्धे समाप्त हो गये थे । इनके दुष्परिणाम को मिश्र जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—'आगे सौ पचास रुपये लगा के छोटा मोटा धंधा कर उठाता तो भी चैन से दिन बिताता था । पर आज हम देखते हैं जो हजारों अटकाए बैठे हैं वे भी झाखते रहते हैं । हजारों गरीब लोग एक लढ़िया से घर भर का पालन करते थे । उनको रेल ने सर्वनाश कर दिया । हजारों अनाथ विधवा पिसौनी-कुटौनी कर खाती थीं उनकी रोटी पन चक्कियों ने हर ली । हजारों कोरी कम्बल खेस, गजी गाढ़ा बना के निर्वाह कर लेते थे । उन्हें सत्यानाश में मिलाने को पुतली घर खड़े हुए हैं । २ औद्योगिक केन्द्र कानपुर की आर्थिक दशा के विषय में मिश्र जी लिखते हैं— हमारा कानपुर जो अब से दस वर्ष पहिले था अब नहीं रहा । यह तो रोज सुन लीजिए कि आज फलाने बिगड़ गये पर यह सुनने को हम मुद्दत से तरसते हैं कि इस साल फलाने इस काम में बन बैठे । जब आमदनी के इन उत्तम और मध्यम मार्गों की यह दशा है तो सवा-सूसिया का कहना ही क्या ? सैकड़ों पढ़े नित मारे-मारे फिरते है । बिना सिफारिश कोई सेंत नहीं पूछता । ३ बेकारी मिश्र जी के समय में अपने उग्र रूप में थी—

'जे विद्या अरु गुन सीखत बहु वर्ष बितावें ।
बिना सिफारिश उचित नौकरी सोउ न पावें ।
उदर हेत जे निर बेचन पलटन महं जाहीं ।
मारे रग बिन ठौर आदरित वेहू नाहीं । ४

समाज की निर्धनता महंगी अकाल बेकारी आदि से मिश्र जी बहुत व्यथित थे । जब उनसे समाज का दुख न देखा गया तो वे कहने लगे—

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा— प्रतापलहरी, (१९४९ ई०) पृष्ठ २०१
२ 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ २७२
३ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १२ (इतकमटकम)
४ —वही— खण्ड ६ संख्या ५ (स्वागतं महाशय)

'अहो मित्र धन संचय करो सब गुन गन छप्पर पर धरो।
जिहि बिन बुद्धि बिकल सब काल सों बहाल न एक कंगाल ॥ १

आगे मिश्र जी को अपने अतीत की याद आती है और वह फिर दुखित होकर कहते हैं—

'हा दुरदैव ! आज हमरे पापी पेटहु की तृपति हराम।
किस सों कहा साय किमि पालें छोटे सिसु अरु कृशतनु बाम ॥
वे बिन कबहूँ फेर फिरैंगे ? कहु धौं गये हाय रे राम।
जब हम कहत रहे निज झूठें सकल सृष्टि सों तृप्यन्ताम ॥ २

मिश्र जी में सनातन ढंग से सोचने की अपूर्व शक्ति थी। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि वृक्षों का पृथ्वी की उर्वरा शक्ति से घनिष्ट संबंध है। वे कहते हैं— जब से हमारे देश में वृक्षों का नाश होने लगा तभी से हमारी धरती माता जीर्ण हो गई। वर्षा की न्यूनता और रोगों की वृद्धि हो गई। यदि अब भी हमारे देश हितैषी भाई धरती माता का भला चाहते हैं तो वृक्ष और घास का नाश होना रोकें। लोगों को उपदेश देना अपनी जमीन पर के पेड़ों को न काटना सदा उनकी संख्या बढ़ाते रहना, सरकार से भी इस विषय में प्रार्थना करते रहना इत्यादि ही उपाय हैं। पीपल का वृक्ष पाया होता है यह औरों से अधिक प्राण सोखता है इसी से उसका काटना वर्जित है। जहाँ तक हो सके उसको तो काटने से अवश्य ही बचाइए। ३ देश के कल्याण को लक्ष्य कर मिश्र जी को वृक्षों से इतना प्रेम है कि पितृ पक्ष में उनकी तृप्ति के लिए तर्पण तक करते हैं—

बिगरि जाय जलवायु बढ़ै रुज होय अवसन दुख परिणाम।
पै यह समझन हार कौन ? सब बन काटहिं अरु सवहिं बाम ॥
इरियत ! कछु तरपन हित तुम्हरों लिखन में पर खिन्न अरु नाम।
याते कहियत अबो सबाई सब बनस्पति तृप्यन्ताम ॥ ४

समाज में फैली हुई नशाखोरी और रिश्वत ने भी मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया। रिश्वत के विषय में मिश्र जी लिखते हैं— कुछ दिनों से हमारे देश में ऐसा प्रचार हो गया है कि मूर्खों का कौन कहे पढ़े लिखे लोग भी इस प्रकार

---

१ प्रतापनारायण मिश्र—सोनोबिन दातन (१८९६ ई० पृष्ठ ३

२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ६० तृप्यन्ताम—प्रतापनारायण मिश्र

३ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १० (धरती माता की पूजा)

४ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा— प्रतापलहरी' (१९४० ई०) पृष्ठ ५१ तृप्यन्ताम—प्रतापनारायण मिश्र

प्रत्यक्ष पाप से किंचिन्मात्र लज्जा और घृणा नहीं करते। कितने ही सेवावृत्ता (नौकरी पेशा) लोगों के तो मुंह हराम की हड्डी ऐसी दात लग गई है कि वे अधिक वेतन की जगह छोड़ के मेरा-तेरा खुशामद करके वरच कुछ अपनी गाठ से पूजक इस बालाई आमदनी के लिए थोड़े से मालिक पर नियत हो जाने ही को बड़ी चतुरता समझते हैं। हम बहुतों को प्रतिदिन ऐसी बातें करते सुनते हैं कि कहो उस्ताद पोस्ट तो बहुत अच्छी हाथ लगी भला कुछ ऊपरी तरावट भी है?[1] नशेबाजी का भी मिश्र जी बड़ा अच्छा वर्णन करते हैं—

> सिख गलीवा हैं मजलिस मां खोपरी पाउड़ परत बिलाय।
> फट फट कोऊ बोतल खोल कट-कट कोऊ हाड़ चबाय।।
> साम अफीमन के कोउ गोटा आँखी उघरें और रहि जाय।
> दहक चिलमें रे गांजन की मानो बन मां लागि दवारी।।[2]

समाज की विषम परिस्थितियों ने मिश्र जी को एक सशक्त उपदेशक का रूप प्रदान किया था। मिश्र जी कबीर की तरह अक्खड़ उपदेशक नहीं थे वह बड़े ही मिष्ट नम्र और शिष्ट उपदेशक थे। चिढ़कर भी वह अपने उपदेश में कटु पर मीठे व्यंग्य ही प्रयुक्त करते थे। ग्रामवासियों को उनकी ही जन सामान्य भाषा में तन्मयता के साथ समझाना उनका लक्ष्य था। वे कहते हैं।

> धन के ऊपर तन मन वारो कीरति चली अगाधित जाय।
> साथ अमरौती ना कोऊ आया ना खावै ते पीठि मड़ाय।।
> मरन मउया है सबही का कोऊ आज मरा कोउ काल्हि।
> धन के कारन जो करि महो चलि है जगत-जगत लग नाउ।।
> आखिर इक दिन मरे परे सब कौआ गीध मासु मा खाय।
> तेहित भया यह कहियत हैं कछु करि चलो धम के काम।।[3]

मिश्र जी समाज के आचरण पर दृष्टि रखते थे। वह किया के किये हुए को न मानना पाप समझते थे। उनका कहना था कि इतना और स्मरण रखिए कि जिसने अपना प्राण बचाने में सचमुच उद्योग किया हो उसके लिए यदि सारा धन काम में आवे तो दे देना उचित है एवं जिसने मान सभ्रम (इज्जत) बचाया हो उसके लिए धन और प्राण दोनों भी दना योग्य है। तथा जिसने अपने साथ नेकी

---

१ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ३ (सिम्बत)
२ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा, प्रतापलहरी' (१९४९ ई०)—पृष्ठ २१७
'कानपुर माहात्म्य' —प्रतापनारायण मिश्र
स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २१५
३ कानपुर माहात्म्य—प्रतापनारायण मिश्र

स्नेह किया हो उस पर धन प्रान और इज्जत सब वार देना महादान है।[1] स्वाभिमान की रक्षा करना भी मिश्र जी समाजोन्नति के लिए आवश्यक मानते हैं — हम अपने पाठकों को सम्मति देते हैं कि कभी किसी दशा में अपने को किसी प्रकार तुच्छ न समझें वरंच महात्माओं के इस कथन पर दृढ़ रहें कि जगत के लोग उसी की प्रतिष्ठा करते हैं जो स्वयं अपनी प्रतिष्ठा करना जानता है। और विचार कर देखिये तो नित्य बड़े-बड़े उत्तमोत्तम कीर्तिकारक कार्य हैं सब मनुष्यों के द्वारा सम्पादित होते हैं फिर हम क्या मनुष्य नहीं हैं या कुछ कर नहीं सकते ? [2]

मिश्र जी के समय में आपसी फूट बहुत अधिक थी। वे लिखते हैं—

माय माय आपस में सर परदेशिन के पायन पर।

यहै हय भारत गनि राहु घर का भेदिया लंका दाहु॥ [3]

छक परस्पर बर वारुणी सबको भान गयो री।

घरन—घरन माइन—माइन मे जूता उछरि रह्यो री॥'[4]

इस फूट को मिश्र जी समाजोन्नति में बाधक समझते थे इसमें वे सन्त एकता का प्रचार किया करते थे—

प्रीति परस्पर राखहु मीत बढ़ है सब दुख सहजहि मीत।

नहीं एकता सरिस बस कोय एक-एक मिलि ग्यारह होय॥ [5]

उनका एकता पर पूरा विश्वास था। वे कहते हैं—'यदि सरकार को यह निश्चय हो जाय कि एक समाज पर एक स्थान पर या एक हिन्दू पर कोई आपत्ति आवेगी तो जाति मात्र उसकी सहानुभूति के लिए उद्यत हो जायगी—जैसा मुसलमान करते हैं तो कभी सरकार हमको और मुसलमानों को दो आंखों से न देखती। क्या कारण है कि एक ही राजा की दो प्रजा उनमें से एक का पक्ष लिया जाय दूसरे पर दबाव डाला जाय ? यही कारण है कि हिन्दुओं में एकमत्य नहीं।[6] मिश्र जी हिन्दू मुसलमान और क्रिश्चियन तीनों में एकता स्थापित करना चाहते थे। उनमें किसी प्रकार का साम्प्रदायिक विष नहीं था—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ३ ('दानपात्र')

२ प्रतापनारायण मिश्र ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६७५ सुचाल शिक्षा प्रतापनारायण मिश्र

३ प्रतापनारायण मिश्र लोकोक्ति शतक (१८९६ ई०)—पृष्ठ २

४ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४९ ई०)—पृष्ठ ११७ होलिका वन्दन—प्रतापनारायण मिश्र

५ प्रतापनारायण मिश्र—लोकोक्ति शतक (१८९६ ई०)—पृष्ठ ७

६ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० ('तीन दयावन नियम को पालक राजा लोग')

बहैं रहा पर तीन मत हिंदु यवन क्रिस्तान।
भारत की शुभ देह में तीनहु अस्थि समान॥
एक दूसरे सों इहाँ, पाव जो न सहाय।
सौं अतिन निरवाह में कठिनाई परिजाय।[1]

मिश्र जी एकता स्थापन की ईश्वर से भी प्रार्थना करते हैं—

'नर नारी पशु पंछि सुख करहिं परस्पर प्रीति।
यह इच्छा परताप की पुरवहु प्रभु मन रीति॥[2]

मिश्र जी स्वावलम्बन पर विशेष ज़ोर देते थे। परतन्त्र भारत को उनकी दृष्टि में स्वावलम्बी होना नितान्त आवश्यक था। इसीलिए वह भारतीयों को प्रबोधते हुए कहते हैं—

जब लगि तजि सब सकमकुच अरु आस पराई।
नहिं करिहौ अपने हाथन आपनी भलाई॥
अपनी भाषा भेष भाव भोजन भाइन कह।
जब लग जगते उत्तम नहिं जानिहयौ जिय मह॥
तब लग उपाय कोटिन करत अगनित जनम बितायहौ।
प सांचो सुख सपति सुजस सपनेहु नहिं लखि पाय हौं॥[3]

मिश्र जी अपने युग के श्रेष्ठ समाज सुधारकों में थे। वे अपने समय की प्रत्येक स्थिति को अच्छी तरह देखकर गहराई से उस पर विचार कर समुचित सलाह देते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन समाज सेवा के लिए था वह इसके लिए अपने शरीर की भी चिन्ता न करते थे। समाज का दुख वह अपने दुख से अधिक समझते थे और उसे दूर करने में मग्न रहते थे डा० राम अवध द्विवेदी लिखते हैं— अपने मित्र बाबू हरिश्चन्द्र के समान वे तत्कालीन समस्याओं में गहरी रुचि लेते थे और सुधारक के उत्साह से परिपूर्ण थे। सूक्ष्मदर्शी और प्राय पैनी समीक्षाओं द्वारा उन्होंने तत्कालीन जन-समाज को विक्षुब्ध करने वाली समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया।[4]

धार्मिक स्थिति

मिश्र जी के समय तक हिन्दू धर्म बहुत सकीर्ण हो चुका था। उसका सम्बन्ध अब केवल पापाचार से रह गया था बहुदेव वाद रूढ़ि प्रियता अन्धविश्वास अपन

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १ ('पशु प्रार्थना')
२ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १ (पशु प्रार्थना)—प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या १२ (अंतिम सम्भाषण)
४ डा० रामअवध द्विवेदी—हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा (२०११ वि०)—पृष्ठ १४५

उतरे पर थे। अपने अपने देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करना ही उस समय के उपासकों को अभीष्ट था। शैव शाक्त और वैष्णव मतवाद में पड़कर आपस में झगड़ रहे थे। एक-दूसरे की त्रुटियाँ निकालने और नीचा दिखाने में ही वे अपनी विजय समझते थे। आपसी विद्वेष के कारण आध्यात्मिक विकास मृत प्राय हो चुका था। मूर्तिपूजक अपने आराध्य की आड़ लेकर अनेक कुकृत्यों में तत्पर थे। इन उपासकों द्वारा चारों ओर अनाचार मिथ्याचार और वाह्याडम्बर फैल रहे थे। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं—तीर्थों में व्यभिचार के अड्डे बन हुए थे महन्तों के घर पापाचार के आश्रय थे और मूर्तियों को पुजवाने वाले पंडे विलास में डूबे हुए थे।[1] काली शक्ति और चण्डी के उपासक अपनी उपासना में हिंसा को विशेषस्थान देते थे। बिना बलि के उनकी उपासना सर्वथा अधूरी रहती थी। भूत प्रेत और भैरव के उपासक भी दिन पर-दिन बढ़ते जा रहे थे जिससे और भी अन्धविश्वास फैल रहा था। सभी मतवादी शिष्य मूडने और अपने मत के प्रचार में बड़ी तत्परता से काम कर रहे थे। गाणपत्य और सूर्योपासकों की भी उस समय कमी नहीं थी। बहुत से नये-नये नामधारी मत भी धार्मिक-जगत में प्रादुर्भूत हो रहे थे। इन सबकी धार्मिक एकता बिल्कुल समाप्त हो गई थी। सभी अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलाप रहे थे।

धार्मिक-जगत में भी प्राय ब्राह्मणों का ही प्रभुत्व था। अधिकांश ब्राह्मण वैष्णव धर्म के उपासक थे जिसमें मूर्ति पूजा धर्मान्धता और कर्मकाण्ड का पोषण हो रहा था। ये अपने आगे किसी दूसरे को कुछ समझते ही नहीं थे। पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों को ही छाती से लगाये बैठे थे। इनमें बौद्धिकता का नाम-मात्र का न थी केवल बाहरी दिखावा ही प्रमुख था। पुरानी रूढ़ियों वह भी विकृत के पोषक होने के कारण सामयिक-विकास से उदासीन थे। ये आँख मूंदकर अपने ही राग में भ्रमण करना चाहते थे। अशिक्षा के कारण पुराणों और वेदों के अर्थ में अनर्थ हो रहा था और ये श्रेष्ठ ग्रन्थ इनके दुराचार के पोषक बने थे। ब्राह्मणों का उस समय सामान्य जनता पर अच्छा प्रभाव था इससे आस्तिकता का विशेष प्रचार हो रहा था। वेद और पुराण देववाणी समझ कर पूजे जा रहे थे। मोक्षप्राप्ति मायावाद, अवतारवाद आदि पर जनता को अटूट विश्वास था।[2]

---

1 रामधारी सिंह 'दिनकर'—'संस्कृति के चार अध्याय' (१९५६ ई०)—पृ० ३१८

2 रामधारी सिंह 'दिनकर'—संस्कृति के चार अध्याय (१९५६ ई०) पृ० ४६६-६६ और डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ ८०-८१

इस उपर्युक्त धार्मिक स्थिति में ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई और ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ। पर भारतीयों की धर्मान्धता और मूर्तिमन्न आस्था के कारण ईसाई धर्म को भारत में सफलता नहीं प्राप्त हुई। केवल नव-युवक वर्ग ही इसकी ओर आकृष्ट हुआ और वह भी अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से। भारतीय नवयुवक, अंग्रेजों की तड़क भड़क (फैशन) और स्वच्छन्दता से विशेष प्रभावित हुए। इनकी रुचि ईसाई धर्म से उतनी न थी जितनी उनके रहन-सहन और वेश भूषा में थी। पुराने लोग ईसाई धर्म को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसके आचार-व्यवहार उन्हें पसन्द न थे। मांस भक्षण और शराब आदि से इन्हें बड़ी नफरत था।[1] फिर भी नवयुवकों का ईसाई-धर्म की ओर आकृष्ट होना भारत के लिए कम घातक नहीं था। इससे भविष्य में हिन्दू-धर्म के नष्ट होने की आशंका थी। दूसरे समाज में भी बड़ी अशान्ति फैल रही थी क्योंकि पिता का पुत्र जब ईसाई धर्मावलम्बी बन मांस और शराब आदि का प्रयोग करने लगता तो पिता उसे परिवार से बहिष्कृत कर देता। इससे परिवार में विघटन और असंतोष प्रारम्भ हुआ। अपने पुत्रों को लोग अंग्रेजी पढ़ाने से डरने लगे। ऐसी स्थिति में धार्मिक नेताओं ने ईसाई धर्म के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया।

ईसाई धर्म प्रचारक हिन्दू धर्म की आडम्बर प्रियता संकीर्णता फूट आदि की आलोचना कर भारतीय नवयुवकों को अपनी ओर मिलाने में लगे थे और भारतीय नवयुवक भी उनके सम्पर्क से हिन्दू धर्म की बुराई करने में कटिबद्ध थे। हिन्दू धर्म के प्रतिबन्ध नवयुवकों को असह्य थे। जाति-पाँति छुआछूत खान-पान में परहेज आदि से नवयुवकों में विद्रोह की अग्नि भड़कने लगी थी। ऐसी स्थिति में (हिन्दू धर्म को ढहता देख) हिन्दू धर्मावलम्बियों की आँखें खुली और उन्होंने नये दृष्टिकोण से अपने धर्म को देखने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व यद्यपि भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार होता चला आ रहा था पर उसके प्रति अब भारतीयों में प्रतिघात की भावना न रह गयी थी। सूफियों के एकेश्वरवाद को भारतीय अद्वैत से जोड़ने लगे थे और उनके विरक्त एवं साधक पीरों के प्रति उन्हें श्रद्धा हो गयी थी। लेकिन, अचानक ईसाई धर्म के प्रचार ने धार्मिक-क्षेत्र में एक नई क्रांति उत्पन्न कर दी। ईसाई धर्म के प्रचारक आभ्यन्तरिक साधना पर जोर न देकर बौद्धिकता के उपासक थे तथा स्वयं भी वह इस्लाम धर्म के पीरों की भाँति विरक्त न थे।[2] इससे प्राचीनता के उपासक भारतीय इनसे घृणा करने लगे और भारतीयों की ओर से इन्हें किसी प्रकार का अपनत्व न प्राप्त हुआ।

---

१ रामधारी सिंह दिनकर—'संस्कृति के चार अध्याय' (१९५६ ई०) पृ० ४३७ ३८
२ —वही— —वही— पृ ४४१

अग्रजी-शिक्षा का प्रचार भारत म तजी म हो रहा था। अग्रजी पढ लिख लोग प्रत्येक चीज म वैज्ञानिकता खोजन लग थ। धार्मिक क्षत्र म फल हुए आडम्बर और पुराणों क पापाचार की भी इनक द्वारा कटु आलोचना की जा रही थी। इसस धीर धीरे धार्मिक बधन शिथिल होन लग। रूढ़िवादी भी अग्रजी वालो क आक्षपों का उत्तर देन क लिए अपन धार्मिक तत्वो को वैज्ञानिक दृष्टि स देखन लग जिसस समाज म फली हुई घोर आस्तिकता का भी आसन डिगन लगा और रूढ़ियो का भी शन शन बहिष्कार प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स भारतीयो मे एक नयी चेतना और बौद्धिकता का विकास हुआ। धार्मिक आडम्बरो म सोयी हुई जनता जगी और उसन अपन को युग क साथ मिलान का प्रयत्न किया। बौद्धिक विकास स धार्मिक क्षत्र म फल हुए विभिन्न मतमतान्तरो की कट्टरता भी शिथिल पडन लगी और बहुत-कुछ उनम सहयोग स्थापित होन लगा। विदेशी जातियो क आन स देश म मास भक्षण तजी स बढ रहा था जिसक परिणाम स्वरूप गायो का वध अत्यधिक संख्या म हो रहा था। चेतना क विकास क साथ ही भारतीयो की दृष्टि गोवध की ओर भी गयी और गोवध बन्द करन के लिए अनक आन्दोलन प्रारम्भ हुए।[1] साथ ही ईसाई और हिन्दू धम क सघष ने भी अनेक आन्दोलनो को जन्म दिया। यह काल पुनर्जागरण का काल था इसक लिए अनक सस्थायें आग बढी और इन्होने नव दृष्टिकोण को व्यापक सुदृढ और सुसगठित रूप प्रदान किया। इस काल क धार्मिक आन्दोलनो म ब्रह्मसमाज प्रार्थना समाज आर्यसमाज ब्रह्मविद्या समाज रामकृष्ण और विवेकानन्द के आन्दोलन प्रमुख थ।

ब्रह्मसमाज न धार्मिक-रूढि परतन्त्रता सती प्रथा जाति-पाति क विरोध मूर्तिपूजा अवतारवाद पर विश्वास आदि का खण्डन का प्रयत्न किया। इस समाज क अनुयायी पुनर्जन्म पर विश्वास न करत थ व सर्वव्यापी ब्रह्म को ही अपना इष्ट मानते थ। प्रार्थना-समाज न शिक्षा पर विशष जोर दिया। मजदूरों तथा स्त्रियो की शिक्षा के लिए अनक पाठशालायें समवादी और दलित जातियो का ऊपर उठान का प्रयत्न किया। आर्य समाज न मूर्तिपूजा का खण्डन करत हुए वैदिक धम का प्रचार किया। इनक द्वारा सगठन नागरी प्रचार और राष्ट्रीय जागरण पर विशष जोर दिया गया। ब्रह्मविद्या समाज (थियासाफिकल सोसाइटी) का उद्देश्य ईश्वर स सम्बन्धित सगोचर नियमो की खोज और उनका प्रचार करना था। इसन मनुष्यो क आचार विचार पर बडा बल दिया। यह विश्व म सभी धर्मो म समन्वय स्थापित करना चाहता था। रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द क भी सिद्धान्त बड उदार थ। इन्होन भारतवासियो का मन कम करने मातृभूमि की सवा करन और

---

1 सार्वजनिकविचारो सान वर्मा शताब्दम स्मान (१९५३ वि०) पृष्ठ ११५

भाग बदन का उपदेश दिया। इनकी दृष्टि म कोई छोटा-बड़ा नही था। ये विश्व बन्धुत्व के पोषक थे। इन्होने सभी धर्मों म ऐक्य स्थापित करते हुए हिन्दू-धर्म की रक्षा की। इस प्रकार य सभी आन्दोलन देश को प्रमुख मानकर चले और इनस मानव मात्र का बड़ा हित हुआ।

कानपुर की स्थिति

देश-व्यापी धार्मिक आन्दोलना से कानपुर अछूता नही रहा। ईसाई धम प्रचार का तो कानपुर प्रमुख गढ बना हुआ था। भारतीय धार्मिक नेताओ के भाषण भी जब-तब कानपुर म हुआ करते थ। अगस्त सन् १८६९ म दयानन्द सरस्वती कानपुर आय और इनका एक बहुत-बडी सभा के बीच भाषण हुआ। इसके बाद सन् १८७९ ई० म कानपुर म आर्य समाज की स्थापना हुई।[२] आय समाज की स्थापना क बाद आय समाजियो के साप्ताहिक भाषण प्रारम्भ हुए। इनसे जनता मे बडी स्फूर्ति आयी। लार्ड लिटन के शासन काल म बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को सिविल सर्विस से पृथक कर दिया गया। इस पर उन्होने सिविल सर्विस के भारतीयकरण का आन्दोलन किया और इसके प्रचार क लिए समस्त भारत का दौडा किया। कानपुर म भी उनका सन् १८७७ ई० मे शानदार व्याख्यान हुआ।[३] २ नवम्बर १८८३ को कानपुर के 'स्टेशन थियटर (आजकल क बड तार घर) म थियोसाफिकल सोसाइटी क प्रमुख नेता कर्नल आलकाट का भाषण हुआ।[४] तदुपरान्त मई १८८४ ई को स्वामी आत्मानन्द सरस्वती न 'विद्या अविद्या पर और सन १८८८ ई० म स्वामी भास्करानन्द न गोरक्षा पर अत्यत प्रभावशील भाषण दिय। इसक साथ ही कानपुर म ३ फरवरी, १८८४ ई० मे स्वदश हितवर्धिनी सभा' जनवरी १८९२ ई० म श्री भारत धर्म महामण्डल' की स्थापना हुई। इसक अतिरिक्त भी सनातन धर्म सभा 'गोरक्षिणी सभा आदि अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही थी।[५] कानपुर म बढते हुए ईसाई धम क प्रचार का रोकन म स्थानीय हिन्दू सुधारक पूरी तरह

१ मांवलिया बिहारीलाल वर्मा—विश्वधर्म-दर्शन' (१९५३ ई०) पृष्ठ ५४२

२ 'रामराज्य' (कानपुर) ८ अक्टूबर १९५६ ई० प्रतापनारायण मिश्र-एक ऐतिहासिक विश्लेषण'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

३ रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर, १९५६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

४ 'रामराज्य (कानपुर) १ अक्टूबर, १९५६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

५ रामराज्य' (कानपुर) ३ सितम्बर १९५६ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
रमाकान्त त्रिपाठी हिन्दी गद्य मीमांसा (तृतीय सस्करण) पृ २५५

दत्तचित थे। इनकी पादरियों से मुठभेड़ प्राय हुआ करती थी। उपर्युक्त धार्मिक संस्थाओं के महोत्सव और साप्ताहिक भाषण भी होते रहते थे। इस प्रकार कानपुर धार्मिक-क्षेत्र में बड़ी तेजी से कार्य कर रहा था। यहाँ पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कानपुर के धार्मिक क्षेत्र के कर्त्ता धर्त्ता प्रतापनारायण मिश्र और उनके सहयोगी ही थे।

मिश्र जी पर प्रभाव

तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी मिश्र जी के ऊपर अभिन्न प्रभाव पड़ा। उस समय के प्रमुख धार्मिक आन्दोलनों, ईसाई धर्म प्रचारकों, मतमतान्तरों आदि के अनेक चित्र उनके साहित्य में मिलते हैं। मिश्र जी ने अपने समय की स्थिति को बड़ी गम्भीरता से साथ देखा, समझा और विचार किया। सब प्रथम मिश्र जी जनता को तत्कालीन स्थिति से परिचय कराते फिर उसके प्रभाव को दिखाते और अन्त में उसके सुधार का उपाय बताते थे। इस प्रणाली से जनता तो उनकी ओर आकृष्ट होती ही थी साथ ही सत्वर गति से देश का उत्थान भी होता था। जनता स्थिति को अच्छी तरह समझ कर उत्साह से आगे बढ़ती थी। अपने समय की धार्मिक स्थिति का चित्रण मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

बद अभेद दुरे गिरि कन्दर शास्त्र दुके सरितन में।
पाखण्डिन के जाल विस्तरे मत पलटत छिनछिन में॥

* * *

विप्र बेद पढ़िबो तजि निर्दित कर्म करैं चितलाई।
झूठ मान उपदेशत डोलें बन समामो माई॥[1]

* * *

जहाँ देखो तहाँ सब उलटा रीति दिखाई।
सब भांति सनातन कथा सयन बिसराई॥
निज धर्म प्रतिष्ठा बढ़े सोग गवाई।
बनि रहे भीख पर भोजन को सेयकाई॥[2]

इस प्रकार मतवाद निरक्षरता पाखण्ड आदि से निरन्तर देश की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। इसके परिणाम को मिश्र जी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं मतवादों में धार्मिकता असम्भव है। जिस विषय में पूरा अनुभव न हो उसमें मुँह

---

१ प्रतापनारायण मिश्र भारत दुर्दशा रूपक (१० ६०) अंक १ पुष्प वाटिका

२ प्रतापनारायण मिश्र - हठी हम्मीर नाटक एक्ट १ सीन पहिला (हस्त लिखित प्रति)

स के विज्ञ मण्डली के मध्य प्रशंसा पाना असम्भव है। शास्त्रार्थ से ईश्वर का सिद्ध कर देना असम्भव है। बन्धु विरोध करके लाख चतुरता के अच्छत सुख सम्पति बनाये रखना असम्भव है। निरुत्साही से काम होना असम्भव है।[1] आगे फिर वे मानवमात्र को समझाते हुए शैव वैष्णव शाक्त गाणपत्य और सूर्योपासकों में सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करते है—'पुराणों में गंगा की उत्पत्ति विष्णु भगवान के चरणारविन्द से मानी गई है और शिव जी को परम वैष्णव लिखा है। उस परम वैष्णवता की पुष्टि और क्या हो सकती है कि यह उनके चरणोदक को सिर पर धारण करें। यों ही विष्णुदेव को परम शैव कहा है। कथा है कि लक्ष्मी पति सदा सहस्र कमल ले के पार्वती की पूजा किया करते थे। एक दिन एक कमल घट गया तो उन्होंने यह विचार के कि हमारा नाम पुंडरीकाक्ष है एक नेत्र रूपी कम पुंडरीक अपने इष्टदेव के पाद पद्म पर अर्पण कर दिया। सच है, इससे अधिक शैवता और क्या होगी।—वास्तव में विष्णु अर्थात् व्यापक एवं शिव अर्थात् कल्याण मय यह दोनों एक ही प्रेम स्वरूप के नाम हैं पर उसका वर्णन पूर्णतया असम्भव होने के कारण कुछ-कुछ गुण एकत्र करके दो रूप में कल्पना कर लिए गये। अपने शैव भाइयों से पूछना चाहते हैं कि आप भगवान गंगाधर के पूजक होके वैष्णवों के साथ किस बिरते पर द्वेष रख सकते है?—गंगा जी परम शक्ति है इससे शाक्तों के साथ विरोध रखना भी अनुचित हैं।—गाणपत्य हमारे प्रभु (शिव) के पुत्र को ही पूजते हैं अत उनके लिए भी सदाशिव से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि करहु कृपा शिशु सेवक जानी' सूर्यनारायण शंकर का नेत्र ही हैं— वंदे सूर्य शशांक वह्निनयन' फिर क्या नयन शरीर से अलग है जो तुम सूर्योपासकों को अपने भिन्न समझते हो। यद्यपि हमारी समझ में तो आस्तिक मात्र का किसी से द्वेष रखना पाप हैं क्योंकि सब हमारे जगदीश ही की प्रजा है।[2] मिश्र जी यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक 'मत' हैं एकता नहीं स्थापित हो सकती। इसीसे मतों से दूर रहने की जनता को सलाह देते हैं और स्वत भी कहते हैं कि हमारा कोई मत नहीं है।[3]

मिश्र जी वास्तविकता के समर्थक थे आडम्बरों से उन्हें बड़ी घृणा थी। ब्राह्मणों की निरक्षरता पर वह सदैव व्यंग्य किया करते थे। एक बार पुरोहितों ने आर्यसमाजियों के विरुद्ध एक सभा की जिसमें मूर्ति-पूजा का समर्थन किया गया।

---

१ ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या १० ('असम्भव है')

२ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२६ २७ गद्य सर्वस्व - प्रतापनारायण मिश्र

३ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४ गद्य सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र

बीच म वेदों पर वाद विवाद चला और वेदों को सभा म लान की माग हुई । पर किसी भी ब्राह्मण के यहा वेद न निकले । इस पर मिश्र जी लिखते हैं—

'पोथी केहि के घर त नाय कबहू सपनों देखी नाहि ।
रिगबिद जुजबिद साम अथर बन सुनियत आल्ह खंड के माहि ॥
बेदन देखे हम कबहू हैं मोरे अनदाता जजमान ।
पेट चलयत है कलजुग मां तुम्हारे चरन पाय के दान ॥
तब लगि लाला फिर उठि बोले कहुना बेद मिले महराज ।
बेद बिना तुम पण्डित कसे दछिना लेत न आव लाज ॥
धरम के अगुआ ब्राह्मन देउता तिन घर बेद न निकरे हाय ।
इतना सुनते परसो परिगा सब रहि गये सनाका खाय ॥'[1]

मिश्रजी के समय म बनावटी भक्त भी बहुत थे जो भक्ति की आड म अनेक दुष्कम किया करते थ । भक्ति उस समय भक्तो की आमोदपूर्ण जीविका थी । मिश्र जी लिखते हैं– भक्त भी एक प्रकार के नही होते । कोई बगुला भक्त है अर्थात दिखाने मात्र क भक्त, पर मन जसे का तसा । कोई पेटहुल भक्त हैं अर्थात यजमान से दक्षिणा मिलनी चाहिए और काम न किया पूजा ही सही । कोई व्यवहारी भक्त हैं अर्थात 'या महादेव बाबा । भजना तो छप्पन करोड की चौपाई । इन्ही म वह भी हैं जो ससारी पदार्थ तो नही चाहत पर मुक्ति अथवा कनागवास पर मरे धरे हैं । कोई भगत जी हैं तो रास्ते म और मदिर म आंखें सेंकने ही को पूजा की आड पकडत हैं ।[2] भक्तो की दोहरी नीति भी मिश्र जी बडे अच्छे शब्दों म व्यक्त करते हैं—

'मुख मे चारि बेद की बात मन पर धन पर तिय की घातें ।
धनि बगुला भगतन की करनी हाथ सुमिरनी बगल कतरनी ॥[3]

भूत प्रेत पूजक भी उस समय अपना प्रचार बडी तेजी स कर रहे थ जिससे समाज म आडम्बर और अन्धविश्वास बढते जा रहे थ । इन पर मिश्र जी आभार करते हुए कहते हैं—

प्रभु करुनाकर शांति निकेत, तिहि तजि पूजत भूत परेत ।
कस सुख पावै अति आयु बढ़ी के धोखे खाय कृपालु ॥[4]

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४० ई०) पृष्ठ २०० 'कानपुर माहात्म्य' प्रतापनारायण मिश्र
२ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ११७ 'नाव सबाद' प्रतापनारायण मिश्र
४ प्रतापनारायण मिश्र – लोकोक्तिशतक' (१८९१ ई०) पृष्ठ ५
—वही— पृष्ठ १

उस समय के भक्त शिष्य मूड़ना ही अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे। मन में गुरुत्व की भावना बहुत अधिक थी। भोली जनता प्रायः इनकी लम्बी चौड़ी बातों में फंस जाया करती थी। मिश्र जी लिखते हैं—

कोऊ मूरख हिन्दुन को छिन के निज निश्चित शिष्य बनावत है।
बहकाय कटम्ब छुड़ाय छली फिर नेक नहीं अपनावत ॥
कोउ श्यामल रंगहिं सों घिन के जिय सत विलम्ब न लावत है।
यह दुर्गति देखि हहा! हमरी अँखियान लहू भरि आवत है ॥ [१]

समाज में बढ़े हुए पाखण्ड और ढोंग भी मिश्र जी को सह्य न थे। पूजा करने वालों से वे कहते हैं— जो लोग केवल जगत् को दिखाने तथा सामाजिक नियम निभाने को इस विषय में कुछ करते हैं वे व्यर्थ समय न बितावें जितनी देर पूजा पाठ करते हैं उतनी देर कमाने-खाने पढ़ने-गुनने में रहें तो उत्तम है। [२] मिश्र जी बड़े निश्छल आदमी थे उन्हें कपट पसन्द नहीं था। कृत्रिम आस्तिकता पर वे लिखते हैं—हम आपकी बनावटी आस्तिकता पसन्द नहीं है। हम एक सच्चे दृढ़ नास्तिक की प्रतिष्ठा असंख्य कृत्रिम आस्तिकों से अधिक करते हैं। [३]

मिश्र जी के समय में ईसाई धर्म का प्रचार बड़े जोरों से हो रहा था जिससे हिन्दू धर्म को बड़ा खतरा था। मिश्र जी कहते हैं— ईसाई हो जाना या यों कहो कि पादरियों के मायाजाल में फंस जाना ऐसा अनिष्टकारक है कि मनुष्य देशहित और जातिहित से सर्वथा वंचित हो जाता है। [४] मिश्र जी को सबसे बड़ी आशंका नवयुवकों से थी क्योंकि वे बिना समझे बूझे पादरियों के चक्कर में आ जाते थे— उन्हें (नवयुवकों) परमेश्वर न करे पादरियों की चिकनी चुपड़ी बातें असर कर जायें तो हमारी नई पौध निकम्मी हो जाय। [५] मिश्र जी पादरियों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

'हम जो चहैं सो करें पै तुलसा मति कोय।
जग हमार चेला बने जन्म सुफल तब होय ॥ [६]

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १००
'मन की लहर'-प्रतापनारायण मिश्र

२ 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ १२१-२२ 'नाम सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('नास्तिक')

४ —वही— ४ १२ (बड़ी हुई माता)

५ —वही— ४ १२ (—वही—)

६ —वही— १ ९ ('जन्म सुफल कब होय')

ईसाइ होने वाले हिन्दुओं के प्रति मिश्र जी का बड़ी घृणा है। वे अपने क्षोभ को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

गिरजे पग लगि करै कपरे कुट आसुरी भेष तमाम।
भाषा औरो मधुर आसुरी पिट पिट गिट पिट ओ गुड श्याम॥
भोजन अधिक आसुरी जिनमे छूनि न पर हलाल हराम।
ऐसे असुरयती हिंदुन सों होहुन आसुरि तृप्यन्ताम॥ [1]

यहा यह कहना अनावश्यक न होगा कि मिश्र जी को ईसाई धर्म से कोई विरोध न था विरोध उनका ईसाइ धर्म की नीति और उनके हिन्दू धर्म के द्वेष से था। वे लिखते है— 'हम इञ्जील को बुरा कदापि नही कहते वह भी एक धर्म ग्रन्थ है पर उसके पढ़ने वाले अन्य धर्म के द्वेषी न हों।[2] ईसाईयों की द्वेष नीति मिश्र जी को मन्द भ्रमित किये रहती थी। वे जनता को सावधान हुए कहते हैं कि यदि सज्जन ध्यान न दिया तो नई पौध इस दबी हुई आग (ईसाई धर्म) में झुलस कर रह जायगी। और हमारा इस काल का सारा परिश्रम व्यर्थ होगा। स्वर्ग में हमारी आत्मा पछतायेगी।[3]

मिश्र जी के समय में मूर्ति पूजा को नये विचार वाले असार और अंधविश्वास पूर्ण समझने लगे थे और उसे समाप्त करने में प्रयत्नशील थे। यद्यपि मिश्र जी निराकार को मानने वाले थे फिर भी मूर्तिपूजा पर उनकी स्वाभाविक आस्था थी। वे मूर्ति को मन को लगाने या एकाग्र करने का एक चिह्न या संकेत मानते थे।[4] वे कहते हैं—'ईश्वर निराकार है पर मनुष्य अपनी रुचि और दशा के अनुसार उसके विषय में कल्पना कर लिया करता है। जिन मतों में प्रतिमा पूजन का महानिषेध है उनके धर्म ग्रन्था (इंजील तथा कुरान आदि) में भी ईश्वर के हाथ पांव नेत्रादि का वर्णन है, फिर हमारे पूर्वजों के सखो का तो कहना ही क्या है जिनकी कल्पनाशक्ति के विषय में हम सच्चे अभिमान से कह सकते हैं कि दूसरे देशवालों का बसी-बैसी बात समझनी ही कठिन है, मूरत की तो क्या कथा।[5] निराकार साकार के अभि-

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा— प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ५४ तृप्यन्ताम प्रतापनारायण मिश्र
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ ('दबी हुई आग')
३ —वही— खण्ड ४ संख्या १२ '—वही—'
४ प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ १२४ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र
५ प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ११८ शैव-सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र

को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं— 'मनुष्य की भांति वे नाडी आदि के बंधन से बद्ध नहीं हैं इससे हम उन्हें निराकार कह सकते हैं और प्रेम चक्षु से अपने मनोमंदिर में दर्शन करके साकार भी कह सकते है।'[1] इसी से आगे वे कहते हैं— 'यदि मूर्ति बनाने बनवाने की सामर्थ्य न हो तो पृथ्वी, जल आदि अष्ट-मूर्ति बनी बनाई विद्यमान है। वास्तविक प्रेम मूर्ति मन के मंदिर में है ही पर तो भी यह दृश्य मूर्तियाँ भी निरर्थक नहीं है।'[2] उन्हें यह विश्वास है—"जिस देश में शिल्प विद्या का प्रचार और जहां लोगों के जी में स्नेह एवं सहृदयता का उद्गार होगा वहां मूर्ति पूजा किसी के हटाये नहीं हट सकती।[3] मूर्ति पूजा के लिए मिश्र जी प्रेम को सर्वोपरि मानते हैं— पर यह स्मरण रखना चाहिए कि जब मन में प्रेम होगा तभी संसार के यावत् मूर्तिमान तथा अमूर्तिमान पदार्थ शिवमूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप निश्चित होंगे।[4] प्रेम ही को लेकर वे कहते हैं— प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश हितैषी क्यों बनते हैं।[5] वह भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना करते हैं— हे विश्वपते! कभी इस मनोमंदिर में विराजोगे! कभी वह दिन दिखाओगे कि भारतवासी मात्र तुम्हारे हो जाय और यह पवित्र भूमि कैलाश बने।[6]

मिश्र जी धर्मान्धता के घोर विरोधी थे। उन्हें किसी प्रकार का दिखावा पसन्द नहीं था। वे लिखते हैं— यदि घर में कुत्ता कौआ कोई हड्डी डाल दे अथवा खाते समय कोई मांस का नाम ले ले तो भी तो आप मुंह बिचकाते है पर विलायती दियासलाई और विलायती शक्कर जिसमें हड्डी तथा रक्त दोनों पड़े हुए है सो भी न जाने कि किन किन जानवरों के वह आरती के समय बत्ती जलाने की सिंहासन के पास रख लेते हैं और भोग लगा के गटक जाने तक में नहीं हिचकते।[7] मिश्र जी धर्म का परमानंदमय परमात्मा एवं उनके भक्तों से प्रेम तथा संसार में क्षेम स्थापन

---

१ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२१ शिव-सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र

२ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२३ 'शैव-सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र

३ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि० पृष्ठ ६१७ शैव-सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र

४ प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३२ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

५ ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ८ (प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश हितैषी क्यों बनते हैं)

६ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृ० ६३१ 'शैव-सर्वस्व' प्र० ना० मि०

७ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १—२ ('यह तो बतलाइये)

का नेम मात्र समझते थे।[1] उन्हें किसी प्रकार के धार्मिक बंधन मान्य नहीं थे। वे सभी धर्मों और मतों के गुणों के ग्राहक थे। सगुण निर्गुण जप तप मूर्तिपूजा आदि पर उन्हें समान आस्था थी। वह धार्मिक संकीर्णता के कायल नहीं थे। सभी प्रकार की धार्मिक संस्थाओं और प्रवचनों में वह भाग लेते थे। उनके सामने मानवमात्र का कल्याण था किसी धर्म या मत का पोषण नहीं। इसी से उनकी सभी मतों के प्रति सहानुभूति थी।

मिश्र जी सत्य और अहिंसा के उपासक थे। दिन दिन बढ़ते हुए गोवध एवं पशुवध से वे बहुत क्षुब्ध थे। वे कहते हैं—

गऊ बराह्मन जग जाहिर हैं ग्वाल पंडित और खेतिहार।
तिन मां पहिले छाप तुम्हारी पाछे नाव बराह्मन क्यार॥

*　　*　　*

जिनके लरिका खेति करिके पाल मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रक्षा मां जो कछु यतन करो सो क्यार॥
घास के बदले दूध पियाय मरिके देंय हाड़ औ चाम।
पनि वह तन मन धन जो आवे ऐसी अगदम्बा के काम॥[2]

मिश्र जी गायों और पशुओं में (देश के लिए उपयोगी बताते हुए) स्वत विनय कराते हैं जिससे लोगों में दया उत्पन्न हो और उनकी रक्षा करें। गो गुहार सुनिए—

'सुधा सरिस सब को पय प्याऊं घास पात निज पेट भरों।
असन बसन को समरथ सुत उपजाय अभाव हरों॥
गोबर हूं मिस इन्धन के, मूत्रहु मिस रोग बिनास करों।
हाड़ चाम सों करों उपकार अमित जिहि समय मरों॥[3]

इस पर भी—

दुरबल क्षुधित बद्ध लखि मो कहं तनिक दया नहिं धारत हैं।
भूमि पटकि के बकत धातो पर प्राण संहारत हैं॥[4]

अन्य पशु भी इसी प्रकार चीत्कार करते हैं—

"बन बीहड़ परबत नदी जह मानव गति नाहिं।
भांति भांति दुख दे हमहिं, जह मारहि स मांहि॥

---

1 ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ३ ('धर्म और मत')
2 स० नारायणप्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी (१९४ ई०) पृष्ठ २१ ११ कानपुर माहात्म्य—प्रतापनारायण मिश्र
3 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १२ ('गो-गुहार')
4 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १२ ('गो-गुहार')

बरति बालुका पद तरे, उपरि अपरिमित भार।
तेहि पर पग प्रति परत हैं, भाँति भाँति की मार॥
अपने दुख लिखि बोलि हम कर सकते जु बखान।
तौ मामे संदेह नहिं गलि जुनि द्रवत पखान॥ [१]

इतन पर भी—

'सेहिं लोभ लोलुप बधा, हा हा! प्राण हमार।
जिन वस्तुन के नाम ते, लोग लजाहिं घिनाहिं॥
तिनहिं हाय ये कौन विधि, धोवहिं राँधहिं खाहिं।
टप-टप टपकत रकत अरु माछी भिन भिन होय॥
जो उपजत मल मूत तें, तेहि मच्छत किमि कोय।[२]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी स्वयं भी गोरक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ करते हैं। कानपुर तथा उसके बाहर जा जा कर व्याख्यान देना तथा गोरक्षिणी सभायें स्थापित करना उनका प्रमुख कार्य हो गया था। गोरक्षिणी सभा के लिए कानपुर वालों को उत्साहित करते हुए लिखते हैं— इन शहर वालों से तो हम अपने सहृदय अकबरपुर वासियों की धर्म निष्ठता एकता उद्योग उत्साह और साहस की सराहना करेंगे जहाँ श्री युत पंडितवर बद्रीदीन सुकुल श्री युत बाबू तुलसी राम जी अग्रवाल और श्री युत लाला टेकचन्द्र महात्म्यान्वित थोड़े से सज्जनों के आन्दोलन से दो ही महीना के भीतर अनुमान छः सौ रुपया भी एकत्र हो गया सभा भी चिरस्थायी स्थापित हुई है व्याख्यान भी प्रति सप्ताह मनोहर होते हैं और सबने कमर भी मजबूती से बाँध रक्खी है। क्या भाई नगर निवासियों! अधिक न करो तो अपने जिले के लोगों की कुछ तो सहाय दोगे? जहाँ मकानों की आतशबाजी फूँक देते हो हजारों स्वाहा किया करते हो, बैठने हो अनालन में उड़ाते हो वहाँ गऊ माता के नाम पर क्या कुछ भी न निकलेगा? धर्म नामवरी लोक परलोक का सुख सब है पर होना चाहिए।[३] गायों के प्रति मिश्र जी की बड़ी आत्मीयता थी। उनकी महिमा वे बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त करते हैं—

गया माता सुमरौ सुमिरौं कीरति सबसे बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना सुम सहित के पुरिखन बतरिणी देउ तारि॥
तुम्हरे दूध-दही की महिमा जाने देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगे पवित्तर होय॥ [४]

---

२ ब्राह्मण खण्ड ८ संख्या १ पशु प्रार्थना
३ —वही— ८ १ —वही—
१ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ७ ('गोरक्षा')
२ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ २१० 'कानपुर माहात्म्य'—प्रतापनारायण मिश्र)

मिश्र जी का काल पाश्चात्य और हिन्दू संस्कृति के संघर्ष का काल था। अंग्रेजी शिक्षा-समुदाय पाश्चात्य-संस्कृति से प्रभावित था और प्राचीनता-पोषक-समुदाय हिन्दू-संस्कृति से। दोनों संस्कृतियों में बड़ा वभिन्य था पाश्चात्य-संस्कृति वैज्ञानिकता पर जोर दे रही थी और हिन्दू-संस्कृति धर्मान्धता पर। इस कारण दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे की भर्त्सना में कटिबद्ध थीं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग हिन्दू धर्म की रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की खिल्ली उड़ा रहे थे तथा हिन्दू धर्मावलम्बी पाश्चात्य-संस्कृति के अनुयायियों के रहन-सहन और आचरण की कटु-आलोचना कर रहे थे। इससे समाज में बड़ी अशान्ति फैल रही थी और हिन्दू धर्म धीरे धीरे पतन की ओर जा रहा था। ऐसी स्थिति में मिश्र जी ने एक-दूसरे की निन्दा-नीति को छोड़कर हिन्दू-धर्म को वैज्ञानिक-दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर दिया। मिश्र जी को हिन्दू धर्म के पोपाचार मान्य नहीं थे। नवीनता के पोषक होने के कारण वह हिन्दू धर्म को युग के साथ लाना चाहते थे। युग वैज्ञानिकता की ओर बढ़ रहा था इसलिए धार्मिक तत्वों को वैज्ञानिक-दृष्टि से देखने की आवश्यकता थी। मिश्र जी ने बड़ी बौद्धिकता के साथ धार्मिक-तत्वों पर विचार किया है। नयी रोशनी वाले गंगा स्नान और उसके पूर्व की क्रियाओं का बड़ा उपहास करते थे उनको मिश्र जी बड़े अच्छे ढंग से समझाते लिखते हैं— गंगा जमुना आदि के तट पर पहुँच के स्नान में पहिले सिर तथा माथे पर जल इस हेतु चढ़ाते हैं कि चलने से होता है गरमी। और पैरों में अधिक गरमी हुई है उस समय जाते ही पाँव जल में डुबा देंगे तो पाँवों की गरमी सिर पहुँच के विकार करेगी इससे पहिले सिर पर पानी डाला तो वहाँ की गरमी पाँवों में उतर आयी इतनी देर में बैठ जल का स्पर्श किया संकल्प पढ़ा तब तक पाँव से भी गर्मी जाती रही, बस अटक नहाइए।'[1] ऐसे ही मिश्र जी देवालय की बनावट में वैज्ञानिकता सिद्ध करते हुए कहते हैं— 'ऊपर का गुम्बज गोल होता है जिससे चाहे जितना जल बरसे हुए शांति नहीं कर सकता इधर बूँद गिरी उधर भूमि पर आयी। वर्षा में बड़े पर गिर जाते हैं पर कोई छोटी सी शिवालिया कदाचित बहुत ही कम सुना होगा कि गिर पड़ा। इसके अतिरिक्त भूगोल-खगोल ग्रह-नक्षत्र सब गोल हैं और परमात्मा सबका स्वामी सब में व्याप्त है, यह बात भी शिवमंदिर में उपस्थित होती है। उसमें चारों ओर द्वार होते हैं जिनसे सदा स्वच्छ वायु का गमनागमन रहने से रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती। ऊपर से यह ज्ञान होता है कि परमेश्वर के पास आने की किसी ओर से रोक नहीं है सब मार्गों से वह हमें मिल सकते हैं।'[2] इसी प्रकार

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ११ (हमारे यहाँ की कोई बात भी व्यर्थ नहीं)
२ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ११० 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

मूर्ति पर मिश्र जी का विचार है—' मूर्ति बहुधा पाषाण की हानी है। इसका भाव यह है कि उनस हमारा दृढ सम्बन्ध है। दृढ पदार्थों की उपमा पाषाण से दी जाती है। हमारे विश्वास की नीव पत्थर पर है। हमारा धर्म पत्थर का है । ऐसा नही है कि सहज मे और का और हो जाय । बड़ा सुभीता यह भी है कि एक वेर प्रतिमा पधराय दी कई पीढियों को छुट्टी हुई चाहे जैसे असावधान पूजक आवें कुछ हानि नही हो सकती। [1] मिश्र जी बडी सूक्ष्मता और तर्कों के साथ धार्मिक तत्वों पर विचार करत हैं। देवताओं के वाहनों म वज्ञानिकता वे इस प्रकार बताते हैं— इसी भाति पुराणों मे सिंह वृषभ मूषकादि देवताओं के वाहन लिखे हैं। इस पर भी नये मत वाले ठट्ठा किया करते हैं पर यह नहीं विचारते कि सस्कृत में वाहन उसे कहते हैं जिसके द्वारा कोई चले या किसी के द्वारा चलाया जाय। जसे वैद्यक शास्त्र के परमा चाय धन्वन्तरि का नाम जलौकावाहन है इसस यह तात्पय नहीं है कि वे जोंक पर चढते हैं किन्तु यह अभिप्राय है कि व जोंक क चलाने वाले अर्थात् रक्त विकार के हरणाय जोक लगाने की रीति चलाने वाले हैं। इसी प्रकार सिंहवाहिनी का अथ है कि जो वीर पुरुष हैं जिन्हे सब भाषाओं म सिंह का उपनाम दिया जाता है उनका काम, नाम एवं यश ईश्वर की वीरता शक्ति ही चलाती है। हमारे पाठक विचार तो करें कि ऐसी बातों को झूठ गप्प हास्यास्पद कहना विद्या और बुद्धि से वर ही करना है कि और कुछ ? [2] दशावतार पर भी मिश्र जी बडे अच्छे ढग से लिखते हैं— 'सूक्ष्म विचार कीजिये तो विदित हो जायगा कि ससार में जितने जड या चेतन पदार्थ हैं वह सभी यदि अपनी आदिम दशा से अन्तिम गति तक निर्विघ्नता के साथ पहुँच जाय तो दशावतार में आविर्भूत हुए बिना नही रहते, अर्थात् इस प्रकार की गति में प्रकाशित होना ही जगत के यावत् पदार्थों का जाति स्वभाव है। [3] ऐसे ही अनेक धार्मिक पक्षों पर मिश्र जी ने वज्ञानिक ढग स विचार किया है। उनकी शैव सर्वस्व पुस्तिका तथा पौराणिक' गूढार्थ अवतार 'दशावतार पुराण समझने क लिए समझ चाहिए आदि निबन्ध वैज्ञानिक पीठिका पर ही लिखे गये हैं । जिनक देखने से उनकी विलक्षण प्रतिभा का सहज ही परिचय मिल जाता है । कहना न होगा कि मिश्र जी अपने समय के अद्वितीय वज्ञानिक विचारक थे।

मिश्र जी क समय में देश म अनेक धार्मिक-सस्थायें कार्य कर रहीं थी जिनमें स आर्य समाज पर मिश्र जी की सबस अधिक निष्ठा थी। आर्य समाज क वैदिक

---

१ 'प्रतापनारायण—ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२ १४ वि०) पृ ६२२ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ९ (पौराणिक गूढार्थ)

३ '—वही— ८ ,, ११ (अवतार')

धर्म व प्रचार और शुद्धि कार्य ने मिश्र जी को विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट किया था। ३० अक्टूबर १८८३ ई० को जब दयानन्द जी का अजमेर में देहावसान हुआ[1] तो मिश्र जी ने एक बहुत ही शोकपूर्ण गीत लिखा जिसमें उनकी दयानन्द के प्रति निष्ठा स्पष्ट झलकती है। उस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुनियत शत शत बरस जियहि बहु मानुष गुन होना।
स्वामी दयानन्द सरस्वती को तो बरसहु बहुत रहो ना॥
पूरुष अमरोवा लगि हा! हा! को अब नाम करगो।
अति कलङ्क गो कुल, द्विज दुगुन को अब हाय हरगो॥
कह लगि कोउ आँसुन को रोक कहुँ लगि मन समझाय।
ऐसी कठिन पीर मे कसहू धीरज हाय न आय।[2]

इतना होते हुए भी (अर्थात आर्यसमाज से निष्ठा होने पर भी) मिश्र जी आर्य समाज के मूर्तिमन्त उपासक नहीं थे। उसके मूर्तिपूजा एवं पुराणों के विरोध से वह पूरी तरह असहमत थे कारण इसमें समाज में बड़ा मतभेद फैल रहा था। मिश्र जी कहते हैं—क्या ही अच्छी बात होती यदि हमारे आर्यसमाजी भ्रातृगण समझते कि प्रतिमा पत्थर तो है ही हम एक पत्थर के लिए सर्वदा मान्य देश गुरु पण्डितों को पाप कहके चिढ़ाने तथा अनेक कामों में सहायता करने के बदले उनसे अपना बुरा बनाने की क्या पड़ी है?[3] आगे मिश्र जी जब आर्यसमाजियों को दयानन्द सरस्वती का चित्र पूजते देखते हैं तो उनके बनावटीपन पर चिढ़कर कहते हैं—अपने स्वामी जी के चित्र का अनादर नहीं सह सकते जिसका मूल्य छः पैसे और अधिक से अधिक दो रुपया है तथा सुन्दरता भी ऐसी नहीं है जैसी हमारे राम कृष्णादि की तसवीरों में होती है स्मरण भी उसके द्वारा केवल एक विद्वान मात्र का होता है और बस किन्तु हमारी स्वर्ण रजत हीरकादि की देव प्रतिमा पाषाणी है उनका अनादर कोई बात नहीं पर स्वामी जी का फोटो वह खूबसूरत कौरट में बड़ी इज्जत के साथ रखना चाहिए।——हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रतिकृति अथवा वेद भगवान से बढ़ कर नहीं है पर साथ ही यह भी सिद्ध नहीं है कि इनके सिवा और बुद्धि विरुद्ध है। यही अपने पूर्वपुरुषों के साधारण चिह्न का भी हम ममत्व स्वभावतः होना चाहिए, यदि हम उनके संतान हैं। फिर प्रतिमा और पुराण तो उनके वर्षों के परिश्रम का फल है उनका उपहास

---

१ 'रामराज्य (कानपुर) १ अक्टूबर १९२६ ई०, पंडित प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ (हाय बड़ा अनर्थ हुआ)

३ ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ६ (देशोन्नति)

करके हम जगत एव जगदीश्वर को क्या मुह दिखावैंगे ? १ इसके अतिरिक्त आर्य समाजियों में भी धीरे धीरे अशिक्षित बढ़ने लगे और बहुत से अनाचार फलने लगे इससे मिश्र जी को बड़ा असतोष हुआ । वे लिखते हैं—

हाल समाजिन को का कहिए यातन छप्पर वेद उड़ाय ।
प टुइ धारि जनेन को तजि के करतूति न देखी जाय ॥
सगे समाजिन ते निक ऐंठे रांध परोसिन का धरि खाय ।
मुख ते वेद-वेद गुहरावैं लक्षन सब कुलक्षन आंय ॥
मांकु न जाम ससकीरति को लेइन गायत्री को नाँउ ।
तिनका आरज कसे कहिये मैं तो हिन्दू कहत लजाऊ ॥ २

मिश्र जी उसी सस्था और व्यक्ति के प्रशसक थे जो देश काल और जन रुचि को लेकर कार्य करें । स्वामी भास्करानन्द यद्यपि आर्य-समाजी थे पर मूर्ति पूजा और पुराणादि के विरोधी नहीं थे वे एकता को ही प्रमुख मानते थे इस लिए मिश्र जी उनकी सदैव प्रशसा किया करते थ । यहा तक की मिश्र जी उन्हे दयानन्द स भी बढ़कर श्रय देते थे । वे लिखते हैं—

'जस गुरु तस चेला सदा सुनत रहे हम कान ।
पै उनको निखाहु ते तब बच अधिक सुहान ॥
विप्रन कह कहि पोप उन देवन कहें पाषान ।
करि न सक यह एकता मुख्य देश कल्यान ॥
तुम सिखवत कहुं मित्रता कहु स्वदेश हित नीति ।
कहु गोरक्षा धर्म कहु कस न करहिं सब प्रीति ॥३

देश हितकारी कार्यों के ही कारण मिश्र जी श्री भारत धर्म महामण्डल की भी बड़ी सराहना किया करते थे देश भाइयो को समझाते हुए कहते हैं— इन दिनों हिन्दुओं के लिए भारत धर्म महामण्डल और हिन्दोस्तानी मात्र क लिए नेशनल कांग्रेस से बढ़ के दान पात्र कोई नहीं है जिन पर सारे देश का सुख सौभाग्य निर्भर है । यों समाएं कई एक हैं पर वे यदि एक समुदाय का भला चाहती हैं तो दूसरियो के साथ स्पर्धा करती हैं । वरच कभी-कभी परस्पर द्वेष फैलाती हैं अत उनकी सहायता केवल उन्हीं को योग्य है जो उनमें फसे हुए हैं । पर यह दोना उपर्युक्त समाजें वर्षों से सवसाधारण क लिए प्रयत्न कर रही हैं । इससे सबका परम धर्म है

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ११ ('ईश्वर की मूर्ति')
२ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा – प्रतापलहरी' (१९४९ ई० पृष्ठ २०८
कानपुर माहात्म्य' —प्रतापनारायण मिश्र
३, ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १२ (स्वागतं महाभाग)

कि इन के ऊपर तन मन धन निछावर कर दें। [1] इसके अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भी कार्यों से मिश्र जी बड़े प्रसन्न थे। वे लिखते हैं—

किया महापरिश्रम मातृभूमि हित जिन तन मन धनवारी।
सहि न सके स्वधर्म निन्दा बस घोर विपति सिरधारी॥
उन्नति-उन्नति बकत रहत नित मुख से बहुत लबारी।
करि दिखरावन हार आशु इक तुमहीं परति निहारी॥ [2]

उस समय की अन्य धार्मिक संस्थाओं से भी मिश्र जी का कोई विशेष विरोध नहीं था। कारण सभी संस्थाओं से देश का कुछ न कुछ कल्याण ही होना था। फिर भी मिश्र जी किसी संस्था के गुण-दोषों को कहने में न चूकते थे। उस समय की कुछ ऐसी नीति थी कि प्रारम्भ में तो संस्थायें लम्बी चौड़ी योजनाएं लेकर उठती थीं पर बाद में उन्हें पूरा न कर पाती थीं तथा कुछ दिन चलने पर और भी अनेक दोष उनमें आ जाते थे जिनसे देश का बड़ा अहित होता था। इस पर मिश्र जी कहते हैं— बहुत से बुद्धिमानों ने बहुत स्थानों पर आर्यसमाज ब्रह्मसमाज धर्मसभादि कई एक सभा संस्थापित की थीं। पर एक तो जो काम पहिले-पहिल किया जाता है वह पूरी रीति से काम पूरा पड़ता है दूसरे जिसमें एक बड़ा जनसमूह योग नहीं देता उसकी उन्नति में बाधा अवश्य पड़ती है। इन दो कारणों से यह समाज जैसा चाहिए वैसी कृतकार्य न हो सकीं। इनका उद्देश्य यद्यपि अनेकांश में उत्तम है पर धर्म प्रचार के साथ ही मत मतान्तर का खंडन मंडन प्रतिमा पुराणादि की हठ पूर्वक निन्दा स्मृति और जाति भेद भक्ष्याभक्ष्य विधवा विवाहादि विषयक आग्रह निग्रह के कारण देश की साधारण जनता इन पर यथोचित श्रद्धा न कर सकी। [3] मिश्र जी को ब्रह्म समाज की ईसाइयों की ओर निष्ठा एवं मूर्तिपूजा विरोध थियासाफिकल सोसाइटी का भूत-प्रेत पर विश्वास जैन बौद्ध मुसलमान, ईसाइयों का आपसी विवादादि पसन्द न था। वह भारत दुर्दशा में इन सब पर बड़ी छींटाकशी करते हैं। कलयुग के मंत्री कुमत का कथन यहाँ पर द्रष्टव्य है—

'जैन बौद्ध और मुसलमान ईसाई कराऊं।
ब्रह्मोक्रिये हों आठ जहाँ लौं तुम्हें बनवाऊं॥
नेचर और थियोसोफी को दूं मैं नरनारी।
सब नास्तिक को दै सबदा कह अनुचारी॥

---

1 ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ३ ('दान पात्र')
2 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ६ ('भैरव राग')
3 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ४ ('श्री भारत धर्म महामण्डल')

ब्रह्मा को अज्ञानी बनवा मूरत पूजा छुड़वाऊ ।
करके भ्रष्ट सभी के मत को मैं मन्दिर तुड़वाऊ ॥
साथ अबइया इन बातों, मतको भी करू मशहूर ।
जाता हू मैं भारत पर अब बीज हुकुम हुजूर ॥'[1]

उपर्युक्त प्रभाव का दमन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मिश्र जी युग की गतिविधि को लेकर चलने वाले व्यक्ति थे। वह लोक कल्याण को प्रमुख मानते थे। उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण लोक कल्याण का ही द्योतक है। लोक-कल्याण के लिए वह पुरातन परम्पराओ और रूढ़ियो की अवहेलना करने में किंचित न हिचकते थे। उनके व्यापक प्रेम में सभी मत एकीभूत हो गये थे। उनकी धार्मिक मान्यतायें उदार वैज्ञानिक नवीनतावादी स्पष्ट एवं युगानुरूप थी जिनमे सभी जातियां, सभी मत सभी धर्म इच्छानुसार आत्मतोष कर सकते थे।

साहित्यिक स्थिति

आधुनिक काल से पूर्व रीतिकालीन साहित्य शृंगार और दरबारी हास-विलास में डूबा हुआ था। वह यथार्थ को छोड़ आदर्श-वह भी पतनोन्मुख आदर्श भूमि पर वास कर रहा था। उसका क्षेत्र नायक और नायिका के सौन्दर्य और विलास तक ही केन्द्रित था। कवि एवं साहित्यकार अपनी जीविका को प्रमुख मानकर साहित्य रचना कर रहे थे। उनकी लेखनी बहुत-कुछ उनके आश्रयदाता राजाओं के आधीन थी। इसलिए रीतिकाल में साहित्य का चतुर्मुखी विकास नहीं हो सका। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं— प्रकृति की अनेकरूपता जीवन की भिन्न भिन्न चित्य बातो तथा जगत् के नाना रहस्यो की ओर कवियो की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये। दूसरी बात यह हुई कि कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया। कुछ कवियो के बीच भाषा शैली पद विन्यास अलंकार विधान आदि बाहरी बातो का भेद हम थोड़ा बहुत दिखा सकें तो दिखा सकें पर उनकी अभ्यंतर प्रवृत्ति के अन्वेषण में समय उच्चकोटि की आलोचना की सामग्री बहुत कम पा सकते हैं।'[2] सुधाकर पाण्डेय रीतिकाल की स्थिति को और स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं— 'कलाकार की रागी उनको हाथ में हाथ मिलाने के लिए बाध्य करती थी। चित्रकला और संगीत का समाज को राह दिखाने वाला न बनाकर व्यक्तियों का विदूषक बना

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'भारत दुर्दशा रूपक' (१९२० ई०) अंक २ दृश्य पहिला
२ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ २३७

बनाया गया तथा गणा की तरह निम्न कला से मुरा का कार्य लिया जाने लगा। विलासिता ने काम की स्पृहा को जगाया। कलाकार की कला ने मन का काम किया। ऐसा भयानक संक्रमणकालीन समय भारत के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलता। वास्तविक कला अन्तर्ध्यान हो गयी। उसका उद्देश्य विलुप्त हो गया। कामोद्दीपक स्त्रैण भावना से पूर्ण चित्रों का निर्माण आरम्भ हुआ।[1] इस प्रकार रीति काल का साहित्य 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की भावना से पृथक् जा चुका था। ऐसे प्रतिबन्धित संकुचित और छिछले वातावरण में कलाकारों का अधिक समय तक रहना असम्भव था। आगे चलकर (आधुनिक काल में) धीरे धीरे युग की परिस्थितियों के साथ कवियों की मान्यताएं बदलीं और साहित्य ने अपने शाश्वत परिवर्तन का नियम निभाया। ब्रिटिश-शासन के विकास के साथ ही कवियों के राजाश्रय समाप्त होने लगे। कवि राजाओं के विलास को छोड़कर जनता के सम्पर्क में आने लगे और जन साहित्य का प्रणयन प्रारम्भ हुआ।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के बाद उसके शासकों का ध्यान अंग्रेजी प्रचार की ओर गया। सर्व प्रथम बंगाल प्रेजीडेन्सी के चैपलिन जान ओवन ने अंग्रेजी पढ़ाने के लिए स्कूल स्थापित करने की सरकार से प्रार्थना की। पर ओवन की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया गया। तत्पश्चात् सन् १७९२-९३ ई० में विल्बर फ़ोर्स ने हाउस आफ कामन्स में भारतीयों को उपयोगी ज्ञान की शिक्षा देने के लिए अध्यापकों और मिशनरियों को भारत में भेजने का सुझाव रक्खा। पर इस सुझाव का बड़ा विरोध हुआ और यह मान्य नहीं हो सका। इसके बाद कम्पनी के डायरेक्टर चार्ल्स ग्राण्ट ने (१७९५ ई० के लगभग) अंग्रेजी प्रचार के लिए अपना 'स्मृति-पत्र' प्रस्तुत किया जिसमें बड़ी नम्र नीति से अंग्रेजी प्रचार की सलाह कंपनी को दी गयी थी। चार्ल्स ग्राण्ट अपने स्मृति-पत्र में लिखते हैं— सरकार के लिए यह बहुत आसान होगा कि वह सामान्य व्यय पर प्रान्तों के विभिन्न स्थानों पर ऐसे शिक्षण केन्द्र स्थापित करें जहां अंग्रेजी पढ़ने-लिखने की व्यवस्था हो। अनेक व्यक्ति विशेष रूप से नवयुवक उससे लाभ उठाएँगे तथा अध्यापन कार्य में प्रयुक्त आसान पुस्तकों से विभिन्न विषयों पर कुछ सामान्य सचाई की बातें प्राप्त हो सकेंगी। थोड़े ही समय में, स्वयं अंग्रेजी के अध्यापक बन जायेंगे तथा सार्वजनिक कार्य-व्यवहार में हमारी भाषा जो राजनैतिक कारणों से जरूरी है अगली पीढ़ी तक सम्पूर्ण देश में फैल जायगी। इस योजना की सफलता के लिए किसी बात की कमी नहीं है। कमी है तो केवल सरकार के हार्दिक संरक्षण की।[2] अब तक भारत

---

1 सुधाकर पाण्डेय 'हिन्दी साहित्य और साहित्यकार' (१९६१ ई०) पृष्ठ १०५
2 डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २५१-५४

मे केवल हिन्दुओ और मुसलमानो की ही अपनी-अपनी पृथक शिक्षा-संस्थाएं थी जिनका धर्म के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। पण्डित लोग अपनी पाठशालाओ में हिंदुओ को संस्कृत पढाते थे और मौलवी मस्जिदो म मुसलमानो को फारसी पढाते थे।[1] कम्पनी भी इन संस्थाओ के कार्यों म किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करती थी बल्कि उससे कुछ प्रोत्साहन ही मिलता था।

सन् १८११ ई० म पुन लार्ड मिण्टो ने अग्रजी प्रचार पर जोर दिया जिसके परिणाम स्वरूप १८१३ ई० म 'चार्टर अधिनियम' के अन्तरगत कम से कम एक लाख रुपये की राशि वैज्ञानिक,शिक्षा के लिए अलग रखने की योजना बनायी गयी। पर इस दिशा में अभी तक कोई क्रियात्मक कार्य न हो सका। आगे चलकर राजा राममोहन राय न इस दिशा मे कुछ काय किया और सन १८१७ म हिन्दू-कालेज की स्थापना हुई। सन् १८१८ मे कलकत्ते के मुख्य पादरी न एक सस्था की स्थापना की जिसके द्वारा नवयुवक ईसाइयो न प्रचारक बनाने तथा हिन्दुओं और मुसलमानों को अग्रेजी भाषा क ज्ञान कराने की व्यवस्था की गयी।[2] इसके बाद सन् १८२३ म ऐल्फिन्स्टन न कम्पनी के शासको को अग्रेजी तथा योरोपीय विज्ञान क अध्यापन के लिए स्कूल खोलने की प्रेरणा दी। जिससे फिर आगरा कालेज (१८२३ ई०) दिल्ली कालेज (१८३० ई०), बरेली कालेज (१८३० ई०) कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (१८३३ ई०) की स्थापना हुई।[3] ऐल्फिन्स्टन न स्वय भी १८३३ ई० म पूना म एक कालेज की स्थापना की जिसम साहित्यिक अग्रजी पढाने की व्यवस्था की गई। इसी के आधार पर १८३४ म बम्बइ म ऐल्फिन्स्टन कालेज की स्थापना हुई। इसक साथ ही अब कम्पनी शासक तेजी से अग्रजी प्रचार म लग गय। इधर ईसाई मिशनरियो मे भी अग्रजी का कुछ प्रचार हो रहा था और इनके द्वारा कुछ स्कूल भी खोल गय थे। वैसे ईसाई मिशनरियां १८ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही अपना काय कर रही थी पर इनका प्रमुख उद्देश्य धर्म प्रचार ही था।

सन् १८३५ ई० तक भारत म अग्रजी अच्छी तरह फल चुकी थी। अंग्रेजी की पुस्तकें सहस्रों की सख्या म बिक रही थीं। नौकरी और प्रतिष्ठा क प्रलोभन स भारतीय निरन्तर उसकी ओर खिचत जा रहे थ। अग्रजी की ओर झुकाव स देसी संस्थायें धीरे धीरे समाप्त होनी जा रही थी और संस्कृत तथा अरबी फारसी की पुस्तकों

---

1. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'ब्रिटिश-कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) पृष्ठ ४९७
2. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६४
3. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १२

की माग कम हो गया था। इस स्थिति से जनमत दो भागों में विभक्त हो गया। नवीनतावादी अंग्रेजी के हिमायती हो गये और प्राचीनतावादी प्राच्य भाषाओं के। सन् १९ ५ में इस बढ़ते हुए विभेद को रोकने के लिए सरकार ने समिति बनाई और उस समिति के अध्यक्ष लार्ड मैकाले नियुक्त किये गये। लार्ड मैकाले भी अंग्रेजी के पक्षपाती थे इन्होंने हर तरफ से भारतीयों को समझाया और अंग्रेजी को उपयोगी सिद्ध किया। उनका कहना था—"क्या हम भारतीयों को अपने आधीन बनाये रखने के लिए अज्ञानी बनाये रखना है।"[1] लार्ड मैकाले की ही परामर्श से तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिंग ने ७ मार्च १८३५ ई० को एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। जिसमें अंग्रेजी प्रचार पर विशेष जोर दिया गया और शिक्षा पर व्यय की जाने वाली सम्पूर्ण धनराशि को अंग्रेजी पर खर्च करने के लिए कर्मचारियों को प्रेरित किया गया तथा भारतीय प्राच्य-संस्थाओं को दी जाने वाली सहायता को रोका गया।[2] इस प्रस्ताव का जनता द्वारा घोर विरोध हुआ पर सरकार की नीति में कोई परिवर्तन न हुआ। दिन-पर-दिन अंग्रेजी का प्रचार बढ़ता ही गया और अंग्रेजी राज्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। आगे चलकर शिक्षा के क्षेत्र में, शासकों द्वारा दो महत्वपूर्ण सुधार किये गये। पहला सुधार १८५४ ई० में वुड के प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा हुआ जिसमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय खोलने की परामर्श दी गई साथ ही और अनेक सुझाव शिक्षा के विकास के लिए दिये गये। दूसरा सुधार लार्ड रिपन के समय में (१८८२ ई०) में हुआ। लार्ड रिपन ने १८५४ ई० के प्रतिज्ञा-पत्र के सिद्धान्तों के कार्यान्वित किये जाने की जाँच के लिए हण्टर आयोग की नियुक्ति की। हण्टर आयोग ने भली भाँति जाँच करने के उपरान्त बहुत से सुझाव रिपन को दिये जिनके परिणाम स्वरूप शिक्षा संस्थाओं को कुछ अधिक सुविधायें प्रदान की गयीं।[3]

प्रारम्भ में (लगभग १८१५ ई० से पूर्व) ब्रिटिश-शासकों की भारतीय भाषाओं के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। उनका कहना था कि "हिन्दुओं का भी अन्य लोगों के समान विश्वास तथा आचार की अच्छी पद्धति है।"[4] इसी विश्वास पर प्रारम्भ में कम्पनी शासकों ने हिन्दी-गद्य के विकास में पर्याप्त सहायता की। पर

---

१ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) पृष्ठ ४०९

२ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) पृष्ठ २००

३ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २५७ ६९

४ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी 'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६१

विलियम जान्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसायटी (१७८४ ई) और वेलेजी द्वारा स्थापित 'फोर्ट विलियम कालेज' के काय हिन्दी-गद्य के विकास की दिशा में सराहनीय हैं। यद्यपि हिन्दी खड़ी बोली गद्य के विकास की परम्परा साहित्य म अकबर क समय से मिलती है[1] पर उसका समुचित विकास १९ वी शताब्दी म ही हुआ। गद्य के प्रारम्भिक ग्रन्थों म गग कवि कृत 'चन्द छद बरनन की महिमा' (१५७० ई० क लगभग) पटियाला क रामप्रसाद निरजनी' कृत 'भाषा योग वासिष्ठ (१७४१ ई०) और मध्य प्रात के प० दौलतराम कृत जन पद्मपुराण (१७६१ ई०) उल्लेखनीय है। खड़ी बोली गद्य के विकास के साथ ही साहित्य म ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य क विकास की परम्परायें भी मिलती हैं पर इनका समुचित विकास न हो पाया और ये परम्परायें मृतप्राय हो गयी। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ब्रज भाषा और राजस्थानी गद्य के विकसित न होने का कारण इस प्रकार लिखते हैं- 'हिन्दी की नई साहित्यिक चेतना के केन्द्र कलकत्ते से ब्रज भाषा और राजस्थानी के केन्द्र दूर पड़ते थ जिससे वे समयानुसार और आवश्यकतानुसार नया रूप ग्रहण न कर सके। मध्यप्रदेश और राजस्थान के धार्मिक और राजनीतिक पतन क कारण उनका आगे और पनप सकना कठिन था। प्रेस की सहायता ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य को न मिल सकी।[2] वैसे ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य की परम्परायें खड़ी बोली गद्य से प्राचीन है पर इन्हें विकास का अवसर नहीं मिला। १८ वी शताब्दी के अन्त तक उत्तरप्रदेश और बिहार म खड़ी बोली गद्य का अच्छा प्रचार हो चुका था जिसको देखकर विदेशी जातियो ने इसी को भारत की प्रमुख भाषा समझा और इसी के प्रचार तथा सीखने म वे लग गये। इतना कहना यहाँ आवश्यक है कि उस समय क खड़ी बोली गद्य और आज के गद्य में महान अन्तर था। उस समय के गद्य म प्रान्तीय भाषाओं के शब्द और उर्दू-फारसी क शब्द का बाहुल्य था। फिर भी आधुनिक गद्य उसी क क्रमिक परिमार्जन का परिणाम है।

वेलेजली ने कलकत्ते म फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना क्लर्क तैयार करने के उद्देश्य से की थी। इस कालेज म निकले हुए विद्यार्थियो को नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती थी। साथ ही भारतीयो को आकृष्ट करने के लिए इस कालेज म हिन्दुस्तानी भाषाओं के अध्यापन की भी व्यवस्था की गयी। हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष डा० जॉन बौर्थविक गिलक्राइस्ट (१८०० १८०४ ई०) थे। इन्होंने बड़ी सहृदयता से हिन्दी-गद्य क विकास में योग दिया। इनके निरीक्षण म

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास (२००६ वि०) पृष्ठ ४०१ ४१०

२ डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० २५

अनेक पाठ्य पुस्तकें तैयार हुईं, जिनसे हिन्दी गद्य को बड़ा बल मिला। इन्हीं के समय में लल्लू लाल और सदल मिश्र फोर्ट विलियम कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए। लल्लूलाल ने १८०३ और १८०९ ई० के बीच प्रेमसागर तथा सदल मिश्र ने १८०३ ई० में 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। ये दोनों ही पुस्तकें गिलक्राइस्ट के संरक्षण में लिखी गयी थीं। इन पुस्तकों में शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन नहीं होते प्रेमसागर की भाषा में ब्रजभाषापन और पण्डिताऊपन स्पष्ट झलकता है। नासिकेतोपाख्यान में भी संस्कृत अवधी ब्रज और बिहारी के शब्दों का प्रयोग हुआ है पर प्रेमसागर से इसकी भाषा अधिक स्वच्छ और स्वाभाविक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं— लल्लूलाल के समान इनकी भाषा में न तो ब्रजभाषा के रूपों की वैसी भरमार है और न परम्परागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँ तक हो सका है खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है।[1] फोर्ट विलियम कालेज से बाहर भी बहुत से साहित्यकारों ने स्वतन्त्र रूप से गद्य रचना की जिसका साहित्य के विकास में विशेष महत्व है। स्वतन्त्र साहित्यकारों में मथुरानाथ शुक्ल सैयद इंशा अल्ला खाँ और सदासुख लाल नियाज विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने क्रमशः पंचांग-दर्शन (१८०० ई०) रानीकेतकी की कहानी (१७९८ १८०३ ई०) और सुखसागर (१८११ ई०) लिखा। यद्यपि ये सभी पुस्तकें सामान्य स्तर की हैं इनमें ब्रज शब्दों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है पर गद्य की प्रारम्भिक पुस्तकें होने के कारण इनका हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है।

इसके बाद लगभग पचास वर्ष तक खड़ी-बोली-गद्य का विकास स्थिर रहा। इसका प्रमुख कारण सरकार की ओर से हिन्दी-गद्य की उपेक्षा ही थी। सरकार हिन्दी से मुँह मोड़कर अंग्रेजी के प्रचार में दत्तचित्त थी। फोर्ट विलियम कालेज भी अब अंग्रेजी का ही पक्ष ले रहा था। अंग्रेजी के बढ़ते हुए प्रचार ने लोगों को अपनी ओर खींचा जिससे हिन्दी का विकास रुक गया। आगे चलकर मुसलमानों के प्रयास से उर्दू को सरकार द्वारा कुछ प्रोत्साहन भी मिला पर हिन्दी उपेक्षित ही रही। उर्दू और फारसी को अदालत में स्थान मिल जाने से उसकी ओर लोगों की अभिरुचि बनी रही। इसके अतिरिक्त सर सैयद अहमद साहब के प्रयत्न से भी उर्दू की बड़ी उन्नति हुई। सरकार की इस विभेद नीति और अंग्रेजी के प्रति पक्षपात से हिन्दुओं में भी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने हिन्दी प्रचार का आन्दोलन प्रारम्भ किया। सन् १८६२ के लगभग राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने हिन्दी का पक्ष लिया और शुद्ध

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००६ वि०) पृष्ठ ४२२

खड़ी बोली में 'राजा भोज का सपना' लिखा पर अपनी राजभक्ति के कारण वह इस दिशा में आगे न बढ़ सके।[1] अधिकारियों की रुचि के अनुसार इन्होंने उर्दू गर्भित हिन्दी लिखना प्रारम्भ किया जिससे हिन्दी का अस्तित्व ही डगमगाने लगा। इसी समय राजा लक्ष्मण सिंह शिवप्रसाद के विरोध में संस्कृत-गर्भित भाषा लेकर हिन्दी जगत में आये। इन्होंने १८६२ ई० में अभिज्ञान शाकुन्तल लिखा। ये दोनों ही लेखक अतिवादी रहे इसस इनकी प्रणाली आगे गृहीत न हुई। सन् १८७५ के लगभग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य क्षेत्र में आने से खड़ी-बोली गद्य एक नई दिशा की ओर मुड़ा। भारतेन्दु ने शिवप्रसाद और लक्ष्मण सिंह के बीच का मार्ग अपनाया। जन प्रचलित शब्दों को इन्होंने अपने गद्य में स्थान दिया। उर्दू और संस्कृत के सामान्य शब्द जो जनता में प्रचलित थे—उनको स्वाभाविक गति से अपने गद्य में आने दिया। इस प्रकार भारतेन्दु से गद्य में तरलता सरलता और स्वाभाविकता आयी। इसी प्रणाली को लेकर उनके सहयोगी लेखक भी बढ़े और हिन्दी गद्य का प्रचार तेजी से प्रारम्भ हो गया। उस समय के गद्य लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने हिन्दी प्रचार में तन मन धन से योग दिया। अंग्रेजी की प्रतिद्वन्द्विता में ये लोग हिन्दी को बराबर आगे बढ़ाते रहे। सरकार की उपेक्षा हिन्दी के लिए वरदान बन गयी। कहना न होगा कि यदि सरकार हिन्दी को दबाकर अंग्रेजी की ओर न मुड़ती तो भारतीयों में प्रतिक्रिया का जन्म न होता और हिन्दी का इतनी तेजी से विकास न हो पाता।

धार्मिक आन्दोलनों ने भी हिन्दी के प्रचार में बड़ा काम किया। दयानन्द सरस्वती और ईसाई मिशनरियों के उपदेशों से (उपदेशों का माध्यम हिन्दी होने के कारण) हिन्दी को बड़ा बल मिला। अब तक प्रेसों की भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी जिससे अनेक पत्र-पत्रिकायें निकलने लगी थीं इनसे हिन्दी के प्रचार में बड़ी सहायता मिली।[2] उस समय कलकत्ता बनारस इलाहाबाद और कानपुर हिन्दी प्रचार के प्रमुख केन्द्र थे अनेक मण्डलियाँ इन स्थानों में हिन्दी प्रचार का कार्य कर रहीं थीं। शिक्षा संस्थाओं और सरकारी कार्यों में हिन्दी का स्थान न मिलने से लोगों में बड़ा असंतोष फैला हुआ था। अनेक मेमोरियल इसके विरोध में सरकार को भेजे जा रहे थे पर सरकार दिन-पर दिन हिन्दी की उपेक्षा ही करती जा रहीं थी। इससे हिन्दी प्रचार और भी बल पकड़ता जा रहा था। प्रचार का माध्यम प्रायः गद्य ही था। गद्य के माध्यम हो जाने से उसमें भावाभिव्यंजन की

---

१ डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा—'हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई०) पृष्ठ १३

२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय— आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९५४ ई०) पृष्ठ ४७

पूरी शक्ति आ गई थी। साथ ही उन गद्य सुस्थिर रूप भी प्राप्त हो गया था। गद्य के विकसित हो जाने से उसके विभिन्न रूपों का भी प्रणयन प्रारम्भ हुआ। निबन्ध आलोचना नाटक कहानी उपन्यास आदि लिखे जाने लगे। सभी विधाओं के विकास ने गद्य को बड़ी शक्ति प्रदान की और वह सफलता के साथ आगे बढ़ने लगा तथा उसका क्षेत्र भी बड़ा व्यापक हो गया।

कविता के क्षेत्र में भी भारतेन्दु-युग ने पर्याप्त प्रगति की। कविता के अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षों में नये-नये प्रयोग हुए। इस युग के साहित्यकार अतीत और वर्तमान को साथ लेकर चले। अतीत परम्परा में एक ओर कबीर सूर और तुलसी के अनुकरण पर उपदेशात्मक एवं भक्ति पूर्ण रचनायें हुईं तो दूसरी ओर बिहारी और मतिराम के अनुकरण पर शृंगार परक रचनायें की गयीं। वर्तमान स्थिति के प्रभाव से राष्ट्रप्रेम समन्वित रचनाओं की भरमार रही। इस प्रकार भारतेन्दु युग भक्ति और रीति परम्परा का निभाते हुए नवीनता की ओर बढ़ा। इस युग के साहित्यकारों में राष्ट्रप्रेम प्रमुख रूप से विद्यमान था इसमें नये-नये भावों और विचारों को साहित्य में स्थान मिला। रीतिकाल की 'कला कला के लिए' की भावना समाप्त होने लगी। भारतेन्दु-युग में कला जीवन के साथ अपना पग मिलाने लगी। उसकी आत्मा में पीड़िता और अकालियों की चीत्कारें सुनायी पड़ने लगीं और वह जन सामान्य के गले का हार बन गयी। इस युग के साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य जनता को जाग्रत करना था इसमें जन-साहित्य का प्रणयन प्रचुर मात्रा में हुआ। इसके अतिरिक्त छन्दों के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हुआ। जनता की अभिरुचि और प्रचार की सुविधा के अनुसार कविता में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया। भक्ति और रीति काल के कवित्त पद दोहे सवैया आदि तो लिखे ही गये साथ ही नये-नये साहित्यिक-गीतों और लोक गीतों की भी रचना प्रारम्भ हुई। लोक-गीत कजली ठुमरी कहरवा ठुमरी गजल होली अद्धा चनी, बिरहा लावनी आदि छन्दों में लिखे गये। इनका उद्देश्य जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना था।

भारतेन्दु-युग में भाषा के क्षेत्र में भी बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इस युग में पूर्व कवितायें अधिकतर ब्रजभाषा में ही लिखी जाती थीं। रीतिकाल में तो ब्रजभाषा का कविता पर एकाधिकार था। सभी कवि ब्रज भाषा के उपासक थे। भारतेन्दु-युग के पूर्वार्द्ध में भी ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही पर आगे चलकर कुछ लोगों की रुचि बदली और खड़ी-बोली पद्य का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। कुछ लोग प्राचीन परम्परा के पोषक होने के नाते ब्रजभाषा के पक्ष में रहे थे कुछ नवीन दृष्टिकोण को लेकर खड़ी बोली की ओर बढ़ रहे थे। इस प्रकार खड़ी बोली और ब्रजभाषा के बीच एक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। ब्रजभाषा के पक्षपाती खड़ी बोली को कर्कश कहकर कविता के लिए उसे अनुपयुक्त बताते थे और खड़ी बोली के पक्ष

पाती खड़ी बोली म रचनायें करके उनके आक्षेपो का उत्तर देते थे। इनका कहना था कि गद्य और पद्य की एक ही भाषा होनी चाहिए।[1] यह आन्दोलन सन १८८७ से १८९० ई० तक बड़े जोरो से चला। ब्रजभाषा के पक्षपातियों मे प्रतापनारायण मिश्र राधाचरण गोस्वामी आदि तथा खड़ी बोली के पक्षपातियो मे बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री श्रीधर पाठक आदि प्रमुख थ।[2] कालान्तर मे खड़ी बोली की ओर लोगों की रुचि बढ़ती गयी और ब्रजभाषा मतप्राय हो गयी। वैसे खड़ी बोली-पद्य के विकास की क्षीण परम्परा खुसरो की मुकरिया और कबीर के दोहों से प्रारम्भ होती है पर उसका पूर्ण विकास आधुनिक युग मे ही आकर हुआ।

इस युग के लेखको मे चमत्कार प्रदशन की लालसा नही थी। रीति कालीन कवियो की तरह य अलकारिकता म पडन वाले नही थे न इन्ह आचार्यत्व का ही मोह था। ये बडी सीधी सादी भाषा म अपन विचारो को जन-सामान्य तक पहुचाना चाहते थे। इनके विचार सुधारवादी थ और मानवमात्र का कल्याण ही इनक लिए अभीष्ट था। भारतन्दु-युग के साहित्य म उस समय के त्रस्त समाज की स्पष्ट झाकी दिखायी पड़ती है। उसम आर्थिक शोषण समाज की कुरीतिया अध विश्वासो आदि क सजीव चित्र हैं। इस युग का साहित्य यथाथ को लेकर चलन वाला मानवतावादी साहित्य है। पाश्चात्य संस्कृति के सयोग स इस युग के साहित्यको के दृष्टिकोण बहुत-कुछ वैज्ञानिक हो गय थे और उन्होने नये सिरे स सोचना प्रारम्भ कर दिया था। आधुनिक काल के साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का भी बडा प्रभाव पडा। गद्य के विविध रूपो पर तो पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कहना न होगा कि इस युग म विषय रूप-विधान और भाषा की दृष्टि स साहित्य की अनेक रूपता प्राप्त हुई और साहित्य का चतुर्मुखी विकास हुआ। ऐसा विकासपूर्ण-युग हिन्दी साहित्य म कभी नही आया।

कानपुर की स्थिति

मिश्र जी के साहित्य-क्षेत्र म आने स पूर्व साहित्यिक दृष्टि स कानपुर बहुत पिछड़ा हुआ था। उसका नाम केवल व्यवसायिक-जगत् म था। प्रतापनारायण जी के प्रादुर्भाव स ही कानपुर म साहित्यिकता का संचार हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवदी अपन वक्तव्य म कहत हैं— आज स कोई तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व यहां दो चार मनुष्यों को छोड़कर और कोई हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य का नाम तक शायद ही जानता था। इस भाषा और इस भाषा के साहित्य के बीजवपन का श्रेय परलोक वासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र को है। उन्ही के पुण्य प्रताप स आज कानपुर को

---

१ डा० गितिकठ मिश्र— खड़ी बोली का आन्दोलन (२०१३ वि०) पृ० ३५३

२ डा० रामविलास शर्मा—'भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ १५८

यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि के साधनों पर विचार करने के लिए अपने सुहिया लिपि के इस दुर्भेद्य दुर्ग में पधारने की कृपा की है। [1]

सन् १८४७ ई० में लाला हरगाहीलाल कन्नौज ने उर्दू में तवारीख जिला कानपुर नामक पुस्तक लिखी। जिसमें वह अपने समय की साहित्यिक-स्थिति का चित्रण इस प्रकार करते हैं— "कायस्थ व मुसलमानों के लड़के फारसी खूब पढ़ते थे। कुछ शहरों में कुछ घरों में चार-पांच लड़कों के खुराक पर एक शिक्षक नौकर होता है जिसे मौलवी साहब कहते हैं। अंग्रेजी पहले लोग पढ़ना पसन्द नहीं करते थे क्योंकि उनका ख्याल था कि उससे लड़के ईसाई हो जायेंगे। बहुत कम लोग शिक्षित थे। लड़कियों का लोग पढ़ाना बुरा समझते थे। संस्कृत केवल ब्राह्मणों के लड़के पढ़ते थे। जिले भर में तीन चार पंडित शास्त्री थे। आज कल स्कूलों में नागरी की लिखावट में बहुत कुछ सुधार किया गया है पर फिर भी लोग नागरी शुद्ध नहीं लिख पाते। जब गांव में परदेश से चिट्ठी आती है उसे कोई विरला ही पढ़ सकता है। बाकी लोग अपनी चिट्ठी पढ़वाते फिरते हैं। और जो कोई घर का हाल परदेश को लिखना चाहता है दूसरे से लिखाने जाता है। गांवों में कायस्थ लोग किसी के चबूतरे या चौपाल में या पेड़ के नीचे लड़कों को पहाड़ा पढ़ाते हैं उसे भैया जी कहते हैं। वह फी लड़का एक या दो आने मासिक पाते हैं।" [2] इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि उस समय शिक्षा की बड़ी कमी थी। आगे चलकर सन् १८७५ तक कानपुर जिले में कई स्कूल स्थापित हो चुके थे। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते हैं— सन् १८७५ में कानपुर जिले में ७ तहसीली स्कूल, २ टाउन स्कूल, ३ परगना स्कूल, १५७ हलका बन्दी स्कूल और तीन लड़कियों के स्कूल थे। सब १७९। इनमें कानपुर म्युनिसिपैल्टी के चार स्कूल भी सम्मिलित हैं। जिनमें केवल १६१ लड़के पढ़ते थे। २१० मकतब जो वाले स्कूल जिले भर में और थे जिनमें १९३५ लड़के पढ़ते थे। सरकारी स्कूलों में ७१४० लड़के और ४९८ लड़कियाँ पढ़ती थीं। [3] पूरे जिले को देखते हुए स्कूलों की संख्या तो कम थी ही पर उनमें पढ़ने वाले लड़कों की संख्या तो बहुत ही कम थी। एक स्कूल के औसत विद्यार्थियों की संख्या २४ से अधिक नहीं थी।

कानपुर के लोग साहित्य में बहुत-कम अभिरुचि रखते थे। व्यवसायिक शहर

---

1. तेरहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति के सभापति प० महावीर प्रसाद द्विवेदी का वक्तव्य' (१९२३ ई०) पृष्ठ ७
2. लाला हरगाहीलाल—तवारीखे जिला कानपुर मिन्ट प्रकाश (१८७१ ई०) पृष्ठ १०२-१०६
3. 'रामराज्य (कानपुर) २२ अक्टूबर १९५६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र-एक ऐतिहासिक विश्लेषण'-लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

होने के कारण मुद्रिया से लोगो को विशेष प्रेम था। इसी से यहाँ पर कोई रचनात्मक कार्य सफल न हो पाता था । सन १८७२ मे सर्वप्रथम कानपुर से हिन्दू प्रकाश नामक पत्र निकलना प्रारम्भ हुआ था पर जनता का सहयोग न मिलने के कारण वह शीघ्र ही काल-कवलित हो गया।[1] इसके बाद १८८३ ई० तक किसी का साहस कानपुर म पत्र निकालने का न हुआ। अन्त म १५ मार्च १८८३ में प्रतापनारायण मिश्र ने अपने ब्राह्मण पत्र का प्रकाशन कानपुर म प्रारम्भ किया और अनेक परेशानियो का सामना करते हुए भी जीवन पर्यन्त निकालते रहे। प्रतापनारायण मिश्र के प्रादुर्भाव से कानपुर म नयी साहित्यिक चेतना का विकास हुआ और अनेक साहित्यिक सस्थायें स्थापित हुई। सन् १८८५ म प्रतापनारायण मिश्र और उनके साथियो के प्रयत्न म भारत एनटरटेनमेण्ट क्लब की स्थापना हुई जिसम विभिन्न नाटको के अभिनय किये जाते थ। तदुपरान्त सन् १८९१ म नागरी प्रचार के उद्देश्य से रसिक समाज' की स्थापना हुई और इसी के सरक्षण म रसिक वाटिका' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र से सम्बद्ध साहित्यकार को पाकर कानपुर १९ वी शताब्दी के अन्त तक एक प्रमुख साहित्यिक गढ बन गया।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी के ऊपर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दी की गिरी हुई स्थिति से मिश्र जी बहुत चिन्तित थे। उन्होने हिन्दी प्रचार म तन मन धन की बाजी लगा दी। उनका कहना था— हिन्दी का पूर्ण प्रचार हुए बिना हिन्दुओ का उद्धार असम्भव है ।[2] देश की उन्नति के लिए वह हिन्दी की उन्नति आवश्यक समझते थ। जनता को हिन्दी का महत्व समझाते हुए व कहते हैं—

देव नागरिहि गरे लगाओ पाहो मोद महान।
रहो निशक प्रेम मद माते धो परताप समान ॥[3]

आगे फिर जनता को हिन्दी प्रचार के लिए प्रोत्साहित करते हैं—

'रोस अथवा सिस महान। मान होय चाहे अपमान॥
पै न तजो रटिबे की बान। हिन्दी हिंदू हिन्दुस्तान॥

---

१ साप्ताहिक प्रताप' (कानपुर) १० अक्टूबर १९५५ ई० प्रतापनारायण मिश्र का कानपुर'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२ 'ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १० (असम्भव है')

३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४९ ई०)-पृष्ठ १४० 'काकी प्रतापनारायण मिश्र

धनि है वह धन धनि वे प्रान । जे इन हेत होहिं कुरबान ॥
यही तीन सुख सुगति निधान । हिंदी, हिंदू हिंदुस्तान ॥ [1]

मिश्र जी हिन्दी की पुस्तकें खरीदने के लिए भी जनता से आग्रह करते हैं जिससे लेखक-गण प्रोत्साहित होकर नयी-नयी और उत्तम कोटि की पुस्तकों की रचना करें और नागरी का प्रचार शीघ्रता से हो सके। मिश्र जी लिखते हैं— हमारे धनी निधनी समर्थ असमर्थ का मुख्य कर्तव्य यही है कि हिन्दी पढ़ना-पढ़ाना शपथ पूर्वक अंगीकार कर लें। कोई न कोई हिन्दी का पत्र अवश्य लेया करें। हिन्दी में जितने ग्रन्थ बनें उनकी एक-एक कापी अवश्य खरीद लिया करें और यथासम्भव संस्कृत अंग्रेजी के विज्ञानों में उत्तमोत्तम विद्याओं की पुस्तकें हिन्दी में अवश्य अनुवाद कराया करें। ऐसा होने से आज दिन विद्वानों बुद्धिमानों सम्पादकों सुलेखकों और सत्कवियों के अनेकानेक रत्न सदृश विचार अनुत्साह के कारण मन के मन ही में रह जाते हैं उनका हृदय प्रोत्साहित होगा और दो ही चार वर्ष में देखिएगा कि हम क्या से क्या हो गये और आगे के लिए हम तथा हमारे आगे होने वालों के लिए क्या कुछ प्राप्त हो चला। हमारे यहाँ विद्याओं और विद्वानों की अभाव नहीं है पर उनका प्रचार तथा उनको प्रोत्साहन देने वाले केवल इतने ही हैं कि उँगलियों पर गिन लिए जायँ। [2] आगे सम्बन्ध से भी मिश्र जी अनुरोध करते हैं— हमारे सुलेखक और सुवक्तागण सर्वसाधारण के जी में हिन्दी का प्रेम उपजाना, नित नये ग्रन्थों को प्रकाशित करना और जहाँ तक हो सके उन्हें सस्ते दामों बिकवाना वरंच किसी व्यक्ति या समूह की सहायता से गली-गली घर घर में मुफ्त बँटवाना पढ़ने योग्य स्त्री-पुरुषों को पढ़ाना नहीं तो सुनाना अपना परम धर्म समझें। [3] मिश्र जी जब भारतीयों को विद्याध्ययन के लिए इंग्लैंड जाते देखते हैं तब उन्हें भारत की दशा पर बड़ा दुख होता है। वे लिखते हैं—

हाय जौन भारत रह्यो सब विद्या को गेह।
दूर देशवासी जहाँ पढ़त रहे करि नेह॥
हाय तहाँ अब कमहू पढ़ लिख छिन कोय।
पै बिन इंगलिस्तान-पुर गए धर्म की सिद्धि न होय॥ [4]

हिन्दी के प्रति भारतवासियों की अरुचि देखकर मिश्र जी खूब व्यंग्य करते हुए पूछा है—

---

1 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ ('अन्तिम सम्भाषण')
2 —वही— , ७ १ ('हमारी आवश्यकता')
3 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ३ (हमारी आवश्यकता)
4 —वही— ५ ५ ('महत्त्व')-

'सदा सकल भग भ्रमत रहत हो करत प्रकाश ठाम ही ठाम।
सांची कहौ कहू देख्यो है देश हिंद सम अघरज धाम॥
निज भाषा हू ते निरास जहं बसहि लोग हतभाग समाम।
होहु मातु भगवान देखि यह अद्भुत कौतुक तृप्यन्ताम्॥'[१]

इन उपर्युक्त पंक्तियों में मिश्र जी की आन्तरिक वेदना स्पष्ट झलकती है। फरवरी १८८४ ई० में अलवराधिपति ने पढ़ने की फुरसत न मिलने के कारण ब्राह्मण को वापस कर दिया, इस पर किया हुआ मिश्र जी का क्रन्दन भी इस प्रसंग में दर्शनीय है—'हाय! यह अभागिनि हिन्दी अब किसकी शरण गहे। क्योंकि जब हिन्दू राजा ही इसका तिरस्कार करते हैं तो यह किसकी शरण गहे? क्या इसके आदर करने वाले कहीं विलायत मे आवेंगे? या जिनकी मातृभाषा ही नहीं वे आदर करेंगे? यह तो सम्भव ही नहीं है, तो यह भारतवासियों को छोड़ किसकी शरण गहे? फिर जब राजा लोगों को इस अभागिन भाषा के समाचार पत्र पढ़ने की फुरसत नहीं तो यह किसकी शरण गहे? हा! शोक! सहस्त्र शोक! कि अभागिन हिंदी अब किसकी शरण गहे?'[२] मिश्र जी को नागरी से बड़ी ममता थी। नागरी से स्नेह रखने वालों की मिश्र जी बड़ी प्रशंसा करते थे। कोल्हापुर निवासी रायसिंह देव वर्मा के हिन्दी प्रेम से मिश्र जी बहुत प्रभावित थे। वे लिखते हैं—'हाय एक यह सज्जन हैं जो इतनी दूर बैठे नागरी की इतनी प्रतिष्ठा करते हैं और एक यहां वाले हिन्दू जाति के कलंक हैं जो उर्दू और अंग्रेजी अखबारों की गालियां भी खाते हैं तो भी उर्दू ही अंग्रेजी पर मरे मरे हैं। परम धन्य हैं ऐसे पुरुषरत्नों के पवित्र जीवन को जो नागरीदेवी के इतने बड़े भक्त हैं।'[३]

मिश्र जी के समय में उर्दू और अंग्रेजी का प्रचार बड़ी तेजी से हो रहा था। सरकार भी उर्दू और अंग्रेजी का पक्ष ले रही थी इससे चारों ओर बड़ा असंतोष फैला हुआ था। यह असंतोष हण्टर कमीशन में और अधिक बढ़ गया। हण्टर कमीशन ने उर्दू को अनेक सुविधायें प्रदान की पर हिन्दी पर कोई विशेष ध्यान न दिया। मिश्र जी ने इससे हण्टर कमीशन की बड़ी भर्त्सना की। जनता को समझाते तथा उत्तेजित करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

"उरदू काहू देश की भाषा होति न सिद्ध।
केवल भाग अभाग ते ह्वां ह्वै रही प्रसिद्ध॥

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ६१ 'तृप्यन्ताम्' प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ 'श्री अलवराधिपति का 'ब्राह्मण' न लेने के विषय' उर्दू में खत" प्रतापनारायण मिश्र

३ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ११ (हमारे उत्साह-वर्द्धक')

उरदू सब औगुन भरी बरण नकरी छत।
हमरे सिर ते नहि टरी कमिश्नन की करतूत ॥
नाम कियो निज सारथक हटर सुमतिउदार।
हिन्दी हरिणी को कियो छल सों साकि निकार ॥'[1]

उर्दू के बढ़ते हुए प्रचार से हिन्दी का भविष्य कालिमापूर्ण दिखाई पड़ रहा था। मिश्र जी कहते हैं—

'धम गयो धन यश गयो गइ विद्या अरु मान।
रही सही भाषा हती सोऊ चाहति जान ॥

* * *

सीखिहु अरबी अरब की फारसि फारसि केर।
अपजी इगलैंड की यामें हेर न फेर ॥
भाष देश की नागरी सब गुणागरी आप।
यामें कुछ संदेह नहि प म सुनत कोउ हाय ॥"[2]

सरकार के प्रलोभन से बहुत से हिन्दू भी उर्दू का पक्ष ले रहे थे। ऐसे हिन्दुओं से मिश्र जी को बड़ी चिढ़ थी इन्हीं को मिश्र जी हिन्दी के विकास में बाधक समझते थे। वे लिखते हैं— लाला मसजिद पिरसाद सिंहा को सिनम को समझाओ कि तुम्हार बुजुर्गों की बोली उर्दू नहीं है। लाला लक्ष्मीदास मारवारी से कहो कि तुम हिन्दू हो। लाला नौचीमन सन्ना से पूछो तुम लोग अक्लर पढ़ते समय अपने को बर्मा कहते हो कि दास ? पंडित प्रद्युम्ननारायण काश्मीरी से दरयाफ्त करो कि तुम्हार दसा सरकार (गुदनाम्नि) बेद की रिवाजों में हुए थे कि हाफिज के दीवान से ? इसके पीछे सरकार हिन्दी के दफ्तर में करदे तो ब्राह्मण के एडिटर को हालो का गढ़ा बनाना। क्या सरकार जानती नहीं है कि हिन्दुस्तान की बोली हिन्दी ही है ? क्या सरकार से छिपा है कि यहां हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान दसमांश में भी कम हैं ? क्या निरा कमाऊन वाले अंग्रेज या दुनिया को घरे बैठे हैं वे न समझते थे कि हिन्दी से प्रजा का बड़ा उपकार होगा ? पर हां जहांदोहनरत से बुरा कौन बने ? फूट के सन्निहम आलस्य के आगे रत्नाकर के पुतले हिन्दू नाराज हों हां वे क्या कर लेंगे ? बहुत होगा एक बार रोके बैठ रहेंगे।[3] इसके साथ ही अकमण्य लोगों पर भी बड़ी छींटाकसी करते हैं—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ ('भारत रोदन')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ ('भारत रोदन')
३ —वही— „ २ १ ('पूरे के मता बिनै कनागन का बोस बांधे')

बहुतक हिन्दू ही परे ऐसे देश कलंक।
निज भाषा का जे नहीं जानहिं एकहु अंक॥
बहुतक कछु जानहिं तऊ करहिं न देश सनेह।
हमरे लेखे उनहु की भई अनमई देह॥ [1]

भोले भाले हिन्दुओं को उर्दू और अंग्रेजी के प्रभाव से बचाने के लिए मिश्र जी उर्दू और अंग्रेजी की कटु आलोचना करते थे। उर्दू के दोष को बताते हुए मिश्र जी कहते हैं— उसकी वास्तविक पूंजी यदि विचार के देखिए तो आशिक अर्थात् किसी को चाहने वाला माशूक अर्थात् कोई रूपवान व्यक्ति जिसे आशिक चाहता हो बाग अर्थात् वाटिका गुल अर्थात् फूल, बुलबुल अर्थात् एक अच्छी बोली बोलने वाला और फूलों में प्रसन्न रहनेवाला पक्षी बागबान अर्थात् माली सय्याद अर्थात् चिड़ीमार चांदनी रात और मेघाच्छन्न दिन खिलवत अर्थात् एकान्त स्थान, जिलवत या मजलिस कई एक सुन्दर व्यक्तियों का समाज शराब अर्थात् मदिरा कबाब अर्थात् मांस साकी अर्थात् मद्य पिलाने वाला, मुतरिब अर्थात् गवैया रकीब दुश्मन गैर अर्थात् जिसे तुम चाहते हो उसका दूसरा चाहने वाला नासिह अर्थात् मद्य और वेश्यादि के संसर्ग से रोकने वाला जायज अर्थात् उपदेशक पर निन्दा खुशामद, उलहना आसमान अर्थात् भाग्यवश इतनी ही बातें हैं जिन्हें उलट फेर के वर्णन किया करो आप बड़े अच्छे उर्दूदां हो जायगे। [2] इसी प्रकार अंग्रेजीबाजों पर भी मिश्र जी व्यंग्य करते हैं— आप ने किसी देवता का दास प्रसादादि बना दिया है, सो भी जहां तक हो सकता है वहां तक विधुभूषण को B B और देवदत्त को D D इत्यादि बना के अपने ढंग का कर लेते हैं। [3] ऐसे एक स्थान पर मिश्र जी हिन्दुओं की बुद्धि की भर्त्सना करते हुए लिखते हैं— 'यह हिन्दू भाइयों की बुद्धि का फल है जो अपने धर्म-ग्रन्थों को तिलांजुली दे बैठे हैं न सही स्वामी जी की पुस्तकें संस्कृत बंगला और कुछ नागरी में भी एक से एक सदुपदेश की पुस्तकें मौजूद हैं क्या सभी काटे खाती हैं? पर पढ़े कौन? यहां तो लड़का पांच बरस का हुआ नहीं कि झट्टी खातिरा गौरखगायत्री सीखने भेज दिया तो उससे होना क्या है सब तो एम० एल० डी० (L L.D) हो ही नहीं जाते। इधर अपनी भाषा अपनी रीति-नीति अपने धर्म-कर्म में बछिया के ताऊ, उधर अंग्रेजी में भी अधकचरे ठहरे, फिर बुद्धि बिचारी डाग (Dog) कुत्ता, कैट (Cat) बिल्ली के सिवा कहां से घुस आवै? जब विद्या और बुद्धि दोनों में मोमबहुरी ठहर तो सचमुच के मनुष्यों, देश-हितैषी विज्ञानों से क्या न मरें? यह

---

१ ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ ('भारत रोदन')
२ —वही— , ४ , २ ('उर्दू बीबी की पूंजी')
३ —वही— , ८ , २१ ('बनमुक्त')

ता नश्वर की बात है। अब अच्छे लोगो की सगति से भी गये फिर क्या है चाह ज कर उठावें। १

मिश्र जी हर तरह से जनता को हिन्दी के लिए प्रोत्साहित करते है। वे लिखते है— यदि सचमुच हिन्दी का प्रचार चाहते हो तो आपस के जितने कागज पत्तर लेखा-जोखा, टीप तमस्सुक है, सब म नागरी लिखी जाने का उद्योग करो। जिन हिन्दुओं के यहा मौलवी साहब बिसमिल्ला कराते हैं उनके यहा पण्डितो म अक्षरारम्भ कराया जाने का उपकार करो। तन मन धन लगा के हिन्दू मात्र के चित्त पर सब गुणकारी देवी नागरी का पवित्र प्रेम स्थापन करने के लिए कटिबद्ध हो। चाहे कोई धमकावे चाहे कोई कैसा ही डर दिखावे जो हो सो हो तुम मनसा वाचा कर्मणा उर्दू को सू सू देने म सन्नद्ध हो। २ आगे मिश्र जी बड़े जोरदार शब्दों म भारतीयों को विश्वास दिलाते हैं— यदि हमारे आर्य भाई अधीर न होगे तो एक दिन अवश्य होगा कि भारतवर्ष भर म नागरीदेवी अखण्ड राज्य करेंगी और उर्दूदेवी अपने मगो के घर म बैठी कोर्नेगी। ३

मिश्र जी स्कूल स्थापित करने के लिए भी जनता को प्रेरित करते थे। उनका कहना था— हर शहर के लोगो को चाहिए कि अपने-अपने यहा कम-से-कम एक पाठशाला ऐसी अवश्य स्थापित करें जिसम अन्य शिक्षा के साथ धर्म तथा नीति भी सिखाई जाय। ४ हिन्दी और संस्कृत पढ़ना वह सभी के लिए आवश्यक मानते हैं— जब तक अपनी भाषा म पूर्ण रूप से पठन-पाठन नहीं होता तब तक शिक्षा सदा अधूरी ही रहती है और पूर्ण फलदायिनी नही होती। इससे हम हिन्दी और संस्कृत अवश्यमेव पढ़नी चाहिए। ५ वे सभी शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी को अनिवार्य बनाना चाहते थे। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी म हिन्दी को स्थान न मिलने पर वे जनता से कहते है—'यदि अपने सनातन का कुछ मोह हो अपनी जाति का कुछ भी चिन्ह बनाये रखना चाहते हो तो शीघ्र इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की कुमन्त्रणा से रक्षा का उपाय करो नहीं तो याद रखना कि जहा वर्तमान काल के वृद्ध और युवक मर गये हिन्दूपन की गन्ध भी न रह जायगी। कई पत्रों म विदित हुआ है कि वहां की यूनिवर्सिटी ने हिन्दी को मामूली बनाम तक म नही रखा। इस घोर अत्याचार की इससे अतिरिक्त और क्या मनसा हो सकती है कि संस्कृत कठिन है उसे अपने से चाहे

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ६ ('मानवधर्म और प्रमाद')
२ —वही— २ १ ('पूरे के सता बिन सनातन का ढोल बाप)
३ —वही— २ २ ('हिम्मत रामो एक दिन नागरी का प्रचार हो ही पा)
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ ('दबी हुई आग')
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १ ('हमारी आवश्यकता')

है। आप कविता कर चलिए। मैं भी उस पर रोड़ा-कंकड़ फेंकता चलूँगा। लेकिन याद रखिए यह सड़क ऐसी सुन्दर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश उक्ति से रोक दौड़ सके।[1] मिश्र जी म विलक्षण प्रतिभा शक्ति थी इन्होने ब्रजभाषा और खड़ी बोली में तो कविताएँ लिखी ही साथ ही उर्दू, फारसी, संस्कृत म भी सफलता क साथ अपनी लेखनी चलायी। इसक अतिरिक्त अपन विचारो को जन-जन तक पहुचाने क लिए इन्होने जन भाषाओं म भी कविताए की और उनम अनक जन-छदो का सफल प्रयोग किया। अवधी, बुन्देली आदि म य अधिकार के साथ सुन्दर गीत लिखत थ। जन-छन्दो म इन्ह आल्हा लावनी ख्याली, ठुमरी आदि विशेष प्रिय थ। पुरानी परम्परा म इन्होने कवित्त सवैये, दोहे पद आदि भी बहुतायत स लिखे। भाषा छन्दो क साथ साथ इनक विचारों मे भी अनकरूपता क दशन होते हैं। कबीर सूर तुलसी आदि भक्त कवियो की सी उत्कृष्ट भक्ति भावना भी इनम मिलती है और रीतिकालीन बिहारी घनानन्द आदि शृगारिक कवियो क हाव भाव की भी इनके साहित्य म कमी नही है। इसक अलावा भारतेन्दु काल की राष्ट्रीय चेतना क य प्रचारक ही थे। अत हम कह सकते है कि भक्ति शृगार और देश प्रेम ही इनके साहित्य की सीमायें थी और इन्ही के सृजन म य आजीवन लग रहे।

---

१ 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० प० प्रतापनारायण मिश्र -गोपालराम गहमरी

तीसरा अध्याय

कृतियों का विवरण

मिश्र जी अपने समय के प्रमुख साहित्यकार थे। इन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को अपने कृतित्व से समृद्धिशाली बनाया और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। अल्पायु होते हुए भी मिश्र जी ने प्रचुर मात्रा में साहित्य-सृजन किया। ब्रज, खड़ी बोली, अवधी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं में सुन्दर लेख तथा कवितायें लिखीं। इनका साहित्य के सभी क्षेत्रों पर पूरा अधिकार था। ये हर तरह से माँ भारती को युगानुरूप बनाना चाहते थे। हिन्दी की अकिंचनता इन्हें असह्य थी। इसकी समृद्धि के लिए इन्होंने मौलिक-साहित्य तो दिया ही, साथ ही अनेक बंगला पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। इनकी मौलिक तथा अनूदित पुस्तकों की संख्या लगभग पचहत्तर के होगी पर इनका सम्पूर्ण साहित्य आज हमें प्राप्य नहीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि मिश्र जी निर्धनता के कारण अपने सम्पूर्ण साहित्य को स्वतः नहीं प्रकाशित करा सके, यहाँ तक कि इनकी कुछ पुस्तकें अप्रकाशित ही नष्ट हो गयीं।[1] दूसरे उस समय के लोगों की हिन्दी से रुचि भी नहीं थी इसलिए जो साहित्य प्रकाशित भी हुआ उसका समुचित प्रचलन नहीं हो सका। वैसे बाबू रामदीन सिंह ने मिश्र जी की पुस्तकों के प्रकाशन में बड़ी सहायता की। मिश्र जी की अधिकांश पुस्तकें बाबू रामदीन सिंह के ही प्रबन्ध से खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर (पटना) में मुद्रित तथा प्रकाशित हुईं पर जनता ने उनका उचित स्वागत न किया। पुस्तकों की बिक्री न होने के कारण उस समय लेखकों तथा प्रकाशकों को पुस्तकों द्वारा हानि ही उठानी पड़ती थी। एक संस्करण में दो सौ तीन सौ पुस्तकें निकालने पर भी—माँग न होने के कारण के रद्दी हो रह जाता था। द्वितीय संस्करण तो शायद ही किसी पुस्तक का हो पाता हो। बहुत सी पुस्तकें तो अप्रकाशित ही रह जाती थीं।

मिश्र जी के जीवन काल में जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनका भी कोई संग्रह न रखा जा सका और मिश्र जी की मृत्यु के बाद तो मिश्र-साहित्य के प्रचार तथा संरक्षण की ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। हाँ, खड्गविलास प्रेस से यदा-कदा एक दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं पर उनका प्रचार न हो सका। इसके अतिरिक्त मिश्र जी के

---

१ बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३

परिवार में भी कोई ऐसा व्यक्ति न रहा जो उनके साहित्य का सुरक्षित रख सकता या उसे प्रकाशित करा सकता। मिश्र जी की मृत्यु के बाद जो साहित्य उनके निवास स्थान (कानपुर) पर था उसे भड़ग विलास प्रेस वाले—कुछ रुपया देकर उनकी पत्नी से ले गये पर वे भी उसे प्रकाशित न करा सके[१] और वह साहित्य वहीं विनष्ट हो गया। इस साहित्य में मिश्र जी की कुछ अप्रकाशित पुस्तकें भी थी जो मिश्र जी ने अपने जीवन की अंतिम अवस्था में लिखी थी। मिश्र जी का कुछ प्रकाशित साहित्य बैजेगांव में भी उनके परिवार वालों के पास था जिसे 'प्रताप' पत्र के जन्मदाता स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी ले आये थे पर आज वह भी अप्राप्य है। बाकीपुर का खड्ग विलास प्रेस भी अब नहीं रहा और अब वहां मिश्र जी का कोई भी प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य उपलब्ध नहीं।

मिश्र जी अपनी रचनायें तत्कालीन पत्रों में भी भेजा करते थे। इनकी कई कवितायें 'कवि-वचन-सुधा' में प्रकाशित हुई थी।[२] कुछ उर्दू लेख 'भारत प्रताप' में छपे थे।[३] 'हिन्दोस्थान' में भी इनके बहुत से लेख तथा कवितायें निकला थी।[४] इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' पत्र के तो मिश्र जी सम्पादक ही थे इसमें इनकी अधिकांश रचनायें प्रकाशित हुई थी। बहुत सी पुस्तकें भी 'ब्राह्मण' में धारावाहिक निकला थी जिनमें आगे कुछ पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई और कुछ 'ब्राह्मण' तक ही सीमित रह गयी। इन उपर्युक्त पत्रों की सम्पूर्ण फाइलें तो अब कहीं मिलती नहीं केवल कुछ आंशिक अंक इधर-उधर प्राप्त होते हैं जो अपने जीवन की अन्तिम सांसें गिन रहे हैं।

साहित्यकारों की ओर से भी मिश्र जी प्रायः उपेक्षित ही रहे। किसी भी साहित्यकार ने मिश्र-साहित्य को खोजने तथा एकत्र करने का प्रयत्न नहीं किया। सर्वप्रथम महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिश्र जी पर १९०६ ई० में एक लेख लिखा और उसमें मिश्र जी की कृतियों का उल्लेख किया पर मिश्र जी की सम्पूर्ण कृतियों को इसमें स्थान नहीं मिल सका।[५] वैसे यदि द्विवेदी जी चाहते तो मिश्र जी की कृतियां को एकत्रित कर सकते थे क्योंकि मिश्र जी की मृत्यु के तब केवल बारह वर्ष ही हुए थे और बहुत-कुछ साहित्य भी बाकीपुर में उपलब्ध था। इसके बाद १९१९ ई० में अभ्युदय प्रेस प्रयाग से 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग का प्रकाशन हुआ। इसमें

---

१ नारायणप्रसाद अरोड़ा 'मेरे गुरुजन' (१४९४ ई०) पृष्ठ २७

२ किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ० ३८७

३ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ १४

४ 'सरस्वती' जून १९३८ ई० स्व प० प्रतापनारायण मिश्र-गोपालराम गहमरी

५ 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

ब्राह्मण पत्र की सहायता से मिश्र जी के केवल ४१ निबन्धों का सकलन किया गया था। इसी से मिश्र जी को निबन्ध-साहित्य में स्थान मिला। १९३३ ई० में रमाकांत त्रिपाठी ने 'प्रताप-पीयूष' का सम्पादन किया। इसमें मिश्र जी के कुछ निबन्धों और कविताओं का संग्रह किया गया। तदुपरान्त १९३९ ई० में प्रेमनारायण टंडन द्वारा 'प्रताप-समीक्षा' का और १९४७ ई० में नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी द्वारा 'प्रतापनारायण मिश्र' का सम्पादन हुआ। इन दोनों पुस्तकों में मिश्र जी के थोड़े-थोड़े निबन्ध संकलित हैं। इन कृतियों में मिश्र जी की रचनाओं पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया। बहुत कुछ द्विवेदी जी के ही मत का पिष्टपेषण हुआ है। आगे चलकर सन् १९४९ में नारायणप्रसाद अरोड़ा ने मिश्र जी की कविताओं का संग्रह 'प्रताप लहरी' नाम से प्रकाशित कराया। अरोड़ा जी का यह कार्य वस्तुतः सराहनीय है इसे ही हम मिश्र-साहित्य के उद्धार का प्रथम प्रयास कह सकते हैं। पर इस सकलन में अनेक अशुद्धियाँ हैं और कविताओं को भी प्रकाशन क्रम के अनुसार नहीं रखा गया है तथा 'ब्राह्मण' में प्रकाशित लगभग २८ कविताएँ (परिशिष्ट देखिए) भी इस संग्रह में प्रकाशित होने से रह गयी हैं। फिर भी इस कृति ने मिश्र जी को समुचित सम्मान दिया। इसके बाद नागरी प्रचारिणी सभा ने मिश्र-साहित्य के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया और सम्पूर्ण मिश्र-साहित्य को दो भागों में प्रकाशित करने का आयोजन किया। सम्वत् २०१४ वि० में मिश्र-साहित्य का प्रथम भाग 'प्रतापनारायण-ग्रंथावली' के नाम से विजयशंकर मल्ल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इस भाग में 'ब्राह्मण' में प्रकाशित मिश्र जी के लेखों और निबन्धों का संग्रह किया गया है। यह कार्य प्रशंसनीय है पर अभी ब्राह्मण में लगभग एक सौ पन्द्रह (परिशिष्ट देखिए) ऐसे लेख और निबन्ध हैं जिन्हें उक्त ग्रंथावली में स्थान नहीं मिला। सभा की द्वितीय ग्रंथावली में नाटक और कविताओं के निकालने का आयोजन है लेकिन इससे पहले ग्रंथावली सम्पादक को पुनः एक बार ब्राह्मण का अवलोकन करना और उसमें छूटे हुए लेखों निबन्धों और समालोचनात्मक टिप्पणियों को एकत्रित कर उन्हें ग्रन्थावली के द्वितीय भाग में स्थान देना वांछनीय है। इसके अतिरिक्त सभा की ओर से केवल मिश्र जी के मौलिक-साहित्य का ही प्रकाशन हो रहा है अभी उनके अनूदित-साहित्य का प्रकाशन अपेक्षित है। यहाँ यह कहना न होगा कि नागरी प्रचारिणी सभा ने यदि मिश्र साहित्य के प्रकाशन का कार्य अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में किया होता तो आज जो मिश्र-साहित्य अनुपलब्ध है वह सुलभ हो गया होता।

साहित्यकारों में जो मिश्र जी को यहाँ तक उपेक्षा की है कि जब उन्हें भारतेन्दु युग पर कुछ लिखना पड़ा है तो बिना मिश्र-साहित्य को देखे केवल समीक्षा की है। कई साहित्यकारों को तो यह भी भ्रम रहा है कि मिश्र जी की अमुक कृति एक

की है, या पद्य की। फिर भी वे उसकी समीक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के दर्शन तो बहुत कम साहित्यकारों को हुए होंगे। अब इसी से समझा जा सकता है कि कहाँ तक मिश्र जी के प्रति न्याय हुआ होगा।

इस शोध प्रबन्ध के लिए हमे भी मिश्र जी की कृतियों को खोजने की आवश्यकता हुई और इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी। मिश्र जी के सामयिक पत्रों के जो फुटकर अंक इधर-उधर प्राप्त हुए उनमें मिश्र जी की कोई भी रचना के नहीं मिल सकी। केवल 'रसिक-वाटिका' (पहिली क्यारी सन् १८९१ ई०) में हम मिश्र जी की पाँच समस्या पूर्तियाँ मिलीं।[1] इसके अतिरिक्त श्री विजयशंकर मल्ल के पास मिश्र जी की भक्ति रसपूर्ण पन्द्रह कवितायें मिलीं जो कवि वचन सुधा के चौदहवें वर्ष में प्रकाशित हुई थी। विजयशंकर जी के पास हमें मिश्र जी के नाटक भी देखने को मिले। मिश्र जी की अधिकांश कृतियाँ हमें नागरी प्रचारिणी सभा काशी भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नवजीवन पुस्तकालय कानपुर मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर और सरस्वती पुस्तकालय, मौरावाँ (उन्नाव) मे प्राप्त हुई। सबसे बड़ा स्रोत जो मुझे मिश्र जी की कृतियों का प्राप्त हुआ वह 'ब्राह्मण' पत्र है। ब्राह्मण के कुछ अंक नागरी प्रचारिणी सभा काशी और भारती भवन पुस्तकालय इलाहाबाद मे मिले तथा अधिकांश अंक स्व० नारायणप्रसाद अरोड़ा के निवास स्थान पटकापुर (कानपुर) में प्राप्त हुए। इन तीनों स्थानों के अंकों को मिला कर 'ब्राह्मण' पत्र के नौ वर्षों की पूरी फाइल तैयार हो जाती है। यही मिश्र जी के साहित्य की अपूर्व निधि है। लेकिन उक्त स्थानों में अब ब्राह्मण के अंक इतने जीर्ण काय हो गये हैं कि कुछ ही वर्षों में उनकी अन्त्येष्टि क्रिया होने वाली है इसके साथ ही दीमकबहादुर भी ब्राह्मण के शरीर भक्षण में पूरी तरह कटिबद्ध हैं। केवल नागरी प्रचारिणी सभा के दस अंक झिल्ली कागजों से मढ़ा दिये गये हैं इसलिए वे सुरक्षित हैं। यदि शेष दोनों स्थानों के भी ब्राह्मण अंक इसी प्रकार सुरक्षित कर लिये जाय तो साहित्य जगत् का बड़ा ही उपकार हो। पटकापुर वाले तो ब्राह्मण की फाइल बेचना भी चाहते हैं यदि कोई संस्था उसे खरीदकर सुरक्षित कर लेती तो बड़ा अच्छा होता।

मुझे अपने शोध में जो मिश्र जी की कृतियाँ प्राप्त हो सकी हैं या जिनके विवरण तथा उल्लेख मुझे मिले हैं उन्हीं का परिचय इस अध्याय में दिया जायगा। मिश्र जी की मौलिक और अनूदित कृतियों की सूची इस प्रकार है।

मौलिक-साहित्य

कविता

१—प्रेम-पुष्पावली

---

[1] प्राप्ति स्थान-भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद

२—मन की लहर
३—सानोक्ति-शतक
४—कानपुर माहात्म्य
५—मंगल-खण्ड
६—गोकाष्टु
७—युवराजकुमार स्वागत ते
८—बैसा स्वागत
९—तृप्यन्ताम्
१०—तारापात पचीसी
११—श्री प्रम पुराण
१२—फाल्गुन माहात्म्य
१३—होनी है
१४—शृंगार बिलास
१५—प्रार्थना शतक
१६—दीवाने बरहमन
१७—स्फुट कवितायें

नाटक

१—कलि कौतुक रूपक
२—कलि प्रवेश नीति रूपक
३—हठी हम्मीर नाटक
४—भारत-दुर्दशा रूपक
५—संगीत शाकुन्तल (छायानुवाद)

विविध

१—शैव सर्वस्व
२—सुचाल-शिक्षा (प्रथम भाग)
३—स्वास्थ्य शिक्षा
४—शिशु शिक्षा
५—अन्य निबन्ध एवं समालोचना

अपूर्ण ग्रन्थ

१—नूतन सवतमाल
२—दूध का दूध पानी का पानी (भाग)
३—कुमारी-कुमारी (सहमन)
४—प्रताप चरित्र

५—पौराणिक गुढाथ
६—रामायण रमण

सदिग्ध

१—गो सकट नाटक
२—भारतेन्दु धारामृत
३—सौन्दयमयी
४—प्रतापसग्रह

अनूदित-साहित्य

कहानी

१—कथा माला
२—चरिताष्टक (प्रथम भाग)
३—कथा बाल सगीत

उपयास

१—राजसिंह
२—युगलागुरीय
३—इन्दिरा
४—राधारानी
५—कपालकुण्डला
६—अमरसिंह
७—देवी चौधरानी

इतिहास

१—सूबे बगाल का इतिहास
२—सेनराजवश
३—त्रिपुरा का इतिहास

भूगोल

१—सूबे बगाल का भूगोल

विविध

१—पद्यामृत
२—नीतिरत्नावली
३—बोधोदय
४—वण परिचय
५—शिशु विज्ञान
६—आर्य कीर्ति भाग १
७—आय कीर्ति भाग २

सग्रह ग्रन्थ

१—रहिमान शतक
२—रसखान शतक
३—मानस विनोद

मौलिक-साहित्य कविता

प्रम पुष्पावली

यह मिश्र जी की प्रथम कृति है। इसके विषय म मिश्र जी समपण म लिखत हैं— 'हे विन्ध्यवाटिका के स्वामी। हम यह निश्चय है कि यह तुच्छ पुष्पावली तुम्हार रीझने का कारण किसी भाँति नही हो सकती पर इसे तुम्हारे पास प्रेम के हम निस्स देह बड प्रसन्न होंगे। अतएव जसे हम अगीकार किया है तसे हमारी प्रसन्नताथ हमारी पहली भेंट भी अगीकार करनी पडेगी।[1] यह कृति १८८३ ई० म ब्रुश चिन्तक यन्त्रालय, शाहजहाँपुर म छपी थी। यद्यपि इसम प्रकाशन सन् नही दिया है पर इस पुस्तक क अन्त म राधाकृष्ण दास का प्रशंसा-पत्र छपा है जिसम १५ नवम्बर १८८३ ई० पडा है। अतएव यही इस कृति का प्रकाशन सन् माना जा सकता है। यह पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसका मूल्य दो आना है। इसम ५० गीत हैं और ये गीत प्रमदेव की भक्ति तथा स्वाप्रेम से सम्बन्धित हैं। कुछ पद तुलसी की विनय-पत्रिका' की कोटि के हैं जिनमें दन्य कूट-कूट कर भरा है। इसके गीतों का विभाजन इस प्रकार है—प्रारम्भ म ६ प्राथनायें जिनमें ४ स्तुतियाँ संस्कृत में हैं २ बसन्त गीत ७५ पूर्वी गीत, ६ नागरी गीत १ गीत योरपीय रागिनी म २ फारसी गजलें १ बिमल १ किमआ १ मुसल्लस और ५ लावनियां हैं। सभी गीतों म प्रम की मनन्यता दिखाई पडती है। प्रम पुष्पावली के मुख पृष्ठ पर भी लिखा है— प्रम पुष्पावली अर्थात् प्रम सिद्धान्तानुकूल स्तुति प्राथनापासनादि गीत गजल लावनियाँ। इसम इसका विषय प्रारम्भ म ही ज्ञात हो जाता है। इसकी भाषा बडी परिमार्जित है और छन्द विधान भी उत्कृष्ट है। प्रथम रचना होते हुए भी यह प्रौढ रचना के गुणों स समन्वित है। इसम मिश्र जी की प्रम भक्ति और सहृदयता साकार हो गयी है। मिश्र जी स्वत इस कृति का 'शाहाना में विज्ञापन देते हुए लिखत हैं— प्रेम मार्ग म कदाचित ऐसे कवि कम ही पाइए निकम्मा जिनकी लखनी से परमश्वर का सच्चा प्रम स्वधर्म पर दृढ विश्वास एवं स्वदेश की सच्ची भक्ति इत्यादि वास्तव म साथ बनकर विचर निकल आते हों। यथा सामर्थ्य इस अभाव का दूर करने को एक छोटी सी प्रम पुष्पावली नामक पुस्तिका मैंने भी लिखी है। इसम ईश्वरीय प्रम और मातृभूमि सम्बन्धी प्रेम तथा सत्य आन्तरिक विश्वास संस्कृत नागरी ब्रजभाषा

---

1 प्रतापनारायण मिश्र—प्रम पुष्पावली (१८८३ ई०) 'समर्पण' से

फारसी और उर्दू की गीत गजल और लावनियों में वर्णित है जिन्हें मैं समझता हूँ कि उन भाषाओं को थोड़ा-थोड़ा जानने वाले भी बालक, वृद्ध स्त्री सभी समझ लेंगे और शान्त भाव से गा भी सकेंगे।[1] इस कृति के विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखते हैं— हमने पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी की बनाई हुई 'प्रेम पुष्पावली' देखी। इसके विषय में मैं कुछ विशेष लिखना नहीं चाहता केवल इतना ही लिख देता हूँ कि इसमें वह सुगन्ध है जो मेरे ऐसे चित्त वालों को सुभाती है अन्य को चाहे रुचे वा न रुचे। इस भूमिका के अधिकारियों का यह एक अमूल्य रत्न होगी।[2] इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण दास ने भी इस कृति की बड़ी प्रशंसा की है।[3] निश्चित ही यह कृति अद्वितीय है।

मन की लहर

यह कृति १८८५ ई० में भारत जीवन प्रेस बनारस से प्रकाशित हुई थी। इसमें कुल ३७ पृष्ठ हैं और इसका मूल्य डाक व्यय सहित =)॥ है। इस पुस्तिका में ईश्वर भक्ति और देश प्रेम के भावों से युक्त २५ लावनियां हैं जो उर्दू फारसी ब्रज खड़ीबोली और संस्कृत भाषाओं में लिखी गई हैं। इस कृति में मिश्र जी ने जगत् की असारता दिखाते हुए प्रेम की व्यापकता का प्रतिपादन किया है और मानवमात्र को एक प्रेम में बंधने का उपदेश दिया है। साथ ही तत्कालीन देश-दशा का भी चित्रण कुछ लावनियों में किया गया है और प्रेमदेव से भारत के उद्धार की प्रार्थना की गयी है। इसमें मिश्र जी ने अपने हृदय के अनेक भावों को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। उनके हृदय की विह्वलता और दैन्यता से यह कृति परिपूर्ण है। इसके समर्पण को ही देखकर मिश्र जी की तन्मयता और उत्कट भावुकता का पता लग जाता है— प्रियतम ! यह लेख। मन की लहर तुम्हारे चरण कमल से संलग्न होकर कृतार्थ होती है। बहने न देना नहीं तो तुम्हारी अद्भुत लीला से कच्चे लोग भ्रम की भंवर में पड़ जायगे। बस संदेह न करना कि मन मानस के तो हम आप ही स्वामी हैं यह लहर कैसी ? हां यह लहर ऐसी कि गंगा जी को गंगा जल ही से तो अर्घ दिया जाता है न ! बस ! त्वदीयवस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पित' हहा ! इस पागलपन से लाभ भी खूब कही हाँ लहर को लाभ यह कि जल की शोभा कमल' हमको यह लाभ कि इसका कारण अनकानेक भाव भरित सुन्दर मुख का कुछ देर दरशन। तुम्हारी तुम जानो हम पागल तो बना ही चुके हो। नहीं तो तुमको हानि लाभ से

---

१ ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ (प्रेम पुष्पावली का विज्ञापन')

२ प्रतापनारायण मिश्र— प्रेम पुष्पावली (१८८३ ई०) प्रशंसा-पत्र— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

३ प्रतापनारायण मिश्र प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) सम्मति' राधाकृष्ण दास

क्या ? अपने लोगों की नानातरंग देखना ही मात्र प्रयोजन है सो देखा।१ अब इस कृति में मिश्र जी के मन की विभिन्न लहरें ही एकत्रित हैं जिनसे इस कृति का नाम स्वतः सार्थक हो जाता है। इसकी भाषा स्वाभाविक और निखरी हुई है। फारसी और संस्कृत भाषा की सूक्तियों को तो देखकर उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होने लगता है। इसकी मांग भी उस समय जनता में काफी थी क्योंकि इसकी मांग ही के परिणाम स्वरूप सन् १९१४ में इसका द्वितीय संस्करण खड्गविलास प्रेस बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित हुआ था। यह कृति मिश्र जी की विचार धारा को जानने के लिए दृष्टव्य है। प्रेम पुष्पावली और मन की लहर क्रमशः लेखक की २७ और २९ वर्ष की अवस्था के पूर्व की रचनायें हैं जिनको देखने से यह ज्ञात होता है कि लेखक का भक्त हृदय प्रारम्भ में ही प्राप्त था।

लोकोक्तिशतक

इस कृति का प्रकाशन धारावाहिक रूप से ब्राह्मण में खण्ड २ संख्या ७ (१५ सितम्बर १८८४ ई०) से प्रारम्भ हुआ था और ६१ कविताओं तक यह उसमें निकलती रही थी। इसके बाद १८८८ में यह पृथक पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।२ इस पुस्तिका में केवल ११ पृष्ठ हैं और इसका मूल्य =) है। इसमें सौ कहावतों पर विरचित छोटी छोटी १०० कविताएं हैं और प्रत्येक कविता का अन्त कहावत से हुआ है। पुस्तक के अन्त में एक और कविता है जिसमें लेखक का नाम दिया गया है और इसका भी अन्त लोकोक्ति से ही है। वह इस प्रकार है—

सबहू की प्रताप हरि जग कहनूति प्रसिद्ध।
जसी जाकी भावना तसी ताको सिद्ध॥३

यह कृति भारतीयों के हितार्थ लिखी गई है। इसके विषय में मिश्र जी अपने प्रबन्ध में कहते हैं हमारी भाषी समझ में यह भी गालिया तुम्हारे भारतीय प्रजा गण के मानसिक रोगों के दूर करने में कुछ काम आवें तो आश्चर्य नहीं। इन पर यदि तुम्हारी सुधामयी दृष्टि पड़ेगी तो सोने में सुगन्ध है।४ इस कृति के मुख-पृष्ठ पर लिखा है— लोकोक्ति शतक अर्थात सौ कहावतों में सामयिक उपदेश जो देखने वालों को अवश्य पढ़ पढ़ गुन देंगे। यह कृति उपदेश प्रधान है। इसमें एक ओर मतमतान्तरों धार्मिक रूढ़ियों सामाजिक कुरीतियों आपसी फूट अपनों के शोषण आदि की भर्त्सना की गई है दूसरी ओर स्वावलम्बन एकता स्वाभिमान दृढ़ता

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'मन की लहर' (१८८५ ई०) समर्पण से
२ ब्राह्मण खण्ड संख्या ९ १० विज्ञापन प्रतापनारायण मिश्र
३ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्तिशतक' (१८९९ ई०) पृष्ठ ११
४ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्तिशतक' (१८९९ ई०) समर्पण से

परोपकार आदि पर जोर दिया गया है। साथ ही ग्न जाति और भाषा के उद्धार के लिए भी जनता को प्रोत्साहित किया गया है। 'लोकोक्तिशतक' की कविताओं में देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की भावना का उभाडने की अपूर्व शक्ति है। इसके अतिरिक्त इसमे धर्म ज्ञान और नीति से सम्बन्धित अनेक उपदेश भरे पडे हैं। इसकी कविताओं म लोकोक्तियो का बडा सफल और सशक्त प्रयोग हुआ है जिसस उपदेश बडे प्रभावपूर्ण और हृदयस्पर्शी बन गये हैं। भाषा तो इसकी सरल है ही पर इसकी शैली भावो को स्पष्ट करने में और भी सहायक हुई है। यह कृति आकार म जितनी छोटी है गुणों मे उतनी ही अनूठी है। 'लोकोक्तिशतक' का द्वितीय संस्करण-बहुत शीघ्र रामनवमी हरिश्चन्द्राब्द ३ (१८८७ ई०) म प्रकाशित हुआ और तृतीय संस्करण 'खगविलास प्रेस बांकीपुर से १८९६ ई० मे निकला। वैसे १८९६ ई० के संस्करण में प्रथम संस्करण लिखा हुआ है क्योंकि 'खगविलास प्रेस' म यह पहली ही बार छपी है पर ब्राह्मण म इसके प्रारम्भिक संस्करणो का उल्लेख है।

कानपुर माहात्म्य

'कानपुर माहात्म्य' धारावाहिक रूप मे 'ब्राह्मण' म खण्ड २ संख्या ६ (अगस्त १८८४ ई०) स खण्ड ३ संख्या ९ १० (दिसम्बर १८८५ ई०) तक प्रकाशित हुआ था। आगे चलकर इसका पुस्तकाकार प्रकाशन प० उमादत्त बाजपेयी (ब्राह्मण प्रेस के स्वामी) न कराया यह कृति आल्हा छन्द म लिखी गई है। इसम कानपुर का हास्य पूर्ण और मनोरंजक वर्णन किया गया है। यह कृति तीन ओहारियो मे विभक्त हैं। पहली ओहारी म देवी-देवताओ की स्तुति (आल्हा परम्परा क अनुसार) के बाद कानपुर के आस पास के स्थानो प्राचीन महापुरुषो और घटनाओ का वर्णन है। दूसरी ओहारी म आर्य-समाजियों और पुरोहितो का वर्णन है। इसम आर्य-समाजियों के मूर्ति-पूजा विरोध और उसके परिणाम स्वरूप पुरोहितों में हुई प्रतिक्रिया का बड़े हास्यास्पद ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है। पुरोहित लोग आर्य समाजियो का विरोध करने के लिये एक सभा करते हैं। सभा म आर्य-समाज के सिद्धान्तों की जाच के लिए वेदो की आवश्यकता पडती ह पर किसी भी पुरोहित के घर म वेद नहीं निकलते, तब वेद खरीदने का आयोजन होता है लेकिन किसी भी पुरोहित को यह तक ज्ञात नहीं कि वेद कहा मिल सकेंगे ? अन्त म वेदो के खरीदने क लिए चन्दे का प्रश्न उठता है। चन्दे का नाम सुनते ही धीरे धीरे लोग सभा स खिसकने लगते हैं। इस प्रकार इस ओहारी में निरक्षर भट्टाचारी ब्राह्मणों की कटु आलोचना की गई है। तीसरी ओहारी म 'गोरक्षणी सभा' का वर्णन है। सन् १८८१ म 'भारत मित्र' पत्र म 'गोरक्षा' के सम्बन्ध में एक मर्म स्पर्शी लेख प्रकाशित हुआ जिसम गायो की दुर्दशा का वर्णन था।[1]

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी — 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २९

उसे पढ़कर कानपुर के कुछ हिंदुओं के हृदय में एक गोरक्षिणी सभा स्थापित करने का विचार हुआ। इसके लिए कई सभायें की गईं, बहुत से प्रयत्न हुए, अनेक प्रस्ताव धनाढ्य-साला लोगों के यहाँ भेजे गये पर आपसी फूट के कारण गोरक्षिणी सभा स्थापित न हो सकी। इसी घटना का विस्तार से वर्णन—गोरक्षा के महत्व को समझाते हुए—किया गया है। यह कृति आदि से लेकर अंत तक व्यंग्यात्मक ढंग से लिखी गयी है। यहाँ तक कि इसका नाम भी व्यंग्य से उद्भूत है। इसमें कानपुर का माहात्म्य न होकर कानपुर की भर्त्सना ही है। इसकी भाषा शुद्ध अवधी है। रचनात्मकता की दृष्टि से यह कृति बड़ी उत्कृष्ट है। साथ ही तत्कालीन स्थिति का भी इससे अच्छा परिचय मिल जाता है।

दंगल खण्ड

यह कृति १८८७ ई० में प्रकाशित हुई। इसका मूल्य -) है।[1] यह आल्हा छन्द में लिखी हुई है। केवल पहला छन्द कुण्डलिया में है। जिसमें व्यायाम का महत्व दिखाया गया है और इसके पंचम चरण में मिश्र जी का अक्खड़ अलहैत उपनाम भी दिया हुआ है। कुण्डलिया के बाद फिर आल्हा-छन्द प्रारम्भ हो जाता है और अंत तक यही चलता है। इसके प्रारम्भ में पहलवानों के आराध्य महावीर और अली मुर्तजा तथा गायकों की आराध्या वाग्देवी (?) की स्तुति की गयी है। इसके बाद कानपुर में किस प्रकार दंगल प्रारम्भ हुए—इसका वर्णन किया गया है। तदुपरान्त कानपुर में हुए १८८७ ई० के दंगल का वर्णन है—यह दंगल प्रयागनारायण तिवारी के परेड वाले अखाड़े में प्रतिवर्ष होता था। इसे सरकारी दंगल कहते थे[2] क्योंकि इसे सरकार की ओर से भी विशेष सुविधायें प्राप्त थीं। इसका प्रारम्भ भी १८६५ ई० में कलक्टर हामसा (?) सुपरिन्टेण्डेण्ट बी० एच० गुड (B H Good) तथा प्रयागनारायण तिवारी के प्रयत्न से हुआ था। सन् १८८३ के दंगल में अव्यवस्था और भीड़ अधिक होने के कारण बलवा हो गया जिसमें अनेक लोगों के चोटें लगीं तथा पुलिस को भी शान्ति स्थापित करने के लिए कोड़ों और डण्डों का प्रयोग करना पड़ा जिससे दर्शकों में भगदड़ मच गई। इस प्रकार इस बार दंगल के रंग में भंग हो गया। मिश्र जी को दंगलों में बड़ी रुचि थी। वे कानपुर में होने वाले प्रत्येक दंगल में जाते थे। १८८३ ई० के दंगल का भी बलवा इनके सामने ही हुआ था। इसलिए इनके वर्णनों में बड़ा

---

1 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या [illegible] 'दंगल-खण्ड'—प्रतापनारायण मिश्र

2 डा० नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ ३५

3 नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ ३५

स्वाभाविकता है। पहलवानों के दाव पेंच और दंगल के मनोभावों के मार्मिक वर्णनों के साथ-साथ दंगलों की उपयोगिता और स्वास्थ्य के महत्व को भी इसमें समझाया गया है। इस कृति का उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनता को स्वास्थ्य रक्षा की ओर प्रोत्साहित करना है वे एक स्थान पर कहते हैं— धनवान और विद्वान की भांति बलवान भी देश की शोभा होते हैं किसी रीति से पहलवानों की सहाय करके उनका उत्साह बढ़ाना देश की शारीरिक उन्नति में एक परमोपयोगी काम है।[1] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिश्र जी ने 'दंगल खण्ड' की रचना की थी।

शोकाश्रु

यह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्गवास (६ जनवरी १८८५ ई०) पर लिखा हुआ शोक गीत है। इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' के खण्ड २ संख्या १२ और खण्ड ३ संख्या १ (फरवरी मार्च १८८५ ई०) में हुआ था। इसमें २३ पद हैं और सभी पद भावविभोर और शोक से भरे हुए हैं। मिश्र जी की भारतेन्दु के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति इसमें संजोयी हुई है। कहीं ईश्वर को उलाहना दिया गया, कहीं भारतेन्दु का गुणानुवाद गाया गया है कहीं आराध्य रूप में उनके विछोह पर शोक व्यक्त किया गया है इस प्रकार सम्पूर्ण पदों में मिश्र जी के विह्वल-हृदय के विभिन्न भाव बोलते हुए दिखाई पड़ते हैं। छन्द विधान भी इसका बड़ा सबल है। कुछ पद सूर का स्मरण दिलाते हैं कुछ में आधुनिक प्रगीततत्वों के दर्शन होते हैं। भाषा के क्षेत्र में भी ब्रज, खड़ीबोली और उर्दू की त्रिवेणी बहती दिखाई देती है। अस्तु 'शोकाश्रु' मिश्र जी के कोमल कातर और निश्छल हृदय का प्रतीक है।

युवराजकुमार स्वागतन्ते

युवराजकुमार-स्वागतन्ते' राजकुमार विक्टर के भारत आगमन पर लिखा हुआ आठ पृष्ठ का एक स्वागत-गीत है। राजकुमार विक्टर का भारत में आगमन १८८९ ई० में जाड़े के दिनों में हुआ था इसका उल्लेख मिश्र जी अपने स्वागत गीत में इस प्रकार करते हैं—

"हरि शशि सम्वत पांच महँ सित पख अगहन मास।
भो विक्टर आगमन ते भयो [हिन्द सुख रास॥[2]

यह गीत १५ नवम्बर १८८९ के 'ब्राह्मण' अंक में प्रकाशित हुआ था। इसमें स्वागत के साथ-साथ भारत की तत्कालीन दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। भारतीय नरेशों जमींदारों पूंजीपतियों के कार्यों की आलोचना करते हुए त्रसित और क्षुधित वर्ग के प्रति सम्वेदना प्रकट की गई है। इस गीत के अंत में मिश्र जी

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ७ ('दंगल)

२ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ 'युवराजकुमार स्वागतंते'—प्रतापनारायण मिश्र

भारत की दयनीय दशा को विक्टोरिया से कहने का—विक्टर से अनुरोध करते हैं जिससे भारतीयों की स्थिति में कुछ सुधार हो सके। इस स्वागत-गीत का प्रमुख उद्देश्य स्वागत न होकर भारत की दशा का विक्टोरिया तक पहुंचाना है।

ब्रैडला स्वागत

यह भी युवराज कुमार स्वागतम् की तरह एक स्वागत गीत है। आकार और शैली में लगभग दोनों रचनायें एक सी ही हैं। ब्रैडला स्वागत इंगलैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० चार्ल्स ब्रैडला के भारत आगमन पर लिखा गया था। चार्ल्स ब्रैडला भारत की स्थिति का दर्शन तथा बम्बई में होने वाले कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए दिसम्बर १८८९ ई० में भारत आये थे।[१] इसी समय मिश्र जी अपना यह स्वागत-गीत लिख कर 'स्वागतं ते महात्मन्' नाम से ब्राह्मण के खण्ड ६ संख्या ५ (दिसम्बर १८८९ ई०) में प्रकाशित कराया था। इसी वर्ष यह गीत 'ब्रैडला स्वागत' नाम से पुस्तकाकार भी हनुमत प्रेस कालाकांकर से छपकर प्रकाशित हुआ। आगे चलकर यही गीत 'क्रन्दन' नाम से भी कई अखबारों में निकला। कालाकांकर से प्रकाशित ब्रैडला स्वागत पुस्तक १६ पृष्ठ की है और इसमें प्रत्येक पद के नीचे अंग्रेजी में अनुवाद दिया हुआ है पर यह अनुवाद किसका किया है यह ज्ञात नहीं। क्योंकि मिश्र जी लिखते हैं—अंग्रेजी न मेरी मातृ भाषा है न मैं उसे उत्तम रीति से जानता हूँ एक मित्र (जिनका नाम प्रकाशित करना आवश्यक नहीं है) ने कृपा करके अनुवाद कर दिया है।[२] चार्ल्स ब्रैडला कांग्रेस तथा हिन्दुओं के बड़े हितैषी थे इसीलिए मिश्र जी ने इस कृति में इनकी बड़ी प्रशंसा की है। ब्रैडला स्वागत में तत्कालीन देशदशा का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। भारतीय कृषकों और श्रमिकों की दशा के नग्न दृश्य इसमें दिखाये गए हैं। तथा व्यापार कृषि शिक्षा आदि की अवनति दिखाते हुए बेकारी की ओर भी संकेत किया गया है। भारतीयों की राज भक्ति और अंग्रेजों की दमन तथा शोषण-नीति को मिश्र जी ने बड़ी नम्रता के साथ शिष्ट भाषा में अभिव्यक्त किया है और ब्रैडला से कांग्रेस तथा भारत के उत्थान में सहयोग देने की प्रार्थना की है। यह कृति राज भक्ति की परिपाटी पर लिखी गयी है पर इसके अन्तराल में राष्ट्रप्रेम झांकता हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ब्रैडला स्वागत एक प्रकार से भारत की दीन हीन दशा को सुधारने का प्रार्थना-पत्र है। राजभक्ति के रूप में लिखी होने के कारण इस कृति का इंगलैंड में भी बड़ा स्वागत हुआ। मर्डरिंग डिनकार ने इस कृति का अंग्रेजी में अनुवाद करके १८९० ई में इंग इण्डिया पत्र में प्रकाशित कराया। इस अनुवाद

---

१ बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ १५४ ८५

२ प्रतापनारायण मिश्र—ब्रैडला स्वागत (१८८९ ई०)—पृष्ठ १६

के विषय मे मिश्र जी लिखते हैं—श्री फ्रैडरिक पिनकाट महोदय को हम इस अनुग्रह के लिए अन्त करण म अनक धन्यवाद देते है कि उन्होने विलायत के 'इण्डिया नामक समाचार पत्र म हमारी 'ब्रैडला स्वागत' नामी पुस्तिका का अनुवाद बडी सुन्दर सरल एव साधु अंग्रेजी मे प्रकाशित किया है इससे हमारे देश की दीन दशा का वहाँ वालो के जी म बहुत-कुछ बाव अथवा तद्द्वारा हमारे दुखो का बहुत-कुछ निवारण होने की सम्भावना है। [1]

तृप्यन्ताम

इस कृति की रचना सन् १८९० ई० क पितृपक्ष (आश्विन कृष्ण पक्ष) मे की गयी थी। इसके रचनाकाल का उल्लेख मिश्र जी तृप्यताम् क अन्तिम छन्द म इस प्रकार करत हैं—

> हरि शशि वतसर छह असित आसिन मास ललाम।
> जग हित मिश्र प्रताप मुख निकस्यों तृप्यन्ताम् ॥[2]

यह कृति ब्राह्मण म धारावाहिक रूप से खण्ड ७ सख्या ३ ४,५ ६ और ७ (अक्टूबर १८९० स फरवरी १८९१ तक) म प्रकाशित हुई थी। आगे इसका पुस्तकाकार प्रकाशन १८९१ ई म खड्ग विलास प्रस, बाकीपुर स हुआ। १९१४ ई० म इसी प्रेस म इसका द्वितीय सस्करण भी निकला। यह २१ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तिका है। मूल्य इसका डेढ आना है। इसम कुल ९० छन्द हैं जिनमे ८९ छन्दो म तपण और अतिम छद (जो दाहा छन्द मे है) म पुस्तक का रचना काल दिया हुआ है। इस कृति म तत्कालीन देश-दशा क प्रति क्षोभ एव असतोष व्यक्त किया गया है। इसके प्रत्येक छन्द से यह ध्वनि निकलती है कि जब भारतीय स्वय ही तृप्त नही है ता दूसरो के तृप्त होन की कामना कसे कर सकते हैं? भारत को ता छल अनाचार निधनता अकाल शोषण, फूट मतादि ने भ्रष्ट एव अशक्त बना दिया है फिर कोई किस प्रकार साफ और प्रसन्न मन स तपण दे सकता है। हाँ पानी उलच कर परम्परा का निर्वाह भले ही लोग करते रहें। इसमे देवी-देवताओं ऋषि मुनियो पेड-पौधा नदी-पर्वता नर-नारियो पितरा आदि को एक-एक छद से तपण किया गया है साथ ही उनसे सम्बन्धित स्थिति पर भी उसी छन्द क प्रारम्भ म प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक छन्द म चार चरण है। पहले तीन चरणो मे देश काल का चित्रण है और चौथे चरण म उसी के अनुरूप देवादि को तपण दिया गया है। इस प्रकार 'तृप्यन्ताम म मिश्र जी न बडी कुशलता के साथ प्राचीन परम्परा

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ९ (धन्यवाद)
२ 'प्रतापनारायण मिश्र—तृप्यन्ताम (१९१४ ई०)—पृष्ठ २१

में नवीनता का समावेश करते हुए तत्कालीन स्थिति को बड़े मार्मिक-ढंग से भारतीयों के सामने रक्खा है।

तारापात पचीसी

इसमें पचीस दोहे हैं। इसके रचना-काल का उल्लेख मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

'अगहन कृष्ण षष्ठि निशा हरि नगि सम्वत एक।
तारापात पचीसि किय द्विज प्रताप सविवेक॥'[1]

इस दोहे के अनुसार इसकी रचना अगहन कृष्णपक्ष ६ (रात्रि) हरिश्चन्द्र सम्वत १ (नवम्बर १८८५ ई०) में की गयी। इसका प्रकाशन ब्राह्मण के खण्ड ३ संख्या ९ १० (नवम्बर-दिसम्बर १८८५ ई०) में हुआ था। तारापात पचीसी के प्रारम्भिक दोहों में नक्षत्रों की सुन्दरता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन है और अन्तिम दोहों में ईश्वर का गुणगान उसकी विचित्र सृष्टि पर विस्मय प्रकट करते हुए किया है। इसके कुछ दोहे कलापक्ष की दृष्टि में बड़े उत्कृष्ट बन पड़े हैं।

श्री प्रेमपुराण

यह आख्यानक काव्य के रूप में लिखी गयी है। इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ ३ ४ ९ १० (१८८५ ई०) में हुआ था। इसमें दो अध्याय हैं दोनों अध्यायों में एक-एक प्रेम कहानी दोहे चौपाइयों में लिखी गयी है। दोनों कहानियां अपने में पूर्ण तथा स्वतन्त्र हैं। यद्यपि मिश्र जी अभी इस पुराण में और कहानियां बढ़ाना चाहते थे पर किन्हीं कारणों से वह इसे आगे न लिख सके। वे इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—प्रिय पाठक! इस पुराण में किसी मत विशेष की स्तुति निन्दा न होगी किसी देश किसी सम्प्रदाय के क्या नहीं प्रेमी होना चाहिए उन्हीं के इतिहास इसमें रहेंगे। बिन मुख प्रहलाद प्रभृति की कथा पुराणों में है उनका लिखना पिष्टपेषण है जिनका हाल आपको नहीं मालूम उन पर चरित्र पर ध्यान दीजिए। कोई इस ढंग के इतिहास जानते हो तो लिख भेजो देश भाइयों का उपकार होगा।[2] इस पुराण में आठ चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में पांच सोरठे हैं जिनमें प्रेम का माहात्म्य दिखाया गया है। प्रथम अध्याय की कथा इस प्रकार है—यवन देश के एक प्रचारक मुल्ला बड़े ज्ञानी और उदार थे। इन्होंने एक कन्या को उत्पन्न किया। एक बार मुल्ला जी उपदेश देने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक सुरम्य वन में एक

---

1 ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ९ १० (तारापात-पचीसी)
2 ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या २ श्री प्रेमपुराण—प्रतापनारायण मिश्र

गडरिया बैठा ईश्वर का स्मरण कर रहा है और उसकी बकरियां पास ही चर रही हैं। गडरिया कहता है-- प्रभो एक बार हमारे घर पधारो हम आपका बड़ा स्वागत करेंगे। बकरी का दूध पिलायेंगे आदि आदि। गडरिये का प्रलाप सुनकर मूसा उसके पास आये और कहा—हे भाई। ईश्वर अरूप और सर्व व्यापक है वह तुम्हारे घर नहीं आ सकता। तुम केवल उससे अपने धर्म कर्म के सुधारने की प्रार्थना करो। उसके बुलाने का उपक्रम निरा भ्रम-पूर्ण है। यह कह कर मूसा चले गये। अब गडरिया संशय में पड़ गया। उसके मन में अनेक तर्क वितर्क उठने लगे। उधर मूसा को रास्ते में आकाश वाणी हुई कि तुमने मेरे भक्त को संशय में क्यों डाल दिया? मुझे नीरस ज्ञान प्रिय नहीं है। तुम पुनः जाकर उसे समझाओ और उसका संशय दूर करो। मूसा ने वापस आकर गडरिये से क्षमा मांगी और दोनों प्रेम से गले मिले। इस कहानी में ज्ञान से प्रेम को श्रेष्ठ माना गया है।

द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में दो दोहे हैं जिनमें प्रेम देव की वन्दना तथा प्रेम कथा का संकेत है। इस अध्याय की कथा इस प्रकार है--एक बार भक्त नारद ईश्वर की प्रभुता देखने के लिए मृत्युलोक का भ्रमण करने निकले। रास्ते में उन्हें एक भयानक जंगल मिला। जहाँ हिंसक पशुओं के अतिरिक्त किसी का रहना नितान्त असम्भव था। ऐसे भयानक जंगल में नारद देखते हैं कि एक अति दुर्बल मुनि अपने पैरों को एक पेड़ से बांधे उलटा झूल रहा है और उसके चारों ओर असहनीय अग्नि धधक रही है। ऐसे कठिन साधक को देखकर नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसके पास आकर पूछने लगे-- यह कठिन साधना किस फल के हेतु कर रहे हो? मुझ सत्य-सत्य बताओ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। कई बार नारद के पूछने पर मुनि ने कहा—विष्णु भगवान के दर्शन के लिए कर रहा हूँ। यह सुनकर नारद ने हँस कर कहा--'तुम्हें किसने बहका दिया है। जिस विष्णु को वेदादि व्यापक और अरूप कहते है वह तुम्हें शरीर धारण कर किस प्रकार दर्शन दे सकता है? मुनि ने कहा---'मैं मानता हूँ ब्रह्म अरूप और असंख है फिर भी योगी-जन जन्म-जन्म उसका ध्यान किया करते है और उन्हें अनेक रूपों में ब्रह्म के दर्शन होते हैं। उसी प्रकार मैं भी श्यामवर्ण विष्णु का मुख देखना चाहता हूँ। इस पर नारद बड़े जोर से हँसे और कहा—तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि विष्णु का श्यामवर्ण है? मुनि ने कहा—श्यामवर्ण निरर्थक नहीं है। श्याम रंग की ही आंख की पुतली है जिससे संसार के सम्पूर्ण दृश्य दिखाई पड़ते है। श्याम रंग से ही सम्पूर्ण ग्रंथ लिखे हुए हैं। रात्रि में भी सब ओर अंधकार ही दिखाई पड़ता है। इसलिए मैं भी अपने विष्णु को असीम और श्याम मानता हूँ। नारद ने कहा--'यदि तुम्हें दर्शन न हुए तब क्या करोगे? मुनि ने कहा—इसी प्रकार जीवन भर तपस्या करूँगा, इसके बाद जो भगवान दिखायेंगे वही देखूँगा। नारद मुनि की दृढ़ आस्था

से बड़े प्रसन्न हुए और उसे फल प्राप्ति का आशीर्वाद देकर विष्णु लोक को चले गये। वहाँ जाकर नारद ने मुनि के सब समाचार विष्णु भगवान से कहे। विष्णु भगवान ने नारद से कहा—'मुनि से जाकर कह दो इस पेड़ में (जिसमें मुनि झूल रहा है) जितने पत्ते हैं उतने ही कल्प तपस्या करो। तब निश्चित ही मुझे भगवान मिल जायेंगे। नारद ने ऐसा ही मुनि से आकर कहा। नारद की बात सुनकर मुनि इतना प्रसन्न हुआ कि तपस्या छोड़कर प्रेम से नाचने लगा। उसका सब भ्रम दूर हो गया। गद्‌गद होकर वह कहने लगा अब तो निश्चित ही मुझे विष्णु भगवान के दर्शन होंगे। उसको प्रेम मग्न देखकर विष्णु भगवान ने तुरन्त ही वहीं आकर उसे दर्शन दिया। उपर्युक्त अवधि तो विष्णु भगवान ने उसकी आस्था देखने के लिए दी थी। इस प्रकार दोनों ही कहानियों में प्रेम की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। इस कृति की भाषा सरल अवधी है। बीच-बीच में तुलसी कृत 'रामचरित मानस' के सिद्धान्तों को भी साक्षी बनाया गया है तथा विभिन्न तर्कों से ज्ञान से प्रेम को अग्रणीय ठहराया गया है। विषय प्रतिपादन और रसात्मकता की दृष्टि से यह कृति निश्चित ही सफल है।

फाल्गुन माहात्म्य

फाल्गुन माहात्म्य मिश्र जी ने अपने तथा अपने समवयस्क मित्रों के मनोरंजनार्थ लिखा था। इसमें होली में गाने के अश्लील कवित्त हैं जिन्हें मिश्र जी प्रायः होली के अवसर पर गाया करते थे जिससे लोगों का बड़ा मनोरंजन होता था। इस कृति को मिश्र जी ने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए लिखा था इसे वे छपाना नहीं चाहते थे। एक बार उनके एक मित्र इसे बिना बताये उठा ले गये और सन् १८८९ ई० में इसे छपवा डाला। मिश्र जी को जब यह बात मालूम हुई तब वे बहुत असन्तुष्ट हुए और सभी छपी हुई पुस्तकों को प्रकाशित होने से रुकवा लिया। इसकी सूचना मिश्र जी ब्राह्मण में इस प्रकार देते हैं— हमारे पास एक होली में गाने की निरी अश्लील कविताओं की हाथ की लिखी हुई पुस्तिका रक्खी थी। उसे एक भले मानुस हमसे पूछे बिना ले गये। और अब सुनने में आया है कि उन्होंने साधारण हेतु उसे छपवाया है और कानपुर तथा और नगरों में बेचना चाहते हैं। हमने यद्यपि एक प्रतिष्ठित और माननीय महाशय के द्वारा उनको मुनासिब मना कर दिया है और उन्होंने भी पुस्तकें जला देने का प्रण कर लिया है। तो भी हम विज्ञापन द्वारा सर्व साधारण को सूचित करते हैं कि यदि ऐसी पुस्तक किसी के पास निकलेगी तो उसके अपराधी वही होंगे जिम्मेदार छापने वाले हैं और लिखने वाले का कोई सम्बन्ध नहीं।[1] आज फाल्गुन माहात्म्य की एक भी छपी हुई प्रति कहीं उपलब्ध नहीं है जिससे ज्ञात होता है कि उक्त मित्र ने

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ८ (आवश्यक सूचना)

इसकी सभी प्रतियाँ जला दी गयीं। मुझे कानपुर में कुछ लोगों से ज्ञात हुआ कि इस कृति के छपवाने वाले मित्र सनिगवाँ (जिला कानपुर) निवासी पं० चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र थे। मुझे अपने शोध-काल में 'फाल्गुन-माहात्म्य' की हस्तलिखित एक-दो प्रतियाँ इधर उधर देखने को मिली हैं। एक प्रति पटकापुर (कानपुर) में डा० गिरिजानन्दन त्रिवेदी के पास भी है जिसे वे फाल्गुन में दिखाते हैं। फाल्गुन माहात्म्य कामशास्त्र के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमें कामशास्त्र के विभिन्न अंगों कलि आदि का स्पष्ट शब्दों में वर्णन है। साथ ही कामोत्तेजना बढ़ाने तथा काम विषयक बीमारियों के शमनार्थ अनेक औषधियाँ बतायी गई हैं। इस कृति को देखने से मिश्र जी के कामशास्त्र विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिल जाता है। इस कृति की भाषा बड़ी प्रौढ़ है। इसमें चौपाई, दोहा सोरठा कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त बहुत से अलंकार भी इसमें आये हैं जो बड़े उत्कृष्ट हैं। कलापक्ष में पूर्ण होते हुए भी यह कृति अत्यधिक अश्लीलता के कारण अप्रकाशनीय है।

होली है

यह कृति १८८९ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसका विज्ञापन १५ मार्च १८८९ ई० के ब्राह्मण में इस प्रकार निकला था—'इस नाम की एक बड़ी अच्छी पुस्तिका पं० प्रतापनारायण जी की लिखी हुई हमारे पास बिकने को प्रस्तुत है दाम केवल दो पैसे हैं डाक व्यय दस पुस्तक तक आध आना है मंगाकर देखो तबियत फड़क उठेगी उपदेश पलौनी में है।'[१] इस पुस्तिका में मिश्र जी का १५ मार्च १८८३ ई० के 'ब्राह्मण' में प्रकाशित निबन्ध हो ओ ओ ली है! संकलित है। इस निबन्ध में दो कविताएँ भी हैं। इस कृति के प्रकाशन के बाद भी होली पर मिश्र जी ने बहुत सी कविताएं लिखी थीं जो ब्राह्मण के कई अंकों में प्रकाशित हुई थीं। आगे चलकर १५ मार्च, १९१३ ई० में इनका पुस्तकाकार प्रकाशन होली है नाम से माधुरी एण्ड कम्पनी कानपुर में हुआ। पर इस संग्रह में मिश्र जी की होली विषयक अनेक कवितायें नहीं संकलित हो सकीं। इसमें केवल आठ कवितायें और एक निबन्ध (हो ओ ओ ली है!) संकलित है। ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ८ की कवितायें इस पुस्तक में प्रकाशित होने से रह गयी हैं। ये कवितायें विभिन्न छन्दों और राग रागिनियों में लिखी गयी हैं। भावों की दृष्टि से काफी समभाव, फाग होरी शीर्षक रचनायें विशेष उत्कृष्ट हैं। मिश्र जी की होली विषयक रचनाओं को विषय की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहली देशदशा या राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण रचनायें जैसे होली है अथवा होरी होलिका-पंचक होली', 'कैसी होरी' आदि। दूसरी ईश्वर भक्ति से सम्बन्धित रचनायें जैसे होलिका पचीसी होरी' आदि। तीसरी होली के हास

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ८ 'होली है' पं० देवीप्रसाद शर्मा

परिहास और शृंगार रस में परिपूर्ण रचनायें जैसे होरी राग सूहा आदि ये सभी रचनायें भाषा और भाव और छन्द योजना की दृष्टि से सफल हैं। मिश्र जी प्रकृति से हास्य प्रिय थे इसलिए इन्हें होली से बड़ा प्रेम था। ये प्रतिवर्ष फाल्गुन में प्रायः होली पर कुछ न कुछ लिखते थे। इस अवसर पर इन्हें अपने भावों को व्यक्त करने का अच्छा सुयोग मिल जाता था। ये जमकर अपनी हँसी को रचनाओं में बिखेर देते थे।

शृंगार विलास

यह कृति अब अप्राप्य है। पर इस नाम की पुस्तक मिश्र जी ने लिखी अवश्य है क्योंकि 'कवि कौतुक रूपक' (१८८५ ई०) के मुख पृष्ठ पर मिश्र जी की रचनाओं के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। यह १८८५ ई० (कवि कौतुक रूपक से पूर्व) के पूर्व की रचना है नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि इस कृति में शृंगार रस की कवितायें रही होंगी।

प्रार्थना शतक

इस कृति का नाम 'सौरनाष्टक' प्रथम भाग (१८९४ ई०) के मुख पृष्ठ पर (मिश्र जी की रचनाओं के अन्तर्गत) दिया हुआ है पर यह कृति भी अब अनुपलब्ध है। इसमें मिश्र जी की सौ प्रार्थनायें संग्रहीत रही होंगी। इसका रचनाकाल १८९४ ई० (सौरनाष्टक प्रथम भाग के अनुसार) के पूर्व मानना चाहिए।

दीवाने बरहमन

इसमें मिश्र जी की उर्दू फारसी की गजलें और शेरें संगृहीत थीं। असामयिक मृत्यु हो जाने से मिश्र जी इसे प्रकाशित न करा सके थे। इसकी हस्तलिखित प्रति, जो मिश्र जी के हाथ की लिखी था—मिश्र जी मृत्यु के बाद पाण्डे प्रभुदयाल को प्राप्त हुई पर पाण्डे जी इसे प्रकाशित न करा सके और उनका (पाण्डे जी का) स्वर्गवास हो गया। इसके बाद यह कृति उन्हीं के यहाँ अप्रकाशित हो नष्ट हो गयी।[1]

स्फुट कवितायें

इन उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त लगभग डेढ़ सौ स्फुट कवितायें मिश्रजी की हमें और मिली हैं जो 'ब्राह्मण' 'कवि वचन सुधा' और 'रसिक वाटिका' में प्रकाशित हुई थीं। इन्हें मिश्र जी पृथक पुस्तकाकार नहीं निकलवा सके। इन कविताओं के अतिरिक्त मिश्र जी के 'ब्राह्मण' में भी बहुत सी कवितायें मिलती हैं जो बड़ी उत्कृष्ट हैं। इनके साथ ही मिश्र जी की और भी बहुत सी कवितायें तत्कालीन पत्रों में निकली थीं जो अब (तत्कालीन पत्रों के अभाव में) अप्राप्य हैं। मिश्र जी ने कानपुर में मुसम्मस भी—फारसी गजलों पर अपने मिसरे लगाकर बनाये थे जिनका गुजर इसमें लगे पर न बाद यह ज्ञात था कि ऐसी कवितायें मिश्र जी

---

1 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि० पृष्ठ [illegible]

को प्राय जवानी ही याद थीं, उनका प्रकाशन नही हुआ अत वे भी अब अनुपलब्ध हैं।[1] प्राप्य कविताओ म बगारी विलाप (अप्रैल १८८३ ई०) कसीदा (अगस्त, १८८३ ई०) जन्म सुफल कब होय ? (नवम्बर, १८८३ ई०) भारत रोदन (जनवरी १८८४ ई०) गाना समझा चाहे रोना (१८८४—८५ और १८८८ ई०) इतना दे करतार अधिक नही बोलना (नवम्बर—दिसम्बर १८८४ ई) कलियुग ककहरा जुलाई १८८५ ई०) प्रेम प्रमाद १८८५—८६ ई) पशु प्रार्थना (अगस्त १८८७ ई०) नवरात्र के पद (नवम्बर १८८७ ई०) ककाराष्टक (मई, १८८८ ई०) महापर्व (दिसम्बर १८८८ ई) नया सम्वत् मार्च १८९० ई०) नामक कविताए लम्बी हैं जो लगभग तीन-तीन, चार चार पृष्ठो म होगी। बगारी विलाप[2] मे ३८ दोहे है इनमे सरकार द्वारा बेगार म पकडे जाने वाले श्रमिको का करुण चित्रण है। कसीदा[3] भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र पर (भारतेन्दु के बीमारी से स्वास्थ्य हो जानेपर) लिखागया था इसम भारतेन्दु की प्रशसा की गयी है। जन्म सुफल कब होया[4] हास्य रस की रचना है इस म तत्कालीन जातियो और नारीो क उद्देश्यो को व्यग्यात्मक नली मे व्यक्त किया गया है। भारत रोदन[5] ३५ दोहो म लिखा गया है। शिक्षा कमीशन द्वारा हिन्दी का स्थान न मिलन स उत्पन्न असतोष इसमे वणित है। इस कविता म मिश्र जी का हिन्दी प्रेम कूट-कूट कर भरा है। गाना समझो चाहे रोना'[6] नामक स मिश्र जी ने सात कविताए लिखी जो ब्राह्मण के विभिन्न अको मे प्रकाशित हुई। ये लावनी पदों और गीता में लिखी गयी हैं। सभी म भारत की दयनीय दशा का चित्रण है। 'इतना दे करतार अधिक नही बोलना'[7] व्यग्यात्म कविता है इसमें तत्कालीन समाज की मनोदशा का चित्रण है। कलियुग ककहरा[8] भी हास्य और व्यग्य म पूर्ण हैं। इसमें समाज की कुरीतियो का दिखाया गया है। प्रेम प्रमाद'[9] १३ पदा म लिखी एक प्रेम विषयक कविता है। मिश्र जी ने इन १३ पदों में अपनी प्रम विह्वलता व्यक्त की है। पशु

---

१ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२० ७ वि०)-पृष्ठ १२—१३
२ ब्राह्मण खण्ड १ सख्या २
३ —वही— १ ६
४ —वही— १ ,, ९
५ —वही— १ ११
६ —वही— २ , २४९—१ , ११ खण्ड ५ संख्या ३४
७ 'ब्राह्मण खण्ड २ सख्या ९—१०
८ —वही—, ३ ५
९ —वही— ३ , ९—१ ११ १२

प्रार्थना'[1] में ५१ दोहे हैं इनमें पशुओं की ओर से पशु-वध रोकने की ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। नवरात्र के पर्व[2] संख्या में पांच हैं इनमें दुर्गा की स्तुति की गयी है। 'अक्काराष्टक'[3] आठ छन्दों की कविता है इसकी सभी पंक्तियाँ 'क' से प्रारम्भ होती हैं। इसमें ब्राह्मणों कायस्थों वन्या भक्तों आदि के कार्यों की भर्त्सना की गयी है। महापर्व[4] में कांग्रेस के कार्यों और उसके इलाहाबाद में होने वाले चौथे अधिवेशन की सूचना है। इसके साथ ही जनता से कांग्रेस की सहायता करने की अपील की गयी है। इस कविता में कुल ६६ दोहे हैं। नया सम्वत[5] कविता सम्वत १९४७ वि० के प्रारम्भ होने के उपलक्ष में लिखी गयी है। इसमें विक्रमी सम्वत का गुणगान तथा आजकल उसकी भारतीयों की ओर से की जाने वाली उपेक्षा का वर्णन है। इस कविता में मिश्र जी का नवीन प्रेम अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंचा हुआ है। इन लम्बी कविताओं के अतिरिक्त मिश्र जी ने बहुत सी कविताएं ईश्वर प्रार्थना और समस्या-पूर्तियों के रूप में लिखी हैं। विषय की दृष्टि से मिश्र जी की समस्त स्फुट-कविताओं को प्रमुख रूप से छः भागों में बांटा जा सकता है। पहली ईश्वर भक्ति-सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में मिलती है। कानी कृष्ण दुर्गा आदि की स्तुतियां सगुणोपासना की द्योतक हैं और प्रेम की अनन्यता पर लिखे हुए गीत निर्गुणोपासना के। मिश्र जी प्रेमतत्व के अनन्य पुजारी थे इसलिए प्रेम पर इन्होंने बहुत सी कविताएं लिखी हैं। दूसरी, देश भक्ति से सम्बन्धित कविताएं भी संख्या में पर्याप्त हैं। इनमें सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक साहित्यिक स्थिति पर विचार करते हुए हिन्दी हिन्दू, हिन्दुस्तान के उद्धार पर बल दिया गया है। ये कवितायें प्रायः उपदेश प्रधान हैं। इनमें मिश्र जी की शुद्धतावादी वृत्ति विशेष दिखाई पड़ती है। मिश्र जी तत्कालीन समस्याओं का खंडन-मंडन देश-हित की दृष्टि से स्पष्ट करते हैं। तीसरी, शृंगार रस प्रधान कविताएं इनमें शृंगारिक चेष्टाएं और स्त्री पुरुषों के प्रेम व्यापार आदि वर्णित हैं। मिश्र जी ने संयोग शृंगार और वियोग शृंगार दोनों पर अपनी लेखनी चलायी है। संयोग शृंगार सामान्य नायक नायिकाओं को आधार बनाकर लिखा गया है और वियोग शृंगार प्रमुख रूप से गोपियों के विरह पर आधारित है। समस्या पूर्तियां भी अधिकांश शृंगारिक ही हैं। 'संगीत शाकुन्तल' में भी संयोग और वियोग शृंगार की कई एक कविताएं हैं।

---

1 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १
2 —वही— ४, ४
3 —वही— ४ १०
4 —वही— ५ ५
5 —वही— ६, ८

उत्कृष्ट है मिश्र जी का परिष्कृत कलापक्ष उनकी शृंगारिक कविताओं में ही देखने को मिलता है। चौथी हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण कविताएं इनमें किसी-न किसी सामाजिक या धार्मिक संकीर्णता तथा भारतीयों की अकमण्यता पर छींटाकसी की गयी है ये सभी कविताएं सोद्देश्य हैं। इनमें मिश्र जी की वाक्पटुता दर्शनीय है। कटु से कटु बात व व्यंग्य के माध्यम से बड़ी मार्मिकता के साथ कह जाते हैं। मिश्र जी की ये कविताएं मनोरंजक होते हुए भी प्रभावोत्पादक हैं। पांचवीं प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताएं इनमें प्रकृति दृश्यों, ऋतुओं आदि के वर्णन हैं। ऐसी कविताएं संगीत शाकुन्तल में बहुतायत से मिलती हैं। छठी विविध विषयों पर लिखी गई कविताएं जैसे स्वागत गीत शोकगीत सेना वर्णन वर्षा रम्भ आदि। शोकगीत मिश्र जी ने बहुत से लिखे जिनमें दयानन्द सरस्वती चार्ल्स ब्रडला, भारतेन्दु की मृत्यु पर लिखे गये शोक गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। इन गीतों में मिश्र जी की भाव प्रवलता कोमलता सहृदयता एकीकृत दिखाई पड़ती है। सेनादि के वर्णन भी बड़े स्वाभाविक बन पड़े हैं। स्फुट कवितायें मिश्र जी ने ब्रज खड़ी बोली उर्दू संस्कृत आदि कई भाषाओं में लिखी हैं। छन्दों में गीत कवित्त, सवैया दोहा पद, लावनी मिश्र जी को विशेष प्रिय थे इन्हीं में उन्होंने अधिकांश कविताएं लिखी हैं। छन्द भाषा और भाव की दृष्टि से ये कविताएं बड़ी प्रौढ़ हैं। अलंकारों का भी इनमें अच्छा प्रयोग हुआ।

नाटक

कलि कौतुक रूपक

यह रूपक भारतीय प्रेस, काशी से १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके समर्पण में आश्विन कृष्ण नवमी शुक्रवार श्री हरिश्चन्द्राब्द[1] लिखा हुआ है जो सितम्बर, १८८५ई० में पड़ता है। इसमें कुल ४४ पृष्ठ हैं और इसका मूल्य तीन आना है। यह एक सामाजिक रूपक है। इसमें नगर-निवासियों के वास्तविक चरित्र दिखाये गये हैं। इसके लिखने में मिश्र जी का दृष्टिकोण पूर्ण यथार्थवादी रहा है। वे समाज का कच्चा चिट्ठा इसमें स्पष्ट खोलकर रख देते हैं। यह रूपक कुल चार दृश्यों में लिखा गया है। इसमें १५ पुरुष और तीन स्त्री पात्र हैं जो आकार को देखते हुए बहुत अधिक है। इसके लिखने का उद्देश्य मिश्र जी के इन शब्दों से बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है— क्या भाई सब प्रकार के ग्रन्थ बनाओगे पर आचरण न दिखाओगे ? इधर भी कुछ ध्यान दीजिए।[1] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने रूपक की रचना की है। मिश्र जी समाज के पतित चरित्र जनता को दिखाकर उसे सुधार की ओर मोड़ना चाहते थे। इसीलिए समाज के अशिष्ट से अशिष्ट चित्र भी कलि कौतुक

---

१ प्रतापनारायण मिश्र— कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) देखो' से

रूपक में रखने ग थ नहीं हिचक । इस रूपक का प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है । नान्दी पाठ एक दोहे में किया गया है । इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

रूपक की नायिका श्यामा और उसकी सखी चम्पा में अश्लील बातचीत हो रही है । चम्पा गंगा जी के एक बाबा का हाल बताती है—'बाबा जी के पास मैं सन्तान के लिए गयी थी तो बाबा जी ने कहा कि सन्तान ना लिखी है पर गृहस्थ में नहा । यह सुनकर श्यामा बहुत हँसी । फिर चम्पा ने बताया कि तबसे बाबा जी हमारे घर के कई चक्कर लगा चुके हैं । श्यामा की भी बाबा जी से मिलने की इच्छा हुई । इतने में श्यामा का प्रेमी रसिकबिहारी बाहर से सीटी बजाता है । सीटी सुनकर चम्पा चली जाती है फिर श्यामा और रसिक बिहारी में प्रेमालाप प्रारम्भ होता है । इतने में श्यामा का पति किशोरीदास (नायक) दरवाजा खटखटाता है । श्यामा रसिक को छिपाकर दरवाजा खोलने चली जाती है । तत्पश्चात् किशोरी और श्यामा में बातचीत होती है । श्यामा पति से बड़ा प्रेम दिखाती है । किशोरी भी श्यामा की तरह दुश्चरित्र है । वह लच्छरीजान वेश्या के ऊपर मोहित है । श्यामा से रहन दसन का बहाना बनाकर चला जाता है । श्यामा सब जानती है । इसलिए उसके जाने पर कहती है कि 'तुम डाल डाल हम पात-पात' । किशोरी लच्छरीजान का जूठा शराब पीता ही है साथ ही उसकी जूतियों के प्रहार भी सिर पर सहता है । जूतियों के प्रहार को ही वह प्रेम प्रसाद समझता है । किशोरी का अधिकांश समय वेश्या, शराब और कबाब में बीतता है पर ये सभी काम वह समाज से छिपाकर करता है । ऊपर से वह बड़ा भक्त है । यहाँ तक कि जब बाहर निकलता है तब तुलसी की चौपाइयाँ ही उसके मुख से सुनाई पड़ती हैं । सभी लोग इसे बड़ा धर्मनिष्ठ समझते हैं । किशोरी के पद्मचन्द नाम का एक गोद लिया हुआ लड़का भी है जो प्रातःकाल स्कूल का बहाना बनाकर घर से चला जाता है और पूरे दिन इधर उधर घूमा करता है । पद्म के रूप पर बहुत से लोग मोहित हैं । यहाँ तक की मुरारीदास पुजारी भी पद्म के पीछे पड़े हैं । ये लोग पद्म को बहुत से पैसे देकर प्यार करते हैं । अन्त में तत्कालीन सभाओं पर भी दृष्टिपात किया गया है । रसिक बिहारी 'धर्मवर्द्धिनी सभा' का सदस्य है । इस सभा की बैठक हर सातवें दिन होती है । पर इसके सदस्य समय पर नहीं पहुँचते । प्रेमचन्द इस सभा का सभापति है । [illegible] सदस्य [illegible] गया है । इस सभा के सदस्यों में बड़ा असन्तोष है । इसके बाद सभा की बैठक प्रारम्भ होती है पर अभी तक रसिक बिहारी नहीं आये । कुछ देर बाद उनका आगमन होता है । लोग उनसे देर से आने का कारण पूछते हैं । वह बताता है कि कचहरी जाना पड़ा था । किशोरीदास का मुकदमा था । किशोरीदास पर बहुत शराब आदि के कई हजार का कर्ज हो गया था । इससे उसका सामान कुर्क हो गया है और वह सारा माल ले गया हो गये हैं । उसका लड़का पद्म भी [illegible] से [illegible] था ।

अभी पता चला है कि एक वश्या क यहा नौकर है । किशोरी का यह हाल सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य होता है और प्रमचन्द्र इस पर बड़ा दुख प्रकट करता है । इस प्रकार इस रूपक म गृहस्थ विद्यार्थी साधु, पुजारी आदि क दोहरे चरित्र दिखाये गये हैं ऊपर स तो ये लोग बड़ सज्जन प्रभाव होते हैं पर भीतर स इनमें अनक दाष भर हुए है । किशोरी का अन्तिम परिणाम दिखाकर लखक ने जनता को सुधार की ओर मोड़ा है ।

इस रूपक के लिखन म मिश्र जी का समाज क आचरण दिखाना ही अभीष्ट रहा है इसीलिए वे लिखते हैं— इसो दाष क्षमा हो केवल आशय पर ध्यान रखिये । [1] यह रूपक प्रारम्भ म कलि प्रभाव नाटक' के नाम स लिखा गया था लकिन छपाते समय मिश्र जी न इसका नाम 'कलि कौतुक रूपक' कर दिया । कुछ लोगो ने इन दो नामो को मिश्र जी के दो नाटको के रूप मे लिया है और उनकी कृतियों की सूची मे इन्ह पृथक-पृथक गिनाया है पर य पृथक रूप से कहीं नहीं मिलते न मिश्र जी न कहा इनका पृथक उल्लेख ही किया है । मिश्र जी कृतियों के पीछे-मिश्र रचित पुस्तको की दी हुई सूची म भी केवल कलि कौतुक रूपक' नाम ही मिलता है । अत उक्त दोनो नाम एक ही नाटक क प्रतीत होते हैं । यह नाटक पूर्णतया अभिनेय है । इसकी भाषा बडी सरल तथा पात्रानुकूल है । कहा कहीं इसम ब्रजभाषा गद्य की भी क्रियायें मिलती है । गीतो और उर्दू शेरा का भी इसम अच्छा प्रयोग हुआ है । आगे भारत-जीवन यन्त्रालय' काशी मे इसके प्रथम और द्वितीय सस्करण (इस प्रेस क प्रथम और तृतीय) भी क्रमश सन् १८९० और १९०४ ई० म प्रकाशित हुए । अपने उद्दश्य मे यह नाटक पूर्णतया सफल है ।

कलिप्रवेश नीति रूपक

इस रूपक के अभिनय की सूचना १५ दिसम्बर १८८७ ई के ब्राह्मण' अक म मिलती है । अत यह रूपक इस तिथि से पूर्व लिखा गया है पर आज यह अप्राप्य है । इसक नाम स ऐसा ज्ञात होता है कि इसमे समाज की तत्कालीन स्थिति का चित्रण होगा । सम्भव है इसकी विचारधारा 'कलिकौतुक रूपक से मिलती जुलती हो ।

हठी हम्मीर नाटक

यह एक ऐतिहासिक नाटक है । इसकी टाइप की हुई प्रति हम श्री विजय शकर मल्ल (काशी विश्वविद्यालय) क यहाँ देखने को मिली है पर इस प्रति में प्रकाशन सन आदि कुछ नहीं दिया है क्योकि यह जिस मुद्रित प्रति से टाइप की गई है उसके ऊपर क पृष्ठ फट गय थ । हा 'ब्राह्मण दिसम्बर १८८७ ई० क अक मे

---

१ प्रतापनारायण मिश्र—कलि कौतुक रूपक' (१८९ ई०) देखो से

मिश्र जी इसके अभिनय की सूचना इस प्रकार देते हैं— इधर श्री भारत मनोरंजिनी सभा ने २६ नवम्बर को श्री हठी हम्मीर नाटक और जयनार सिंह प्रहसन अथच २८ नवम्बर को कलि प्रवेश नीति रूपक एवं गो संकट रूपक खेला था। जिसकी प्रशंसा तो अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनना है क्योंकि इस पत्र का सम्पादक भी एक अभिनय कर्ता था और दोनों नाटक (हठी हम्मीर और कलि प्रवेश नीति रूपक) भी उसी के लिखे हैं।[1] इस सूचना से यह सिद्ध होता है कि हठी हम्मीर नाटक १८८७ ई० के पहले का लिखा हुआ है। यह नाटक छः अंकों का है और इसमें कुल आठ दृश्य हैं। पात्रों की संख्या इसमें भी बहुत अधिक है गण और सिपाहियों को छोड़कर इसमें ६८ पात्र हैं जिनमें तीन स्त्री-पात्र हैं। अतः आकार की दृष्टि से नाटक बड़ा नहीं है। इस नाटक का भी प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ दो दोहों में है। नाटक की प्रस्तावना आदि इस में नहीं है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

मरहट्टी बेगम (अलाउद्दीन की रानी) हाथ में तीर कमान लिये जंगल में हिरन का पीछा कर रही है। जब हिरन नहीं मिलता तो एक पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगती है। ठंडी हवा चल रही है जो उसे महलों से भी अधिक सुखदायी मालूम होती है। ऐसे सुन्दर वातावरण को पाकर उसमें काम जागृत होने लगता है। सामने से मीर मुहम्मद (एक मंगोल—अलाउद्दीन का सैनिक) आता दिखाई देता है। मरहट्टी उसे बुलाती है और समीप बैठाकर उससे प्रेम की बातें प्रारम्भ करती है। मीर मुहम्मद सब समझ जाता है और उसकी उपेक्षा करता है। तब मरहट्टी धमकाती है कि मैं बादशाह से शिकायत कर दूंगी कि मीर मुहम्मद हमसे गुस्ताखी कर रहे थे। अन्त में वह मीर मुहम्मद को लेकर झाड़ी की ओर चली जाती है। भाग्यवशात् ये सब बातें (मरहट्टा द्वारा) अलाउद्दीन को मालूम हो जाती हैं। मरहट्टी शीघ्र ही पत्र द्वारा राज्य छोड़ जाने की बात मीरमुहम्मद के पास भेजती है। पत्र पाकर मीरमुहम्मद वहाँ से भागता है और कई राजाओं की शरण में जाता है पर सभी राजा अपने यहाँ रखने से इंकार कर देते हैं। तब वह रणथम्भौर के राजा हम्मीर के पास आता है। हम्मीर उसे निर्दोष समझकर अपनी शरण में स्थान देते हैं और उसकी रक्षा का वचन देते हैं। जब अलाउद्दीन को मालूम होता है कि हम्मीर ने मीर को अपने यहाँ स्थान दिया है तो वह हम्मीर को उसे वापस कर देने को पत्र लिखता है पर हम्मीर उसे वापस करने से इंकार कर देता है तथा अला-उद्दीन को उत्तर में बड़ा कड़ा पत्र लिखता है। पत्र पाकर अलाउद्दीन रणथम्भौर पर चढ़ाई कर देता है। घमासान युद्ध होता है। अलाउद्दीन के दाँत खट्टे हो जाते हैं।

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ कानपुर पुष्प पुनर्मुद्रित है—प्रतापनारायण मिश्र

लेकिन इतने में हम्मीर के दो भाई अलाउद्दीन से मिल जाते हैं और वे किले का सब भेद बता देते हैं जिससे अलाउद्दीन का साहस बढ़ता है। इसके बाद मीर मुहम्मद बहादुरी से साथ लड़ता हुआ मारा जाता है। इतने में बड़ी तेज हवा चलती है और हम्मीर की रण ध्वजा गिर जाती है जिसको देखकर (हम्मीर को मारा गया समझ कर) रानियाँ चिता में जलने लगती हैं। यह देखकर हम्मीर महल की ओर दौड़ता है पर सरस्वती की प्रेरणा से धीरज धर कर लौट आता है। इतने में मीर मुहम्मद को मरा हुआ देखता है फिर वह युद्ध क्षेत्र में नहीं जाता। दोनों सेनायें बहादुरी से लड़ती हैं। अंत में यवनों की सेना दिल्ली की राह लेती है। हम्मीर लौटकर अपने पुत्र को राज्य देता है और स्वयं वैराग्य धारण करता है। आगे हम्मीर को मृत्यु के बाद शिवलोक प्राप्त होता है। युद्ध का जितना भी वर्णन है नारद द्वारा शिवलोक में कहाया गया है। इसके बाद जब हम्मीर स्वर्गवासी होकर शिवलोक जाते हैं तब सभी देवता उन्हें आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार नाटक का छठा अंक बिलकुल ही अस्वाभाविक तथा काल्पनिक है। नारद, शिव इन्द्र भैरव पार्वती, गणेश आदि पात्रों की योजना ऐतिहासिक नाटक के लिए उपयुक्त नहीं जान पड़ती। इसके पहले के पाँच अंक बड़े स्वाभाविक और ऐतिहासिक हैं।

नाटक के अंत में उपसंहार दिया हुआ है जिसमें नाटक की ऐतिहासिकता प्रमाणित की गयी है। उपसंहार को देखने से मिश्र जी के ऐतिहासिक अनुसंधान का पता चलता है। इसमें निम्नलिखित पाँच पुस्तकों के उद्धरण संकलित हैं—

१—सेखर कवि रचित 'हमीररायसा'
२—'इतिहासतिमिरनाशक' पहिला खण्ड
३—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत भूगोल हस्तामलक
४—चारण रामनाथ रत्न कृत 'इतिहास राजस्थान'
५—मौलवी मुहम्मद उबैदुल्लाह फरहती कृत तारीख तुहफए राजस्थान'

इन्हीं पुस्तकों के आधार पर मिश्र जी ने 'हठी हम्मीर' नाटक लिखा है। कहीं-कहीं मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का भी उपयोग किया है पर ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का अवरोध नहीं पड़ा। पहला अंक—

मरहट्टी बेगम का हमीररायसा के आधार पर है। केवल मर्यादा के लिए मिश्र जी ने सम्भोग का चित्रण संकेत से कर दिया है। सेखर लिखते हैं—

यह सुन मीर ससंक चित मरी बाम निज अंक।
सुख मोटनि लूटन लगे जनु आयो निधि रंक॥ [1]

---

[1] प्रतापनारायण मिश्र—'हठी हम्मीर नाटक' उपसंहार से (हमीररायसा छंद ३२)

मिश्र जी इसे इस प्रकार लिखते हैं—'मरहट्टी—नहीं मीर साहब हमारे जानोमाल के हमेशा के लिए मुख्तार हैं (कुछ ठहर कर) इसलिए उन झाड़ियों को सर करें यहाँ बैठ क्या करेंगे।'¹

नाटक के लिए ऐसी मर्यादा का पालन आवश्यक था। शेष कथा—इस अंक की - हमीररायसा' की ही है। अंक दो दृश्य पहला भी हमीररायसा पर आधारित है। गभरू ने अलाउद्दीन के मुख मारने और मरहट्टी के हसन के प्रसंग से मार मुहम्मद का राज खोला है पर मिश्र जी ने केवल इसका संकेत कर दिया है। मरहट्टा द्वारा—मीर का पत्र लिखने की योजना दोनों में है। अंक दो का दूसरा और अंक तीन इतिहासतिमिरनाशक' पहिला खंड के आधार पर लिखा गया है। केवल अलाउद्दीन और हम्मीर के पत्रों की योजना मिश्र जी की अपनी है। अंक चौथा मिश्र जी का अपना है इसमें युद्धादि के वर्णन हैं पर सभी वर्णन ऐतिहासिक परिधि में ही हैं। अंक पाँचवा भी अधिकांश मौलिक है। केवल मीर महम्मद की मृत्यु का वर्णन इतिहासतिमिरनाशक का है। अंक छः का—हम्मीर की रानियों के सती होने का प्रसंग भूपाल इस्लामनगर के 'रणथम्भौर' के वर्णन पर आधारित है। शेष दृश्यों आदि के वर्णन मिश्र जी के काल्पनिक हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्तनीय हैं। इनकी योजना मिश्र जी ने हम्मीर के चरित्र का ऊँचा उठाने तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए की है। नाटक लिखने में मिश्र जी को हमीररायसा और इतिहासतिमिरनाशक पहिला खण्ड से विशेष सहायता मिली है। इतिहास राजस्थान' और तारीख' गुहलोत राजस्थान के उद्धरणों में इस नाटक के कथानक का कोई सम्बन्ध नहीं है। इन दोनों पुस्तकों के उद्धरणों में केवल रणथम्भौर दुर्ग का हवाला दिया है। अन्त में यह कहना न होगा कि इस अंक काल्पनिक होते हुए भी समयस्थान हठी हम्मीर नाटक ऐतिहासिक ही है।

हठी हम्मीर नाटक की भाषा भी पात्रानुकूल है। मुसलमान पात्र उर्दू बोलते और हिन्दू पात्र हिन्दी। उर्दू की गजलें भी इसमें कई एक हैं जो बड़ी उत्कृष्ट हैं। हिन्दी के भी दो एक गीत दिये गये हैं। यह सम्पूर्ण नाटक अभिनेय है। मिश्र जी के तो इसका अभिनय किया हो था कालाकांकर में भी इसका कई बार अभिनय हो चुका है। कविवर बच्चन जी लिखते हैं—इस (हठी हम्मीर) का इस हठ नाटक को मैंने स्वयं कालाकांकर में लगभग १८ वर्ष की उम्र में अपने हाथ से पढ़ा बनाकर लिखा था जिसमें हम्मीर मैंने स्वयं किया था और एक पार्ट भी लिया था। यह

---

¹ प्रतापनारायण मिश्र—हठी हम्मीर नाटक एक्ट १ सीन दूसरा

नाटक, मण्डली आज तक कालाकांकर में अभिनय किया करती है।[1] वस्तुत हठी हम्मीर नाटक' एक सफल नाटक है।

भारत दुर्दशा रूपक

यह रूपक श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय' बम्बई से सन १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ। यह मिश्र जी के अन्तिम काल का लिखा मालूम होता है, क्योंकि मिश्र जी इसे स्वत नहीं प्रकाशित करा सके। इसकी हस्त लिखित प्रति १८९५ ई० में बलदेवप्रसाद मिश्र (मुरादाबाद) को उनके मित्र प० हरिहर प्रसाद (मालिक आब प्रेस कानपुर) से प्राप्त हुई। प्राप्त प्रति के कुछ अश फटे हुए थे जिसके विषय मे बलदेव प्रसाद जी लिखते हैं— जहां कहीं पत्र फट गये थे व लेख अदृश्य था, वहा अपनी लघुमति के अनुसार विषय पूरा किया। यद्यपि जरी के वस्त्र मे गजी का पैबन्द किसी भांति शोभा नही पाता है तथापि फटे हुए वस्त्र की रक्षा अवश्य ही हो जाती है। यही विचार कर ऐसी ढिठाई की है आशा है कि पाठक गण इस अपराध को क्षमा करेंगे। स्वगवासी प० प्रतापनारायण जी हिन्दी भाषा के अद्वितीय लेखक थे। उन्होंने इस वर्तमान रूपक म भारत की हीन दशा का चित्र भली भांति से चित्रित किया है।'[2] यह रूपक बलदेवप्रसाद मिश्र और शिवदुलारे वाजपेयी (बलदेवप्रसाद के मित्र) के ही प्रयत्न स, उक्त प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसमें कुल ३२ पृष्ठ है। यह रूपक तीन अकों मे लिखा गया है। इसके दृश्यों की सख्या कुल चार है। इस रूपक म प्रमुख पात्र १७ हैं जो आकार को देखते हुए बहुत अधिक हैं। भारत दुर्दशा' के लिखने में मिश्र जी का उद्देश्य भारत की तत्कालीन दशा से जनता को परिचित कराना रहा है। जनता में फैली हुई दुष्प्रवृत्तियों को मिश्र जी ने कलयुग के प्रभाव का रूप दिया। वे प्रमुख रूप से फूट और आलस्य को भारत के पतन का कारण मानते हैं। भारत-दुर्दशा' का एडीटर (एक पात्र) भारत की तत्कालीन स्थिति के विषय मे कहता है— प्रिय भ्रातृगण। आज परमेश्वर ने वह दुर्दिन दिखलाया है कि जिन महामान्य परमपिता भारत की गोद म हम और हमारे पूर्वज लालित पालित हुए हैं उनको हम इस दीन हीन क्षीण मन मलीन अवस्था म देखते हैं। यद्यपि हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, पर क्या कीजिए ?[3] कहना न होगा कि भारत की इसी दशा ने मिश्र जी को भारत दुर्दशा लिखने के लिए प्रेरित किया। यह रूपक भी नान्दी पाठ म प्रारम्भ होता है।

---

१ 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' कविवर बचनेश

२ प्रतापनारायण मिश्र भारत-दुर्दशा रूपक (१९०२ ई०) 'भूमिका' बलदेव प्रसाद मिश्र

३ प्रतापनारायण मिश्र- भारत दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) अंक ३ दृश्य पहिला

नान्दी पाठ एक दोहे में दिया गया है। नाटक की प्रस्तावना आदि इस रूपक में भी नहीं है। 'भारत दुर्दशा रूपक' की कथावस्तु इस प्रकार है—

भारत (नायक) सो रहा है उसकी स्त्री निद्रा उसे जगाती है और देर तक सोने का निषेध करती है। भारत स्वप्न देख रहा था। स्वप्न को सोच कर वह दुखित होता है। पर निद्रा से स्वप्न नहीं बताता क्योंकि वह उसका सुनकर दुखित होगी। भारत अपनी दासी लाज से सारा स्वप्न कहता है। स्वप्न में उसने कलयुग का प्रभाव देखा है। आगे कलयुग की सेना का वर्णन है। क्रमशः कलियुग की बोबा आलस्य मुसाहिब रोग राज मदिरा चौपट सिंह अपनी-अपनी विज्ञापनाएं कलियुग में बताते हैं। कलियुग उन्हें भारत पर चढ़ाई करने का आदेश देता है। सभी अपनी अपनी सेनाएं लेकर जाते हैं। इतने में वृद्ध सज्जन आकर निद्रा का तिरस्कार करते हैं तथा खाओ, पीयो मौज उड़ाओ के सिद्धान्त को सामने रखते हैं फिर आलस्य आकर अपनी रामकहानी सुनाता है। इधर भारत (कलयुग की सेना के आघात से) मूर्छित पड़ा है। पंडित एडीटर सेठ जी ब्रह्मसमाजी बंगाली आर्यसमाजी महाराष्ट्री पंजाबी ईसाई, मुसलमान बैठे हुए भारत को चैतन्य करने का उपाय कर रहे हैं। एडीटर पंडित जी से उपचार के लिए कहता है। पंडित जी कहते हैं बड़ा पैसा लगेगा। महाराष्ट्री सब भारतीयों से एक-एक रुपया चन्दा लेने का सुझाव देता है। सेठ जी व्यापार न चलने से धन की कमी बताते हैं और चन्दे का विरोध करते हैं। महाराष्ट्री व्यापार के लिए विलायत से कलें मंगाने का कहता है। एडीटर साहब सब में सम्मति के भाव चाहते हैं। आर्यसमाजी इसी प्रसंग में मूर्तिपूजा की बुराई करता है। बंगाली इसका विरोध करके भाई-बहनों में स्नेह स्थापित करने को कहता है। एडीटर भारत के स्वस्थ होने के लिए प्रेमासव देने का सुझाव देता है। पंडित जी कहते हैं धाव व्यापार रूपी तेल से भरेगा। तब मुसलमान भी विलायत से कलें मंगाने का कहता है। एडीटर को दूसरे देश का मुंह देखने पर बड़ा दुख होता है। ईसाई कल मंगाने के साथ ही जांच के लिए डाक्टर भेजने का कहता है। इस पर मुसलमान कहता है डाक्टर तो जिस्म में है ही नहीं हां बकरा जबह करके जख्मों में भरना चाहिए। पर पंडित जी इसका विरोध करते हैं। इस प्रसंग में पंडित जी एडीटर महाराष्ट्री एक पक्ष में बोलते हैं अर्थात् बकरे का विरोध करते हैं और मुसलमान ईसाई बंगाली समर्थन करते हैं। दोनों पक्षों में लड़ाई होने लगती है। इतने में कलियुग की सेना आती है। भारत पंडित और एडीटर पर को ओर से दिखाते हैं। बंगाली पंजाबी और मुसलमान को कलयुग की सेना पकड़ ले जाती है। अन्त में एडीटर भारत की पूर्ण क्षति पर दुख प्रकट करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक भारत के दैन्य से व्याप्त है।

'भारत-दुर्दशा' रूपक में पात्रों की बड़ी भरमार है। कलियुग और उसके

सैनिका क अधिकांश कथन गीता म ही हैं। इससे यह रूपक बहुत-कुछ गीति रूपक' की कोटि म पहुच जाता है। भाषा इसकी अत्यधिक पात्रानुकूल है। यहा तक कि बंगाली, महाराष्ट्री पजाबी पात्र क्रमश बगाली, मराठी और पजाबी बोलते हैं। इससे अभिनय म बडा अवरोध पडता है। इसक अतिरिक्त इसम हास्य की योजना बड़ी उत्कृष्ट है। कलियुग और उनके सैनिको के कथन सुनकर हसते-हसते पेट मे बल पड जात हैं। हास्य-योजना से नाटक की करुणा दर्शका को व्यथित नही कर पाती। समग्ररूपण यह नाटक बडा सरस है। भाषा म विविधता होते हुए भी यह नाटक अभिनेय है। इसके कथन बडे सरल तथा हृदयस्पर्शी हैं। यहा इतना कह देना और आवश्यक प्रतीत होता है कि इस नाटक पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत भारत दुर्दशा का बहुत-कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है बहुत से पात्रा क ता नाम भी एक से ही है साथ ही कथानक म भी पर्याप्त साम्य है। फिर भी दोना म अपनी अपनी मौलिकता है। मिश्र जी का नाटक अपक्षाकृत सरस और अभिनय है। भारतेन्दु कृत भारत दुदशा म गम्भीरता अधिक है तथा कथन भी बहुत-लम्बे हैं जिनसे दशको की नीरसता प्रतीत हान लगती है जैसे छठे दृश्य का अकेला भारत भाग्य' का प्रलाप दर्शको के जी को उबा देना है। मिश्र जी का भारत दुदशा रूपक' नाटकीय तत्वो से युक्त तथा देश की तत्कालीन स्थिति को चित्रित करने म पूण सफल है।

सगीत शाकुन्तल

'सगीत शाकुतल खडग विलास प्रस बाकीपुर से १८९१ ई० म प्रकाशित हुआ। इसक समपण म बसन्त पचमी, श्री हरिश्च द्राब्द ७ (फरवरी १८९१ ई०) दिया हुआ है यही इसका रचनाकाल हो सकता है। यह नाटक महाकवि कालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् का छायानुवाद है। मूलकथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' की ही है पर लेखक की कल्पना और भाव प्रबलता ने अपनी अभिव्यक्ति म बहुत-कुछ परिवतन कर दिया है। मार्मिक स्थल कुछ विस्तार पा गय हैं तथा प्रासगिक स्थल कुछ सकुचित हो गये है। गीतात्मकता के कारण इसम भावात्मकता अधिक है। अक दोनों म सात है पर मिश्र जी न उन्हें दृश्या म विभाजित कर दिया है जबकि कालिदास जी न अपन नाटक में कवल अंक ही रख हैं। दृश्यों म विभाजित होने से सगीत शाकुन्तल' अधिक अभिनेय बन गया है। इसम कुल सात अका को मिलाकर उन्तीस दृश्य हैं। पात्रा की सख्या म भी विभिन्नता है। सगीत शाकुन्तल' म पुरुष तथा स्त्री पात्र मिलाकर पचीस हैं जबकि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम् म अडतीस हैं। प्रमुख पात्रों क नाम दोनों म एक स ही है। दोना नाटकों के अकों की कथावस्तु भी पृथक-पृथक लगभग एक सी-ही ह। उक्त अन्तर के विषय म मिश्र जी लिखते हैं— 'आज कल की नाट्य प्रणाली और लोगों की रुचि के विचार से इसमे हमने कही कहीं मुख्य ग्रन्थ का आशय कुछ-कुछ बढा भी दिया है पर काव्य रसिक-जन विचार

संभव है कि इस दोष से हम कहाँ तक बच सकते थे?[1] इसके अन्दर का बहुत-कुछ कारण इसके गीततत्त्व की प्रमुखता भी है। 'संगीत शाकुन्तल' गीत नाटक के रूप में लिखा गया है। इसमें गद्य-कथन बहुत कम हैं। मिश्र जी लिखते हैं—'कुछ भी हो यदि इसके द्वारा बहुत से सुजनों का यह उलाहना भी दूर हो जाय कि हिन्दी में कोई ऐसा नाटक नहीं है जिसे सचमुच नाटिकात्मक कह सकें तो भी हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।'[2] इसके लिखने की प्रेरणा मिश्र जी को तत्कालीन अनुवादों (अभि-ज्ञानशाकुन्तलम् के) से मिली। इस प्रसंग में 'संगीत शाकुन्तलम्' की प्रस्तावना में कहा गया नटी का यह कथन स्पष्ट है—'देखो साहब शकुन्तला नाटक में क्या रीति, उस तो इस समय के लोगों ने मिट्टी कर डाला है। किसी ने कहानी सी लिखकर झूठ-मूठ नाटक का नाम धर दिया है किसी ने अच्छर-अच्छर का तर्जुमा करने की धुन में भाषा की ऐसी बिगाड़ी है कि स्वयं आप समझें कि जैसी यह है वैसी ही सब कौरव में भी होगी। किसी उर्दू के रसिया ने उस अमानत की इन्दर सभा से भी अधिक चौपट किया है! हाय! कालिदास जी की कविता और उन्हीं के देश में उसकी यह दुर्दशा?'[3] इसके अतिरिक्त मिश्र जी को 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' प्रिय भी विशेष था तथा इनके कई मित्रों ने भी इसके अनुवाद के लिए इनसे अनुरोध किया था। मिश्र जी कहते हैं—'शकुन्तला नाटक की महिमा सर्वोपरि है जैसा कि संस्कृतज्ञ मात्र सच्चे जी से मानते हैं कि 'काव्येषु नाटकं श्रेष्ठं नाटकेषु शकुन्तला' पर इसके जितने अनुवाद आज तक देखने में आये प्रायः सभी निस्स्वाद निकले। हमारे कई मित्रों ने बारम्बार इस बात का उलाहना देकर अनुरोध भी किया, इससे उनकी आज्ञा मानना पड़ा।'[4] 'संगीत शाकुन्तल' १३५ पृष्ठ का है। इसका मूल्य आठ आना है। इसका प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ के उपरान्त नाटक की प्रस्तावना है। इसमें नट नटी द्वारा नाटक का परिचय देते हुए उसकी उपादेयता पर विचार किया गया है। 'संगीत शाकुन्तल' की कथावस्तु इस प्रकार है—

रथ पर बैठे हुए दुष्यन्त हिरन का पीछा कर रहे हैं। आगे कण्व ऋषि का आश्रम है। तपोवन में एक वैखानस और दो तपस्वी हिरन मारने से रोक देते हैं। फिर दुष्यन्त वैखानस की आज्ञा से आश्रम में चले जाते हैं। आश्रम में शकुन्तला अपनी सखी प्रियम्वदा और अनुसूया के साथ वृक्षों को पानी दे रही है। दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर मोहित होते हैं। साथ फिर इनका सबका परिचय होता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त की ओर आकृष्ट होती है। दुष्यन्त स्वयं भी गगरा लेकर वृक्षों

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) 'भूमिका' पृष्ठ १

२ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल' (१९०३ ई०) 'भूमिका' पृष्ठ १

३ प्रतापनारायण मिश्र-'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०)-'प्रस्तावना' पृ० २

४ प्रतापनारायण मिश्र-'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) 'भूमिका' पृ० १

सनिकों के अधिकांश कथन गीतों में ही हैं। इससे यह रूपक बहुत-कुछ 'गीति रूपक' की कोटि में पहुँच जाता है। भाषा इसकी अत्यधिक पात्रानुकूल है। यहाँ तक कि बंगाली, महाराष्ट्री, पंजाबी पात्र क्रमशः बंगाली, मराठी और पंजाबी बोलते हैं। इससे अभिनय में बड़ा अवरोध पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसमें हास्य की योजना बड़ी उत्कृष्ट है। कलियुग और उसके सैनिकों के कथन सुनकर हँसते हँसते पेट में बल पड़ जाते हैं। हास्य-योजना से नाटक की करुणा दर्शकों को व्यथित नहीं कर पाती। ममप्रस्पण यह नाटक बड़ा सरस है। भाषा में विविधता होते हुए भी यह नाटक अभिनेय है। इसके कथन बड़े सरल तथा हृदयस्पर्शी हैं। यहाँ इतना कह देना और आवश्यक प्रतीत होता है कि इस नाटक पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत भारत दुर्दशा का बहुत-कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है बहुत से पात्रों के तो नाम भी एक से ही हैं साथ ही कथानक में भी पर्याप्त साम्य है। फिर भी दोनों में अपनी-अपनी मौलिकता है। मिश्र जी का नाटक अपेक्षाकृत सरस और अभिनेय है। भारतेन्दु कृत भारत दुर्दशा में गम्भीरता अधिक है तथा कथन भी बहुत-लम्बे हैं जिनसे दर्शकों को नीरसता प्रतीत होने लगता है जैसे छठे दृश्य का अकेला 'भारत भाग्य' का प्रलाप दर्शकों के जी को उबा देता है। मिश्र जी का 'भारत दुर्दशा रूपक' नाटकीय तत्वों से युक्त तथा देश की तत्कालीन स्थिति का चित्रित करने में पूर्ण सफल है।

संगीत शाकुन्तल

संगीत शाकुन्तल खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर से १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके समर्पण में बसन्त पंचमी, श्री हरिश्चन्द्राब्द ७ (फरवरी १८९१ ई०) दिया हुआ है यही इसका रचनाकाल हो सकता है। यह नाटक महाकवि कालिदास रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् का छायानुवाद है। मूलकथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' की ही है पर लेखक की कल्पना और भाव प्रबलता ने अपनी अभिव्यक्ति में बहुत-कुछ परिवर्तन कर दिया है। मार्मिक स्थल कुछ विस्तार पा गये हैं तथा प्रासंगिक स्थल कुछ संकुचित हो गये हैं। गीतात्मकता के कारण इसमें भावात्मकता अधिक है। अंक दोनों में सात हैं पर मिश्र जी ने उन्हें दृश्यों में विभाजित कर दिया है जबकि कालिदास जी ने अपने नाटक में केवल अंक ही रखे हैं। दृश्यों में विभाजित होने से संगीत शाकुन्तल अधिक अभिनय बन गया है। इसमें कुल सात अंकों को मिलाकर उन्नीस दृश्य हैं। पात्रों की संख्या में भी विभिन्नता है। 'संगीत शाकुन्तल' में पुरुष तथा स्त्री पात्र मिलाकर पचीस हैं जबकि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अड़तीस हैं। प्रमुख पात्रों के नाम दोनों में एक से ही हैं। दोनों नाटकों के अंकों की कथावस्तु भी पृथक-पृथक लगभग एक सी ही है। उक्त अन्तर के विषय में मिश्र जी लिखते हैं—

आज कल की नाट्य प्रणाली और लोगों की रुचि के विचार से इसमें हमने कहीं कहीं मुख्य ग्रन्थ का आशय कुछ-कुछ बदल भी दिया है पर काव्य रसिक-गण विचार

सकते हैं कि इस दाप से हम कहाँ तक बच सकते थे ?[१] इसके अतर का बहुत-कुछ कारण इसके गीततत्व की प्रमुखता भी है। 'सगीत शाकुन्तल' गीत रूपक के रूप म लिखा गया है। इसमें गद्य-कथन बहुत कम हैं। मिश्र जी लिखते हैं—कुछ भी हा यदि इसके द्वारा कहने सुनने को यह उपालम्भ भा दूर हो जाय कि हिन्दी म काइ ऐसा नाटक नहीं है जिस सचमुच गीतिरूपक कह सकें तो भी हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।[२] इसके लिखने की प्रेरणा मिश्र जी को तत्कालीन अनुवादा (अभि ज्ञानशाकुन्तलम् के) से मिली। इस प्रसग म 'सगीत शाकुन्तलम् की प्रस्तावना म कहा गया नटी का यह कथन दृष्टव्य है—यह लोग शकुन्तला नाटक स क्या रीझेंगे उसे तो इस समय के लोगो ने मिटटी कर डाला है। किसी ने कहानी सी लिखकर झूठ-मूठ नाटक का नाम धर दिया है किसी ने अच्छर-अच्छर का उलथा करने की धुन म भाषा को ऐसा बिगाड़ा है कि देखने वाले समझें कि जसी यह है वसी ही सस कीरत में भी होगी। किसी उदू के रसिया ने उस जमानन की इन्दर सभा स भी अधिक चौपट किया है। हाय! कालिदास जी की कविता और उन्हों के देश म उसकी यह दुर्दशा ?[३] इसके अतिरिक्त मिश्र जी का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रिय भी विशेष था तथा इनके कई मित्रा न भी इसके अनुवाद के लिए इनसे अनुरोध किया था। मिश्र जी कहते हैं—शकुन्तला नाटक की महिमा सर्वोपरि है जैसा कि संस्कृतज्ञ मात्र सच्चे जी म मानते हैं कि 'काव्येषु नाटका श्रेष्ठा नाटकेषु शकुन्तला पर उसके जितने अनुवाद आज तक देखन म आये प्राय सभी निस्स्वादु निकल। हमारे कई मित्रो ने बारम्बार इस बात का उलाहना देकर अनुरोध भी किया, इसस उनकी आज्ञा माननी पडी।'[४] 'सगीत शाकुन्तल १३५ पष्ठ का है। इसका मूल्य आठ आना है। इसका प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ क उपरान्त नाटक की प्रस्तावना है। इसम नट नटी द्वारा नाटक का परिचय देत हुए उसकी उपादयता पर विचार किया गया है। 'सगीत शाकुन्तल' की कथावस्तु इस प्रकार है—

रथ पर बैठे हुए दुष्यन्त हिरन का पीछा कर रह हैं। आग कण्व ऋषि का आश्रम है। तपोवन म एक वखानस और दा तपस्वी हिरन मारन से रोक दते हैं। फिर दुष्यन्त वैखानस की आज्ञा स आश्रम में भ्रमणार्थ जाते हैं। आश्रम म शकुन्तला अपनी सखी प्रियम्वदा और अनुसूया के साथ वृक्षों का पानी दे रही हैं। दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर मोहित होत हैं। आगे फिर इनका सबम परिचय होता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त की ओर आकृष्ट होती है। दुष्यन्त स्वय भी नगरी मकर वहा

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) 'भूमिका' पष्ठ १

२ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल (१९०७ ई०) भूमिका' पष्ठ १

३ प्रतापनारायण मिश्र 'सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०)-प्रस्तावना' पृ० २

४ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) भूमिका पृ० १

को सींचन लगते हैं और अपनी अंगूठी उतार कर प्रियम्वदा को देते हैं। इतने में ऋषिकुमार आकर राक्षसों के आने की सूचना देते हैं (राक्षस तपस्या में विघ्न पहुंचा रहे थे) दुष्यन्त उनको मारने के लिए जाते हैं। राक्षसों को मार कर जब वह लौटते हैं तब शकुन्तला का विरह उन्हें बहुत सताता है। इधर शकुन्तला भी विरह से व्यथित है। वह लता मंडप में लेटी हुई अपनी व्यथा प्रियम्वदा और अनुसूया से कह रही है। दुष्यन्त छिपकर सब सुन रहे हैं। शकुन्तला दुष्यन्त को पत्र लिखती है इतने में दुष्यन्त प्रकट हो जाते हैं। सखियां चली जाती हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला में प्रेमालाप प्रारम्भ होता है। थोड़ी देर बाद गौतमी (कण्व ऋषि की बहिन) आती है। दुष्यन्त छिप जाते हैं और गौतमी शकुन्तला को लेकर चली जाती है। फिर दुर्वासा ऋषि का आश्रम में प्रवेश होता है। विरह से व्यथित होने के कारण शकुन्तला ऋषि का स्वागत नहीं करती। इससे दुर्वासा ऋषि क्रोधित होकर दुष्यन्त के शकुन्तला को भूल जाने श्राप देते हैं। अनुसूया श्राप को सुन लेती है और उनसे क्षमा प्रार्थना करने जाती है। दुर्वासा निशानी से स्मरण आने की बात कहकर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। इसके बाद कण्व के शिष्य द्वारा, कण्व के तीर्थ यात्रा से वापस आने की सूचना मिलती है। आश्रम में आने पर कण्व को दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन की बात ज्ञात होती है वह शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने का प्रबन्ध करते हैं। शकुन्तला को जाते देखकर सब बहुत दुखित होते हैं। कण्व से स्थिर-मन ऋषि का भी हृदय दहल उठता है। सभी शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं। अनुसूया पहचानने के लिए दुष्यन्त की अंगूठी देती है। दो शिष्यों और गौतमी के साथ शकुन्तला जाती है। दुष्यन्त के राज-द्वार पर पहुंच कर कण्व के शिष्य कंचुकी द्वारा अपने आने की सूचना दुष्यन्त के पास भेजते हैं। तदुपरान्त सभी शकुन्तला के सहित दुष्यन्त के पास आते हैं। पर दुष्यन्त शिष्यों और गौतमी के बताने पर भी शकुन्तला को नहीं पहचानता। शकुन्तला भी याद दिलाती है पर उसे स्मरण नहीं आता तब शकुन्तला अंगूठी दिखाना चाहती है पर अंगूठी कहीं खो गयी है। दुष्यन्त शकुन्तला को गर्भवती देखकर हंसता है। शकुन्तला उसकी उपमा से बहुत क्रोधित होती है। इसके बाद गौतमी और शिष्य शकुन्तला को वहीं छोड़कर चले जाते हैं। तब सोमराज (राजा का पुरोहित) बच्चा होने तथा उसके लक्षण देखने तक अपने पास रखने को कहता है और उसे अपने साथ लेकर जाता है। इतने में एक अप्सरा आकर शकुन्तला को अपने साथ आकाश में उड़ा ले जाती है। कुछ समय बाद-शकुन्तला की खोई हुई अंगूठी—एक मछुए द्वारा दुष्यन्त को प्राप्त होती है। अंगूठी को देखकर दुष्यन्त को शकुन्तला की याद आती है। वे उसके वियोग में बड़े दुखित होते हैं। इसी समय इन्द्र का सारथी मातलि आता है और दुष्यन्त से कहता है कि कालनेमि के कुल में शत्रु बहुत बढ़ गये हैं उनसे संग्राम इन्द्र ने आपसे सहायता मांगी है। दुष्यन्त तुरन्त उनकी सहायता के लिए चल देते हैं। अन्त में जब

दुष्यन्त विजयी होकर लौटते हैं तब कश्यप मुनि के दर्शन के लिए हेमकूट पर्वत पर रथ रुकवाते हैं यहीं वह भरत सिंह के दाँत गिनता हुआ दिखाई पड़ता है। भरत में चक्रवर्ती के लक्षण देखकर दुष्यन्त को आश्चर्य होता है। वे उसके पास आते हैं और पृथ्वी पर पड़ी हुई राखी को उठा लेते हैं पर वह राखी नाग बनकर दुष्यन्त को नहीं काटती (यह राखी कश्यप ने भरत के बाँधी थी और कहा था कि यदि यह छूटकर गिरेगी तो इसके—भरत के—माता पिता ही इसे उठा सकते हैं यदि दूसरा कोई उठाएगा तो नाग बनकर डस लेगी) यह देखकर तपस्विनियाँ बड़ा आश्चर्य करती हैं और जाकर शकुन्तला से सब वृत्तान्त कहती हैं। फिर शकुन्तला और दुष्यन्त मिलते हैं और मातलि के सहित कश्यप जी के पास जाते हैं (अप्सरा ने ले जाकर कश्यप जी के आश्रम में ही शकुन्तला को रक्खा था और यहीं पुत्र हुआ था) सभी कश्यप तथा उनकी पत्नी अदिति को प्रणाम करते हैं। दोनों आशीर्वाद देते हैं। सब प्रसन्नता से जाते हैं। कश्यप जी—दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन का समाचार कण्व जी के पास भी पहुँचा देते हैं। यहीं नाटक समाप्त होता है।

यह नाटक अभिनय की एक दृष्टि से उतना सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि मृग और उसके पीछे राजा के रथ दौड़ाने का अभिनय रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता। इसके अतिरिक्त शकुन्तला को अप्सरा द्वारा आकाश मण्डल में उठा ले जाना, मातलि का आकाश मण्डल में रथ दौड़ाना और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन तथा दुष्यन्त से वार्तालाप करना (सातवाँ अंक) अभिनय की दृष्टि से बिलकुल ही अनुपयुक्त है। गीतों की अधिकता भी अभिनय के लिए बाधक है। फिर भी कुछ परिवर्तन के बाद इसका अभिनय किया जा सकता है। गीति-रूपक होने के कारण अभिनय के ये दोष बहुत-कुछ क्षम्य हैं। 'संगीत शाकुन्तल' में ७१ राग रागिनियों में गान लिखे गये हैं और सभी गान बड़े सरस तथा पुष्ट हैं। उन गीतों का भी इसमें अच्छा प्रयोग हुआ है। गीति रूपक की दिशा में यह प्रथम सफल प्रयास है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी मिश्र जी के सम्पूर्ण ग्रन्थों में 'संगीत शकुन्तल' को सबसे अच्छा समझते हैं। वे इसके विषय में लिखते हैं—"पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने शकुन्तला का जो अनुवाद हिन्दी में किया है वह अनुवाद नहीं कहा जा सकता हाँ स्वतन्त्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है। मूल के भावों को इन्होंने अनुवाद में बहुत कुछ घटा-बढ़ा दिया है। इस बात पर इन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है। ऐसा करने से अगर कहीं-कहीं मूल का मजा जाता रहा है तो कहीं-कहीं अधिक भी हो गया है। हम यह नहीं कहते कि यह अनुवाद सब कहीं अच्छा ही हुआ है पर इसका अधिक अंश रोचक रसवान और मनोहर है।"[1] द्विवेदी जी का उक्त कथन अक्षरशः सत्य है। मिश्र जी का

---

१ निबन्ध-नवनीत प्रथम भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३२, ३

यह नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की अपेक्षा अधिक रोचक है। हिन्दी में लिखा होने के कारण जन-सामान्य तक पहुँचने की इसमें सामर्थ्य है। गानों की योजना इसकी रोचकता में विशेष सहायक हुई है। कथन की सार्थकता के लिए यहाँ पर दोनों नाटकों के दो समान भावों वाले अंश दिये जा रहे हैं जिनसे संगीत शाकुन्तल' की उपादेयता का सहज ही परिचय मिल जायगा। दुष्यन्त के न पहचानने से शकुन्तला क्रोधित होती है। क्रोधावेश में वह और भी सुन्दर दिखाई पड़ने लगती है। दुष्यन्त अपने मन में उसकी भाव भंगिमा पर विचार करता है इसे कालिदास जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं
वचोऽतिपरुषाक्षरं न च पदेषु संगच्छते।
हिमार्त इव वेपते सकल एव बिम्बाधरः।
प्रकामविनते भ्रुवौ युगपदेव भेदं गते॥
मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥'[1]

इसी भाव को मिश्र जी सुहाग छन्द में लिखते हैं—

अहो रिसहू समय यह सुन्दरी कैसी सुहाई है।
तपे पे और कुन्दन की मनौं निखरी निकाई है।
रंगीले नैन में औरौ ललाई दौरि आई है।
कि साँचौं काम कचर तिन्य शोनित में डुबाई है।
भई हैं रोस सों भौंहैं तिरछी इक बाँकी को।
कि कारी नागिनी विन्ध सानि काहू ने सिखाई है।
रसीले होंठ काँपें हैं पड़ है बात आयी सी।
चढ़ी सी नासिका पै औरहू सोभा सवाई है।
सधारन रूप पै देख्यो नहीं अब मोहि मोहित सो।
सो कैसा मान के मिस सानसों द्युति पै चढ़ाई है।[2]

इसी प्रकार कण्व के शिष्य द्वारा किया गया प्रभात काल का वर्णन कालिदास जी लिखते हैं—

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्
आविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।

---

१ कालिदास 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पंचमोऽङ्क श्लोक २४ २५

२ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पाँचवाँ अंक, तीसरा दृश्य

तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यते इवय दशान्तरेषु ।।
अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीय
दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीय शोभा ।
इष्ट प्रवासजनितान्यबलाजनेन
दु खानि नूनमतिमात्रदुरुद्वहानि ।।
कर्कन्धूनामुपरि तुहिन रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भ मुञ्चत्युटजपटल वीतनिद्रो मयूर ।
वेदि प्रान्तात् खरविलिखि तादुत्थितश्चष सद्य ।
पश्चादुच्चर्भवति हरिण स्वागमापच्छमान ।। [१]

इस दृश्य को मिश्र जी प्रभावती राग म इस प्रकार वणन करत हैं—

कसी कमनीय है प्रभा प्रभात काल की ।
विभकर करि इत उजास इत लहि ससि तेज नास
के रहे दशा प्रकाश मानो जग जाल की ।
कुमुदिनि सोभा विहीन विरहिन इव दुखित दीन
लागति ननन भलो न देखत दिसि लाल की ।
दरभ की कुटीन त्यागि उठहि मोर जागि जागि
बदिन ढिग सुभग लागि ऐंडिन मृग माल की ।
इहि छिन सब साधु सत प्रेम पूरि ह्वै इकत
सुमिरत महिमा अनन्त त्रिभुवन महिपाल की ।। [२]

यहा मेरे कहने का यह तात्पय नही कि मिश्र जी ने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम से अपना नाटक श्रेष्ठ लिखा पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रोचकता और हिन्दी क सुष्ठ प्रयोग की दृष्टि स यह नाटक सराहनीय है तथा गीति रूपक के क्षत्र म तो यह अपना सानी ही नही रखता । अस्तु सगीत शाकुन्तल अपने उद्देश्य म पूण सफल है ।

विविध

शैव सर्वस्व

इस कृति का प्रकाशन ब्राह्मण' म खण्ड ३ सख्या ६ (अगस्त, १८८५ ई०) स प्रारम्भ हुआ था और कई अको म यह निकली थी । आगे इसका पुस्तकाकार प्रकाशन खड्ग विलास प्रस बांकीपुर (पटना) स सन् १८९० ई० म हुआ । वैसे

---

१ कालिदास 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थोंक श्लोक २ ३ ४

२ प्रतापनारायण मिश्र 'सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई० चौथा अक दूसरा दृश्य ।

इसके समर्पण में श्रावण शुक्ला १४ श्री हरिश्चन्द्राब्द ४ (१८८८ ई०) पड़ा हुआ है यह इसके प्रेस में भेजने का (पुस्तकाकार छपने के लिए) काल हो सकता है। यह ३२ पृष्ठ की छोटी-सी गद्य-पुस्तिका है। इसका मूल्य चार आना है। इसके लिखने का मूल कारण भारतवर्ष के एक बड़े समुदाय का शिव भक्त होना है। मिश्र जी लिखते हैं— जब हम अपने पश्चिमोत्तर देश की ओर देखते हैं तो एक बड़े भारी समूह को शैव ही पाते हैं। हमारे ब्राह्मण भाई विशेषत कान्यकुब्ज जिस पर भी षट्कुलस्थ कदाचित सौ में निन्नानवे इसी ओर हैं। इधर रहने वाले गौड़ सारस्वत भी तीन भाग से अधिक शैव ही हैं। क्षत्रियों में राजपूत सौ में पाँच से अधिक दूसरे मत के न होंगे। खत्री भी फी सैकड़ा दो ही चार हो तो हों। वैश्य में हमारे ओमर दोसरों की भी यही दशा है। हाँ अग्रवाल थोड़े ही होंगे। कायस्थ तो सौ में क्या सहस्र में दो चार होंगे जो शिवोपासक न हों। इससे हमारा यह कहना कदापि झूठ न होगा कि हमारे यहाँ तीन भाग से अधिक इसी ढर्रे में चल रहे हैं हमारे बहुत से मित्र आर्यसमाजी हैं बहुतेरे अंग्रेजी ढंग के हैं, बहुतेरे हमारे ऐसे हैं वे भी कभी लगावेंगे तो त्रिपुण्ड ही लगावेंगे। माला या कण्ठा रुद्राक्ष ही पहिनेंगे। फिर हमारी तबियत क्यों न इस सीधी चाल पर झुके?[1] इसके अतिरिक्त शिव जी मिश्र जी के कुल के इष्ट देवता भी थे।[2] इसलिये शिव के प्रति मिश्र जी की आस्था का होना स्वाभाविक है। शैव सर्वस्व में मिश्र जी पवित्र भारतभूमि को कैलाश बनाने की शंकर से प्रार्थना भी करते हैं।[3] अत इस कृति की रचना का दूसरा कारण शिव के प्रति मिश्र जी की स्वाभाविक निष्ठा का होना भी है।

जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय शिक्षित लोग मूर्तिपूजा को अंधविश्वास तथा ढकोसला समझते थे। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के कारण लोगों में आस्तिकता धीरे धीरे कम होने लगी थी बुद्धि पर ही विशेष बल दिया जा रहा था इसलिए मिश्र जी ने इस पुस्तक में मूर्तिपूजा का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है। मिश्र जी लिखते हैं— यद्यपि आजकल अविद्या के प्रभाव से सब बातों के तत्व के साथ प्रतिमा पूजन का भी तत्व लोग भूल गये हैं पर जिन्हें कुछ भी इधर श्रद्धा है वे इस लेख पर कुछ भी ध्यान देंगे तो कुछ भेद तो अवश्य ही पावेंगे।[4] इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर भी लिखा है— शैव सर्वस्व अर्थात् शिवालय शिवमूर्ति और

---

१ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४ ३५ 'शैव सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ प्रताप चरित्र प्रतापनारायण मिश्र

३ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि) पृष्ठ ३३१ 'शैव सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

४ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१८ 'शैव सर्वस्व प्रतापनारायण मिश्र।

शिव-पूजा की मुख्य-मुख्य बातों का गूढ़ार्थ। इसमें प्रत्येक बात बड़े तर्क के साथ उपस्थित की गई है। सम्पूर्ण कृति वैज्ञानिक पीठिका पर आधारित है। यह पुस्तक तीन उपशीर्षकों में विभक्त है—शिवालय, शिवमूर्ति और शिव जी की पूजा। शिवालय के अन्तर्गत शिवालय की बनावट (गोल गुम्बद, चार दरवाजे, त्रिशूल, कीर्तिमुख, नन्दिकेश्वर आदि) का और शिवमूर्ति में मूर्तियों के प्रकार (पाषाण मूर्ति, धातुमूर्ति, रत्नमूर्ति, मृत्तिका-मूर्ति, गोबरमूर्ति, पारामूर्ति आदि) रंग (श्वेत, लाल और काला) आकार (लिंगाकार, सिर पर गंगा, दुइज का चन्द्रमा, त्रिनेत्र, कपालमाला, चिताभस्म, शरीर पर सर्प, गले की श्यामता, हाथ में त्रिशूल तथा डमरू आदि) तथा अन्य प्रमुख देवताओं (विष्णु और भैरव) का मूर्तियों की विशेषताओं का और शिव जी की पूजा में चन्दन, दीप, नवेद्य, मन्दार के फूल, धतूरे के फल, बिल्व पत्र आदि के चढ़ाने का तथा भक्त लोगों के पूजा के बाद गाल बजाने का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के निराकार तथा साकार रूपों का भी संक्षिप्त वर्णन है साथ ही विभिन्न देवोपासकों में समन्वय स्थापित करने का भी प्रयास किया गया है। शैव सर्वस्व की भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। हास्य और व्यंग्य की उच्छृंखलता इसमें नहीं मिलती। इसमें लेखक बड़ा गम्भीर तथा तर्कपूर्ण है, मुहावरों का प्रयोग भी यत्र-तत्र ही हुआ है। इस प्रकार शैव-सर्वस्व भाषा और विचार-शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट है।

सुचाल शिक्षा (प्रथम भाग)

इस गद्य-कृति का प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) से सन् १८९१ ई० में हुआ। इस कृति के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ भी छः पृष्ठों में दिये गये हैं। इसका मूल्य आठ आना है। इसमें नवयुवकों को चरित्र निर्माण के लिए—अनेक शिक्षाएं दी गयी हैं। मिश्र जी सुधारवादी साहित्यकार थे। भारतीय नवयुवकों के पतित चरित्र को देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता था। इस कृति में मिश्र जी ने सच्चरित्रता का जीवन का सर्वोपरि अंग माना है। इसीमें जीवन को अलंकृत करने का नवयुवकों को उपदेश दिया है। नवयुवकों के गिरे हुए चरित्र ने ही मिश्र जी को 'सुचाल शिक्षा' लिखने को प्रेरित किया। मिश्र जी सुचाल-शिक्षा की भूमिका में लिखते हैं—"यदि हमने यह न जाना कि अपने तथा दूसरों के लिए हमें किस-किस रीति से क्या क्या कर्तव्य है तो हमारा दूसरे जीवों से उत्तम बनना क्या है। बस यही सिखलाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। यदि इसमें लिखी हुई बातें हमारे देश के नवयुवकों के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकें तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।"[१] 'सुचाल शिक्षा' उपदेशात्मक ढंग से लिखी गयी है। इसमें इक्कीस

---

१ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३९-४०
'सुचाल शिक्षा' (प्रथम भाग) प्रतापनारायण मिश्र।

पाठ है और प्रत्येक पाठ अपने में पूर्ण तथा स्वतंत्र है। इसके इक्कीस पाठ क्रमश: पढ़ना और गुनना, नित्यकर्म साधारण व्यवहार समय पर दृष्टि अवकाश के कर्तव्य मनोयोग निर्लिप्तता मितव्ययण, लोक-लज्जा निजत्व आत्मगौरव आत्मीयता अंतरात्मा का अनुसरण संगति का विचार, सज्जनता आत्मनिर्भर अर्थशुद्धि स्वत्व संरक्षण आस्तिकता कर्तव्य पालन, स्मरणीय वाक्य है। इन सभी विषयों का सुचारु-शिक्षा में क्रमबद्ध और स्पष्ट विश्लेषण किया गया है। उक्त सभी विषय जो नाम से ही अपने अर्थ को स्पष्ट कर रहे है—मानव जीवन के सम्बन्ध है इनके अनुसरण से मानव अपने को उच्च-से-उच्च स्थान पर अधिष्ठित कर सकता है। अन्त में जो पचास 'स्मरणीय वाक्य' दिये हैं वे समाज निर्माण के अमूल्य रत्न है जिनको प्रयुक्त कर मानव आदर्श बन सकता है। उपदेश प्रधान होने के कारण इसकी भाषा बड़ा सरल तथा सामान्य बुद्धिवालो के लिए सहज ही बोधगम्य है। विषय का प्रतिपादन भी क्रमबद्ध रूप से स्थिरता के साथ समझाते हुए किया गया है। यह कृति चरित्र निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। यद्यपि साहित्यिकता के दर्शन इसमें नहीं होते फिर भी अपने उपदेशात्मक उद्देश्य में यह पूर्ण सफल है। इसकी सफलता का प्रमाण हमे इसके सन् १९११ ई० के द्वितीय संस्करण से ही मिल जाता है। इस बार इसकी दो हजार प्रतियां निकलवायी गया जो यह सिद्ध करती हैं कि इसकी मांग समाज में बहुत-अधिक थी। इस कृति का प्रथम भाग ही प्रकाशित हुआ है आगे इसका कोई भाग नहीं निकला। इसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि मिश्र जी इसके और भाग भी लिखना चाहते थे पर असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण इसे आगे नहीं लिख सके। वैसे स्फुट विषयों पर लिखी होने के कारण यह कृति अपने प्रथम भाग में ही पूर्ण है।

स्वास्थ्य विद्या

यह कृति अनुपलब्ध है। इसमें स्वास्थ्य रक्षा के नियम बताये गये होंगे। इस कृति का नाम 'चरिताष्टक' प्रथम भाग (१८९४ ई०) के मुख पृष्ठ पर दिया हुआ है। यह सर्वविलास प्रेस बाँकीपुर (पटना) से प्रकाशित हुई थी। यह कृति किसी बंगला पुस्तक का अनुवाद भी हो सकती है पर जब तक देखने को न मिले, तब तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

शिशु शिक्षा

इसका भी नाम 'चरिताष्टक' प्रथम भाग के मुख पृष्ठ पर—मिश्र रचित कृतियों के अन्तर्गत दिया हुआ है। यह भी आज अप्राप्त है। इस कृति में बालोपयोगी शिक्षाएं रही होंगी।

लेख, निबन्ध और समालोचना

मिश्र जी अपने लेख निबन्ध और समालोचनाएं पुस्तकाकार नहीं निकलवा

सके। ये तत्कालीन पत्रों म प्रकाशित होती रही हैं। मिश्र जी की मृत्यु के बाद कुछ लेखको न आंशिक रूप मे इन्हें सग्रहीत कर प्रकाशित कराया । इन लेखकों न— अन्य तत्कालीन पत्रो क अभाव म—'ब्राह्मण' से ही अपने सग्रह ग्रन्थ तयार किये है। सवप्रथम सन् १९१९ ई० में अभ्युदय प्रेस प्रयाग स 'निबन्ध-नवनीत पहिला भाग' प्रकाशित हुआ इसमे मिश्र जी के ४१ लेख और निबन्ध सकलित हैं। 'निबन्ध-नवनीत' म मिश्र जी क प्रमुख निबन्ध ही सकलित किये गय हैं। इसके बाद सन १९३ ई० म प० रमाकान्त त्रिपाठी ने 'प्रताप-पीयूष' का सम्पादन किया । इसम मिश्र जी क २५ निबन्ध सगृहीत हैं। सन् १९३९ ई० म प्रमनारायण टण्डन द्वारा 'प्रताप-समीक्षा' का सम्पादन किया गया। इसमे केवल १५ निबन्ध दिये गय हैं। तदुपरान्त १९४७ ई० में नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के सम्पादकत्व म 'प्रताप नारायण मिश्र' का प्रकाशन हुआ । इसमे मिश्र जी क १५ लेख तथा निबन्ध और कुछ 'ब्राह्मण' की टिप्पणियां तथा समालोचनाए सगृहीत हैं। इसके बाद सम्वत २०१४ वि० म नागरी प्रचारिणी सभा काशी स 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड निकला। इसमें ब्राह्मण की कुछ टिप्पणिया क साथ मिश्र जी के १८ लेख तथा निबन्ध सकलित है। पर इन सग्रह ग्रन्थो मे मिश्र जी का सम्पूण लेख निबन्ध और समालोचना साहित्य नहीं सकलित हो सका (परिशिष्ट देखिए)। मिश्र जी का प्राप्त लेख निबन्ध और समालोचना साहित्य केवल दस वर्षो का है । इस साहित्य का प्रकाशन ब्राह्मण म मार्च १८८३ ई० स जुलाई १८९३ ई० तक हुआ।

मिश्र जी के लेख सम्पादकीय टिप्पणियो क रूप म लिखे गय हैं । इनमें देश की किसी-न किसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। कुछ लेख 'ब्राह्मण' की स्थिति स सम्बन्धित हैं, कुछ म मिश्र जी के जीवन तथा कृतित्व का परिचय मिलता है। य लेख तत्कालीन स्थिति और मिश्र-साहित्य क क्रमिक-विकास को समझने म बड़ उपयोगी हैं। यद्यपि इनमें साहित्यकता के दर्शन नहीं होते फिर भी इनका अपना पृथक महत्व है। इनके अभाव में मिश्र-साहित्य के मूल स्रोता का समझना असम्भव है। मिश्र जी के लेखों के नाम इस प्रकार हैं—जरा पढ़ लीजिए,[1] प्रस्तावना,[2] जरा सुनो तो सही,[3] सूचना,[4] आप बातो,[5] जरा सुनो[6] गहाविज्ञापन[7] मत की दख ली[8]

१	ब्राह्मण	खण्ड १	सख्या ४
२	,,	,, १	१,
३	,,	१,	, ११
४			१२
५	,,	४	१
६	,,	,, ४	५
७	,,	५	७
८		५	३-४

विज्ञापन[1] क्षमस्व लिखिए,[2] अन्तिम सम्भाषण[3] नव सम्भाषण[4] सर्वारम्भ[5] विशेष सूचना[6] क्षमा कीजिए[7] आदि। इनकी भाषा बड़ा सरल—समाचार पत्रों की-सी है। साहित्यिकता के न होने के कारण ही सम्पूर्ण लेखों का—आवश्यक होते हुए भी अब तक समुचित प्रकाशन नहीं हो सका। इनका पूर्ण प्रकाशन वांछनीय है।

निबन्ध-साहित्य मिश्र जी का अपना निराला है। छोटे-से-छोटे विषय को भी मिश्र ने अपनी प्रतिभा से विशिष्ट बना दिया है। इनके निबन्धों में विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। भाषा बड़ी सरल तथा प्रभावपूर्ण है। गम्भीर विषय भी उनकी भाषा और शैली से सरल बन गये हैं। मिश्र जी के निबन्धों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। विभिन्न विषयों पर इन्होंने निबन्ध लिखे हैं। संख्या में भी इनके निबन्ध पर्याप्त हैं। विषय की दृष्टि से मिश्र जी के निबन्धों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

राजनीतिक निबन्ध

इन निबन्धों के अन्तर्गत मिश्र जी के राष्ट्रीय विचार धारा से सम्बन्धित निबन्ध आयेंगे। जैसे—देशोन्नति[8] समझदार की मौत है,[9] भारत का सर्वोत्तम गुण,[10] दुखी चाट निहाई के माथे[11] रूस और मूस,[12] देशी कपड़ा[13] भारत पर भगवान की अच्छी ममता है[14] हम राजभक्त हैं[15] कांग्रेस की जय[16] स्वप्न[17] साइयल

१ 'ब्राह्मण' खण्ड	७	संख्या ६
२	७	९
३	७	१२
४	८	१
५	२	१
६	२	१२
७	२	९ १०
८	१	६ ७ खण्ड २ संख्या २ ५, ६ ९ १०,
९	२	५
१०	३	२
१	३	२
१२	३	३,
१३	३	१२
१४	४	७
१५	५	२
१६	४	६,
१७	६	५

कान्फरेन्स[१] पंचायत[२] यह तो बलसाइय[३] ग्रामों के साथ हमारा कर्त्तव्य[४] सहवास बिन अवश्य प्राप्त होगा,[५] न जाने क्या होना है[६] पुलिस की निन्दा क्यों की जाती है[७] उन्नति का धूम[८] आदि। इनमें मिश्र जी ने शासकों की नीति के सजीव चित्र खींचे हैं। अंग्रेजों की अनैतिकता पक्षपात शोषण आदि का बड़ी निर्भीकता के साथ खण्डन किया है। साथ ही अंग्रेजों द्वारा की गई—हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति की प्रशंसा की है। पुलिस की निर्ममता अंग्रेजी शासन का देश पर प्रभाव टैक्सों में वृद्धि निःशस्त्रीकरण राजद्रोहियों आदि की खुलकर—कठोर शब्दों में आलोचना की गई है। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और कांग्रेस के प्रति निष्ठा का स्वर इन निबन्धों में सशक्त होकर आया है। इन निबन्धों में मिश्र जी एक सच्चे देश भक्त के रूप में दिखाई पड़ते हैं। देशहित की बात कहने में वे जरा भी आगा पीछा नहीं करते। खरी बात शाहिदुल्ला कहें सबके दिल से उतरे रहें ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है। राजनीतिक निबन्धों में मिश्र जी की देश और जाति की ममता कूट-कूट कर भरी है। जनता में राष्ट्रीय चेतना के भाव भरने में ये निबन्ध पूर्ण सफल हैं।

सामाजिक निबन्ध

इन निबन्धों में मिश्र जी ने समाज की कुरीतियों की ओर संकेत किया है। आपसी फूट अशिक्षा, अंधविश्वास बाल्य विवाह छुआछूत अनमेल विवाह अकर्मण्यता आदि को सामाजिक विघटन का कारण माना है और इन दोषों की कड़ी भर्त्सना की है तथा नारी शिक्षा एकता कृषि और व्यापार को बढ़ाने की ओर जनता को प्रोत्साहित किया है। इन निबन्धों में ठगों के हथकण्डों से भी जनता को सचेत किया गया है। मिश्र जी अपने निबन्धों द्वारा जनता को तत्कालीन स्थिति से परिचय कराते तथा उस जीवन को सफल और उन्नतिशील बनाने का उपाय भी बताते रहते थे। सामाजिक निबन्धों के अन्तर्गत मिश्र जी के दयापात्र जीव[९] गुप्त ठग,[१०] मार मार कर जाओ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ६
२ „ „ ७ १२
३ „ ७, १२
४ „ „ ७ ६
५ ७ ७
६ ७ ७
७ ८ ४५
८ ८ ६
९ १, ११
१० „ १ ४

नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है[1] जरा अब तो आंखें खोलिए,[2] मुक्ति के भागी[3] फूटी सहे आंजी न सहे[4] बेकाम न बैठ कुछ किया कर,[5] घूरे के लत्ता बिन कनातन का डौल बांधु,[6] विस्फोटक[7] मन-बस होश में लाइए[8] तत्व के तत्व में अंग्रेजीबाजों की भूल है[9] बाल्यविवाह विषयक एक चीज[10] दुनिया अपने मतलब की है[11] ऊंच निवास करतूती[12] समझने की बात[13] एक विचार[14] ठगों के हथकण्डे,[15] धरनी माता[16] समय का फेर[17] सलमसी[18] मित्र कपटी भी बुरा नहीं होता[19] पढ़े लिखों के लक्षण[20] आदि निबन्ध उल्लेखनीय हैं।

धार्मिक निबन्ध

धार्मिक निबन्धों में मत-मतान्तरों, गोवध, पशुवध आदि का निषेध किया गया है तथा पाखण्डियों, बनावटी साधु-संतों, आडम्बर पूर्ण व अन्धविश्वासी पुरोहितों, मूर्तिपूजियों, विभिन्न देवोपासकों आदि की आलोचना की गयी है। इनमें एक ब्रह्मोपासना का उपदेश दिया गया है और सभी मतों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न

१	ब्राह्मण	खण्ड १	संख्या ५
२	,,	१	८
३	,,	१	१०
४		१	१२
५		१	१२
६		२	१
७		२	२
८		३	२
९		३	३
१०		३	११
११	,,	४	१,
१२		४	५
१३		५ ,,	७
१४		५	८
१५		५	९,१० खण्ड ६, संख्या ३
१६		५	९
१७		५	१० ११, खण्ड ६ संख्या ८ ९ १०
१८		६	२
१९		८	१०
२०	,,	८	१,

किया गया है। तत्कालीन धार्मिक सस्थाओ के प्रति भी मिश्र जी की बडी सहानुभूति थी पर उनके सभी काय उन्हे पसन्द नही थे। इन सस्थाओ के एकता विरोधी तत्वो की मिश्र जी भर्त्सना करते थे। मिश्र जी धार्मिक क्षेत्र मे भी एकता और शान्ति स्थापित करने के पक्षपाती थे। धार्मिक निबन्धो मे वकमहुरी मे शालिग्राम जी[1] मतवालो की समझ,[2] प्रेम एव परोक्षम[3] गगा जी[4] पादरी साहब का व्यर्थ यत्न[5] वलि पर विश्वास,[6] कलिमहु केवल नाम प्रभाऊ[7] नास्तिक[8] मतवादी अवश्य नर्क जायगे[9] धर्म और मत[10] मूर्तिपूजको की महौषध[11] देवमन्दिरो के प्रति हमारा कर्तव्य[12] हरि जस का तसा है[13] दशावतार[14] प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश हितैषी क्या बनते हैं,[15] पुराण समझने को समझ चाहिए,[16] प्रतिष्ठा केवल प्रेम देव का है[17] गारम्भा,[18] नवपन्था और सनातनाचारी[19] आदि निबन्ध दृष्टव्य है।

साहित्यिक निबन्ध

इन निबन्धो मे अधिकाश सामान्य विषयो पर लिखे गये है पर सामान्य विषयो पर लिखे गये निबन्धो मे भी इनकी विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते है। कुछ निबन्धो

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ४
२ ,, २ ,, ३,४,
३ ,, ३ ,, ३ ४ ६,
४ ,, ३ ,, ९ १०,
५ ,, ४ ,, ६
६ ,, ५ ,, ८,९
७ ,, ५ ,, १
८ ,, ५ ,, ३ ५
९ ,, ५, ,, १०,११,
१० ,, ६ ,, ३
११ ,, ,, ७, ,, ४,
१२ ,, ७ ,, ८,
१३ ,, ७ ,, ११
१४ ,, ७ ,, ११
१५ ,, ८ ,, ८
१६ ,, ८ ,, १२
१७ ,, ९ ,, ४
१८ ,, ९ ,, ६
१९ ,, ९ ,, १२

म भाषा और छन्दों का विवेचन किया गया है जिनमें इनके प्रौढ़ शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता है जैसे—आल्हा आल्हाद,[1] खड़ी बोली का पद्य[2] उर्दू बीबी की पजी[3] अपभ्रंश[4] एक सलाह[5] भ्रम है[6] आदि। कुछ निबन्ध भावात्मक भी हैं जैसे—मनायोग[7] चिन्ता[8] काम,[9] स्वाद[10] आदि। सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्धों में सोना[11] —[12] मिडिल क्लास[13] बालक[14] भौं[15] युवावस्था[16] नारी[17] सोने का डण्डा और पौधा[18] मरे को मारें साह मदार[19] न्याय[20] ट[21] प्रतिज्ञा[22] पक्ष[23] जुआ[24] खुशामद,[25] दांत[26] एक[27] लत[28] उपाधि[29]

---

१ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ५,६ १२ खण्ड ७ संख्या १२
२ ,, ४ ७,८
३ ,, ४ २
४ ७ ,, ६
५ ८ ६
६ ७ ११
७ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६६० ६३
८ 'ब्राह्मण खण्ड १, संख्या ६
९ ,, ,, ५ ,, २,
१० ,, ,, ६ ,, २,
११ ,, ,, ३ १२
१२ ,, ,, ४, ,, २,
१३ ,, ,, ४ ,, २,
१४ ,, ४, ३
१५ ,, ,, ४, ,, ३,
१६ ,, ,, ४, ,, ४
१७ ,, ,, ४, ,, ४,
१८ ,, ४ ,, २
१९ ,, ,, ४ ,, १
२० ,, ,, ४, ,, १०,
२१ ,, ,, ४, ११
२२ ,, ,, ४, ,, १२
२३ ,, ,, ५ ,, ७,
२४ ,, ,, ५, ,, ४,
२५ ,, ५, ,, ५
२६ ,, ,, ५, १
२७ ,, ,, ५, ,, ११,
२८ ,, ,, ५ ,, ११,
२९ ,, ,, ५, ,, १२,

त १ काल २ वृद्ध ३ दो ४ सत्य ५ ममता ६ पेट ७ बात ८ स्वतन्त्रता, ९ विश्वास १० आप ११ परीक्षा १२ धोखा १३ आदि विशेष उत्कृष्ट हैं। मिश्र जी के सभी साहित्यिक निबन्ध व्यक्तिपरक है। इनमें उनकी अपनी शैली है। रोचकता की दृष्टि से मिश्र जी के सभी निबन्ध अद्वितीय हैं। इनके निबन्धो मे विचारो की गहनता न होकर व्यक्तित्व की प्रबलता है। साहित्यिक निबन्धो म भी देश प्रेम की झलक यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है।

हास्य और व्यग्य परक निबन्ध

मिश्र जी जन्म से ही विनोदी प्रकृति के थे इसलिए इनके सभी निबन्धो म कुछ-न-कुछ हास्य और व्यग्य का पुट अवश्य मिलता है। यहा तक कि गम्भीर विषयो मे भी वे हास्य और व्यग्य से अपने को मुक्त नही रख पाते। मिश्र जी ने कोरे हास्य और व्यग्य के लिए कोई निबन्ध नही लिखा। जो निबन्ध इस कोटि म आते भी हैं उनमें किसी न किसी सामाजिक दशा का चित्रण प्राय रहता है फिर भी हास्य और व्यग्य की प्रधानता के कारण उन्हे हम सामाजिक निबन्धो के अन्तगत नही रख सकते। इन निबन्धो म मिश्र जी के हा ओ ओ ली है १४ मस्ती के बड १५ किस पव मे किसको बनि आती है, १६ किस पव मे किस पर आफत आती है १७ तिल १८ छ । छं ॥

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या १२,
२ , , ६, ,, ७,
३ ,, ,, ६ , ८
४ , ,, ६, , ९
५ , , ७, , १२,
६ , ,, ७ ,, ३
७ , , ७, ,, ९
८ , ७, , १०
९ ,, ,, ७ ,, १२,
१० , ,, ८, , ६,
११ ९ ,, ८,
१२ , ,, ५, , ८
१३ , ,, ९ ,, ९,
१४ , ,, १ , १,
१५ , ,, १, , ७,
१६ , , ५ , ८,
१७ ,, ५, ,, ८
१८ ,, , ६, ,, ६,

है ।।। [1] जवानी की सर [2] मुच्छ,[3] होली है,[4] आदि विशेष उल्लेखनीय है । मिश्र जी ने हास्य और व्यंग्य की योजना शब्द और अर्थ दोनों में की है इसके लिए इन्होंने कहावतों, मुहावरों और दन्तकथाओं का बहुतायत से प्रयोग किया है । इनके व्यंग्यात्मक निबन्ध बड़े हृदयस्पर्शी है । व्यंग्य के माध्यम से ये समाज की कुरीतियों की कटु-से कटु आलोचना कर जाते है और पाठक भी उन्हे हसकर सहन कर लेते है । मिश्र जी अपने इन निबन्धों में बड़े सफल है ।

मिश्र जी की समालोचना साहित्य विज्ञापनों के रूप में लिया गया है । जो पुस्तकें इनके पास विज्ञापन के लिए आती थी उनपर ये संक्षिप्त समालोचनाएं लिखकर ब्राह्मण में प्रकाशित करते थे । इनकी समालोचनाएं छोटी होते हुए भी बड़ी चुटीली होती थीं । इनमें भाषा विषय आदि पर पूरा विचार किया गया है । मिश्र जी का युग समालोचना का प्रारंभ काल था इसलिए इस युग में व्यवस्थित और विस्तृत समालोचनाएं नहीं मिलती । फिर भी जितनी प्रगति इस क्षेत्र में हुई थी उसमें मिश्र जी पीछे नहीं थे बल्कि उसे आगे बढ़ाने में ही प्रयत्नशील थे । मिश्र जी ने समाचार पत्रों तथा तत्कालीन प्रकाशित पुस्तकों-दोनों पर अपनी समालोचनाएं लिखी हैं । इनकी, सुखद वार्ता[5] (मास्टर नन्हूमल) ललिता नाटिका[6] (अम्बिकादत्त व्यास) तप्तासंवरण नाटक[7] (लाला श्री निवासदास) शृंगारलतिका[8] (नवछेदी तिवारी) देवी स्तुतिशतक[9] (महावीरप्रसाद द्विवेदी) ऊजड़गाँव[10] (श्रीधर पाठक) वेनिस का बाँका[11] (अयोध्यासिंह उपाध्याय) आदि पुस्तकों तथा वैष्णव पत्रिका[12] आनन्दकादम्बिनी[13] सुप्रत-संहिता[14] आदि पत्रों पर लिखी गयी समालो

---

१ ब्राह्मण' खण्ड संख्या ८ ४ ५
२ ४, ६,
३ ,, २ ९ १०,
४ ,, ९ ,, ८
५ ,, , १, ७ (समालोचना')
६ १ ७ (समालोचना)
७ , १, ८ (समालोचना')
८ १ ९ (समालोचना')
९ ९ ४ (प्राप्ति स्वीकार)
१० ६ ६ ('समालोचना')
११ , ४ , ६ (समालोचना)
१२ १ ५ ('वैष्णवपत्रिका की आलोचना')
१३ , , ३ ७ ('प्राप्ति स्वीकार')
१४ ३ , ८ (सुप्रत-संहिता)

बनाए बड़ी उत्कृष्ट हैं। इनमे कृति की उपयोगिता और भाषा दोनो पर विचार किया गया है। हिन्दी समालोचना-साहित्य के मूल म जाने के लिए ये द्रष्टव्य हैं। मिश्र जी की सभी समालोचनाए ब्राह्मण में प्रकाशित हुई हैं। इनका भी एक सुव्यवस्थित प्रकाशन वाछनीय है।

नूतन भक्त माल अपूर्ण

इस कृति का प्रकाशन ब्राह्मण म खण्ड ३ सख्या ५ (जुलाइ १८८५ ई०) से प्रारम हुआ था पर मिश्र जी इसे पूर्ण नही कर सके। इसके कवल तीन छप्पय ही ब्राह्मण म प्रकाशित हुए हैं। इस कृति क प्रारम्भ म प्रम भगवान की स्तुति दो दोहा मे की गयी है। इसके बाद पहले छप्पय की दो पक्तियाँ प्रकाशित होने से रह गया हैं। प्राप्त प्रथम पक्ति भी गडबड़ है। दूसरा छप्पय बाबू कशवचन्द्र पर लिखा गया है इसम कशवचन्द्र द्वारा किये गये कार्यों की प्रशसा की गई है। तीसरे छप्पय म गोविन्दाश्रम स्वामी की प्रशस्ति है। इस कृति म मिश्र जी नवीन भक्तो क चरित्र अकित करना चाहते थे क्योकि वे इसकी भूमिका म लिखते हैं– इसम कवल उन भक्ता का चरित्र धीरे धीरे प्रकाशित होगा, जिनका नाभा जी और श्री गोस्वामी जी ने वणन नही किया। हमारे पाठको स छिपा नही है कि भक्त विद्वान परोपकारी इत्यादि ससार समुद्र क रत्न होते हैं इनके वृत्त को देखना सुनना, अनुकरण करना महालाभकारी होता है। हमारी समझ म राजाओं के चरित्र से अधिक भक्तों की लीला स्मरणीय है।[१] यद्यपि इस कथन के बाद मिश्र जी ९ वष तक जीवित रहे फिर भी किन्ही कारणो स वह इसे पूर्ण नही कर सके।

दूध का दूध पानी का पानी (भाणका)

इस भाण प्रारम्भिक अश 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ६ ७ (१८८३ ई०) मे प्रकाशित हुआ था पर किन्ही कारणो स मिश्र जी ने इसे पूरा नही किया। इस भाण का कथानक एक सत्य घटना पर आधारित है। इसके न लिखने का बहुत-कुछ कारण इस सत्य घटना स सम्बन्धित लोगो क आक्षेप भी हो सकते हैं। इसका कथानक इस प्रकार है–चादापुर निवासी ठाकुर विजयसिह क जब कोई सन्तान न हुई तब उन्होने अपने भांजे के लडके बालकृष्ण को गोद लिया। विजयसिह और उनकी पत्नी–दोनो ही दत्तकपुत्र स बड़ा स्नेह करते थ। कुछ समय क बाद विजयसिह की मृत्यु हो गयी। अब नियमानुसार उनकी सम्पति का अधिकारी दत्तक पुत्र को ही होना चाहिए था पर उनके परिवार वाले–टेकचन्द ने विजयसिह की सम्पत्ति हड़पनी चाही। अबकि दोनो का बटवारा विजयसिंह के पिता क समय ही हो चुका

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ५ नूतन भक्त माल प्रतापनारायण मिश्र

था। विजयसिंह की विधवा पत्नी बड़ी पतिव्रता थी उसको अनाथ समझ कर टेकचन्द ने – उसकी सम्पत्ति की प्राप्ति के हेतु – नालिश कर दी। इतना ही लिखकर मिश्र जी ने इस भाण को छोड़ दिया। इसके देखने से ऐसा लगता है कि मिश्र जी रूपक के सभी भेदों पर कुछ न कुछ लिखना चाहते थे।

जुआरी-खुआरी (प्रहसन)

इस प्रहसन का पहला अंक ब्राह्मण के खण्ड १ संख्या ९, (नवम्बर १८८३ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद इसका कुछ अंश हिन्दोस्थान में (जब मिश्र जी कालाकाकर में थे) प्रकाशित हुआ। आगे १८९२ ई० में मिश्र जी इसे पूरा करना चाहते थे पर इसकी फाइल (जिसमें जुआरी-खुआरी प्रकाशित हुआ था) उन्हें उपलब्ध न हो सकी। वे बालमुकुन्द गुप्त को अपने ५ जनवरी, १८९२ ई० के पत्र में लिखते हैं— एक तकलीफ देंगे पर अन्द मन्द दीजिए तो बन नहीं तबीयत ओर काठ में गई तो फिर बस! इन दिनों जी भी चाहता है कई मित्रों का तकाजा भी है इससे मतलब की सुनिए—आपके पास हिन्दोस्थान का फायल जरूर है उसमें हमारा जुआरी-खुआरी प्रहसन है अधूरा यदि उसकी नकल भेज दीजिए तो पूरा करके छपवा डालें, नहीं इच्छा आपकी कालेकांकर वाले कहते हैं पुरानी कापी नहीं रहा इसीसे आपको कष्ट देते हैं। कबूल हो तो खैर नहीं तो अभाग्य।[1] सम्भवतः 'जुआरी-खुआरी' की प्रतिलिपि बालमुकुन्द गुप्त से भी मिश्र जी को नहीं प्राप्त हुई और यह कार्य अपूर्ण ही रह गया। प्राप्य प्रहसन का कथानक इस प्रकार है—गप्पूमल की बैठक लगी हुई है। पचकौड़ीलाला, धनदास कुंवरचन्द बैठे हैं। दीपावली समीप है। सभी जुआ खेलने की बात कर रहे हैं। इतने में प० लक्ष्मीदास उधर से निकलते हैं। सभी पैलागी करते हैं। पंडित जी आशीर्वाद देते हैं। लाला मक्खनलाल का इकलौता लड़का बीमार है उसी का वर्षफल विचार कर पंडित जी लौट रहे थे। ये लोग भी जुआ का परिणाम विचरवाते हैं। धनदास जुआ जीतने का जन्तर पंडित जी से मांगता है और पंडित जी से कहता है आप भी जुए के पास रहिएगा पर पंडित जी कहते हैं हम घर पर ही तुम्हारे जीतने की पूजा करेंगे केवल पूजा की सामग्री के लिए पचास रुपये पहुंचा देंगे। धनदास रुपया देना स्वीकार कर लेता है। सभी पंडित जी की प्रशंसा करते हैं। इस प्रहसन की भाषा पात्रानुकूल है। इसकी हास्य योजना में भी मिश्र जी पूर्ण सफल हैं।

प्रताप चरित्र

इसमें मिश्र जी ने अपना जीवन चरित्र लिखना प्रारम्भ किया था पर किसी कारण से वह इसमें अपने पूर्वजों की ही कथा लिखकर रह गये। 'प्रताप चरित्र' का

---

१ 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५१ मिश्र जी के पत्र से।

)

प्रकाशन 'ब्राह्मण' के खण्ड ५ सख्या २, ३ और ४ (१८८८ ई०) मे हुआ था। जीवन चरित्र लिखने के मिश्र जी बड पक्षपाती थे वे लिखते हैं—'हमारी समझ मे तो जितने मनुष्य हैं सबका जीवन लिखनी बद्ध होना चाहिए। इसका बडा लाभ यह होगा कि उनकी भलाई का ग्रहण करके बुराइयों मे बच के दूसरे सैकडो लोग अपना भला कर सकते हैं। हमारे देश मे यह लिखने का चाल नहीं है इससे बडी हानि होती है। मैं इनका बडा गुण मानूगा जो अपना वृत्तान्त लिख के मेरा साथ देंगे जिससे अनेक मधुर फल लखका को यदि न भी मिल तो भी बहुत दिनो तक बहुत से लोग बहुत कुछ लाभ उठावेंगे।'[1] इसने मिश्र जी ने अपने पिता के बाल्य जीवन तक का कथा दी है यदि यह जीवन-चरित्र पूर्ण हो जाता तो मिश्र-साहित्य के अध्ययन मे इससे बडी सहायता मिलती। बाबू बालमुकुन्द गुप्त प्रताप चरित्र के विषय मे लिखते हैं— क्या अच्छा होता जो पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अपनी जीवनी आप लिख डालते। बड़े मौके से उन्होंने अपने 'ब्राह्मण' पत्र मे अपनी जीवनी स्वयं लिखनी प्रारम्भ की थी। उसके बाद वह चार-पाच साल तक जीते रहे थे। यदि थोडी-थोडा भी लिखते तो बहुत-कुछ लिख जाते। अपनी जीवनी का जितना अश वह 'ब्राह्मण' के तीन अकों में लिख गये हैं उसे पढकर बार-बार जी में यही होता है कि यदि सब नहीं, तो अपने पिता के सम्बन्ध का पूरी बातें और अपने लडकपन की बातें तो लिख ही जाते। प्रसिद्ध लोगों का जीवनियां बहुत करके दूसरा ही की लिखी हुई होती हैं पर बहुत से प्रसिद्ध लोगो ने अपनी पूरी या अधूरी जीवनियाँ स्वयं भी लिखी हैं और वह दूसरो की लिखी जीवनियो से कम काम की नहीं हुई वरञ्च कितने ही अंशों में बढ़कर हुई हैं। मनुष्य का कितना ही बातें और कितने ही विचार ऐसे हैं जिनको वह स्वयं ही भली भांति जानता है और लिख सकता है।'[2]

पौराणिक गुड़ाय

इस कृति का प्रकाशन 'ब्राह्मण' मे खण्ड ६ सख्या ८ (१८९० ई०) से प्रारम्भ हुआ था और कई अंकों तक यह निकलता रहा थी। इसका पृथक पुस्तकाकार प्रकाशन नहीं हुआ। यह 'नैव-सर्वस्व' की तरह वैज्ञानिक पीठिका पर लिखी गई है। 'नैव-सर्वस्व' मे मिश्र जी ने एक स्थान पर इस कृति का संकेत किया है—'जिन मतो मे प्रतिमा पूजन का महा-महा निषेध है उनके धर्मग्रन्थों में भी ईश्वर के हाथ पाव नेत्रादि का वर्णन है, फिर हमारे पूर्वजों के लेखों का तो कहना ही क्या है जिनकी कल्पना शक्ति के विषय मे हम सच्चे अभिमान से कह सकते हैं कि दूसरे देश वालो को वैसी-वैसी बातें समझनी ही कठिन हैं सूझना का तो क्या कथा। उनकी

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या २ ('प्रताप-चरित्र')

२ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १०

छोटी छोटी बातों म बड-बड़ आशय हैं। (यह विषय दूसरी पुस्तक में लिखा गया है) फिर यह त। धर्म का अग है इसका क्या कहना।'[1] यहां पर यह कहना न होगा कि मिश्र जी की यह दूसरी पुस्तक पौराणिक गूढार्थ ही है। शैव सर्वस्व और पौराणिक गूढार्थ की प्रतिपादन शैली एक-सी ही है। और दोनो पुस्तकें एक दूसरे से सम्बद्ध हैं (विशेष रूप से शिवमूर्ति का प्रसग) 'पौराणिक गूढाथ म भी मिश्र जी शैव सर्वस्व की सूचना देते हैं— भगवान भोलानाथ के वाहन भूषणादि का वर्णन पुराना संख्याओ म लिखा जा चुका है और शैव सर्वस्व नामक पुस्तिका म पृथक छप रहा है, इससे बार-बार लिखने की आवश्यकता नही है।[2] पौराणिक गूढार्थ नयी बुद्धि वालों को समझाने के लिए लिखा गया है। मिश्र जी लिखते हैं— अंग्रेजी ढग की शिक्षा पाने वाला म न जाने यह दोष क्या हो जाता है कि जो बातें सहज म नही समझ पडतीं उन्हे मिथ्या समझ बैठते हैं। यदि इतना ही होता तो भी इसके अतिरिक्त कोई बडी हानि न थी कि थोड़े से लोग कुछ का कुछ समझ लें। पर खेद यह है कि वे अपनी अनुमति देने मे अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न करके बिन समझी बातो के विषय म भी बहुधा ऐसी निरकुश भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं जिसम विद्वानो को खेद और साधारण लोगो को क्षोभ उत्पन्न होके परस्पर की प्रीति म बडा भारी धक्का लगता है। आजकल सब समाजें आपस के हेल मेल को आवश्यक समझती हैं एव विचारशील लोग सारे धर्म कर्मादि से एकता को श्रेष्ठ समझते हैं। पर इन ऐक्य भावुको म भी बहुत से लोग ऐसे विद्यमान हैं जो अपने यहां के मुहावरे और प्राचीन काल के रग से अनभिज्ञ होने के कारण अब तक कह बैठते हैं कि पुराण मिथ्या हैं, प्रतिमा पूजन वाहियात है यह सब पडितों के ढकोसले हैं।[3] इसी स्थिति ने मिश्र जी को 'पौराणिक गूढार्थ' लिखने के लिए प्रेरित किया। इसम मिश्र जी ने देवी देवताओ के वाहन भूषणादि का वैज्ञानिक ढग से वर्णन किया है। देवताओ की चार अथवा आठ भुजाओं सिंह वृषभ मूषक गरुड मृग, उलूक मत्स्य मयूर आदि वाहनों इन्द्र के सहस्र नेत्रों शेषनाग के सहस्र मुखों आदि का गूढार्थ समझाया गया है। इसम मिश्र जी की भाषा बडी प्रौढ है तथा बड़ा गम्भीरता के साथ तर्क देते हुए विषय का विवेचन किया गया है। इसके विवेचन म इनकी दूर की सूझ स्पष्ट दिखाई पडती है।

---

१ प्रतापनारायण ग्रथावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१८ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ९, पौराणिक गूढाथ प्रतापनारायण मिश्र

३ ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ८ ('पौराणिक गूढाथ)

रामायण रमण

रामायण रमण का लिखना मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ६ (जनवरी १८९२ ई०) स प्रारभ किया था। पर असामयिक मृत्यु हो जाने से आगे नही लिख सके। मिश्र जी का रामायण स बडा प्रेम था वे इस पुस्तक के लिखने का सकेत बहुत पहले कर चुके थे—"यदि हम अपने को सुधारना चाहें तो अकेली रामायण म सब प्रकार क सुधार का माग पा सकते हैं (जिसका वणन फिर भी) हमारे कविवर वाल्मीकि न रामचरित्र म कोई उत्तम बात नही छोडी एव भाषा भी इतनी सरल रक्खी है कि थोडी सी सस्कृत जानन वाला भी समझ सकता है। यदि इतना श्रम भी न हो सके तो भगवान तुलसी दास की मनोहारिणी कविता थोडी सी हिन्दी जानन वाले भी समझ सकते हैं सुधा क समान कव्यानन्द पा सकते है और अपना तथा देश का सब प्रकार हित साधन कर सकते हैं। [1] 'रामायण रमण म मिश्र जी रामायण की उपदेश प्रधान-मार्मिक कथाओ को लिखना चाहते थ। इसक लिखन म उनका उद्देश्य कवल कथा का ज्यो-का-त्यो लिख देना न था बल्कि उसम छिपे हुए आदश और उपयोगी तत्वो को जनता के सामन रखना था।[2] प्राप्त' रामायण रमण क अश म उन्होन रामचन्द्र जी के विश्वामित्र के साथ जाने का प्रसग लिया है और उसम रामचन्द्र जी की कत्तव्य परायणता का विवेचन किया है। इसकी प्रतिपादन शैली बडी ही सरल और सहज हो बोधगम्य है।

संदिग्ध

गो सकट नाटक

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपन लख म इस नाटक को प्रतापनारायण मिश्र कृत माना है। [3] लकिन मिश्र जी की कृतियों म इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। हा, ब्राह्मण दिसम्बर, १८८७ ई० क अन म मिश्र जी न गो सकट नाटक' क अभिनय की सूचना दी है पर इस लख क अन्त म इस 'पीयूष प्रवाह सम्पादक अम्बिकादत्त व्यास कृत लिखा है।[4] अत यह नाटक अम्बिकादत्त व्यास का लिखा हुआ है। अब यह नही कहा जा सकता कि सन् १८८७ ई० क बाद मिश्र जी न भी इसी नाम स कोई नाटक लिखा हो पर एसा कोई नाटक (मिश्र लिखित) प्राप्त नही है।

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६, सख्या १ राम — प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ६ रामायण रमण' — प्रतापनारायण मिश्र

३ 'सरस्वती माच १९०६ ई० पडित प्रतापनारायण मिश्र महावीर प्रसाद द्विवेदी

४ 'ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या ५, कानपुर कुप्र कुमुनामा है — प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु यशामृत

इस कृति का उल्लेख सुधाकर पाण्डे ने मिश्र जी के नाट्यकृतों के अन्तर्गत किया है।[१] लेकिन इस नाम का कोई भी नाटक मिश्र जी का लिखा हुआ प्राप्त नहीं होता।

सौन्दर्यमयी

इसका उल्लेख 'मिश्रबन्धु विनोद' तृतीय भाग में मिश्र जी की रचनाओं के अन्तर्गत किया गया है[२] पर यह आज अनुपलब्ध है, साथ ही इसका उल्लेख भी अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

प्रताप-संग्रह

इस कृति का नाम प्रेमनारायण टण्डन ने मिश्र जी की कविता पुस्तकों की सूची में दिया है[३] लेकिन यह कृति भी देखने में नहीं आयी।

इसके अतिरिक्त त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने मिश्र जी को 'अमरसिंह' प्रहसन का भी रचयिता माना है[४] पर यह नाटक 'प्रयाग-समाचार' सम्पादक पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी का लिखा है। इसका उल्लेख मिश्र जी ने स्वतः ही—'ब्राह्मण' में किया है।[५]

अनूदित-साहित्य

हिन्दी को समृद्धिशाली बनाने तथा जनता का उसकी ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से मिश्र जी ने अनेक बंगला पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इनकी बहुत सी अनूदित पुस्तकें शिक्षा-संस्थाओं में भी स्वीकृत हुई। इन अनुवादों में मिश्र जी ने, अपनी किसी मौलिकता का परिचय नहीं दिया केवल मूल-ग्रन्थों का—सरल भाषा में—अक्षरशः अनुवाद कर दिया है यहां तक कि पुस्तकों के नाम, शीर्षक प्रकरण खण्ड आदि भी मूल-ग्रन्थों के सदृश ही हैं। इसके सभी अनूदित-ग्रन्थ खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित हुए हैं। अनुवाद-कार्य मिश्र जी ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में किया था। ये अधिकांश ग्रन्थ सन् १८९० ई० से १८९४ ई० तक प्रकाशित हुए हैं। कुछ मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी (जिन्हें मिश्र जी अनूदित करके छोड़ गये थे) उक्त प्रेस से प्रकाशित हुए। यहां पर अनूदित—ग्रन्थों का विस्तार से विवरण देना अनावश्यक होगा क्योंकि मिश्र जी ने इनमें अपनी किसी नवीनता का समावेश नहीं किया। अतः नीचे इनका संक्षेप में परिचय दिया जायगा।

---

१ सुधाकर पाण्डेय हिन्दी साहित्य और साहित्यकार (१९६१ ई०) पृ० २७२

२ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद' तृतीय भाग (१९७० वि०) पृष्ठ १३२५।

३ प्रेमनारायण टण्डन प्रतापसमीक्षा, (१९३६ ई०) पृष्ठ ३७

४ सम्मेलन पत्रिका' भाग-४७ संख्या २ ०-१ वि० पं० प्रतापनारायण मिश्र—एक नाटककार तथा अभिनेता त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

५ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ (कानपुर कुछ कुलमुनाया है)

कहानी

इस क्षेत्र में मिश्र जी ने कथामाला चरिताष्टक (प्रथम भाग) कथा बाल संगीत नामक तीन बंगला-पुस्तकों का अनुवाद किया। कथामाला ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की कथाओं का अनुवाद है, इसमें बालकों के लिए उपदेश भरी लघु-कथाएँ संगृहीत हैं। 'चरिताष्टक' (प्रथम भाग) में बंगला के आठ महापुरुषों के जीवन चरित्र (राजा कृष्णचन्द्र राय जगन्नाथ तर्क पंचानन भारतचन्द्र राय गुणाकर कृष्णशास्त्री पद्मलोचन मुखोपाध्याय, मतीलाल शील, हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय राजाराम मोहन राय) दिये गये हैं। इसके अन्य भागों का मिश्र जी ने अनुवाद नहीं किया। 'कथाबाल संगीत' में मिश्र जी ने बालोपयोगी बंगला कथाओं का पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

उपन्यास

मिश्र जी ने राय बंकिमचन्द्र—चट्टोपाध्याय कृत सात बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। जिनके नाम इस प्रकार है—राजसिंह युगलांगुरीय दुर्गेश राधारानी, कपाल कुण्डला, अमरसिंह और देवी चौधरानी। ये सभी उपन्यास जनता की मांग पर लिखे गये हैं। मिश्र जी के समय में बंकिम बाबू के उपन्यासों का भी जनता में बड़ा सम्मान था इसलिए मिश्र जी के अनुवादों का जनता ने बड़ा स्वागत किया। साथ ही इनसे हिन्दी में भी उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली।

इतिहास

मिश्र जी ने तीन इतिहास-ग्रन्थों का अनुवाद किया—सूबे बंगाल का इतिहास, सेन राजवंश और त्रिपुरा का इतिहास। सूबे बंगाल के इतिहास में बंगाल के वीर पुरुषों का क्रमबद्ध वर्णन हैं 'सेन राजवंश' में प्रसिद्ध सेन वंश का इतिहास दिया गया है। त्रिपुरा के इतिहास में बंगाल के एक पुराने राज्य का वर्णन है। ये तीनों इतिहास ग्रन्थ के इतिहास से संबंधित है।

भूगोल

भूगोल में मिश्र जी ने केवल एक पुस्तक— 'सूबे बंगाल का भूगोल' का अनुवाद किया है। इसमें बंगाल की भौगोलिक स्थिति का वर्णन है।

विविध

इसके अन्तर्गत मिश्र जी की सात अनुदित-पुस्तकों की गणना की जा सकती है जिनके नाम इस प्रकार हैं—पंचामृत, नीति रत्नावली, वाणिज्य बंगपरिचय, शिशुविज्ञान आयुर्नीति भाग १ और भाग २। 'पंचामृत' स्वामी कृष्णानंद परिव्राजक लिखित पंचामृत का अनुवाद है इसमें गाणपत्य, सौर शाक्त वैष्णव शैव पाँचों सम्प्रदायों में ऐक्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है तथा उपासना के विभिन्न तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। नीति रत्नावली भी स्वामी कृष्णानन्द परि

श्रावक की नीति रत्न माला का अनुवाद है इसमें बालोपयोगी अनेक उपदेश दिये गये हैं। बोधोदय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत 'बोधोदय' का अनुवाद है इसमें चरित्र निर्माण की विविध शिक्षाएँ हैं। वर्णपरिचय' भी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद है। इसमें बालकों को अक्षर-ज्ञान सिखाया गया है यह शिशु कक्षाओं के निमित्त लिखी गयी थी। वर्णपरिचय' कई भागों में (कक्षाओं के अनुसार) प्रकाशित हुई थी, कुछ भाग सचित्र भी थे। शिशु विज्ञान' में बालकों को विज्ञान की सामान्य शिक्षा दी गयी है। आर्यकीर्ति रजनीकान्त गुप्त कृत आर्यकीर्ति' का अनुवाद है। यह दो भागों में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रथम भाग में मेवाड़ के वीर पुरुषों और स्त्रियों (राणा कुम्भ रायमल्ल कमलावती वर्णवती पन्नाधात्री उदयसिंह प्रतापसिंह आदि) की वीरता और चरित्र का दिग्दर्शन कराया गया है। महाराणा प्रतापसिंह का वर्णन विस्तार से किया गया है। आर्यकीर्ति के द्वितीय भाग में सिक्ख सम्प्रदाय की उत्पत्ति और गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र तथा वीरता का विस्तार से वर्णन है।

संग्रह ग्रन्थ

संग्रह ग्रन्थ मिश्र जी के तीन मिलते हैं—रहिमन शतक, रसखान शतक मानस विनोद। रहिमन शतक का प्रकाशन ब्राह्मण' में खण्ड ५ संख्या ७ (फरवरी १८८९ ई०) से प्रारम्भ हुआ था। इसमें रहीम के १०१ दोहे संकलित हैं। इन दोहों पर मिश्र जी कुण्डलियां बनाना चाहते थे पर यह कार्य पूरा नहीं हो सका। मिश्र जी लिखते हैं—श्री रमानारायण बाजपेयी के द्वारा यह अमूल्य रत्न प्राप्त हो गया। हमारा विचार है कि इसके प्रत्येक दोहा पर कुण्डलियां बनाके अलग पुस्तकाकार छपावें पर इसके लिए अभी कुछ देर है अत दोहे ही 'ब्राह्मण' के रसिकों को भेंट करते हैं।[1] 'रसखान शतक' में रसखान के सौ भक्ति और शृंगार रस के कवित्त संकलित हैं। इसका प्रकाशन ब्राह्मण' में खण्ड ८ संख्या २३ (सन् १८९१ ई०) से रसखान के कवित्त' नाम से प्रारम्भ हुआ था और ७२ कवित्त तक प्रकाशित हुए थे इसके बाद यह कृति पुस्तकाकार (सन् १८९१ ई०) में 'रसखान शतक' के नाम से प्रकाशित हुई। 'मानस-विनोद में रामचरितमानस' के उपयोगी-तत्त्व (प्रमुख प्रमुख दोहे और चौपाइयां) संगृहीत किये गये हैं। पर यह संग्रह उपर्युक्त दोनों संग्रहों से भिन्न है इसमें मिश्र जी ने प्रत्येक उद्धरण के साथ अपनी ओर से विषय के अनुरूप टिप्पणियां जोड़ी हैं जो देशकाल से भी बहुत-कुछ सम्बन्ध रखती हैं। इस संग्रह में मानस के सातों काण्डों से उपयोगी अंश उद्धृत किये गये हैं। बालकाण्ड से १०४ अयोध्या काण्ड से १२६ अरण्यकाण्ड से १६ किष्किन्धाकाण्ड से ११

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५, संख्या ७, 'रहिमन शतक' सं० प्रतापनारायण मिश्र

सुन्दरकाण्ड से १७ लंकाकाण्ड से ११ उत्तरकाण्ड से १८ अंश लिये गये है। इन अंशों का मानस' की कथा से कोई सम्बन्ध नही है। सभी अंश स्वतन्त्र-नीति और उपदेश से भरे हुए हैं। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम मानस रहस्य' के नाम से ब्राह्मण' में खण्ड २ संख्या ८ (१८८४ ई०) से प्रारम्भ हुआ था, और अयोध्याकाण्ड में ६६ अंशों तक यह उसमें प्रकाशित हुई थी। इसके बाद सन् १८८६ ई० में यह 'मानस विनोद' नाम से पुस्तकाकार भारत जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित हुई। इसके विषय में मिश्र जी लिखते हैं—'उस अद्वितीय कवि की जादू भरी कविता शक्ति है जिसमे बड़े बड़े पाण्डित्याभिमानी स्वर्ग पाताल देखा करते हैं पर शंका की निवृत्ति नही होती और सीधे-सादे ग्रामीण भी समझ ही लेते हैं कि 'चले राम धरि सीस रजाई' रामचन्द्र मूड़े मा रजाई धरि कै चलत भे। जिन्होंने इस रामायण को कामधेनु कहा है निश्चय ठीक कहा है। ऐसी कोई बात नही है जो एतद् द्वारा न प्राप्त हो पर समझने वाला चाहिए इसका नाम रामचरितमानस' है अब हम उसमें की अकथनीय बातें एकत्र करते हैं जो त्रिकाल में सत्य हैं विशेषतः वर्तमान समय के लिए तो भेषज भेषजतायां समझिए। विश्वास न हो तो कुछ दिन स्वयं परीक्षा कर देखो। हम यह तो नही कह सकते कि सब रत्न हमने निकाल लिए है पर इस विषय में दूसरों की हम सहायक होंगे। यदि किसी भारतीय भाई का इस ग्रन्थ से कुछ भी उपकार हो तो हमारा थोड़ा सा श्रम और बड़ी सी आशा सफल है।'[1] 'मानस विनोद' के अन्त में मिश्र जी ने श्री रामायण तत्व' शीर्षक से देवनागरी भाषा लगड़ी धुन में सात लावनियां भी लिखी हैं जो राम कथा से सबंधित हैं। प्रत्येक काण्ड पर एक एक लावनी लिखी गयी है। इन सात लावनियों में संक्षेप में पूरी राम कथा वर्णित है। गेयता की दृष्टि से ये लावनियां बड़ी उत्कृष्ट हैं।

उपर्युक्त अनूदित-कृतियों के अतिरिक्त मिश्र जी ने संस्कृत की रत्नावली का भी अनुवाद करना प्रारम्भ किया था पर असामयिक मृत्यु हो जाने से इसे पूरा नही कर सके थे। आगे यह कार्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा पूरा हुआ।[2] मिश्र जी के सभी अनुवाद सरल और सरस तथा अपने उद्देश्य में सफल हैं।

मिश्र जी पर लिखा गया आलोचना-साहित्य

मिश्र साहित्य पर पृथक रूप से - अभी तक कोई भी आलोचनात्मक पुस्तक नही लिखी गयी। हिन्दी साहित्य के इतिहास और भारतेन्दु-युग सम्बन्धी ग्रन्थों में प्रसंग-वश इनके साहित्य का विवेचन किया गया है पर वह बड़ सामान्य स्तर का है उसमें अध्ययन की गहराई तथा मौलिकता के दर्शन नहीं होते। मिश्र-साहित्य

---

१ प्रतापनारायण मिश्र मानस विनोद' (१८८६ ई०) भूमिका पृष्ठ १ २

२ 'बालमुकुन्द गुप्त - स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ७६

के सम्पादित ग्रन्था निबन्ध-नवनीत प्रतापपीयूष, प्रताप-समीक्षा प्रताप लहरी की भूमिकाओ मे भी इनके साहित्य की समीक्षा की गयी है परन्तु वे इतनी संक्षिप्त है कि उसको पढकर कोई दृढ तथा स्थायी विचार नही बनाये जा सकते। केवल 'निबन्ध-नवनीत' की भूमिका कुछ अच्छी है। इसम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का सरस्वती (माघ १९०६ ई) वाला लेख (पडित प्रतापनारायण मिश्र) सकलित है। इसी के आधार पर अन्य सग्रह-ग्रन्थों की भी भूमिकाएँ लिखी गयी हैं। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओ म भी मिश्र जी पर कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं जिनसे इनके साहित्य के अध्ययन म कुछ सहायता मिल सकती है। ये लेख इस प्रकार है —

१—पडित प्रतापनारायण मिश्र' बाबू बालमुकुन्द गुप्त भारतमित्र' १९ ७ ई०।

२—पण्डित प्रतापनारायण मिश्र' रमाकान्त त्रिपाठी विशाल भारत अक्टूबर १९२९ ई०।

३—पण्डित प्रतापनारायण मिश्र' कमलाकान्त सम्मेलन पत्रिका माघ फाल्गुन सं १९९३ वि०।

४—स्व प० प्रतापनारायण मिश्र गोपालराम गहमरी सरस्वती' जून १९३८ ई०।

५—प० प्रतापनारायण मिश्र—अनुवादक के रूप म त्रिलोकीनारायण दीक्षित सम्मेलन पत्रिका' पौष स २००२ वि०।

६—प० प्रतापनारायण मिश्र-कवि और निबन्ध लेखक' त्रिलोकीनारायण दीक्षित सम्मेलन पत्रिका' माघ चैत्र सं० २००३ वि०।

७—पडित प्रतापनारायण मिश्र लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'वीर भारत' ७ अक्टूबर १९४७ ई ।

८—विनोद और व्यग्य के अवतार—प० प्रतापनारायण मिश्र ब्रह्मदत्त शर्मा—साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ८ अक्टूबर १९५० ई०।

९—'प्रतापनारायण मिश्र का कानपुर' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'साप्ताहिक प्रताप', १० अक्टूबर १९५५ ई०।

१०—श्री प्रतापनारायण मिश्र' नरेशचन्द्र चतुर्वेदी साप्ताहिक प्रताप' १० अक्टूबर १९५५ ई ।

११—अहर्निश साधना तथा सर्वोत्कृष्ट पत्रकला का प्रतीक—प० प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'रामराज्य' १ अक्टूबर १९५६ ई०।

१२—प० प्रतापनारायण मिश्र—एक ऐतिहासिक विश्लेषण लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, 'रामराज्य' ८ अक्टूबर १९५६ ई स ३ दिसम्बर १९५६ ई० तक—धारावाहिक प्रकाशित।

इन उपयुक्त लेखो मे 'प० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण लम्बा है और सुन्दर तथा द्रष्टव्य है। इसम मिश्र जी की तत्कालीन स्थिति का अच्छा चित्रण किया गया है तथा मिश्र-साहित्य का भी सम्यक मे विवेचन है। शेष लेख दो-दो तीन-तीन पृष्ठो म लिखे गये हैं जो मिश्र साहित्य के गहन अध्ययन के अभाव म बड छिछले है। कहना न होगा कि मिश्र-साहित्य क अध्ययन का समीक्षको ने अभी तक कोई प्रयत्न नही किया जबकि मिश्र जी भारतेन्दु-युग के प्रमुख तथा श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। मिश्र जी की विचार धारायें अब भी सूक्ष्म रूप से साहित्य म—पुष्पित होती आ रही है तथा आधुनिक-साहित्य की नीव मिश्र जी स ही कमठ एव त्यागी साहित्यकारो स निर्मित है। समीक्षको की यह उपेक्षा, वस्तुत चिन्तनीय है।

द्वितीय खण्ड

समीक्षा

पहला अध्याय

मिश्र जी की कविता

मिश्र जी प्रगतिशील साहित्यकार थे। उनकी कविता म उनके युग की सक्रान्ति पूरी तरह व्याप्त है रीति-कालीन परम्परा का अवसान और आधुनिक काल की जनवादी विचारधारा का उत्थान, दोनों उनम एकीकृत हो गये हैं। उन्हें, युग की गतिविधि के साथ चलाना ही अभीष्ट था। उस समय तक कविता के क्षेत्र में जितनी भी प्रगति हुई थी उसको तो वे साथ लेकर चले ही, साथ ही उन्होंने अपनी प्रतिभा से उसे आगे भी बढ़ाया। मिश्र जी का काल कविता के नवजागरण का काल था। कविता का प्रत्येक पक्ष, एक नयी दिशा मे पूर्ण स्फूर्ति के साथ-आगे बढ रहा था। मिश्र जी ने भी उसी के अनुरूप अपने काव्य का सृजन किया। अत मिश्र जी की कविताओं के मूल में पहुचने के लिए कविता की युगीन प्रवृत्तियों को यहाँ देना अपेक्षित है।

कविता की युगीन-पृष्ठभूमि

रीतिकालीन कविता शृगारिक हास विलास म डूबी हुई थी। उसका क्षेत्र नायक-नायिका क हाव भाव और कटाक्षो तक ही सीमित था कवि अपन आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने के लिए स्थूल शृगार क वणन म तन्मय थे। कविता कवियों क भरण-पोषण का साधन बनी हुई थी। कविया की वाणी अन्नदाता क आधीन थी। विलासी राजाओ क सरक्षण म रहने क कारण कविता म वर्णित शृंगार वासना और अश्लीलता की कोटि म पहुच गया था। डा यसरीनारायण शुक्ल क शब्दों में रीतिकाल म प्रेम वासना का पर्याय बन गया और प्रेम की कविता नायक-नायिका-विषयक रचना मात्र रह गयी। कवि अपने को बाह्य-सौन्दय की मोहनी से मुक्त कर आभ्यन्तर रमणीयता क वणन म प्रवृत्त करने में असमथ रहे। इस कारण इनकी स्थूल-दृष्टि रमणीयता की सच्ची परख म असफलता रही। रीतिकाल के अधिकाश कवियों की इतन बड़ ससार म केवल नायिका के बाहरी रूप रग म ही सौन्दय की झलक मिला। कवियों न प्रकृति क भी उन्हीं दृश्यो का कविता म समावेश किया जिनसे उनकी वासनामय प्रमवृत्ति के उद्दीपन म सहायता मिल सकती थी। इसलिए शिशिर और ग्रीष्म का ग्रहण विरह-वेदना की अभिव्यक्ति के ही लिए अपेक्षित हुआ। वर्षा प्रवासी को अपना विरहिणी का स्मरण दिलाकर घर लौटाने क लिए प्रेरित करने वाली ही दिखाई पडी। विप्रलम्भ और सम्भोग

शृंगार के विषाद-हर्ष का उद्दीप्त करने के अतिरिक्त षट ऋतुओ का मानो कोई और उपयोग ही नहा था।[1] इस प्रकार वासना की अधिकता न प्रेम की सघनता को समाप्त कर दिया था। रीति कालीन कविता का उद्देश्य केवल राजाओं का मनोरंजन या उनकी वासना को उद्दीप्त करना रह गया था। कहना न होगा कि रीतिकाल म कविता सुदरी शृंगार और वासना म डूबी हुई एक वारागना की भाँति-अपने हाव भाव और कटाक्षो स राजाओ को रिझाने मे व्यस्त थी और उनके अनुवर्ती विभिन आभूषणो से युक्त कर उसे अर्थसिद्धि के उपयुक्त बनाने म कटिबद्ध थे।

इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कविता अचार्यत्व के मोह और अलकारिकता के दबाव से पगु हो गयी थी। भाषा भाव और छन्द की पुरानी परम्परा से आबद्ध हान के कारण विकासहीन हो गय थे। इसस कविता की संजीवनी शक्ति तो लुप्त हा ही गयी थी उसकी सरसता और सरलता भी धीरे धीरे समाप्त होन लगी थी। कविता का कलापक्ष सीमा का अतिक्रमण कर रहा था। कवि पाण्डित्य प्रदशन और आश्रयदाताओ का आकृष्ट करने के लिए आकाश पाताल के कुलाबे एक करने म लगे थे। कविता म ऊहात्मकता भी विशेष बल पकडती जा रही थी। कविता का आत्मपक्ष अश्लीलता और वासना स दूषित हो ही चुका था कवियो की चमत्कार प्रियता ने उसके बाह्य पक्ष का भी निन्दनीय बना दिया।

इसके साथ ही रीतिकालीन कविता अपने आहार विहार म ही मग्न थी। लोक से उसका कोई सम्बन्ध नही था। श्रमिको और दीन-दुखियों की चीत्कारें उसे नहीं सुनायी पड़ी। कवियो का काव्य-व्यापार राजदरबारों तक ही सीमित था। लोक भावना स विमुख हान के कारण यह कविता जन-सामान्य तक नही पहुच सकी। प्राचीनता के पिष्टपेषण और अन्धविश्वास ने उसकी चेतन शक्ति को समाप्त कर दिया। कविता पूणतया रूढ़िग्रस्त हा गयी। वैज्ञानिकता तो उसमें लेशमात्र को भी न रही। यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ कविताए इस सीमा से पृथक हाकर भी लिखी गयी पर उनकी संख्या शृंगारिक कविताओ की तुलना मे बहुत कम है। प्रधानता रीतिबद्ध रचनाओ की ही रही।

सकीर्णता की सीमा म बधी हाने के कारण रीतिकालीन कविता युग के अनुरूप चलने म असमर्थ रही। भारतेन्दु-युग में आकर उसका शृगारिक-कलेवर धीरे-धीरे क्षीण हान लगा। राष्ट्रीय चेतना न उस नयी दिशा की ओर मोड़ा। धार्मिक आन्दोलन और अग्रजी शासन और शिक्षा के प्रसार म देश बौद्धिकता का विकास हुआ। जनता अन्धविश्वास से हटकर वैज्ञानिकता की ओर उन्मुख हुई। कवि भी रीतिकालीन परम्परा को छोड़कर युग के अनुरूप अपने को जन-मन के

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल 'आधुनिक काव्यधारा' (२००७ वि), पृ० ९

साथ मिलाने लगे। अब उनकी कविता के आधार नायक-नायिका न होकर क्षुधित श्रमिक हो गये। इससे कवियों के दृष्टिकोण में व्यापकता आयी और उनके द्वारा उद्भूत कविता देश के लिए वरदान बन गयी।

रीतिकालीन कवि जितना ही लोक पक्ष से दूर रहे भारतेन्दु युगीन कवि उतना ही उसके समीप आये। अब कवियों की कविता चांदी के चन्द टुकड़ो में न बिककर, निर्धनों की आहों में बिक रही थी। इस युग के कवियों ने भारत की पराधीनता को दूर करने के लिए सतत प्रयत्न किया। इनमें देश के प्रति अपूर्व ममता थी। देश-दशा से दुखित होकर ये ईश्वर तक से भारत के उद्धार की प्रार्थना करते थे। इन कवियों में वसुधैव कुटुम्बकम का भाव पूर्णरूपेण व्याप्त था। इस युग के कवि अलंकारिकता के पीछे नहीं पड़े। ये बड़ी सरल भाषा में लोक हित की बात जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे।

इस युग के कवि बड़े स्वतन्त्र विचारों के थे उन्हें किसी प्रकार का प्रतिबन्ध सह्य नहीं था। विचार, भाषा और छन्द सभी में उनकी स्वच्छन्दता दिखाई पड़ती है। अपने स्वतन्त्र विचारों से ही उन्होंने हिन्दी के पूर्व तीनों कालों को भारतेन्दु-युग में एकीकृत कर लिया। उनके काव्य में उनकी वैयक्तिकता की प्रमुखता सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

विचारों में स्वच्छन्दता

भारतेन्दु-युग के कवि स्वच्छन्दता के साथ अपने विचारों को अभिव्यक्त करते थे। इसी स्वच्छन्दता ने ही उस समय की कविता में विभिन्न विचार धाराओं को एकत्रित कर दिया है। भारतेन्दु-युग में एक ओर यदि प्राचीन परम्परा और भक्ति और श्रृंगारिक भावनाओं से युक्त कविताएं मिलती हैं तो दूसरी नवीन विचार धारा में राष्ट्रीय चेतना और जनपुकार सुनायी पड़ती है। दूसरी ओर विचारधारा कुछ प्रबलतम रूप में दिखाई पड़ती है। उसका कारण यह है कि भारतेन्दु-युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। उस समय राजनीतिक क्षेत्र में अनेक उथल-पुथल हो रहे थे इसलिए कवियों ने भी उन्हीं के अनुरूप अपने विचार व्यक्त किये। प्राचीनतावादी कविताएं तो संक्रान्ति युग का परिणाम थीं जो आगे चलकर धीरे-धीरे क्षीण होती गयीं। कविता की चेतन शक्ति प्रमुख रूप से नवीन विचार धारा की कविताओं में ही दिखाई पड़ती है। इस युग में कोई भी विषय कविता के क्षेत्र से बाहर नहीं था। छोटे-से-छोटे विषय पर कवि सफलता के साथ कविताएं जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं इसलिए उनमें उपदेशात्मकता का पुट अधिक है। उपदेशात्मकता के आधिक्य से एक ओर तो जनता का हित हुआ है पर दूसरी ओर कविता का कलापक्ष न्यून हो गया है। हां प्राचीनतावादी कविताएं कलापक्ष की दृष्टि से सुन्दर हैं।

भाषा मे स्वच्छन्दता

रीतिकाल म कवि प्राय ब्रजभाषा म ही कविताएं लिखते थे पर भारतेन्दु-युग म आकर कवियो ने विभिन्न भाषाओं म कविताए लिखी। इस काल के कवि बडे जागरूक थे इन्होने राष्ट्रीयता क प्रचार के लिए जन भाषाओं तक को काव्य का माध्यम बनाया और बुन्देली, अवधी आदि भाषाओं मे कविताए कीं। ब्रज भाषा तो इस युग के साथ चली ही साथ ही खडी बोली का भी इसी युग मे आकर विकास हुआ और खड़ी बोली म अच्छी अच्छी कविताए की गई। खडी बोली का आन्दोलन इस युग की एक प्रमुख घटना है। वैसे खडी बोली की क्षीण परम्परा खुसरो की मुकरियो और कबीर के दोहों स प्रारम्भ होती है पर इसका पूण विकास भारतेन्दु-युग से पहले नही हो सका। यहां तक कि खडी बोली शब्द का प्रयोग भी १९ वी शताब्दी म ही आकर हुआ। डा० शितिकण्ठ मिश्र लिखते है– 'जहां तक पता हो सका है 'खड़ी बोली' शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग सन १८०३ ई० म लल्लू जी लाल और सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ते म किया और उसी वर्ष इन्ही प्रयोगो के आधार पर गिलक्रिस्ट न भी 'खडी बोली' शब्द का बार बार प्रयोग किया। इसक पूर्व इस भाषा का कोई विशेष नाम नही था और न नामकरण की आवश्यकता ही समझी गयी।[1] सन् १८७२ ई० से खडी बोली कविता की भावना कवियों म प्रारम्भ हुई और भारतेन्दु न खडी बोली कविता के उत्थान की घोषणा की तथा इस दिशा म कुछ प्रयत्न भी किया[2] पर इसका जोरदार प्रचार सन् १८८७ ई स – अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक द्वारा प्रारम्भ हुआ। श्रीधर पाठक का कहना था – "हम यह नही कहते कि नवीन हिन्दी की कविता ब्रज भाषा स मधुर होती है। हमारा तो केवल इतना ही मतव्य है कि नवीन हिन्दी म जस गद्य है वैसे ही पद्य भी होना चाहिए यह कभी भूल स मत बोलना कि खडी बोली हिन्दी कविता के उपयुक्त नहीं है, गद्य और पद्य की भिन्न भाषा होना हमारे लिए उतना अहकार का विषय नहीं है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा मे हम गद्य लिखते हैं उसमे पद्य नहीं लिख सकते।[3] खडी बोली के पक्षपाती गद्य और पद्य की भाषा एक करना चाहते थ इसी उद्देश्य स प्रेरित होकर उन्होने खडी बोली का आन्दोलन प्रारम्भ किया। दूसरे ब्रजभाषा शृगारिकता द्वारा इतनी कोमल हो गयी थी कि उसम राष्ट्रीय चेतना के भाव प्रभावोत्पादक ढंग से वहन करने की शक्ति न रह गयी थी। डा० आशा गुप्ता के शब्दों म–शृंगार के इस आतिशय्य के

१ डा० शितिकंठ मिश्र खडी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०), पृष्ठ १
२ डा० शितिकंठ मिश्र खडी बोली का आन्दोलन (२०१३ वि), पृष्ठ ३५१
३ हिन्दोस्थान' ८ माच १८८८ ई०।

कारण व्रजभाषा इतना कोमल मधुर और मसृण हो गई थी कि उसमे युग की नवचेतना उद्भूत ज्ञान विज्ञान विभिन्न धार्मिक आदोलन समाज दशा भक्ति आदि विविध विषयो की अभिव्यक्ति सम्भव हो न रही।[१] प्रमुख रूप से इन्ही दो कारणो ने खडी बोली पद्य के आन्दोलन का सूत्रपात किया।

थोडे ही दिनो मे यह आन्दोलन इतना बढा कि ब्रजभाषा के पक्षपाती खडी बोली की और खडी बोली के पक्षपाती ब्रजभाषा की कटु आलोचना करने लगे। और ये आलोचनाएं प्रमुख रूप से 'हिन्दोस्थान' पत्र मे प्रकाशित हुई। ब्रज भाषा के पक्षपातियो मे प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी तथा खडी बोली के पक्षपातियो मे श्रीधर पाठक और बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री प्रमुख थे। बस प्रतापनारायण मिश्र की खडी बोली के प्रति निष्ठा प्रारम्भ से थी क्योकि वे जून १८८४ मे लिखते है— आय कवियो से हम सानुरोध प्रार्थना करते है कि नागरी भाषा की कविता का भी ढग डालें जिस भाषा के इतनी हाय-हाय करते हैं उसमे कविता का चलन हो। प्रियवर हम सहायता दो।[२] लेकिन खडी बोली के समर्थकों द्वारा की गयी व्रजभाषा की भर्त्सना वे न सह सके[३] और वे खडी बोली के विरोध मे खडे हो गये। श्रीधर पाठक की आलोचना का उत्तर देते हुए वे लिखते हैं— उर्दू के बीस बाईस छन्दो को छोडकर खडी बोली अन्य छन्दो के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है। आप वृन्दावन जैसी कोई भी पिंगलशास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी हिन्दोस्थान' में प्रत्येक छन्द का उदाहरण खडी बोली मे दीजिए और मैं व्रजभाषा मे देता हूँ। देखिए कि काव्योचित सरसता किसमे अधिक मिलता है।[४] मिश्र जी नाना भाषाओ के विरोध के पक्षपाती नही थे। आगे वे इसी लेख मे लिखते हैं— क्षमा करें। हम खडी बोली के विरोधी होने से हानि पर हानि सहकर 'ब्राह्मण' का सम्पादन क्या करते। इसके कविता के मार्ग की दागबेल आप डालिए यथा सामर्थ्य हम भी कंकर पत्थर डालते रहेगे। परन्तु कविता इस भाषा की ब्रजभाषा के देखे रूखी होती है और होगी।[५] मिश्र जी की निष्ठा खडी बोली की अपेक्षा ब्रज भाषा से अधिक थी। वे ब्रज भाषा की कोमलता पर मुग्ध थे। वे कहते हैं— सिवाय फारसी छन्द और दो तीन चाल की लावनियो के और कोई छन्द उसमे (खडी बोली मे) बनाना भी ऐसा है जैसे किसी कामलागी सुन्दरी को कोट बूट पहिनाना। हम आधु

---

१ डा० आशा गुप्ता 'खडी बोली-काव्य मे अभिव्यंजना' (१९६१ ई०) पृ० १९९

२ ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ४ (हिन्दी कविता)

३ हिन्दोस्थान ८ मार्च १८८८ ई०।

४ हिन्दोस्थान २१ मार्च १८८८ ई०।

५ हिन्दोस्थान २१ मार्च १८८८ ई०।

निक कवियों के शिरोमणि भारतेन्दु जी से बढ़के हिन्दी भाषा का आग्रही दूसरा न होगा। जब उन्हीं से यह न हो सका तो दूसरा का यत्न निष्फल है। बांस को चूसन से यदि रस का सवाद मिल सके तो ईख बनाने का परमेश्वर का क्या काम था।[१] आगे मिश्र जी यहा तक कह गये कि—'जो लालित्य जो माधुर्य जो लावण्य कविता की उस स्वतन्त्र भाषा म है जो ब्रज भाषा बुन्देलखण्डी बसवाड़ी और अपने ढंग पर लायी गई सस्कृत व फारसी से बन गयी है, जिस चन्द से ले के हरिश्चन्द्र तक प्राय सब कवियो ने आदर किया है उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बोली बोलियां म ला सके यह किसी कवि के बाप की मजाल नही।[२] मिश्र जी का यह कथन समय को देखते हुए सत्य था। उस समय तक खड़ी बोली म कोई प्रगति नही हो सकी थी इसलिए वह सरसता से बहुत दूर थी। वैसे भी सरसता का जहा तक प्रश्न है खड़ी बोली ब्रजभाषा से प्रतिद्वन्द्विता नही कर सकती। ब्रज भाषा का श्रेष्ठ मानते हुए भी मिश्र जी ने खड़ी बोली म पर्याप्त कविताए लिखी। डा० गितिकण्ठ मिश्र के शब्दों म—'इसका यह कदापि अर्थ नही कि राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र जसे लोग रूढ़िवादी थे। इन लोगो ने हर प्रकार की प्रगति और आवश्यक नवीनता का जी खोलकर स्वागत किया रूढ़ियों का विरोध किया और स्वय खड़ी बोली म कवितायें भी की।[३] आगे तो पाठक जी को मिश्र जी म प्रेरणाए भी मिली। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध लिखते है—'बाबू हरिश्चन्द्र प० प्रतापनारायण और प० बद्रीनारायण चौधरी ने तो उसके कतिपय स्फुट पद्य बनाकर उसे वह शक्ति प्रदान की जिसके आधार से प० श्रीधर पाठक ने उसको दो सुन्दर पुस्तकें भी प्रदान की।[४]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग मे खड़ी बोली में भी पर्याप्त कविताए हुई। इसके अतिरिक्त उर्दू फारसी और सस्कृत म भी कुछ कवियो ने कविताए लिखी। वसे भाषा की दृष्टि से यह युग बड़ा धनी रहा पर भाषाओ म परिमार्जन नही हो सका। कवियो का उद्देश्य केवल अपने भावो को अभिव्यक्त करना मात्र था भाषा के सुधार पर उन्होंने ध्यान नही दिया। उस युग के कवियो के पास इतना समय ही नही था कि वे उसे भाषा के सुधार म लगाते। उस समय तो उन्हें सबसे अधिक चिन्ता थी देश के उद्धार की। दूसरे वे भाषा को अधिक प्रौढ़ बनाना भी नही चाहते थे क्योंकि उनका लक्ष्य कविता को जन जन तक पहुचाना था और भाषा के ही माध्यम से

१ ब्राह्मण खण्ड ४, सख्या ७, (खड़ी बोली का पद्य)
२ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ७ (खड़ी बोली का पद्य)
३ डा० गितिकण्ठ मिश्र खड़ी बोली का आन्दोलन (२०११ वि०) पृष्ठ १९८
४ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' (१९९७ वि०) पृष्ठ ५४५।

राष्ट्रीयता का प्रचार करना था। इस युग के कवि साहित्यकार होते हुए भी समाज सुधारक थे इसलिए उनकी कविता में उपदेशात्मकता अधिक थी। और उपदेश के लिए सरल भाषा की आवश्यकता होती है अतः भाषा के परिमार्जन के लिए कवि प्रयासी नहीं थे बल्कि यह युग ही उसके अनुरूप था।

छन्दों में स्वच्छन्दता

इस युग के कवियों ने अनेक छन्दों में कविताएं लिखीं। वीरगाथा काल के छप्पय भक्ति काल के दोहे चौपाई और पद रीतिकाल के कवित्त और सवैये—सभी इस युग में देखने को मिलते हैं। इसके साथ जनगीतों का भी इस युग में पर्याप्त प्रयोग हुआ। कजली ठुमरी होली खेमटा कहरवा गज़ल अद्धा चैती सांझी लावनी बिरहा चनैनी सम्य जाने के गान आदि सफलता के साथ लिखे गये। कुछ नवीन गीत भी साहित्य-क्षेत्र में आये। लावनी का इस युग में विशेष प्रचार हुआ। जन-गीतों के लिखने की ओर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लेखकों का विशेष रूप से प्रेरित किया। क्योंकि जन-गानों से जनता में जाग्रति शीघ्र और सरलता से हो सकती थी। मई १८७९ ई० की 'कवि-वचन-सुधा' में भारतेन्दु जी लिखते हैं—

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाशित होते हैं किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गांव-गांव में साधारण लोगों में प्रचार की जायं। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्रामगीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इसलिए इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों का संग्रह करूं और उनको छोटी-छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं जिनको कुछ भी रचना शक्ति है उनसे सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छन्द बनाकर स्वतन्त्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें मैं उनको प्रकाशित करूंगा और सब लोग अपनी-अपनी मण्डली में गाने वालों को यह पुस्तकें दें।[1] भारतेन्दु जी ग्राम-गानों का प्रचार राष्ट्रीय भावना फैलाने के उद्देश्य से करना चाहते थे इसलिए उन्होंने इन गीतों के लिए विषय भी निर्धारित कर दिये थे। विषयों में उन्होंने बाल विवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता बालकों

---

1 डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ४

की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन से शराब की आदत भ्रूण हत्या फूट और वैर बहुजातित्व और बहुभक्तित्व जन्मभूमि इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन सभा अदालत स्वदेशी—'हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियों को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता, इसके गुण इसके न होने से हानि का वर्णन' आदि पर विशेष बल दिया था।[1] भारतेन्दु जी की इस घोषणा का तत्कालीन कवियों ने स्वागत किया और प्रचुर मात्रा में जनगीतों की रचना की।

भारतेन्दु-युग में जनगीतों में लावनी का इतना प्रचार हुआ कि प्रायः सभी कवियों ने सभी प्रमुख भाषाओं में लावनियाँ लिखीं। उस समय बनारस दिल्ली कानपुर लखनऊ आदि लावनीबाजों के प्रसिद्ध केन्द्र थे। वैसे लावनी का प्रारम्भ १७ ० ई० के लगभग माना जाता है। स्वामी नारायणानन्द लिखते हैं— तुकनगिरि दसनामी सन्यासी थे और सन्त शाहअली मुसलमान फकीर थे। इन्हीं दोनों महापुरुषों को इस गान कला के ईजाद करने का एवं उत्तर भारत में लाने का श्रेय प्राप्त है। इनका समय सन १७ के लगभग अनुमान किया जाता है। सम्भवतः उस समय ये नौजवान रहे होंगे। यद्यपि यह उभय महापुरुष उत्तर भारत के निवासी थे किन्तु मध्यप्रदेश—छोटा नागपुर में बहुधा रहा करते थे।[2] लेकिन हिन्दी-साहित्य में इनका विकास भारतेन्दु-युग में ही आकर हुआ। लावनी के दो समानार्थी शब्द मिलते हैं—ख्याल और मरठी। मरठी शब्द इसके उद्भव स्थान का द्योतक है। कहते हैं कि तुकनगिरि और शाहअली ने इस गान कला को महाराष्ट्र प्रान्त में प्राप्त किया था। इसीलिए इसका नाम मरठी पड़ा।[3] भारतेन्दु-युग में लावनी लिखने वालों के प्रमुख रूप से दो सम्प्रदाय थे—तुर्रा और कलगी। तुर्रा सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा तुकनगिरि और कलगी सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त शाहअली माने जाते हैं। इसके विषय में नारायणानन्द जी इस प्रकार लिखते हैं— एक बार यह उभय महात्मा भ्रमण करते हुए किसी मराठा दरबार में गये और वहां जाकर उन्होंने अपनी इस गान कला का परिचय दिया जिसको दरबार ने पसन्द किया। उपहार स्वरूप महात्मा तुकनगिरि जी को एक बेश क़ीमती तुर्रा और महात्मा शाहअली को बहुमूल्य कलगी बड़े सम्मान पूर्वक दरबार की तरफ से प्रदान किये गये। जिनको दोनों ने अपने अपने चंगो (लावनी का एक बाजा) पर लगाकर कृतज्ञता प्रकट की। यह सभी से यह

---

१ डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०), ८

२ स्वामी नारायणानन्द सरस्वती लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) भूमिका, पृष्ठ १९।

३ स्वामी नारायणानन्द सरस्वती लावनी का इतिहास (१९५३ ई०) भूमिका, पृष्ठ १८।

/

तुर्रे वाले तुकनगिरि जी और शाहअली कनगी वाले मशहूर हुए ।[१] भारतेन्दु-युग के साहित्यकार सम्प्रदायो के पीछे विशेष नही पड़े । उनका तो उद्देश्य केवल लावनी लिखना मात्र था । प्रारम्भ म लावनी साधु-सन्तों के गानों मे प्रसिद्ध थी और इसमे केवल ज्ञान और वैराग्य के गीत लिखे जाते थे । लेकिन भारतेन्दु-युग में आकर इसका क्षेत्र व्यापक हो गया और यह जन जन का गान बन गयी । इसमें देश प्रेम ईश्वर भक्ति, शृगार आदि सभी भाव स्थान पाने लगे । इस युग म लावनीबाजी का एक लहर सी दौड़ गयी । नारायणप्रसाद अरोड़ा लिखते है— खयालबाजी का एक युग था । जिधर देखिए उधर ही खयालो की रगते लड़ा करती थी । मोहल्ले-मोहल्ले जमाव हाते थे और खयालो पर खयाल और टेको पर टेके गढी जाती थी । अच्छे और गुणी गाने वालो की कद्र होती थी । हर बालक बूढ़े और जवान की जबान पर कोई न कोई टेक फड़का करती थी । वह युग अब बीत गया किन्तु वह अपना काम कर गया । उसी युग ने खडी बोली कविता को जन्म दिया ।[२] लावनी पिंगल शास्त्र के अनुसार एक छन्द है जो २२ मात्राओं का होता है इसे राधा छन्द भी कहते हैं पर भारतेन्दु-युग मे मात्राओ पर कोई ध्यान नही दिया गया । विभिन्न मात्राओ म विभिन्न लावनियां लिखी गयी । लावनी के चार चौक माने गये हैं प्रथम और द्वितीय मिसरे या कड़ी को 'टेक' कहते है । इसके बाद चार मिसरो को चौक कहा जाता है और पांचवा मिसरा उड़ान (मिलान) कहलाता है जिसके साथ टेक का दूसरा मिसरा भी मिला दिया जाता है । इस प्रकार के चार चौका को मिलाकर एक लावनी बनती है । चौकों की कड़ियाँ कभी-कभी कम ज्यादा भी हो जाती है—कुछ लावनिया ऐसी मिलती हैं जो दो कड़िया के चौको मे ही लिखी गयी है कुछ म आठ कड़ियां तक मिलती हैं । इससे कड़ियो का कोई निश्चित नियम नही है । कड़िया म कहीं-कहीं मात्रायें नही गिनते । वे तो अपनी ध्वनि पर उनको उतारते हैं ।

भारतेन्दु-युग की उपयुक्त स्वच्छन्दता से ही स्वच्छन्दतावादी कविता का जन्म हुआ । यह युग बड़ी विलक्षणता के साथ हिन्दी-साहित्य म अवतरित हुआ । आगे चलकर इसीकी पीठिका पर अनेक वाद हिन्दी-साहित्य म प्रस्फुटित हुए । इस युग के कविया का दृष्टिकोण मानवतावादी था । वे मानव मात्र के दुख को अपना दुख समझते थे और उसके दूर करने का उपाय सोचते थे । उनम और पाठकों म कोई दूरी न रह गयी थी । लेखक और पाठक हृदय खोलकर एक-दूसरे से मिल रहे थे । इन लेखकों म तकल्लुफी तो नाम मात्र को न थी । अपने काव्य म भी ये बड़े खुले

---

१ स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) भूमिका पृष्ठ १९ ।

२ स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'लावनी का इतिहास (१९५३ ई०) दो शब्द नारायणप्रसाद अरोड़ा ।

हुए और स्पष्ट रूप से सामने आते थे। यह स्पष्टता और सहृदयता उनके सबल व्यक्तित्व का परिणाम थी। उन्होंने जिस जिन्दादिली से हिन्दी कविता को रीतिकालीन पंकिलता से बाहर निकालकर मानवता की भूमि पर खड़ा किया वह एक चिरस्मरणीय घटना है।

मिश्र जी का दृष्टिकोण

मिश्र जी कविता के लिए लोक हित और सरसता को प्रमुख मानते थे। वे अम्बिकादत्त व्यास की 'ललिता नाटिका' की आलोचना करते हुए लिखते हैं— न तो उससे कोई सदुपदेश ही निकलता न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है।[१] मिश्र जी की कविता में ये दोनों तत्व मिलकर एक हो गये हैं। वे सरसता के लिए ही अपनी कविताओं में हास्य और व्यंग्य तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करते थे। इससे मनोरंजन भी होता था और देश का हित भी होता था। लोकोक्तियों के विषय में मिश्र जी लिखते हैं— लोकोक्तियाँ बड़े-बड़े बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धान्त हैं और बर्ताव में लाने से अपना तथा पराया भी बहुत हित हो सकता है फिर भी जानबूझ के हाथ पर हाथ रखके अमूल्य वाक्य रत्नों का तिरस्कार करते हैं।[२] इसके साथ ही गीतात्मकता को भी मिश्र जी ने कविता के लिए प्रभावोत्पादक माना है— सहज में चित्त को अपने बस में कर लेने और चाहे जिधर झुका देने की शक्ति जैसी कविता में होती है वैसी किसी वस्तु में होनी ही नहीं। रोते को हँसा देना हँसते को रुला देना युद्ध में कटा देना मन के प्रत्येक भाव को अपनी मिति तक पहुँचा देना सब कविता ही के खेल हैं। जिसमें भी जो कहीं उस कविता के साथ गान विद्या का योग हो गया तो मानो सोने में सुगन्ध अथवा बाघ और बन्दूक बाँध की कहावत आँखों के आगे आ जाती है।[३] लोक हित की भावना मिश्र जी में युगानुरूप थी वे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में फैले हुए अंधविश्वास स्वार्थ अशिक्षा मतभेद और कुरीतियों को दूर करके समाज को उत्थान के शिखर पर अधिष्ठित करना चाहते थे। इसके लिए वे तत्कालीन कवियों को भी प्रेरित करते थे— कवि को जनता के मानसिक उन्नयन में सहायक कृतियों की रचना करनी चाहिए।[४] डा० सुरेशचन्द्र गुप्त मिश्र जी के काव्य-सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं— मिश्र जी ने लोक-मंगल की स्थापना को काव्य का आदर्श माना है, अतः काव्य में वर्णनीय विषयों के सम्बन्ध में

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १०, (प्राप्ति स्वीकार)
२ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ ४
३ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ (प्रेम पुष्पावली का विज्ञापन)
४ राधाकृष्णदास 'महारानी पद्मावती' (द्वितीय संस्करण) प्रतापनारायण मिश्र की सम्मति।

उनके विचार इसके अनुरूप ही रहे हैं। वे काव्य में नतिक मूल्यों का समावेश को उसका आधार भूत तत्व मानते थे। अत उन्होने अभद्र आचरण को प्रोत्साहित करने वाले कविया की स्पष्ट शब्दो मे भत्सना की है। उनका मत है कि काव्य म देश प्रेम ईश्वर भक्ति आदि ऐसे विषयो को स्थान प्राप्त होना चाहिए जो पाठक की नतिक भावना का परितोष कर सकें। [१]

मिश्र जी कविता के लिए कवि-स्वातत्र्य को भी बडा महत्व देते थ। वे लिखते हैं— कवि होते है निरकुश उनकी बोली भी स्वच्छन्द ही रहने मे अपना पूरा बल दिखा सकती है। [२] मिश्र जी को छन्दो और शब्द शक्तिया का विशद ज्ञान था आल्हा आल्हाद ट ल त आदि निबन्ध इसके प्रमाण है। जन-गीतो से भी मिश्र जी को बडा प्रम था। वह स्वय जन-गीत लिखते थे और अन्य कविया को लिखने के लिए प्रोत्साहित भी करते थे। [३] इसके अतिरिक्त भाषा पर भी उन्हे पूरा अधिकार था। वे अम्बिकादत्त व्यास का उनके यह पूछने पर कि हिन्दी म म स के आदि विभक्ति चिह्न शब्दो के साथ मिला कर लिखन चाहिए अथवा अलग-अलग समझाते हुए लिखते हैं— हमारी समझ मे अलग ही अलग ठीक है क्योकि एक तो यह व्यास जी ही के कथनानुसार स्वतन्त्र विभक्ति नामक अव्यय है तथा इनकी उत्पत्ति भिन्न शब्दो ही म है, जैसे मध्यम मज्झम माझ मधि माँहि महँ म इत्यादि दूसरे अगरेजी फारसी अरबी आदि जितनी भाषा हिन्दुस्तान में प्रचलित हैं उनम प्राय सभी मे मध्य विभक्ति सूचक शब्द पृथक रहते हैं। और भाग्य की बात न्यारी है। नही तो हिन्दी किसी बात मे किसी से कम नही है। [४] इससे मिश्र जी के भाषा ज्ञान का परिचय मिलता है। मिश्र जी ने ब्रज भाषा खड़ी बोली उर्दू, फारसी बैसवाड़ी संस्कृत आदि कई भाषाओ म अधिकार क साथ कविताएँ लिखीं है। मिश्र जी सरल और स्वाभाविक भाषा लिखने के पक्षपाती थ क्योकि वे कविता को जन सामान्य तक पहुचाना चाहते थे। मिश्र जी शब्दो को भी कविता म—सरसता के लिए तोडमोड दने को बुरा नही मानते थ। वे कहते हैं— कवि लोग यदि अवसर पडने पर माधुर्य एव लावण्य क अनुरोध स शब्दो म कुछ परिवतन न करें तो निरसता कानों और प्राणो में खटकने लगती है। इस बात क ज्ञान बिना केवल गद्य लेखको का तक वितक उठाना निरा भ्रम है। [५] इसी ने मिश्र जी अपनी

---

१ डा० सुरेशचन्द्र गुप्त आधुनिक हिन्दी-कवियों क काव्य सिद्धान्त (१९६० ई०) पृष्ठ ७५।
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ७ ('खड़ी बोली का पद्य
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ५-६ (आल्हा आल्हाद)
४ 'ब्राह्मण खण्ड ८, सख्या ६, (एक समाह)
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या ११ (भ्रम है)

कविताओ म बिगडे हुए पर सरस शब्दो या धङल्ले क साथ प्रयोग करते थे। इसक साथ ही कविता के क्षेत्र म मिश्र जी का ब्रज भाषा से विशेष प्रम था वस कविताए उन्होने उस समय की सभी प्रचलित भाषाओ म लिखी हैं।

मिश्र जी की हिन्दी के प्रति बडी निष्ठा थी। वे सदव इसके प्रचार पर जोर दते थे और उन्होने कई कविताएँ भी हिन्दी प्रचार के हेतु लिखी थी। हिन्दी के विषय में वे कहते हैं— सस्कृत क गूढ आशय यदि किसी अन्य भाषा म कुछ दरसाये जा सकते हैं तो हिन्दी ही म दरसाय जा सकते हैं।[1] वे हिन्दी को ही देश की उन्नति का प्रमुख साधन मानते थ। उनका कहना था— भाषा की उन्नति क बिना दश की उन्नति सर्वथा असमव है।[2] इस क्षत्र म मिश्र जी ने बहुत-कुछ भारतेन्दु क ही विचारो को अपना आधार बनाया क्योकि इनके समय तक भारतेन्दु के साहित्यादर्श हिन्दी-साहित्याकाश म पूरा तरह छा चुक थ। कविताएँ भी भारतेन्दु जी की प्रयोगात्मक रूप से पर्याप्त साहित्य-क्षत्र म आ चुकी थी। इनसे मिश्र जी को आग बढने म बडी सहायता मिली।

मिश्र जी प्राचीनता और नवीनता को जोडन वाली एक कडी क सदृश साहित्य क्षत्र म अवतरित हुए। इन्ह प्राचीनता स मोह होते हुए भी नवीनता स प्रम था। इन्होने प्राचीन सद तत्वो को नवीनता का जामा पहनाकर युग के उपयुक्त बनाया। इनका दृष्टिकोण बडा वैज्ञानिक था जो नवीन-युग के अनुरूप सिद्ध हुआ। इन्ह युग की स्थिति ने तो अपनी ओर प्रभावित ही किया साथ ही इन्होने अपने सशक्त व्यक्तित्व से युग को भी अपनी ओर आकृष्ट किया। कविता भी इनके से उपासक को पाकर अपने अपूर्व-गुणो स युक्त हो गयी। यहाँ यह कहना न होगा कि कवि ही कविता का नियन्ता होता है अत व्यक्तित्वशील कवि को पाकर कविता भी धन्य हो जाती है। आचाय नन्ददुलारे बाजपयी का यह कथन यहाँ पर निश्चित ही उल्लेखनीय है— अवश्य कविता सावजनीन और शाश्वत वस्तु है किन्तु कवि के व्यक्तिगत विकास और सस्कार क अनुसार उसकी सौन्दर्यानुभूति की शक्ति मात्रा और कीमतीपन म अन्तर हुआ करता है और उन अनुभूतियो को व्यक्त करने का सामर्थ्य या योग्यता कम या अधिक हुआ करती है।[3] मिश्र जी अपन युग म, अपन व्यक्तित्व के निराले व्यक्ति थे। उनके सरस, लोकोपयुक्त और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के ही कारण उनकी कविता हसाती हुमाती और समझाती हुई चलती है।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) भूमिका से उद्धृत।
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या २ ३ ('रसिक समाज')
३ आचाय नन्ददुलारे बाजपेयी 'नया साहित्य नये प्रश्न (१९५९ ई०) पृष्ठ १९।

कविता का रूप विधान

मिश्र जी न प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखे। इनका सम्पूर्ण कविता-साहित्य स्फुट-काव्य क अन्तगत आयगा। हाँ इनकी लम्बी कविताओ म कुछ प्रबन्धात्मकता मिलती है पर उनम महाकाव्य या खण्ड काव्य का सा रूप-विधान नहीं है। इनकी य लम्बी कविताएँ निबन्ध-काव्य या पद्यात्मक-निबन्ध की कोटि म रक्खी जा सकती हैं क्योंकि इन कविताओं म निबन्धो की-सी ही इतिवृत्तात्मकता मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—भारतेन्दु जी स्वय पद्यात्मक निबन्धो की ओर प्रवृत्त नहीं हुए पर उनके भक्त और अनुयायी प० प्रतापनारायण मिश्र इस ओर बढ़। उनके कुछ इतिवृत्तात्मक पद्य भी हैं जिनम शिक्षितो क बीच प्रचलित बातें साधारण भाषण के रूप म कही गई हैं। [1] मिश्र जी के अधिकाश पद्यात्मक निबन्ध उपदेश और देश दशा क चित्रण क रूप म लिखे गय हैं। इनम मिश्र जी क हृदय की आकुलता दिखाई पड़ता है। ऐसे पद्यो म प्रभु प्रार्थना [2] नया सम्वत् [3] महापर्व [4] बेगारी विलाप [5] युवराजकुमार स्वागतसे, [6] स्वागतत महात्मन् [7] भारत रोदन [8] आदि उल्लखनीय हैं। छोटी-छोटी कविताए मिश्र जी की सख्या म बहुत अधिक हैं। 'प्रेम पुष्पावली' और 'मन की लहर'—दो सग्रह-ग्रन्थ ही इन कविताओ के पृथक रूप से प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी स्फुट कविताए मिलती हैं। इन कविताओ म प्रमुख रूप स मिश्र जी की भक्ति और शृगार भावना व्यक्त हुई है।

इन उपर्युक्त कविताओ के अतिरिक्त—एक तीसरे प्रकार का रूप विधान भी मिश्र जी की कविताओं म मिलता है जिसम कथानत्व प्रधान होकर आया है लेकिन कथानक और कविताओ का आकार इतना छोटा है कि हम उन्हें खण्ड-काव्य नहीं कह सकत। हा इन्हे आख्यानक-काव्य कहा जा सकता है। ऐसी कविताओ में 'मानस विनोद' के अन्त म दी हुई सात लावनियां और प्रेम पुराण प्रमुख हैं। 'मानस

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि) पृष्ठ ५९१

२ ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या १

३ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ८

४ ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या ५,

५ ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या २

६ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ४

७ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ५

८ ब्राह्मण खण्ड १ सख्या ११

विनोद' की लावनिया म राम कथा का वणन है और प्रेम-पुराण' म प्रेम विषयक छोटे-छोटे आख्यान पद्यबद्ध हैं। मिश्र जी के आख्यानक-काव्य और निबन्ध-काव्य में केवल इतना अन्तर है कि आख्यानक-काव्य कथा पर और निबन्ध-काव्य विभिन्न विवरणा पर आधारित है तथा निबन्ध-काव्य से आख्यानक-काव्य अधिक प्रवाहपूर्ण और सरस हैं। वैसे स्थूल रूप से देखा जाय तो मिश्र जी की सम्पूर्ण कविताएं स्फुट काव्य ही हैं।

विषय विवेचन

मिश्र जी की कविताओ के विषय का विवेचन प्रथम खण्ड के तीसरे अध्याय (इसी शोध प्रबन्ध के) म हो चुका है। इन्होने शृगार, हास्य और व्यग्य देश प्रेम ईश्वर भक्ति आदि स सम्बन्धित विषयों पर कविताए लिखी हैं। इनम कुछ प्राचीन काव्य शैली पर आधारित हैं कुछ आधुनिक पीठिका पर लिखी गयी हैं। दोना प्रकार की रचनायें अपना पथक अस्तित्व रखती हैं, क्योंकि दोनों भिन्न सस्कृतियों से सबधित हैं और दोनो के लिखने म भी मिश्र जी का दृष्टिकोण भिन्न भिन्न रहा है। प्राचीनता स सम्बन्धित अधिकाश कविताए स्वान्त सुखाय हैं और आधुनिकता से सम्बन्धित परान्त सुखाय। स्वान्त सुखाय कविताए अधिक सजीव तथा हृदय-पक्ष स पूर्ण हैं। इनम मिश्र जी का ईश्वर भक्ति और शृगार रस की कविताओं की गणना की जा सकती है। त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दो म— स्वान्त सुखाय उद्भूत काव्य वह है जो कवि अपनी आत्मा की प्ररणा से अथवा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए लिखता रहता है। इस प्रकार की कविता सबमे अधिक सजीव तथा कवित्व पूर्ण होती है। उसम कवि की भावनाओं का आद्योपान्त चित्रण रहता है। बुढापा मन की लहर माघा मनुआ अजब स्यिापा कविताए इसी प्रकार की हैं। उनकी शृगार रस की सभी रचनाए भी स्वान्त सुखाय उद्भूत कही जा सकती है।[१] परान्त सुखाय कविताओ म लोक हित प्रमुख होने स उपदेशात्मकता अधिक है इस लिए इनम रागात्मकता कम है देशप्रेम से सम्बन्धित सभी कविताए परान्त सुखाय ही है। यहां पर, प्राचीन और आधुनिक काव्य शैली के ही अन्तगत मिश्र जी की कविताओ का पर्यवेक्षण करना अधिक वैज्ञानिक होगा क्योंकि इसी क माध्यम से उनकी कविताओं क मूल म पहुचा जा सकता है।

प्राचीन काव्य शैली

प्राचीन भावनाओं स युक्त मिश्र जी की बहुत-सी कविताए हैं। इनपर इनसे पूर्व के—वीर भक्ति और रीति-तीना कालो का प्रभाव पडा है और इन तीना कालों

---

१ सम्मेलन पत्रिका माघ-चैत्र, स० २० ३ वि प० प्रतापनारायण मिश्र कवि और निबन्ध लेखक' त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

की भावनाओ स सम्बन्धित कविताए पृथक-पृथक लिखी गयी हैं। मिश्र जी द्वारा किय गय युद्धादि के वणन वीरगाथा कालीन परम्परा पर आधारित हैं, भक्ति भावना से सम्बन्धित कविताए भक्ति काल का स्मरण कराती हैं और शृगारिक कविताए रीतिकालीन परम्परा पर लिखी गयी है। यहा पर इन तीनो भावनाओ का पृथक-पृथक विवेचन करना अधिक समीचीन होगा।

वीर भावना

वीर भाव से युक्त कविताए मिश्र जी की सख्या म बहुत कम है। इनके लिखने म मिश्र जी का मन अधिक नही रमा। फिर भी प्रसगवश जो वणन उन्होंने किये व बडे अच्छे बन पड है। हठी हम्मार' म किय गया उनका युद्ध-क्षत्र का वणन बडा उत्कृष्ट है। इसकी चित्रात्मकता देखिए—

'कहू घन सों गरज गजराज। कहू महि खूदहिं कूदहि बाज ॥
कहू झमक रथ मोतिन झाँति। कहू फबि फैलि पदातिनु पाँति ॥
लस अति सेन सजी चतुरग। फबी फहिराहिं ध्वजा बहुरग ॥
बिराजहिं बीर सजे तन तानि। गहे कोउ शूल कोऊ धनुबान ॥
लिये कर पट्टिस तोमर कोय। जिन्हैं लखि कालहु का भय होय ॥
चमकि रहीं बहुधा असि मग्न। सक करि परबत हू कहू भग्न ॥
चढ़ी चरखोन भयकर तोप। कर छिन मांहि त्रिलोकहिं लोप ॥ [१]

मिश्र जी के आल्हे म भी वीर भावा का अच्छा प्रयोग हुआ है। कुछ पक्तियां उदाहरण के लिए अवलोकनीय है—

'बतन बासन बतबढ़ हुँगा औ बातन मा बढ़िगा रारि।
कालिग परका मो पाछे ते कोउ न देख अपनि परारि ॥
तड तड तड तड़ कुरसी टूट बिच गिरीं मरहरा लाय।
कपडा फाटि गये लोगन क हू गइ तस्त-पस्त पोसाक ॥
हुकरातुकरी भइ लरिकन मां घूसा चलन लगे औ लात।
लोग सयाने तब लग कूदे जिनक बीर परी सकरार ॥ [२]

इसक अतिरिक्त कई होलिया भी मिश्र जी ने वीर रस की लिखी है, जो बसवाडा-क्षत्र म अब भा होली क अवसर पर गायी जाता हैं। इन होलिया म अवध म राना नया मर्दाना नामक हाली विशेप प्रसिद्ध है। इसम सन् १८५७ ई० के विद्रोही नता 'राना बनामाधव सिह की वीरता का वणन है। मिश्र जी की वीर

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'हठी हम्मार' (प्रथम सस्करण) एकट ४, सीन दूसरा।
२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ २२६-२७ 'दगल खण्ड' प्रतापनारायण मिश्र।

रस पूर्ण रचनाओं की शैली भी बहुत-कुछ वीरगाथा कालीन गीतों से मिलती-जुलती है। मिश्र जी के आल्हा होली और चौपाइयाँ इसका प्रमाण हैं। हाँ, भाषा में पर्याप्त अन्तर है। वीरकालीन रचनायें डिंगल भाषा में हैं और मिश्र जी की अवधी तथा बैसवाड़ी में। मिश्र जी वीर भावों के चित्रण में पूर्ण सफल हैं। इनकी ये रचनायें बड़ी प्रभावोत्पादक तथा राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त हैं।

भक्ति-भावना

मिश्र जी प्रेम के सच्चे उपासक थे (इसका उल्लेख पीछे हो चुका है) ये भक्ति के क्षेत्र में फैले हुए मतवादों के चक्कर में नहीं पड़े। इनका कहना था—

झूठे झगड़ों से मेरा पिण्ड छुड़ाओ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ॥'[1]

आगे वे स्पष्ट कहते हैं—

न कदी हूँ किसी मजहब का न पाबन्द मिल्लत का।
किसी अपने का कोई एक हूँ बन्दा मुहब्बत का॥[2]

मिश्र जी समन्वयवादी दृष्टिकोण के थे इसलिए उन्होंने सभी मतों को अपने एक प्रेम में मिला लिया था। वे भक्ति में तर्क वितर्क और वाद विवाद को कोई महत्व नहीं देते थे। वे कहते हैं—

वाद विवादन में फसि प्रानी नाहक जनम गवाँवै रे।
सुख चाहे तो दुविधा तजिके काहे न हरि गुन गावै रे॥[3]

साकार और निराकार का भी वाद विवाद उन्हें पसन्द नहीं था। वे लिखते हैं—

निराकार है या कि साकार है गुणागार या निर्गुणागार है।
निराधार का जो कि आधार है उसे हो हमारा नमस्कार है॥
सभी ज्ञान का जो कि आगार है बड़ा से बड़ा जो कि भण्डार है।
मिटाता सदा जो अहंकार है उसे ही हमारा नमस्कार है॥"[4]

मिश्र जी अपने ब्रह्म को संसार में ही व्याप्त देखते हैं। जगत् में जितने भी सुन्दर दृश्य हैं वे सभी ईश्वर की प्रतिकृति हैं। वे उक्त प्रार्थना की अगली पंक्तियों में कहते हैं—

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८५ (मन की लहर)

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ६ (उसकी मुहब्बत')

३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८३ (गीत)

४ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४० ई०) पृष्ठ २५६ ('दीन विनय')

सुसौन्दर्य जो पुष्प का सत्व है सुआनन्द जो प्रम का तत्व है।
कि जिसका यही सत्य आकार है उसे ही हमारा नमस्कार है।।"[१]

सांसारिक प्राणिया से भी वे कहते हैं—

जो कोउ ब्रह्म अरूप को देख्यो चहै सरूप।
नेह नयन सों लेहि लखि जग के सुन्दर रूप।। [२]

प्रम के आगे मिश्र जी सासारिक माया जाल को तुच्छ समझते थे। उन्हें प्रम के अतिरिक्त सारा ससार एक बखेडा जान पड़ता है—

'दोबारी दुनियादारी यह नाहक का उलझड़ा है।
सिवा इश्क के, यहां जो कुछ है निरा बखेड़ा है।।'[३]

मिश्र जी का भी प्रम' कबीर सूर तुलसी के ब्रह्म' की तरह अकथनीय था। वे कहते हैं—

अकथ अनन्द प्रेम मदिरा को कसे कोउ कहि पाव है।
यहां मुदित मन होत कबहु जो ध्यानो याको आव है।। [४]

मिश्र जी ईश्वर की विराट सृष्टि को देखकर विस्मित और आत्मविभोर हो जाते हैं उन्हें चारो ओर प्रेम देव की ही छटा दिखायी पड़ती है—

चहु ओर मेरे नाथ की महिमा अमित लखि परे हो।
सब भांति सब समय है अति अकथ प्रभुता करे हो।।
चल देख प्यारे विपिन मे जह बिटप अगनित खरे हो।
जल देन को तुम में गयो ? तौहू रहत नित हरे हो।।
चल देख प्यारे समुद्र में अति अगम जल जह भरे हो।
बधन न कहू कछु देखिये हर ठौरते नहिं टरे हो।।
चल देख प्यारे अगिन मे जह सब पदारथ जरे हो।
विद्वान मूरख एक को तेहि बिन न कारज सरे हो।। [५]

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई) पृष्ठ २४६ (ईश विनय)
२ 'ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या ४ ('प्रेम स्तोत्र)
३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ७५ ('मन की लहर')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ६ ('प्रेम सिद्धान्त')
५ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १५१ (प्रम पुष्पावली')

मिश्र जी का ब्रह्म अरूप होते हुए भी साकार है। उसे भक्त नेह के नेत्रों से देख सकता है। उसकी आभा संसार में तो है ही पर यदि भक्त चाहे तो अपने हृदय में भी उसका साक्षात्कार कर सकता है—

प्रेम सिन्धु उमगत उर जबही ईश्वर मिलत ततच्छन तबहीं ॥
औरहु सुनि राखहु बुधभूपा यदपि जगतपति अतनु अरूपा।
प भक्तन की रुचि अनुसारा, दरश देत नित प्राण पियारा ॥'[1]

मिश्र जी अनन्य भक्त थे। उन्होंने पूरी तरह से अपने को प्रेम देव का गुलाम समझ लिया था। व प्रेम के आगे अपने तन को भूल गये थे—

'कहने सुनने को था मुझ पास एक दिले नाकाम अपना।
मुद्दत गुजरी, बनाया तूने उसे गुलाम अपना ॥
अब तो तेरे सिवा न कोई खुदा न कोई राम अपना।
जो कुछ है सो तू ही है और से क्या है काम अपना ॥
तेरी याद में भूल गया अब आगाजो अंजाम अपना।
किसे खबर हैं कहाँ हूँ? कौन हूँ? क्या है नाम अपना ॥ [2]

मिश्र जी की अनन्यता देखकर यह विस्मय होने लगता है कि यह कवि भक्ति काल का है कि आधुनिक काल का? वह प्रेम की हर दशा से अपने को मिलाने को तैयार है। प्रेम-पथ में उन्हें यश अपयश का ध्यान नहीं है—

'इस मुरशद के परो इस आका के खिदमतगार हैं हम।
हर सूरत से, हजरते इश्क के ताबेदार हैं हम ॥
इश्क अगर है खता तो उसके बदए गुनहगार हैं हम।
इश्क जो बुत है तो उसके लिए अहले जुन्नार हैं हम ॥
इश्क अगर ईमान है तो पाबंदे गारए दीदार हैं हम।
इश्क कुफ्र है, तो कहते क्यों डरिए कुफ्फार हैं हम ॥ [3]

मिश्र जी अपने प्रमन्देव में पूरी तरह तन्मय थे। उन्हें उसके बिना कुछ अच्छा न लगता था। वे अपना पूरा समय उसी के ध्यान में बिताते हैं—

सिवा तेरी सूरत के देखना और तो कुछ भाता ही नहीं।
मेरे प्यारे चैन मुझको तुम बिना आता ही नहीं ॥
तेरे दर्वाजे की तरफ दिन भर में सौ दफा जाता हूँ।
अपने घर में जो दम भर बैठा तो घबराता हूँ ॥

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ९, १० (श्री प्रेमपुराण)
२ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ८ (मन की लहर)
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई) पृष्ठ ९५ (मन की लहर')

"काम जो कुछ दुनिये के आ पड़ते हैं तो उकताता हू।
ध्यान में तेरे, हमेशा अपना वक्त बिताता हू॥"[1]

मिश्र जी म इतने दीवान हो गय थे कि उन्ह उसके कष्टा तक की चिन्ता नही थी। वे प्रेम-पथ के कष्ट सहने को सहष तयार हैं। वे कहते हैं—

'लुत्फ अगर मजूर नहीं तो शौक मे सतावो साहब।
पर मुह को छिपाके दीद के लिए न तरसावो साहब॥
तुम्हारे जब हो चुके तो फिर अपने से रहा कुछ काम नहीं।
मरजी से तुम्हारी कमी सर फेरें हम वह गुलाम नहीं॥
सहेंगे सब दुख सर आंखों से उच्च का लेंगे माम नहीं।
हां अर्ज है इतनी कि बिन देखे दिल को आराम नहीं॥[2]

मिश्र जी म भक्ति भावना-दास्य और दाम्पत्य-दो रूपा म मिलती है। दास्य भाव में उनका दय बड़ा प्रबल है। वे अपने को पातकी कहकर ईश्वर को पुकारते हैं—

"मेरे कर्मों का न्याय जो तुमने ठाना।
तो नाथ! नहीं है मेरा कहीं ठिकाना॥
करता हू करूगा किये हैं पातक नाना।
जाना ह तो भी नहीं धम को माना॥
ऐसों को बचाना हो तो शीघ्र बचाओ।
मुझको प्रभु सच्चा दास बनाओ॥[3]

दास्य भाव वही पूण उत्कृष्टता को पहुचता है जहा भक्त अपने को छोटा नीच और अधम तथा ईश्वर का बड़ा उच्च और पवित्र समझता है। भक्त का लघुत्व ही उसका गुरुत्व है। मिश्र जी ईश्वर की शरण तजकर अन्यत्र नही जाना चाहते। ईश्वर ही उनका एक आधार है—

मेरो दूसरो नहिं द्वार।
दीनबन्धु कृपायतन! मैं सर्वहि भांति तुम्हार॥
कौन शरणागत सुखद तुम सरिस सब प्रकार।
गहहु जाको आन तुम बिन हे दया आगार॥"[4]

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ७६ ('मन की लहर)

२ स नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ८० (मन की लहर)

३ सं नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ८५ (मन की लहर')

४ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४ ई) पष्ठ १६४ (प्रेम पुष्पावली')

मिश्र जी का दास्य भाव बहुत कुछ तुलसी के दास्य भाव से मिलता-जुलता दिखाई पड़ता है। दाम्पत्य भाव की भक्ति भी मिश्र जी की उत्कृष्ट है। वे अपने प्यारे से मिलन के लिए तड़फड़ात दिखाई पड़ते हैं। उनकी स्थिति एक विरहिणी की-सी हो गयी है—

'बस बस बहुत भई अब आवो।
हा हा सहि न जात दुख कैसेहु वेगिहि मुख दिखरावो॥
प्राणहि लियो चहत तो प्यारे और जुगुति ठहरावो।
विरह बाण सों वेधि दयामय निज नामहिं न लजावो॥
क निज हाथन विषहि देहु के अधर सुधा रस प्यावो।
काहू विधि अपने प्रताप को जरत जीव जुड़वावो॥ [1]

मिश्र जी का विरह करुणा की चरम सीमा तक पहुंच गया है। वे कहते हैं—
"करो प्रिय अब तो जीवन दान।
तुम बिन बुरी वियोगिन की गति निकसत पैठत प्राण॥
कबहु कसेहु सुधिहु भई तौ नाहिन दूजो ध्यान।
हारे को बिनि वेलि रहत धरि पग आहट पर कान॥
मुख ते कहत अध खुले अधरन हा गुण रूप निधान।
बिन तब दर्श सुधा परसाहिं रह्यो उपाय न आन॥ [2]

मिश्र जी ने अपने को स्त्री और ईश्वर को पुरुष मानकर दाम्पत्य भाव की उपासना की है। मिश्र जी की यह प्रमापासना संत परम्परा की परिचायक है।

प्रेमोपासक होते हुए भी मिश्र जी ने सगुणोपासना की अवहेलना नहीं की बल्कि उपासना का सुगम साधन मानकर उसका समर्थन किया और कृष्ण काली दुर्गा आदि की स्तुतियां कीं। धार्मिक क्षेत्र में भी उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उनके विराट प्रेम में सभी मत एक हो गये थे। दुर्गा की स्तुति वे बड़ी तन्मयता के साथ करते हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

जय जय जय त्रिभुवन महरानी।
विबुध वन्द पूजित पद पंकज नेहमयी जननी जग जानी।
पुरुष सिंह मानस अरुद नित शूल प्रहार कुशल बल खानी॥
सेवक रक्षिनि अरि बल मर्दिनि अतुल प्रभाव न जात बखानी।
सिरजन पालन नाशन निरता सुख दुख बंध मुक्ति वरदानी॥
निशि दिन रहित प्रेम मदमाती चहति सदा मैं, मैं की हानी॥ [3]

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ११ (प्रेम-प्रमाद)
२ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ११ (प्रेम प्रमाद')
३ 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ४ ('नवरात्र के पद)

मिश्र जी धार्मिक क्षेत्र में फैले हुए विभिन्न मतवादों को मिटाना चाहते थे क्योंकि उस समय इन मतवादों से देश की शक्ति का बड़ा विघटन हो रहा था। इसीलिये वे काली कृष्ण दुर्गा आदि की स्तुतियाँ करते हैं। काली और कृष्ण के उपासकों का मतभेद देखकर मिश्र जी ने उन्हें एक करने के लिए—कृष्ण और काली की अभेद स्तुति की है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं—

'जय काली अदभुत गति थारी।
लीला हित वृन्दावन बिहरति ह्वै नटवर वपु रासबिहारी॥
एकहि ज्योति लसति द्वै तनु धरि नवनन्दन वृषभानु दुलारी।
को समझै यह भेद अकथ अति आपहि पुरुष आपहि नारी॥
सोई कटि जो रही बसन बिन यहि छिन लसति पीत पटधारी।
सोई लट रही जे लटकत बनी बनि छाजहिं छबि भारी॥'[1]

सगुण और निर्गुण के भी विवाद को मिश्र जी बड़ी कुशलता से समाप्त करते हैं—

अगुण सगुण व्यापक पृथक अगणित रूप अरूप।
अमित महिम अचरज्जमय जय जय त्रिभुवन भूप॥[2]

मिश्र जी समन्वयवादी भक्त थे। उन्होंने सभी मतों को एक में मिलने के लिए प्रेरित किया। इससे भारत में फैली हुई विषमता बहुत-कुछ समाप्त हुई और मिश्र जी की स्वान्तः सुखाय भक्ति परान्त सुखाय हो गयी।

मिश्र जी की भक्ति भावना पूरी तरह से भक्तिकालीन परम्परा पर आधारित है। इनकी भक्ति में कबीर, सूर, तुलसी आदि—संत और भक्त कवियों के विचार तत्व मिले हुए हैं। इनमें यदि एक ओर कबीर की-सी प्रखरता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी अनन्यता, तन्मयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है। यही नहीं इनकी भाषा-शैली भी बहुत-कुछ भक्तिकालीन कवियों से मिलती जुलती है। नीचे दी पंक्तियाँ कबीर के पदों से कितना साम्य रखती हैं? यह स्वतः ही देखने से ज्ञात हो जाएगा—

मनुआ काहे इत उत धावै।
मतवादिन की चाल सीखि कै नाहक बुद्धि गवावै॥
मसजिद मन्दिर औ गिरजे में दौरत पाँव पिरावै।
घट के भीतर साहब बैठा तिहि ते लौ न लगावै॥

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८१-८२ कृष्ण और काली की अभेद स्तुति

२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ ('नमो प्रेम भगवान')

अपने हायन अपनो महिमा लिखि लिखि दुनिया गावैं ।
बिना पढ़े एक प्रेम की पोथी कबहू भरम न जाय ॥ [१]

सूर और तुलसी की भी परम्परा में लिखी गयी कुछ पंक्तियां देखिए—

'प्रभु तजि शरण काको जाउ ।
आश करिबे योग जन के एक ही तो ठाउ ॥
तिनहु की सुधि लेत जो जानत न दाहिन बाउं ।
कौन ऐसो और जाको प्रणत पालक नाउ ॥
कौन दुख लूटत जो जग के फिरत पूजत पाउ ।
कौन दुख मोको जो तेरे आसरे ऐंडाउ ॥ [२]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी की उर्दू में लिखी—प्रेम विषयक कविताओं में कुछ सूफी कवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यद्यपि मिश्र जी ने अपने प्रेमदेव को पुरुष रूप में माना है फिर भी विरह की व्याकुलता शराब का प्रेम-नाद के रूप में वर्णन आदि उन्हें सूफी-कवियों की परम्परा में पहुंचा देता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियां देखिए—

'मए इश्क तलखो से मुह जरा न बिचकाओ यारो ।
बड़ा मजा है जो आंख मूद के पी जाओ यारो ॥
कड़वाहट बदबू बदनामी सिर्फ देखने वाले को ।
लेकिन अजहद लुत्फ बख्शे है यह मतवाले को ॥
अजब सरूर दिखलाती है यह खोल के दिल कसाले को ।
यकीं न हो तो चढ़ाकर देखो एक पियाले को ॥ [३]

इसके साथ ही रीतिकालीन कवि घनानन्द की-सी विरहानुभूति भी मिश्र जी के कुछ कवित्तों में दिखाई पड़ती है। यथा—

मोद मयी मूरत निहारी जौन दिन ते,
भुलानी तौन दिन ते हमारी मति गति है ।
परताप मिलिबे की यातक बन न क्योंहू
मिले बिन चित्त बिन चैन होत अति है ॥

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी (१९४९ ई० पृष्ठ १६० (प्रेम पुष्पावली)

२ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी (१९४९ ई०)—पृष्ठ १४५ (प्रेम पुष्पावली)

३ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ९० ('मन की लहर')

कहाँ जाय कसी कर तो सों न बसाति कछू
मीठी छुरी उर में सदय ही गड़ति है।
तेरी सुधि प्यारे मन बसी है हमारे,
न निसारे निसरति न बिसारे बिसरत है॥[1]

मिश्र जी म, भक्ति क साथ ही भक्ति कालीन कवियो की-सी उपदेशा त्मकता भी मिलती हैं। व सांसारिक प्राणियो को—समार क ममावह परिणामा स अवगत कराते हुए—ईश्वर की ओर उन्मुख होन की शिक्षा दत हैं—

'जागो भाई जागो रात सब थोरी।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिर पछतहो हाथ मींजि सिर फोरी।
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिंता से मुख मोरी।
आगे जामे बन सो कीज करि तन मन इकठौरी॥[2]

मिश्र जी न प्रेमोपासना की ओर भी लोगो का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होन बताया कि मनुष्य धन बल, विद्या स कितना पूर्ण क्या न हो जाय पर जब-तक वह अपन धर्म और पूर्वजों का बतायी हुई रीति तथा प्रेम को अपना कर नही चलगा तब-तक वह वास्तविक सुख नही प्राप्त कर सकता। देखिए—

कोरि धन लेहु सुमरु समान
सब पढ़ि लेहु कुरान पुरान॥
बनौ बिधिते बढ़िक बुद्धिमान
कर सुरराजहु सब सनमान।
ब्याहि किन लेहु लक्ष्मी जोय
प्रेम बिन सांचो सुख नहिं होय॥

*　　*　　*

करो हरिसों हिय सांची प्रीति
धरो मन मांहि धम की नीति।
गहो अगिले ऋषिगण की रीति
तबहिं सुख पहो करहु प्रतीति॥

---

१ कवि वचन सुधा के १४ वें वष म प्रकाशित।
२ स नारायणप्रसाद अरोड़ा—प्रतापलहरी (१९४९ ई०) पष्ठ ११२० ('जागो भाई जागो')

कहैं परताप सुनहु प्रिय सोय
प्रेम बिना साँचो सुख नहीं होय ॥ [१]

मिश्र जी ने ईश प्रार्थनाएं भी लिखी हैं जो बड़ी अच्छी हैं। इनमे पितु मातु सहायक स्वामी सखा, [२] शरणागत पाल कृपाल प्रभो ! [३] निराकार है या कि साकार है [४] प्रार्थनायें विशेष प्रसिद्ध हैं। जिसमे प्रथम प्रार्थना तो 'मानस' की चौपाइयों तक से प्रतिद्वन्द्विता करती दिखायी पड़ती है। इसका प्रचार उत्तर भारत में तो पूर्णतया है हो साथ ही देश के अन्य प्रान्तों में भी इसकी अच्छी ख्याति है। कहीं-कहीं स्कूलों में भी यह प्रात कालीन प्रार्थनाओं के रूप में प्रचलित है। इस प्रार्थना की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुमहीं इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं तिनके तुमहीं रखवारे हो॥
सब भाँति सदा सुखदायक हो दुख दुर्गुन नासन हारे हो।
प्रतिपाल करो सिगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हो॥

इस प्रकार मिश्र जी की भक्ति पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुंची हुई है। उन्हें एक भक्त का हृदय प्राप्त था। उनकी कविताओं में सच्चे भक्त की-सी अनन्यता तन्मयता और दीनता दिखाई पड़ती है। सहृदयता और परदुख कातरता उनमें इतनी थी कि एक सामान्य प्राणी को भी दुख को देखकर द्रवित हो जाते थे। उनका हृदय बड़ा कोमल था। वे 'प्रमैव' के प्रेम में पूरी तरह दीवाने थे और अपने को प्रमदास कहते थे। प्रेम पुष्पावली उनकी प्रेमोपासना का सच्चा प्रतीक है। इसके अतिरिक्त उन्होंने जितनी भी पुस्तकें लिखी हैं प्राय सभी प्रभुत्व को ही समर्पित की है और सभी पुस्तकों के समर्पणों में उनकी विह्वलता प्रेमाकुलता भावुकता और अनन्यता दिखाई पड़ती है। मिश्र जी निश्चित ही निश्छल भक्त थे।

शृंगार भावना

मिश्र जी का शृंगार रीतिकालीन पीठिका पर लिखा गया है। इसमें रीति बद्ध और रीति-मुक्त-दोनों परम्पराओं के दर्शन होते हैं। वह स्वतन्त्र प्रकृति के प्राणी थे। कारण मिश्र जी रीति-बद्ध रचनाओं में अधिक नहीं रमे। फिर भी जितनी कवि

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई) पृष्ठ १७१ प्रेम पुष्पावली')
२ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १ १४।
३ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई) पृष्ठ १३
४ स नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१ ४ ई०) पृष्ठ २५६
५ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४ ई०) पृष्ठ १३ १४

ताए उन्होंने इस परम्परा मे लिखी हैं व उनके प्रौढ़ रीति विषयक ज्ञान का प्रतीक हैं। मिश्र जी को नायिका भेद और अलकारों का पूर्ण ज्ञान था। एक स्थान पर वे नवोढा-नायिका के गुणों का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ करते हैं। शीत ऋतु के प्रभाव म लोगों की स्थिति नवोढा-नायिका की तरह हो गयी। देखिये—

'माघ अवासहि म दुरि बैठियो बास मे आनन ढाँकि रहे हैं।
बात चल परतापनारायण गात सब थहरात महे हैं॥
सोर करे सिसकी कै घने निसि नाथ ते दूरि रह्यो चहे हैं।
लोग सब रितु सीत की भीत से नारि नवोढ़ा की रीति गहे हैं॥ [1]

ऐसी ही दृढ़ानुरागिना परकीया नायिका क भाव भी निम्नलिखित सवैया म दृष्टव्य है—

योंहू हसे हसिहैं सब योंहू, दुहू बिधि सों उपहास तो हुए।
तौ परताप वियोग की ताप म क्यों फिर आपनों जीव जरए॥
होनी जु होय सु होय भले खुलि खेलिये और उपाय न पऐ।
यों मन होत रह सजनी मनमोहनै लक कहू कढ़ि जऐ॥ [2]

कहीं-कहीं मिश्र जी की वर्णन शैली भी रीति-बद्ध परम्परा से आबद्ध दिखाई पड़ती है—वर्षा ऋतु म वे वसन्त का आभास ऐसी पटुता से कराते हैं कि उनकी विलक्षणता पर आश्चर्य होन लगता है। देखिए—

कारे-कारे बादर मतग मतवारे जासु
लाले-लाले लसत रिसालेन को साज है।
चपला की चमक पताका फहरात मौन
घन घहरात तौन दुदुभी अवाज है॥
धावन पवन धन गावन चकोर मोर
राजत प्रताप सब राजसी समाज है।
कैसे कविराज धौं वसन्त रतिराज कहैं,
बीस बिसे देख्यो वर्षा ही ऋतुराज है॥ [3]

पर ऐसे वर्णन मिश्र जी के बहुत कम हैं। उनकी अधिकांश रचनायें रीति मुक्त परम्परा पर ही आधारित हैं। मिश्र जी ने शृगार के—सयोग और वियोग दोनों पक्षों का अपनी कविताओं म चित्रण किया है और ये चित्रण बड़े मरम और वास्तविक हैं। इनम किसी प्रकार की खींच तान एव चमत्कारिता नहीं है। इन

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८।
२ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९९।
३ ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ५, (स्फुट कविता')

रचनाओं में उनका हृदय पूरी तरह संयुक्त दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के श्रृंगार के आलम्बन राधा-कृष्ण दुष्यन्त-शकुन्तला और सामान्य नायक-नायिका हैं और उद्दीपन प्राकृतिक दृश्य ऋतुएं आदि हैं।

कृष्ण जी होली के अवसर पर—रास्ते में किसी गोपी को पकड़ लेते हैं वह अनेक प्रकार से छोड़ने की विनय करता है। इसका वर्णन मिश्र जी निम्नांकित पंक्तियों में इस प्रकार करते हैं।

'पांय परौं कर छोड़ दे ब्रजराज दुलारे।
आवत जात लखैंगी कोई मारग में मति लाज ले ब्रजराज दुलारे॥
हौं तो लाल सदा तेरो हौं होरिहि का कछु नेग है ब्रजराज दुलारे।
गारी बकत कहा रस निकस राखि न जात इकत पै ब्रजराज दुलारे॥
परस मनाय सकै सब सों सब दूरिहु सो रंग डारिक ब्रजराज दुलारे।
प्रमदास ऐसी क्यों कीजै बुरी लगे जो काहुवै ब्रजराज दुलारे॥ [१]

इसी प्रकार राधिका की एक सखी कृष्ण को पकड़ने का प्रयास कर रही है—
ठाढ़ो रहि किन लाल आज तोहि देखौंगी कसो है धीर।
बहुत दिना मेरी सखियन के हरत फिरयो चित चोर॥
काल्हि अचानक भागि बच्यो हो यों मुख मोड़ अबीर।
तब सांचो जब मारि भगाऊ, सब सगिनि की भीर॥
तो को गहि गुमचाय भली विधि छोरौं केसरि नीर।
सब हौं कस बांधि भुजन सों श्री राधा के तीर॥
प्रेमदास सबही छोड़ौं जब वे बकसें तकसीर। [२]

होली के अवसर पर कृष्ण जी—रास्ता चलने वाला गोपियों को बहुत परेशान करते हैं। इस पर एक सखी से दूसरी सखी कहती है—
जु फगुवारों डोल छल।
रंग राते रसिया के मारे चलि न सकै कोउ गैल॥
* * *
तकि-तकि गात हनै पिचकारी नियरक निलज अरैल।
गावत निपट कुफारी गारी लावत नहिं मन मैल॥
सब की लाज लेन में ढैया गिनै लयारन सैल।
प्रमदास यो काहु करगो जसुमति को विगरैल॥ [३]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ८ ('होरी)
२ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ८ ('होरी)
३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४४

मिश्र जी ने प्रेमी प्रमिकाओं के प्रेम-सम्वाद भी बड़ी कुशलता से कराये हैं। एक बार कृष्ण जी राधा से किवाड़ खोलने के लिए कहते हैं। राधार उनसे नाम पूछती हैं। कृष्ण जी अपना नाम वनमाली बताते हैं। तब राधा जी कहती हैं कि जब वनमाली हो तो वन में जाकर विहार करो। ऐसे ही कई नाम अपने कृष्ण बताते हैं और राधा उन्ही के अनुरूप उन्हें पढ़ाती रहती हैं—

खोलो जू किवार ऐसी बेर कौन टरत हो
हो तो वनमाली जाय बिहारो वन बाग में।
नाम मेरो माधव है कौन सी वसन्त ऋतु
माहीं धनश्याम जाय बरसो तड़ाग मे॥
हौं तो हौं चक्रीधर, माखन बनावो जाय,
हरि हौं प्रताप जाय खोलो दस नाग म।
जेती-जेसी प्यारे ब्रजराज जूने अरज कीन्ह,
तेती-सेसी प्यारी ने भुलायो अनुराग म॥'[1]

नायिका के हावो भावो का चित्रण भी मिश्र जी ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। देखिए—

छनक लजौहैं सतरौहैं ह्वै छनक नैन
छनक हसौहैं ह्वै अनन्द उमहत हैं।
हां हां नहीं रस भरे बन परताप छन—
कहि आव एक छन मुख हो रहत हैं॥
मन्द मुसकान भौंह नासिका की मुरि कानि
देखिये में स्वादित सुधाहू सों महत हैं।
गोरस के हेत ज्यों ज्यों हठति पियारी त्यों-त्यों,
जो रस चहत लाल सो रस लहत है॥'[2]

ऐसे ही शकुन्तला के हाव भाव देखकर दुष्यन्त आकृष्ट होता है और कहता है—

'होत भली सब बात भलेन की होत भली सब बात।
रूप सरूप दियो विधिना जिहि तिहि सब भास सुहात॥
चितवनि चसनि हसनि मुख फरनि देखत जिय ललचात।
सब विधि सब अनोखो छवि सों नेही नन सुहात॥

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५
२ ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ५ (स्फुट कविता')

आहा कसी प्रान पियारी यहि छिन लसति सजात।
निज दृग विजित कमल पखुरिन गनि बरबस मन लिए जात।। [1]

शृंगारिक दृश्यों के वर्णन भी मिश्र जी ने यत्र तत्र किये हैं जो बड़े स्वाभाविक हैं—शकुन्तला के मुख पर एक भ्रमर मंडरा रहा है। दुष्यन्त यह दृश्य देखकर—भ्रमर के भाग्य की बड़ी सराहना करता है। दुष्यन्त का यह कथन शृंगारिक भावों से ओत प्रोत है। देखिए—

धन्नि भवर यहि भागि तिहारी रे।
कौन तप करि कीन्हीं देही कारी कारी रे।
फिर-फिर परसि परसि भागत हो
चञ्चल नैनन की निके अनियारो रे।।
उड़ि-उड़ि गुंजत कानन के ढिग
रस की कहत मानों बात प्यारी प्यारी रे।
भागत होठन को रस से ले
बांह सों हटाव ज्यों ज्यों यह सुकुमारो रे।। [2]

वियोग शृंगार का वर्णन मिश्र जी ने विस्तार से किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने से गोपियां दुखित हैं। जो भी पथिक उन्हें मथुरा जाते दिखाई देते हैं उन्हीं को रोककर वे अपना सन्देशा भेजती हैं पर वहां से उनके सदेशे का कोई उत्तर नहीं आता और वे सदैव चित्रवत खड़ी उनका रास्ता देखा करती हैं—

केते गए धीरज दै मधुपुर पथिक लोग
तेऊ फिरे ना एक नेन थकि रहियो।
चित्र सी ठाढ़ी ह्वै जोवतीं परोन मग,
तुमको बिलोकि उर घोर कष्ट सहियो।।
जात हौ कहा प प्रताप नेक ठाढ़ होहु
एक हम दासन की बात हिये गहियो।
हा हा बटोही और मधुपुर पधारयो सो
मेरी गोपाल जो सों जे गोपाल कहियो।। [3]

अन्त में निराश होकर वे पवन से अपना संदेशा कहती हैं और उसे अपना दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती हैं—

---

१ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई) तीसरा अंक द्वितीय दृश्य।

२ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई) पहिला अंक द्वितीय दृश्य।

३ स नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४० ई) पृष्ठ १८१

'पीत पट अंग अंक आस गुंज माल राज,
चंद्रिका मयूर चूड़वशी कर चहियो।
मकराकृत कुण्डल प्रताप शुभ कान में
देखि-देखि आभा अपन मन लाभ लहियो॥
हा हा समार वीर तोसों है निहोर एक
नेक वा विस्वासी के पास लै बहियो।
मो पै कृपा करि बहु भांति तू पायनपरि
मेरी गोपाल जी सों जै गोपान कहियो॥ [१]

उक्त कवित्त में कृष्ण को पहचानने के लिए उनकी आकृति का वर्णन भी—पवन से किया गया है। मिश्र जी की यह योजना बड़ी अनूठी है। इसी के अनुकरण पर आगे चलकर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी अपने प्रिय प्रवास में पवन दूत की कल्पना की।

इसके बाद जब उद्धव जी मथुरा से कृष्ण का सन्देश लेकर गोकुल आते हैं और कृष्ण की पाती गोपियों को देते हैं तब वे उसमें तिसी-याग की बातें पढ़कर बहुत दुखित होती हैं और सयोग-कालीन बातों का स्मरण कर ऊद्धव से कहती हैं—

सींचि-सींचि चन्दन सुगन्धन सों अंग ऊधो
फूलन सों सांवरे छबीले छबि सटके।
कुंज-कुंज बेलिन मे नवल नवेलिन मे
स स प्रताप डोल ओट पीतपट के॥
से गात मेरे अब राखन चढ़ाइबे को
सांवरा पठाई जो पाती जग जटके।
ऊधो उपाय अब दूसरो न आनि रह्यो
तजि हैं परान अब कान्ह-कान्ह रटिके॥ [२]

तदुपरान्त जब ऊद्धव गोकुल से मथुरा वापस जाने लगते हैं तब गोपियां बड़ी ही दन्यता से उनसे निवेदन करती हैं—

'आंखिन ते आंसू के प्रवाह नित व्यापे रहें
कारे भये शोभा प्रताप कुच पटके।
आह के दाह में बहुत निगिवागार देह
कृनास कलेवर में साल रह्यो सटके।

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १८४-८५।
२ स० नारायनप्रसाद अरोड़ा 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५

ऊधो जी कृपा करि दहियो सदेनो ऐसो
गहि के चरण सरोज या मट दे।
ब्रज की नवेली विरहाकुल वियोग धारी,
तजि हैं परान अब कान्ह-कान्ह रटिके ॥ [1]

मिश्र जी ने दुष्यन्त और शकुन्तला के विरह का चित्रण भी बड़ अच्छे ढग स किया है। दुष्यन्त का विरह दोनो ओर से है दोनो ही एक-दूसरे से मिलने के लिए विकल हैं। शकुतला भूख प्यास और निद्रा तक को भुला बैठी है। वह कहती है—

मेरे प्रान प्यारे मेरी अखियन के तारे
मोहि तेरे बिन देखे कहू कछु न सुहाय है।
भूली नींद भूख प्यास एक सुधि तेरी रही,
तेरो मिलनाई रह्यो जीवन उपाय है॥
तेरे जिय में है कहा सो तो नहि जानौ मेक
मेरी गति सूरति प प्रगट दिखाय है।
नेह की तपनि तपि-तपि छन छन तन
आंसुन सों भीजत हू छीजत हो जाय है॥' [2]

दुष्यन्त शकुन्तला क उपयुक्त विरह का छिपकर सुन लेता है और उसी के अनुरूप अपनी भी दशा का वणन वह शकुतला स करता है—

'जानो जनि जोप में हमारी हो दशा है ऐसी
मेरी गति मेरी प्यारी याहू ते सिवाय है।
सूरज उदे में कुमुदिनि कुम्हिलाही जाति
चन्द्रमा बिचारे को तो रूप ही हिराय है॥
ताप ही करति अनुराग की अगिन तुम्हें
मेरे तो करेजे रही होरी सी लगाय है।
ऐसी करौं हाय जो पै व्यथा है बताय जो
न सह्यो सहि जाय ह न कह्यो कहि जाय ह॥ [3]

मिश्र जी क विरह वणन म ऋतुए, विशेष रूप स विरह को उद्दीप्त करने में सहायक हुई हैं। वर्षा, ग्रीष्म और बसन्त ऋतुओं क वणन उन्होने कई स्थानो पर किय हैं। बसन्त ऋतु विरहिणी के लिए सबस अधिक दुखदायिनी होती है। बसन्त के आगमन स उद्भूत-भाव विरहिणी क हृदयोद्गार यहा पर द्रष्टव्य हैं—

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५
२ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तलम्' (१९०८ ई०) तीसरा अंक द्वितीय दृश्य।
३ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) तीसरा अंक द्वि० दृश्य।

कोन्हों कहा तरुन ज लूटि लोन्हों नाहक म,
दीन्हों मन कोकिलन सहज पुकारे म।
आगि सी लगाय दई किंसुक गुलाबन म
भौरन को डारयो वाही बरत अगारे मे॥
परताप नरायनहू को ना परत उर
काम को जगाय दिय हृदय हमारे म।
सबहि सताय हाय लक रितुराज पापी
ज ह कि जमराजपुर आठ अठवारे म॥[1]

मिश्र जी न समस्या पूर्तिया क रूप म भा कइ शृगारिक कविताए लिखी हैं। मिश्र जी क समय म समस्या पूर्तिया का बडा चलन था और समस्या पूर्तिया म ही कवि की वास्तविक कला का आका जाता था। 'बीर बली धुरवा धमकाव' की पूर्ति मिश्र जी न बड अच्छे ढग से का है। दखिए—

बूडि मर न समुद्र म हाय
ये माहक हाय निघोछे डुबाव।
का तजि लाज गराज किये
मुख कारो लिए इत ही उत धाव॥
नारि दुखारिन पै यजमारे
वया बवियान के बान चलाव।
योर हैं सो बलिबीरहि जाय क
बीर बली धुरवा धमकाव॥[2]

मिश्र जी न शृगार क सयोग और वियोग—दोना पक्षा पर अनेक समस्या पूर्तिया की हैं और सभी पूर्तियाँ अपना कला म अद्वितीय है। इस प्रकार मिश्र जी अपन शृगार वणन म पूण सफल है। यह वणन स्वाभाविक मर्म और हृदयस्पर्शी है इनम मिश्र जी की भावात्मकता विशप दशनीय है। भाव पक्ष और कलापक्ष का भी इनम अच्छा सामजस्य है।

मिश्र जी की प्राचीन काव्य धारा की कविताए यद्यपि प्राचीन काव्य परम्परा पर आधारित हैं फिर भी उनम अपनी ताजगी और व्यक्तित्व की छाप है। इन्ही कविताओ में मिश्र जी का कवि रूप पूण विकास पर पहुचा दिखाई पडता है। कल्पना भावुकता और काव्यशिल्प की दष्टि म इन कविताओ का अपना पृथक महत्व है।

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १९९

२ रसिक वाटिका (कानपुर) १८९१ ई० 'पहिली क्यारी पृष्ठ ११

आधुनिक काव्य-शैली

आधुनिक काव्य शैली की कविताओं का सम्बन्ध मिश्र जी के काल विशेष से है। इनमें उस समय की तत्कालीन स्थिति का पूर्ण चित्रण है। ये कविताएं मिश्र जी के नवीन उन्मेष और व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इनमें उस युग की स्वच्छन्दता पूरी तरह परिलक्षित होती है क्या भाषा क्या भाव-सभी दृष्टियों से उनमें नवीनता दिखाई पड़ती है। इन कविताओं में देश प्रेम कूट-कूट कर भरा है। जैसा पीछे कहा जा चुका है कि मिश्र जी का काल राष्ट्रीय चेतना का काल था। ब्रिटिश-साम्राज्य से उत्पन्न असन्तोष सभी ओर फैला हुआ था। देश के जागरूक कार्यकर्त्ता इस असन्तोष को मिटाने में तत्पर थे। मिश्र जी की कविताओं में भी यही असन्तोष पूरी तरह व्याप्त दिखाई देता है। देश की गिरी हुई स्थिति से उन्हें बड़ा दुख था। वे देश की स्थिति को सुधारने के लिए विशेष चिन्तित थे। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया तथा विभिन्न प्रकार से उसे समझाकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। कहना न होगा कि मिश्र जी अपने युग के साथ इतना घुल मिल गये कि उनका आधुनिक स्वर प्राचीन स्वर से अधिक तीव्र और व्यापक हो गया। वे एक उपदेशक और समाज सुधारक की तरह देशोद्धार में तन्मय हो गये और उनकी कविता का उद्देश्य ही देशोद्धार हो गया। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के शब्दों में—जितने पद्य इन्होंने देश और जाति-सम्बन्धी लिखे हैं उनमें उनके हृदय का जीवन्त भाव बहुत ही जाग्रत मिलता है जो हृदया में तीव्रता के साथ जीवनी धाराएं प्रवाहित करता है।[1] मिश्र जी के देश प्रेम का वर्णन दूसरे अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है इसलिए यहाँ पर संक्षेप में ही—प्रसंगवश—उनकी विचार धारा का विवेचन करना अपेक्षित होगा।

देश प्रेम

मिश्र जी में देश प्रेम राज भक्ति-दो रूपों में मिलता है। राजभक्ति भी देश के हित का लक्ष्य कर ही की गई है। इसे हम मिश्र जी की नम्र-नीति भी कह सकते हैं। इसके द्वारा मिश्रजी शासकों की प्रशंसा करके उन्हें भारत के अनुकूल बनाना चाहते थे। इसमें शासकों के छोटे-से छोटे देश-हितैषी कार्यों की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की गई है। कई स्वागत गीत भी मिश्र जी ने राजभक्ति के रूप में लिखे हैं जिनमें अभिनन्दन के साथ-साथ देश-दशा का चित्रण भी किया गया है और देशोद्धार की प्रार्थना भी की गई है। युवराजकुमार विक्टर का स्वागत करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि यदि तुम महारानी विक्टोरिया से भारत की दयनीय दशा बताओगे और

---

[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ५१४-५१५।

वे अपनी प्रजा के दुखों का निवारण करेंगी तो हम कभी उनका उपकार हृदय से न भुलायेंगे—

> कछु उपाय करि प्रजा वर्ग की बिपति बिदरिहैं।
> सहजहि मह आनन्द अमृत की वर्षा करिहैं॥
> फिर हम कबहु तुम्हरो गुण जिय ते न भुलहैं।
> कहिहैं जय जयकार सदा इमि आशिष देहैं॥
> जुग जुग जीवहु जय जय जस युत युवराज दुलारे।
> जुग-जुग जीवहु श्री विजयिनि के प्रान पियारे॥ [1]

देश भक्ति मिश्र जी की बड़ी व्यापक है। उन्हें भारत की छोटी-से-छोटी वस्तु से प्रेम था। जब उन्होंने देखा कि अग्रेजों की शोषण-नीति बढ़ती ही जाती है और खुशामद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब उन्होंने अग्रेजों की भर्त्सना करनी प्रारम्भ की और भारतीयों को उभाड़ना शुरू किया—

> अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
> परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
> धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई।
> जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई॥
> सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लातें खाव।
> राजा कर सो न्याव है पासा पर सो दाव॥ [2]

होली का त्योहार भी मिश्र जी को दुखदायी प्रतीत होता है उसमें भी समिकों की चीत्कारें ही उन्हें सुनाई पड़ती है। होली का बनावटी हास परिहास उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं—

> जब सवसु बहि गयो हाथ ते तब न उचित हुरिहाई।
> उपज घटे धरती की दिन दिन नाज नितहि महगाई॥
> कहा खाय त्योहार मनाव भूखे लोग-लुगाई।
> सब धन ढोयो जात बिलायत रह्यो दलिद्दर छाई॥
> अन्न वस्त्र कहु सब जन तरसे होरी कहां सुहाई। [3]

मिश्र जी हिन्दी प्रचार पर भी बड़ा जोर देते थे क्योंकि राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए अपनी पौढ़ भाषा का होना आवश्यक था। उनका कहना था कि हिन्दी के प्रचार के बिना देश की उन्नति असम्भव है। भारतीयों को समझाते हुए कहते हैं—

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ ('युवराजकुमार स्वागतन्ते
२ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २।
३ स० प्रतापनारायण मिश्र प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४१।

"देव मातरिहि परे सगाओ, पहो मोद महान।
रहो निमग्न प्रेम मद माते भो परताप समान॥"[1]

भारत में फैली हुई फूट को देखकर मिश्र जी को बड़ा दुख होता था। यह फूट ही भारत के पतन का कारण थी। मिश्र जी इसे समाप्त कर भारत को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे।

प्रीति परस्पर राखहु मीत जहँ सब सुख सहजहि होत।
नहिं एकता सरिस बल कोय एक-एक मिल ग्यारह होय॥[2]

मिश्र जी ईश्वर से भी भारत के कल्याण की प्रार्थना करते हैं इससे उनकी देश ममता का सहज ही परिचय मिल जाता है—

'हमरे धन सों तन सों परदेसिन भोग विलास कियो।
करता धरता सब मान बने अति तुच्छ हमें निज दास कियो॥
इन स्वारथ मीत विधर्मिन के पद पूजत हा! कब लों मरिए।
हम आरत भारतवासिन पै अब दीनदयाल दया करिए॥'[3]

मिश्र जी का दृष्टिकोण पूर्ण यथार्थवादी था। वे भारत की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट सामने रख देते थे। सत्य बात कहने में उन्हें जरा भी हिचक न लगती थी। वे निर्भिकता के साथ अपनी बात कह जाते थे। यहां तक कि शासन आदि का भी उन्हें किंचित भय न था वे खुलकर ब्रिटिश-शासन की भर्त्सना करते थे। नाग देवता को तर्पण देते हुए वे कहते हैं—

'महगी और टिक्स के मारे हमहिं छुधा पीड़ित तन छाम।
साग पात लौं मिलै न जिय भरि लैबो वृथा दूध को नाम॥
तुम्हें कहां प्यावें अब हसरो कटत रहत गोवंश तमाम।
केवल सुमुखि अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम॥'[4]

मिश्र जी नवीनता के पुजारी थे। पुरानी परम्पराओं रूढ़ियों अंधविश्वासो आदि को वे देशोन्नति में बाधक समझते थे। उन्हें वही मार्ग और कार्य पसन्द था जो देशोन्नति में सहायक हो। इसीलिए वह सामाजिक कुरीतियों की निन्दा करते हुए समाज सुधार, नारी-शिक्षा आदि पर बल देते थे। बाल्य विवाह की निन्दा करते हुए वे लिखते हैं—

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८ (कजली)
२ प्रतापनारायण मिश्र लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २।
३ सं नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई) पृष्ठ ९० ('मन की लहर)
४ 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ३, (तृप्यन्ताम)

'बाल ब्याह ने बल मांहि रक्खा चलते काया डोली है।
नहिं आने की मुख पर लाली वृथा बिगाड़ी रोली है॥'[1]

मिश्र जी म धर्मान्धता नही थी लेकिन अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति उन्हें स्वाभिमान अवश्य था। वे जब-तब उसकी दुहाई देकर भारतीयो को उत्साहित करते रहते थे—

'बालमीक मुनि सत्यवती-सुत कालिदास आदिक मतिधाम।
त्यागि गये सब भूमि अभागिनि, कर परमपद मे विश्राम॥
अब तो ह्यां के लोग हाय भूले हरिचन्दहु के गुन ग्राम।
कासों भाख कौन कहि है हा! धन्य प्रवर्षाहि तृप्यन्ताम्॥'[2]

मिश्र जी की देश प्रमियो पर बड़ी श्रद्धा थी। व बढ़ा चढ़ाकर उनके गुणो की प्रशसा करते थे और उन्हे अनेक प्रकार स प्रोत्साहित करते रहते थ। जब किसी देश प्रेमी का स्वर्गवास हो जाता था तब उनका हृदय रोने लगता था। मिश्र जी को देश प्रमी की मृत्यु पर उतना ही दुख होता था जितना कि अपने किसी परिवार वाले की मृत्यु पर होता है। उनका हृदय इतना विस्तृत था कि सम्पूर्ण देश ही उनका अपना परिवार था। उन्होंने कई देश प्रमियो की मृत्यु पर शोक-गीत लिखे हैं और उनमें इन शोक-गीतो म उनका हृदय पूरी तरह झाकता दिखाई देता है। उनके कोमल हृदय की सहृदयता एक-एक शब्द से टपकी पड़ती है। दयानन्द सरस्वती की मृत्यु पर वे ईश्वर को कोसते हुए लिखते है—

करुणानिधि कहवाय हाय हरि आज कहा यह कीन्हो।
देश अपार जतन ततपर वर पुरुष रतन हरि लीन्हों॥
जो ऐसे ही बोझ लगत हो काल चक्र तव हाथे।
बस न गिराय दियो काहू भारत कलक के माथे॥[3]

इस प्रकार मिश्र जी की सम्पूर्ण देश प्रेम विषयक कविताएँ लोक भावना स परिपूर्ण हैं उनम एक सच्चे देश भक्त की पुकार है। उस समय का पूरा चित्र इन कविताओ म साकार हो गया है। ये कविताए जनता म स्फूर्ति स्वाभिमान और राष्ट्रीय चेतना जगाने मे समर्थ हैं। इनम मिश्र जी की स्पष्टवादिता और निस्वार्थ सेवा पूरी तरह समायी हुई है। ये कविताएँ मिश्र जी के सशक्त आत्मबल का प्रतीक हैं।

———

१ स नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४०।
२ ब्राह्मण खण्ड ७ सख्या ३ ('तृप्यन्ताम')
३ 'ब्राह्मण खण्ड १, सख्या ९, ('हाय बड़ा अनर्थ हुआ')

हास्य-व्यग्य

मिश्र जी हास्य और व्यग्य के अवतार थे। वे गम्भीर से गम्भीर विषयो म भी हास्य की सामग्री जुटा लेते थे, इससे उनके गम्भीर विषय भी सरस और प्रभावपूर्ण हो जाते थे। मिश्र जी से पूर्व हास्य और व्यग्य का समुचित विकास नही हो सका था। मिश्र जी ने ही इसम प्राण फूके और इसके क्षेत्र को विस्तृत बनाया। मिश्र जी का हास्य और व्यग्य पूर्ण सामाजिक है उसम समाज की किसी-न किसी कुरीति की ओर सकेत किया गया है। इसस पाठको का मनोरजन तो होता ही है साथ ही उनका नैतिक सुधार भी होता है। मिश्र जी की दृष्टि म कोरे हास्य का कोई महत्व नही था वह तो प्रत्येक क्षेत्र मे समाजोपयोगी तत्व ही ढूढते थे। उनका यह दृष्टिकोण उनके हास्य का भूषण बन गया है। हास्य म सामाजिकता का होना बडा जरूरी है। फ्रेंच दार्शनिक बर्गसा लिखते है—'हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसम सामाजिकता की झलक हो।'[1] सामाजिकता से युक्त हास्य पाठको का निर्माण की ओर प्रेरित करता है जबकि कोरा हास्य पाठको को थोडे समय के लिए आकाश की हवा खिलाकर फिर यथार्थ भूमि पर पटक देता है।

हास्य अपनी रजनात्मक शक्ति द्वारा पाठकों का मन बडी सत्वर गति से अपनी ओर आकृष्ट करता है इसलिए यदि इसम जीवन निर्माण के तत्व हुए तो मानव मात्र का बडा कल्याण होता है। इसके साथ ही लेखक भी अपनी कटु-से-कटु बात हास्य के माध्यम से बडी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ कह जाता है और पाठक भी उसकी बात हसकर सह लेते है पर उसका प्रभाव उनके अन्तराल पर गहरा पडता है। मिश्र जी हास्य के ही माध्यम से समाज की कडी-से-कडी भर्त्सना कर जाते हैं। देखिए कनवजिया और अग्रजा की इच्छाओ को मिश्र जी कितने सच्चे ढग म व्यक्त करते हैं—

> मरे मिले एक मारि बिटेवा होयना
> बकरा मछरी चिकवा समझ कोयना।
> करि पाकर घर ब्याह रुपया रोलना
> इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥
> हम घर आय धन सब हिंदुस्तान का
> सब बस अपना हो न किसी के बाप का।
> कुछ कसूर होय खुस हमारे पोल ना
> इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥'[2]

---

1 Laughter must be something of this kind a short of social gesture Laughter' Page 20 by Henri Bergson

२ ब्राह्मण खण्ड २ सख्या ९ १०, (इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना)

मिश्र जी ने अधिकतर वक्र उक्तियों के प्रयोग द्वारा हास्य की योजना की है। 'जन्म सुफल कब होय ?' की निम्नांकित पंक्तियां इसके लिए दृष्टव्य हैं—

गोरण्डदास उवाच

अंग जान इंगलिश हम बाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटे वदन कर श्याम रंग जन्म सुफल तब होय॥

*   *   *

सेठ उवाच

बुधि विद्या बल मनुजता छूवहिं न हम कहूं कोय।
लक्ष्मिनियाँ घर में बसे जन्म सुफल तब होय॥[1]

छोटे-से-छोटे विषयों में भी हास्य पैदा कर देना मिश्र जी के बांये हाथ का खेल था। ब्राह्मण को चन्दा न मिलने पर वे जब कब ग्राहकों की अनुनय विनय किया करते थे फिर भी ग्राहक कोई ध्यान न देते थे। इस पर एक बार वे बड़े ही मनोरंजक ढंग से लिखते हैं—

आठ मास बीते जजमान।
अब तो करो दच्छिना दान॥ हरि गंगा॥
आजु काल्हि जो रुपया देव।
मानो कोटि यज्ञ करि लेव॥ हरि०॥

*   *   *

हंसी खुशी ते रुपया देव।
दूध पूत सब हमते लेव॥ हरि०॥
कासी पुन्नि गया मा पुन्नि।
बाबा बैजनाथ मा पुन्नि॥ हरिगंगा॥[2]

मिश्र जी के हास्य में इनकी अपनी वैयक्तिकता है। व्यंग्य भी इनके बड़े तीखे हैं। भारतीयों की अकर्मण्यता पर इनके अनेक व्यंग्य बाण चले हैं। 'कलियुग ककहरा' में इन्होंने तत्कालीन समाज की अच्छी खबर ली है। ये नये ढंग से ककहरा पढ़ने की लोगों को सलाह देते हैं। उनके ककहरा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

नन्ना ना नाम भाग के कर मिटए।
पप्पा पा पंडित जी को पोप बनए॥
फफ्फा फा फिक्र देश का कभी न करिए।
बब्बा बा बड़ों का नाम फुलिशचेप धरिए॥

---

१ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ९ ('जन्म सुफल कब होय ?')
२ 'ब्राह्मण खण्ड ३, संख्या ८ (हरिगंगा')

नम्मा मा माई माई नित उठि लरिए।
नम्मा मा मात पिता को लालन मरिए॥

* * *

लल्ला ला सेहो जी की सदा कीज।
वव्वा वा वाहो पन में तन नजि दीज॥
सस्सा सा साहब की ठोकर तक सहिए।
हहहा हा हिन्दू मात्र स ऐंठ रहिए॥ १

मिश्र जी का अधिकाश हास्य व्यग्यात्मक ही है और उनके व्यग्य का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर पूरे समाज या देश से है उसमे लोक भावना की प्रधानता है। व्यापक दृष्टिकोण के कारण इनके व्यग्यो का प्रभाव भी व्यापक है वे सीधे हृदय पर चोट करते है पर वे व्यग्य ऐसे ढग से किये गये है कि पाठक हसते हुए उनकी चोटो को सह लेते हैं। डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी मिश्र जी के व्यग्य के विषय मे लिखते हैं— इनका व्यग्य भाषा के बीच कुनैन की गोली पर शक्कर सा है पर शक्कर इतनी नही होने पाती थी कि कुनैन की कडवाहट छिप जाय। २ व्यग्य द्वारा कवि अपनी बात को बड़े प्रभावोत्पादक ढग से कह जाता है और उसमे किसी को तर्क वितर्क करने की भी गुजाइश नही रहती। मिश्र जी मे हास्य और व्यग्य की शक्ति जन्मजात थी इसलिए इनके व्यग्य बड़े स्वाभाविक हैं। विनोदी प्रकृति के होने के कारण ये बात बात मे हास्य और व्यग्य की योजना करते चलते हैं। हास्य और व्यग्य के क्षेत्र मे मिश्र जी हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय हैं। इन्हें यदि हास्य और व्यग्य का सम्राट कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

प्रकृति वर्णन

स्वतन्त्र और यथार्थवादी दृष्टिकोण के होने के कारण मिश्र जी प्रकृति वर्णन मे अधिक नही रमे। ऐसे ही चलतू-ढग पर किय गये इनके कुछ प्रकृति वर्णन मिलते हैं। कण्व के तपोवन की प्राकृतिक छटा का वर्णन चित्रात्मकता की दृष्टि से अवलोकनीय है—

छाई है कैसी वृक्षों पर हरियाली।
झुक-झुक कर जिनकी झूम रही है डाली॥
नीचे झुर-मुट मे कुतर-कुतर है डाली—
कोटरों से भगने विविध मन की वाली।

---

१ ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ५ (कलियुग कहरा')
२ डा बरसानेलाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य हास्य रस (१९५७ ई० पृष्ठ १९७

होता है कलरव भांति भांति खग गन में।
आहा क्या ही शोभा है इस तपवन मे॥ [1]

मिश्र जी को ऋतुओं में विशेष प्रेम था। ऋतुओं के वर्णन उन्होंने कई स्थानों पर किये हैं। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन वे बड़े अच्छे ढंग से करते हैं। देखिए—

लागत भल जल विहार तसी शीतल समीर
जो गुलाब की सुगन्ध मन्द-मन्द लाव।
सांझ के समय सुहात विचरत वन बाग माहि
दाहि को सहारो लहि सहज नींद आव॥
जोबन की माती तिय धारती सिरीस फूल
मौर जासु कोमल दल चूमत सुख पाव।
भांति भांति भोग जोग कीजत जिहि के संजोग
प्यारी ऋतु ग्रीषम यह कौन को न भाव॥ [2]

स्वाभाविक रुचि के अभाव में मिश्र जी के प्रकृति वर्णन अधिक मनोहर तथा सजीव नहीं हो सके। प्रकृति वर्णन करते-करते वे ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाते हैं और प्राकृतिक रम्यता में ईश्वर का ही व्याप्त देखने लगते हैं इसमें प्रकृति वर्णन का स्वतन्त्र रूप समाप्त हो जाता है और वे कोरी भक्ति के पीछे दौड़ते दिखाई देते हैं। इस प्रसंग में इनका वर्षा ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है—

बरसा ऋतु सबको सुखकारी प्रकटति महिमा नाथ तिहारी।
नाचि उठे बन मोर मुदित मन लखि उमड़े घन गगन मझारी।
चहुदिशि तव वभव विलोकिक, ज्यों सज्जन अति होत सुखारी।
बरसत नीर उमग भरि सरिता मिलन चलहिं सागर कहं सारी।
तव करुणाबल पान हुए भरि ज्यों तव शरणहोत सुविचारी। [3]

ऐसे ही वसन्त ऋतु का वर्णन देखिए—

'आयो-आयो रितुपति वसन्त प्रकटत प्रभु तव महिमा अनन्त।
वाटिका सुशोभित और भांति जिमि आनि तोहि गति यदलिजाति॥
तरु-तरु डोलत रस मत्त भौंर तव रसिक मुदित ज्यों सबहिं ठौर।
प्रफुलित कुसुमावलि रंग रंग मुनिमन जैसे तव प्रेम संग॥
भावति सुगन्ध शीतल समीर तैसेहि तव करुणा हरति पीर।
बौरे रसाल सौरभ समेत तव कीरति इमि सुख सबहिं देत॥ [4]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल' (१९८० ई०) पहिला अङ्क, द्वितीय
२ —वही— प्रथम दृश्य।
१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १५० १५१ (प्रेम पुष्पावली)
२ —वही— पृष्ठ १४९

कहीं कहीं मिश्र जी की लोक हितपिता भी प्रकृति-वर्णन में स्थान पा गयी है। इससे प्रकृति वर्णन उपदेश के माध्यम बने से दिखाई पड़ने लगते हैं। एक अन्यत्र स्थान पर—वसन्त ऋतु के वर्णन में—मानव की दशा का चित्रण मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

'कछु हूँ वसन्त की सुधिहि चेत।
बौराने प्रियवर कौन हेत॥
अपनो हित अनहित रहे भूल।
कैसो सरसों रहि हृगन फूल॥
मत पथ भूत छवि पर भुलाव।
कछु करहु भविष्यत को उपाव॥
निज करमन भये मुख पीत चाहू।
पियरे रंग की फिर कथा चाहू॥'[1]

इस प्रकार मिश्र जी के प्रकृति वर्णन ईश्वर और देशभक्ति के दबाव के कारण—अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं दिखा सके। हाँ जो इन भावनाओं से पृथक रहकर लिखे गये हैं वे अवश्य कुछ रमणीय हैं पर ऐसे वर्णन बहुत कम हैं।

रस निरूपण

मिश्र जी की अधिकांश कविताएं शृंगार हास्य शान्त और करुण रस में लिखी गयी हैं—स्थूल प्रेम से सम्बन्धित सभी कविताएं शृंगार रस में हास्य और व्यंग्य से युक्त हास्य रस में भक्ति विषयक शान्त रस में और शोक-गीत करुण रस में लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कविताएं वीर रस की भी हैं जिनमें इनकी वीर भावना व्यक्त हुई है। शेष रसों में इनकी कविताएं नहीं के बराबर हैं बहुत ढूँढने पर उनके एक आध उदाहरण मिलते हैं। नीचे सभी रसों का एक-एक उदाहरण देकर मिश्र जी के रसाधिकार को स्पष्ट करना अपेक्षित होगा।

शृंगार रस

शृंगार के संयोग और वियोग—दो पक्ष होते हैं, दोनों में मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएं की हैं। संयोग का एक उदाहरण देखिए—

'पाय परों कर छोड़ दे ब्रजराज दुलारे।
आवत जात लखंगी कोई मारग में मति लाज ले ब्रजराज दुलारे॥
हौं तो लाल सदा तेरी हौं होरिहि को कछु नेग है ब्रजराज दुलारे।
गारी बकत कहा रस निकस रासि न जात इकत पै ब्रजराज दुलारे॥
परब मनाय सब साथ सों सब बूरिहु सों रंग डारिक ब्रजराज दुलारे।
प्रेमदास ऐसी बर्यों कोउ धरी सर्म जो काहूक ब्रजराज दुलारे॥'[2]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ (वसन्त)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ८ (होरी)

वियोग में एक प्रेमी के हृदयोद्गार यहाँ द्रष्टव्य हैं—

कल पाव न प्रान तुम्हें बिन देखे इन्हें अधिको कलपाइये ना।
परतापनारायण जू के निहोरे पिरीति प्रथा बिसराइये ना॥
अहो प्यारे बिचारे दुखारिन, पै इतनी निठुराई जताइये ना।
करि एकही गाँव मे बास हहा मुख देखिबे को तरसाइये ना॥ [1]

हास्य रस

यह रस हास परिहास और विनोद से युक्त होता है। इसका स्थायी भाव हास और है। मिश्र जी की निम्नांकित पंक्तियों में अच्छी हास्य योजना है। देखिए—

'कक्का का करम धरम सब दूर बहिए।
खख्खा खा खुले खजाने होटल जाए॥
गग्गा गा गोरा का सा भेष बनाए।
घघ्घा घा घर के धाम पयार मिलए॥
चच्चा चा चुरुट सरे बजार चबाए।
छछ्छा छा छल बल करि द्रव्य-द्रव्य चिल्लाए॥
जज्जा जा जुवा महो चूको फिक्वाए।
झझ्झा झा झगड़ा करि धर्मी कहवाए॥' [2]

शान्त रस

इसका स्थायी भाव निर्वेद है, इसमें प्रमुख रूप से भक्ति की रचनाएं की जाती हैं। मिश्र जी की ये पंक्तियाँ शान्त रस में अवलोकनीय है—

'दयानिधि तुम ही साँचे मीत।
तुम बिन और कौन करि है प्रभु बिन निज स्वारथ प्रीत॥
प्रत्युपकार बिना जीवन को भलो करत सब रीत।
जनम देत रखत निशि बासर सिखवत सुखप्रद नीत॥
को पितु-मातु बन्धु जग जिनकी कौन कथा परतीत।
जब निज देहहि काम न आवत पौरुष भए विनीत॥ [3]

करुण रस

इसका स्थायी भाव शोक है। इसके लिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्ग वास पर लिख गये शोकाश्रु की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'काहू कर चित भाय हमैं तो भावत हाय कछू ना॥
खान पान सनमान गान में लागत चित कहू ना।

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८
२ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या (कलियुगककहरा)
३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४२, पुष्पावली)

सुख उपजावन हार पदारथ देत और दुख दूना ।।
हाय हाय र हाय काम विधि करि दीन्हति मनऊना ।
तो सन मति आगा प्रताप हरि करत रहयो फवहूना ।। [1]

वीर रस

वीर रस म उत्साह प्रमुख होता ह । इसके उदाहरण क लिए हम्मीर का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है—

कर धरि कठिन कृपान अस्त्र औ शस्त्र धसावहु ।
क्षत्रिय कुल को यश प्रताप करिन बिखरावहु ।।
जिमि मृगगण महं सिंह यथा ईधन महं आगी ।
धसहु शत्रु दल माहि सबहि नाशहु भय त्यागी ।। [2]

अदभुत रस

जिस वणन म आश्चय का भाव व्यक्त हो उसम अद्भुत रस होता है । मिश्र जी न एक तपस्वी का बडा आश्चर्यजनक चित्र निम्नांकित पंक्तियो मे खोचा है दीखए—

मारग कबहु न लखि परत भूमि न कतहु समान ।
माहि कौन यह जीव के सुधिकरि सूखत प्रान ।।
तह सुर रिषि एक तापस वया ।
अति कृश अस्थि मात्र अवशेषा ।।
झूलति इक तरु मह पग बांध ।
मुखे अग्नि स्वास निज साधे ।।
बार बडे बिथरे महि माहीं ।
तन पर नाम बसन कर नाहीं ।।
धधकति असह अगिनि चहु ओरा ।
तिहि पर दिनकर किरनि कठोरा ।। [3]

रौद्र रस

इसका स्थायी भाव क्रोध है । दगल खण्ड म दग्का क कुछ कथन क्रोध स आनप्राण हैं इन्हें हम रौद्र रस क अन्तगत ल सकते है—

अरे सतरो अरे सतरो बदुआ लागो मोर गुहार ।
इनका आगे ते बठारो माहिवु होन चहै तकरार ।।

---

१ ब्राह्मण' खण्ड २, सख्या १२

२ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर (प्रथम सस्करण), पृष्ठ ४ सीन दूसरा

३ 'ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ९ १ ('श्री प्रमपुराण')

बियो रुपया का हम नाहीं एई बड दिखया आंय ।
अपने-अपने रग सब माते कोउ न सुन लाल चिल्लाय ।।' [१]

बीभत्स रस

इस रस में घृणित वस्तुओं का वर्णन होता है इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। उदाहरण के लिए नीचे दी पंक्तियां अवलोकनीय हैं—

'ठौरहि ठौर मसान परे हैं मरे डरे हैं मृतक तमाम ।
इनके शिर कंदुक क्रीड़ा हित सुर्महि दए शंकर सुखधाम ।।
मुख सों खेलहु खाहु सजहु तन जो कुछ मिल हाड़ औ चाम ।
लहो जु एकौ बूंद रक्त तौ बसि पिशाच कुल तृप्यन्ताम् ।। [२]

एक पंक्ति और देखिए—

"खोपरी फूटीं बाहें टूटीं जो बुढ़कारिन बोल धाव ।'[३]

भयानक रस

इसका स्थायी भाव भय है इसमें भयानक और अनिष्टकारी विषयों का वर्णन होता है। इसके उदाहरणार्थ मिश्र जी की निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

' कानिस्टिबिलन को डंडा चल कोड़ा फटकि-फटकि रहि जाय ।
जौमी केती हटर पटक सब टोपी खस जाय उड़ाय ।।
भगवड़ि परिग रे दगल मा देखुआ कर तराहि-तराहि ।
हमें न मरियो हमे न मरियो हमना करी कबौं तकरारि ।।
पहिले हल्ला कायर भागे दुसरे भागे पतुरिया बाज ।
तिसरे हल्ला उड़ भागत हैं जो परिनारिन के असनाहि ।।
कोऊ लरिकन का गोहराव, कोऊ पुरिखन को चिल्लाय ।
टोपी उधरति है काहू की पगिया फसे गरे बिच आय ।। [४]

इस प्रकार सभी रसों में मिश्र जी ने कविताएं लिखी हैं पर अद्‌भुत रौद्र बीभत्स और भयानक रस का पूर्ण विकास इनमें नहीं हुआ। शेष रस अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंचे दिखाई देते हैं।

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ २२६ (दंगल खण्ड)
२ 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ३ ('तृप्यन्ताम')
३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२७ ('दंगल खण्ड')
४ , —वही— , पृष्ठ २२८

भाषा

मिश्र जी की भाषानुरूपिणी है। भाव के अनुसार उन्होंने सरल और संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। उपदेश और सामान्य वर्णना मे उनकी भाषा सरल तथा स्तुतियों और शृंगारिक कविताओं में संस्कृतनिष्ठ या परिमार्जित है। नाना प्रकार की भाषाएं वे पूर्ण अधिकार के साथ लिखते थे। देखिए, होली का वर्णन उन्होंने कितनी सरल भाषा में किया है—

> कोऊ माट बन्यो डोलै है सग मे भाटिनी गोरी है।
> घूमरे साँई बन्यों फिरे कोउ स दण्डन की जोरी है॥
> साहब मेम कुअरी कुअर, कुजड़ा सिड़ी अघोरी है।
> गलियन गलियन विविध रूप के स्वांग दिखावति होरी है॥
> नरम सभा म नव रसिकन की लसति रंगीली टोली है।
> बीच विराजति मान्यघूटी सूरत भोली भोली है॥''[१]

अधिकतर मिश्र जी ने ऐसी ही भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। संस्कृतनिष्ठ भाषा म लिखी इनकी कविताएं संख्या में बहुत कम हैं पर जितनी हैं वे इतनी पुष्ट हैं कि उनको देखकर मिश्र जी की भाषा-शक्ति पर आश्चर्य होने लगता है। नीचे एक उदाहरण मिश्र जी की संस्कृतनिष्ठ भाषा का देखिए—

> 'जयति सबज्ञ सर्वेश सबत्रगत सच्चिदानन्द आनन्ददाता।
> न्यूनविरहेन विज्ञानविज्ञानम विशदविष्णु विभुविश्व विश्व विधाता॥
> सोब प्रताप तापित परित्राणरत सर्वदा साधु सत्स्पृहर्ता।
> सर्वथा सेव्य सम्पूर्ण सन्ताप शमन माध्य भगवान भुवनैक भर्ता॥
> आप्त आनन्दमय अखिल ऐश्वर्यपति सत्य सौजन्यप्रिय सृष्टि स्रष्टा।
> सवथा नखिल सम्पन्न सुमङ्गलम्बोधिदेवाधि पति विश्वदृष्टा॥[२]

मिश्र जी म प्रौढ़ तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने का पूर्ण सामर्थ्य था पर लोक हित का प्रमुख मान कर उन्होंने सामान्य भाषा को ही विशेष रूप से अपनाया। यहां तक कि ग्रामीण शब्दों का भी उन्होंने अपनी कविताओं म स्थान दिया। मिश्र जी अपनी कविताओं को जन जन तक पहुंचाना चाहते थे, इसके लिए सरल तथा ग्रामीण शब्दों से युक्त भाषा ही उपयुक्त थी। कुछ साहित्यकार बिना मिश्र जी का उद्देश्य समझे—उनपर ग्रामीणता का आरोप लगाते हैं ऐसे साहित्यकारों को मिश्र जी की संस्कृतनिष्ठ कविताओं की शरण म जाना चाहिए। यह तो मिश्र जी की अपनी प्रतिभा थी कि वे दोनो प्रकार की—सरल तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा-पूर्ण सामर्थ्य के साथ लिखते थे।

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १३२ (होली)
२ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४८ (प्रेम पुष्पावली)

स्वाभाविक भाषा के पक्षपाती और स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण मिश्र जी ने अनेक भाषाओं के शब्दों को भी अपनी भाषा मे मिलाया तथा बहुत से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। उर्दू अरबी फारसी और अंग्रेजी के शब्द उनकी कविताओं मे बहुत से मिलते हैं। नीचे दी कविता म अंग्रेजी और अरबी के शब्द देखिए—

हमरी हा जाति हमहीं को दोष लगाव।
सेलफिन को नया कूड़त कोउ न बचाव॥
सुनि न्याय नाम बिलखत बीतत दिन राती।
यह बिल भई सवति हमारि जरावत छाती॥ [१]

*　　　　*　　　　*

"अग सुरति चच को चर्चा माहि भुलानो।
के राज काज ते मुश्किल फुरसत पानो॥
कैधौं एलाऊ महिं करहि मेम महरानी।
के कतहू ललन के लस मल ते भय हानी॥
जो नाय अजहू नहिं मेरी बिपति निबेरी।
अब बेगि रिपन महराज खबरि लेउ मेरी॥ [२]

मिश्र जी की कई कविताओ में खड़ी बोली अवधी और ब्रज भाषा का मिश्रित रूप भी मिलता है। यह बहुत-कुछ उनकी मौजी प्रकृति का परिणाम है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

"स्वागत ! स्वागत ! स्वागत ! श्री भारत हितकारी।
आवहु निभ्रम न्याय निरत नित सत पथ धारी॥
आवहु आवहु भलो करो इहि ओर पधारे।
बहुत दिनन के भय मनोरथ सफल हमारे॥
चिर दिन सो अति ध्यान रहो तव मुख दरसन को।
धन्य विधाता आज साध पूरी नयनन की॥
प्रियवर तुम कह रोग प्रसित सुनि पायो जबते।
रहे मनावत देव पितर पितर चिन्तित चित सबने॥
धन्य आजु कर दिवस तुम्हें लखि हृदय जुड़ायो।
जगिहै भारत भाग आज निहचै हम जान्यौं॥
अब अनेक जन एक होय कछु करन विचारें।
काज सिद्ध विश्वास तबहि सहृदय हृदि धारें॥ [३]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ ('एँग्लो इण्डियन शक्ति गानो ह)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ (भारती गाती ह)
३ ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ५ ('स्वागतन्ते महारमन ,

पर ऐसा मिश्र जी ने सभी कविताओं में नहीं किया। बहुत-सी कविताएं उन्होंने अवधी खड़ी बोली और ब्रज भाषा में पृथक-पृथक भी लिखी हैं जो बड़ी उत्कृष्ट हैं।

इसके अतिरिक्त मिश्र जी की भाषा में कहावतों और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। कहावतों और मुहावरों द्वारा उनकी भाषा अधिक सजीव और प्रभावपूर्ण हो गयी है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं—

व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर, बादि धारि धामन की दौर।
कस न देखु मन नयन उघारि, कनियां लरिका गांव गुहार॥'[1]

*　　*　　*

'बिन व्यवहार कुशलता सिखे होइहु कछु न पढ़े औ लिखे।
हंसिहैं बात-बात पर लोग ब्राह्मण साठ बरस लग मोंग॥'[2]

*　　*　　*

इष्ट सिद्धि महं परै जु विघ्न, तबहु मन न करौ उद्विग्न।
होइहि अवसि अटट श्रम करो सेतुआ बांधि के पाछे परौ॥'[3]

*　　*　　*

मुहावरों का भी प्रयोग निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'सरकार को अपनो जीव एक करि चहौं।
कछु नहिं चलिहै तो पेट मारि मरि रहौं॥
दासो को उन्नति हमते नहिं सहि जातो।
यह बिल भई सवति हमारि अरावत छाती॥'[4]
तब मुख दरसन बिना नहिं मानिहि मन मोर।
कस न बिसाव लाख कोउ मन के तारे तोर॥'[5]

*　　*　　*

मिश्र जी ने ब्रज भाषा खड़ी बोली अवधी संस्कृत उर्दू फारसी आदि भाषाओं में अनेक कविताएं लिखी हैं और सभी कविताओं की भाषा बड़ी साफ-सुथरी और प्रौढ़ है।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ १
२ —वही— , २
३ —वही— , ३
४ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ (एग्लो इण्डियन गति गाती है)
५ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १० ('तारापात पचीसी')

ब्रज भाषा

मिश्र जी का ब्रज भाषा से बड़ा प्रेम था। इसी भाषा में इन्होंने अधिकांश कविताएं लिखी हैं। निम्नांकित सवैया उनकी प्रौढ़ ब्रज भाषा का प्रतीक है। देखिए—

बनि बैठी है मान की मूरति सी मुख खोलत बोले न 'नाहीं न हाँ'
तुमही मनुहारि कै हारि परे सखियान की कौन चलाई तहाँ॥
बरसा है 'प्रताप जू' धीर धरो अबलौं मनको समझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ। [1]

खड़ी बोली

युग की मांग को देखकर मिश्र जी ने खड़ी बोली में भी अनेक कविताएं लिखीं और आगे आने वाले कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। खड़ी बोली पर भी मिश्र जी का अच्छा अधिकार था। एक उदाहरण देखिए—

हा! जगदीश्वर हम नहीं जानते क्या है?
क्यों आप देश पर क्रोध तुम्हें इतना है॥
भारत भक्तों को शीघ्र बुला लेता है।
अच्छा स्वीकृत है जो तेरी इच्छा है॥
पर यों करना था तुम्हें न मेरे दाता।
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहीं जाता॥ [2]

अवधीभाषा

अवधी में भी मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएं की हैं जिनमें इनका आल्हा बड़ा ही सरस और ग्राहक है। मिश्र जी की अवधी में बैसवाड़ीपन अधिक है। कुछ पंक्तियां देखिए—

देवी गण आदि अविद्या जिनकी लीला अपरम्पार।
हिंद वासिनी खोलत धारिनि दुइ पग गदहा पर असवार॥
बड़े-बड़े पंडित बड़-बड़ भूपति तुम्हरे बिना मास कै दास।
बालक बुढ़वा नर नारिन के हिरदे बैठी करौ बिलास॥
गाजी पीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जनम भूमि को जसु गावत हौं भूले अच्छर देउ बताय॥
गावन वारे को गर दीजौ औ बजवैया दीजौ ताल।
मांगन वारे का मैना देव मरद का देव ढाल तरवारि॥ [3]

---

१ 'रसिक वाटिका' (कानपुर) १८९१ ई० पहिली क्यारी पृष्ठ १
२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ ('गोराष्ट्र')
३ ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ६ (कानपुर माहात्म्य)

बसवाड़ी में लिखा गया मिश्र जी का 'बुढ़ापा' शीर्षक गीत भी बड़ा लोकप्रिय है। इस गीत की भाषा तो प्रवाहपूर्ण है ही, इसकी स्वाभाविकता एवं चित्रात्मकता तो और भी उत्कृष्ट है। देखिए—

हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनत नाहीं
कहाँ जायँ औ कैस करन॥
छिन भरि चटक छिन माँ मद्धिम,
जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखवख देखि परत हैं
हमरी अखिअन के लच्छन॥
* * *
बाड़ी नाक थाक माँ मिलिगै
बिन दाँतन मुहँ अस पोपलान।
बढ़ही पर बहि बहि आवति है
कबौं तमाखू जो फाँकन॥
बार पाकिगे रीरी मुकिगै
मूड़ी सासुर हालन लाग।
हाथ पाँय कुछ रहे न आपनि
कहिसे आगे दुख रवावन॥ १

संस्कृत

मिश्र जी ने संस्कृत में कई—एक स्तुतियाँ लावनी और गजलें लिखी हैं जिनसे उनके संस्कृत ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। संस्कृत के पदों में इनकी सामासिकता द्रष्टव्य है—

किमप्यपरम् न याचेऽहम्। देहि मे नाथ वहुस्नेहम्॥
धनबलमनसोऽधिकमास्ति। ममस्वेऽस्ति मममिक्षास्ति।
नमोऽस्त्याप्यस्मततुष्णास्ति। प्रमजाले मति प्रसन्नास्ति॥
बृहन्मान्मोऽस्व प्रार्थयेऽहम्। देहि मे नाथ बहुस्नेहम्॥
गमय दूरे दुष्कमानम्। कुरुत प्रेम प्रमाद दानम्॥
वतरयाक या सौशिकमानम्। करिष्ये प्रेमासवपानं॥

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ४ ('बुढ़ापा')

प्रेम शुद्धमत्ययमन्देहम् । देहि मे नाथ वृद्धस्नेहम् ॥
गौरव-पारयितुं नालम । मा तु विघटय भ्रुवबद्धालम ॥
छिन्धि सर्वाभिमान जाल । स्ववास्ये क्षेपय मम कालम ॥
महत्वमिद हि प्रमग्येह देहि मे नाथ वृद्धस्नेहम ॥ [१]

संस्कृत-साहित्य में समासनिष्ठ शैली उत्तम कोटि की मानी गयी है इसके बिना संस्कृत-काव्य रचना सर्वांगीण-सौन्दर्य से हीन समझी जाती है। मिश्र जी ने इसी परम्परा का निर्वाह करने के लिए कतिपय समासपूर्ण पदावली का प्रयोग करके स्वकीय समास सम्बन्धी पाण्डित्य का परिचय दिया है। उपर्युक्त लावनी म वध्नीव्व कुरुष्व विघटय छिन्धि क्षपय आदि प्रयोगों मे—तत्तत् धातुओं के लोटलकार क मध्यम पुरुष का प्रयोग उनके प्रौढ व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रतीक है। किसी भी व्याकरणानभिज्ञ द्वारा—उक्त क्रियाओं के—ऐसे प्रयोग नहीं किये जा सकते।

उर्दू

उर्दू को मिश्र जी ने कविता के लिए उपयुक्त माना है। उर्दू के विषय म वे लिखते हैं—कविता के लिए उर्दू बुरी नही है। वारविलासिनी के कटाक्षो का-सा सुख दे रहती है[२]। यद्यपि मिश्र जी ने हिन्दी उर्दू के आन्दोलन को लेकर उर्दू की बडी भर्त्सना की है फिर भी उन्हे उर्दू के प्रति खिचाव अवश्य था। उन्होंने उर्दू मे पर्याप्त कविताए लिखी हैं और सभी भाषा आदि की दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ़ हैं। उदाहरणार्थ एक गजल की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

गरचे यह सक की बला है इश्क।
तो भी देता अजब मजा है इश्क॥
बुलहवस को तो खेल सा है इश्क।
आशिकों के लिए कजा है इश्क॥
आकिलों जाहिलो गदावो शाह।
एक सा सब को जानता है इश्क॥
उसको इसका मजा मिला ही नहीं।
क्यों न वायज कहे बुरा है इश्क॥"[३]

फारसी

फारसी म लिखी मिश्र जी की कुछ कविताएँ मिलती है जिनको देखकर उनके फारसी भाषा के ज्ञान का पता लगता है। जिस प्रकार संस्कृत म श्लोक

---

१ स नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ८४ ८५ ('मन की लहर')

२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८ ('प्रेमियों के लायक गजल)

ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ४ (प्रेम प्रसग)

लिखना कठिन है उसी प्रकार फारसी में गजल लिखना कठिन होता है फिर भी मिश्र जी अधिकार के साथ फारसी में गजलें लिखते हैं —

> बरादर नदिदा गदू शाक वज दस्त बिगुजारम् ।
> सुबा यारम् खिगिम दाग्म् खुदादारम खिगमदारम् ॥
> बरवानर होशयारीरा जुनू दीवानए यारम ।
> शुमारद हेच शारीरा नवाए बुएबिल्वारम् ॥
> बमस्तऐ जानेजा अर्दने मन रिश्तए इश्कत ।
> मरा पर्वाय तसबीहस्तो नम्वाहूले जुन्नारम ॥
> बुर्द मअबुदमो मकसूदमो मअशूकमो मुनफिक ।
> चरा शायद् मिश्रानाद श्राकसे दीगर सरोकारम् ॥ [1]

मिश्र जी का उपरूक्त सभी भाषाओं पर पूरा अधिकार था। वे स्वच्छन्दता से सभी भाषाओं पर अपनी कलम चलाते थे। उनकी भाषा बहुज्ञता को देखकर वस्तुतः आश्चर्य होता है। अपने युग में वे ही ऐसे एक कवि थे जिन्होंने संस्कृत और फारसी में भी उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं। यद्यपि मिश्र जी ने संस्कृत और फारसी का बाकायदा अध्ययन नहीं किया था फिर भी अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होंने इन भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। कहना न होगा कि मिश्र जी से प्रतिभा सम्पन्न कवि हिन्दी में कम ही दिखाई पड़ते हैं।

छन्द विधान

मिश्र जी ने मात्रिक और वर्णिक—दोनों प्रकार के छन्द लिखे हैं। मात्रिक छन्दों की तो संख्या बहुत अधिक है उनका नामकरण करना ही दुरूह है। वर्णिक छन्दों में उन्होंने केवल कवित्त और सवैया लिखे हैं। मिश्र जी के छन्दों का—अध्ययन की सुविधा के लिए—तीन भागों में बाँटा जा सकता है—प्राचीन छन्द उर्दू छन्द और लोकगीत।

प्राचीन छन्द

प्राचीन छन्दों में मिश्र जी ने कवित्त सवैया दोहा चौपाई, छप्पय, कुण्डलियाँ बरवै सोरठा आदि छन्दों की रचना की है। परम्परागत जितने भी छन्द मिश्र जी के समय में प्रचलित थे सभी उनकी कविताओं में मिलते हैं। प्राचीन छन्दों में दोहा मिश्र जी को विशेष प्रिय था इस छन्द में उन्होंने कई कवितायें लिखी हैं। नीचे प्रमुख छन्दों के उदाहरण देखिए—

---

1 डा० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १६१ ६२ ('प्रेम पुष्पावली')

दोहा—

'छबि सागर नागर नवल सब गुन गन आगार।
छल छबीले रसिक वर प्रमिका प्रान अधार ॥'[1]

पद—

सब धम पर धम गहौ बस।
जो चाहे आनन्द अखण्डित, पान कर प्रभु प्रम सुधारस ॥
और कम ससारिक जितने, हैं सब सात्विक राजस तामस।
सबके फल सुख दु ख अल्प हैं, बने सदा नहि रहैं एक रस ॥
करके कठिन मुक्ति के साधन फेर देखिए भाग बहु दिवस।
है कि नहीं कुछ कसी क्या है हमको मुक्तिहि मे असमजस ॥
मिले सहज म बढ़े निरन्तर, मिट कदापि न हृदय रहै बस।
यह सुख पाव जो प्रताप सो सुखमय देसे नित्य दिशा दस ॥'[2]

सवैया—

"धाम बसें नित पारवती तउ जोगि सिरोमनि काम अराती।
पान कियो अति तिच्छ हलाहल, तौहू अनन्द रहै दिन राता ॥
भूत सखा घर घोर मसान तऊ निवरूप सदा सब भाँती।
धन्य है प्रेम प्रभाव पवित्र विचारत ही जिहि बुद्धि बिलाती ॥[3]

कवित्त—

'जात हौ पथिक लोग मधुपुर जो भरोसौं व
तुमहू प्रताप हरि सौ गाढ़ तान गहियो।
आपनु सयाने हो कहिये कहालौं और,
जब-तब ब्रजबासिन की सुधि लेत रहियो ॥
विरह आवेसन मे जो कछु कह्यो होय,
सिधरेसो ऊच नीच बातन को सहियो।
हा हा बटोही मधुपुर पधारयो जो
मेरो गोपाल जी सों म गोपाल कहियो ॥'[4]

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या १ ('वर्षारम्भ)

२ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५१। (प्रम पुष्पावली)

३ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८।

४ „ —वही— , पृष्ठ १८४

चौपाई—

वेदादिकन बहुत गुण गावा। प सब भेद बरनि नहि पावा॥
नेति-नेति कहि-कहि सब थाके। कहि न सके यश जगतपिता के॥"[1]

कुण्डलियाँ

कविता तब कुम्हिलात लखि दुरदिन ग्रीषम हेत।
सींचन को ताके भये श्री हरिश्चन्द्र सचेत॥
श्री हरिश्चन्द्र सचेत सदा रहि प्रफुल्लित कीन्ह्यों।
थोरहिं दिन में सरस मधुर फल को रस लिन्ह्यों॥
हाय! अचानक उयो आज दुख दाहन सविता।
भारतेन्दु भो अस्त विलानी उडगन कविता॥[2]

इस प्रकार मिश्र जी को छन्दो का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने ललित कवि से छन्द शास्त्र का अध्ययन भी किया था। अपने छन्द-शास्त्र के ज्ञान के ही विश्वास पर वे—खड़ी बोली के आन्दोलन में—श्रीधर पाठक को चुनौती देते हुए कहते हैं—आप छन्दार्णव जैसी कोई भी पिंगल शास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी हिन्दोस्थान मे प्रत्येक छन्द का उदाहरण खड़ी बोली म दीजिए और मैं ब्रजभाषा म देता हूँ।[3]

उर्दू छन्द

उर्दू छन्दो मे प्रमुख रूप स मिश्र जी न गजल, शेर कसीदा मुसल्लस, विसअ आदि को अपनाया है। इनके उदाहरण इस प्रकार है

गजल—

'मुद्दतों हमसे वह गो करता बहुत खिल खिल रहा।
शुहदपन का हो भला जिसकी बदौलत मिल रहा॥
गाढ में जायँ ये दिल पत्थर पड़े इस इश्क पर।
उम्र भर वह सग दिल छाती को मेरे सिल रहा॥
वह लगे उड़ाने तो यां कदुवा ही पड़ना ठीक है।
वरना क्या ऐ हमनशीं! काफूर के फिल फिल रहा॥
दिल दिया हमने तो तेरे बाप का नुक्सान क्या।
मासिहा किस वास्ते है हमसे कर टिल टिल रहा॥[4]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ९ १० (श्री प्रेमपुराण)
२ 'ब्राह्मण खण्ड ८, सख्या ९ ('भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का मर्सिया')
३ हिन्दोस्थान' २१ माच, १८८८ ई०
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ३४ ('बो उर्दूदान के सफर बाइयों के याद रखने लायक गजल)

हिन्दी में भी मिश्र जी ने गजलें लिखी हैं—

क्यों दीनानाथ ! मुझ पै तेरी कुछ दया नहीं
आश्रित तेरा नहीं हूँ कि तेरी प्रजा नहीं।
मेरे तो नाथ ! कोई तुम्हारे बिना नहीं
माता नहीं बन्धु नहीं है पिता नहीं॥
माना कि मेरे पाप बहुत हैं प हे प्रभो
कुछ उनसे न्यूनतर तो तुम्हारी दया नहीं।
करुणा करोगे क्या मेरे आसू ही देखकर
जी का भी मेरे दुख तो तुम से छिपा नहीं॥ [1]

शेर—

'पूछे है कौन खाकनशीनों का हाल जार।
रहता है आसमान प सरकार का दिमाग॥ [2]

कसीदा—

कि जिस की ख्वाब में पहुँचे खयाल इंसां का नामुमकिन।
फरिश्तों ने जहाँ आने में, अकसर जक उठाई है॥
वहाँ तक कीजिए तौसीफ उसकी सब बजा लेकिन।
नहीं उरफी को दावा दूसरों की क्या चलाई है॥
यही बिहतर कि हक में हम—हरदम दुआ माँगें।
यही बस फर्ज अपना है इसी में सब भलाई है॥
खुदाया खुश रहे वह फखरे आलम रोजे महशर तक।
कि जिसकी जाते बा बरकत को जेबा सब बड़ाई है॥' [3]

मुसल्लस

उर्दू में दूसरे शायरों की गजलों पर अपने मिसरे लगाकर मुसल्लस बनाये जाते हैं। मिश्र जी ने भी इसी रीति के अनुकरण पर दूसरे कवियों के पदों पर अपने मिसरे लगाकर मुसल्लस बनाये हैं। कबीर के दोहा पर बना मुसल्लस देखिए —

'तुम्हारा ही खुशी से खुश हैं या अपनी रजा क्या है।
किसी का लीजिए इसमें हमें उज्रो गिला क्या है॥

---

१ ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९ १० (हिन्दी गजलें)
२ 'ब्राह्मण खण्ड ५, संख्या ८ (नये उर्दू छन्द)
३ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ६ (कसीदों')

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥ [1]

कितअ

"खुदा है ही नहीं यह बात काफिर।
कसिदके दिल कभी कहता न होगा॥
मगरज सिफ्त नामुमकिन है इनकार।
मुकर्रर उसने यह समझा न होगा॥
मयक्के बेबसी ख्वाहाने इमदाद।
वही मतलाये होगा या न होगा॥
बरहमन तेरी इन बातों में यह लुत्फ।
गुमां था हमको तू दीवाना होगा॥ [2]

लोक-गीत

राष्ट्रीय चेतना और हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से मिश्र जी ने लोक गीतों का लिखना प्रारम्भ किया। इस दिशा में उन्होंने पर्याप्त गीत लिखे और उन्हें अच्छी सफलता भी मिली। इनके लोक-गीत बड़े सरल, स्वाभाविक और मनोरंजक हैं। इन्हीं गुणों के कारण उन्हें बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में— जनता के लिए जन भाषा में जिन लोगों ने कविता लिखी है उनमें प्रताप नारायण मिश्र का स्थान अन्यतम है। उनकी उक्तियों में वही सिधाई है जो उनके निबन्धों में है, वह सिधाई जो अति साधारण पाठकों का हृदय भी हिला देती है। उनमें वह बाँकपन भी है जो एक सफल हास्य और व्यंग्य लेखक को ही सुलभ हो सकता है।[3] मिश्र जी के गीत—लोक गीतों के क्षेत्र में आदर्श हैं क्योंकि इनके पूर्व ऐसे गीत कोई कवि नहीं लिख सका। लोक-गीतों में मिश्र जी ने लावनी, आल्हा, होली, कजली, दादरा आदि लिखे हैं।

लावनी

लावनी मिश्र जी को विशेष प्रिय थी क्योंकि इसका प्रचार उन दिनों बहुत बढ़ा चढ़ा था। तुर्रे वालों में नत्यासिंह तालिब, बाबा रामचरन गिरि, बाबा शम्भु पुरी, पण्डित रामप्रसाद आदि तथा कलंगी वालों में बाबा बनारसीदास उस समय विशेष प्रसिद्ध थे। इन लावनी-बाजों का भारतेन्दु-युग के कवियों पर बड़ा प्रभाव

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १६५ ('प्रेम पुष्पावली)

२ —वही— " पृष्ठ १६३

३ डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु युग (तृतीय संस्करण), पृष्ठ १४७

पड़ा और प्राय सभी कवियो ने लावनियाँ लिखी । मिश्र जी कानपुर के लावनी बाजो म प्रमुख थ । इन्ही क कारण कानपुर लावनी-बाजो का केन्द्र बन गया था । मिश्र जी को लावनी क किसी सम्प्रदाय विशेष से प्रेम नही था । वे स्वतन्त्र रूप से लावनी लिखते थ । वैस तुर्रा सम्प्रदाय के प० प्रभूदयाल स प्रभावित अवश्य थे पर उनम सम्प्रदायगत सकीणता नही थी । कहते हैं कि जब कोई भी दल पराजित होने लगता था तब मिश्र जी उसकी ओर स लावनी कहत थ और अपनी 'आशु' रचना की शक्ति से बाजी मार ले जाते थ । यहा तक कि एक बार बाबा बनारसीदास को इनसे मुह की खानी पडी—बाबा बनारसीदास प्राय कानपुर आते थे और महीना वहा ठहरते भी थ उस समय बाबा बनारसीदास को उत्तर देने वाला कानपुर म कोई नही था । इसस कुछ लोगो ने प्रतापनारायण मिश्र जी का उनसे भिडा दिया । जिसक परिणामस्वरूप कइ दिन तक उनक और मिश्र जी क बीच लावनी होती रही पर अन्त म बनारसीदास जी को मैदान छोडना पडा । मिश्र जी ब्रजभाषा खडी बोली बसवाडी उर्दू फारसी सस्कृत आदि कई भाषाओ म लावनी लिखते थे तथा चग बजाकर बडे सुरीले राग म उन्हे गाते भी थ । मिश्र जी लावनिया मे— मात्राओ आदि का ध्यान न रखकर राग को ही विशेष महत्व देते थे इसस उनके मिसरा मे मात्रायें कम या ज्यादा हो गयी है पर राग म उनम कोई अवरोध नही पडता । उदाहरण क लिए एक उर्दू-लावनी की कुछ पक्तिया देखिए—

यों दुनिया म कहने कोई को पहित है कोई दाना है।
भेद खुदा का मगर, कुछ मस्तों ही ने जाना है।
यकीन यह हर शख्स का है महदूद अक्ल इसान की है।
अपार महिमा हमारे मालिक श्री भगवान् की है।
लाओहोसी और नेति जबकि तहरीर वेद कुरआन की है।
बयां कर सक यह ताकत हरगिज नहीं जुबान की है ॥ [1]

सम मात्राओ की भी उनकी अनक लावनिया है पर उनम स्वत ही मात्रायें सम हो गयी है मिश्र जी न उन्हें सम करने का प्रयत्न नही किया । उदाहरणार्थ एक खडी बोली लावनी की—निम्नाकि पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

'जब से देखा प्रियवर । मुखचन्द्र तुम्हारा ।
ससार तुच्छ जचता है हमको सारा ॥
इच्छा रहती है नित्य य शोभा देखें ।
लावण्यमयी यह दिव्य मधुरता देखें ॥

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १०० १०१ (मन की लहर')

यह भाव अलौकिक भोलेपन का पेखें।
इस छवि के आगे और भला क्या देखें॥
आहा! यह अनुपम रूप जगत से न्यारा।
ससार तुच्छ अंचता है हमको सारा॥ [१]

मिश्र जी ने सकडो लावनिया लिखी है जो भाषा और राग की दृष्टि से अच्छी तथा देश प्रम और ईश्वर भक्ति की भावना स परिपूर्ण हैं।

आल्हा

भारतेन्दु युग मे मिश्र जी ने ही सवप्रथम आल्हा लिखना प्रारम किया और अन्य कवियो स भी लिखन के लिए—अनुरोध किया साथ ही इसके लिखने क नियम भी उन्होने कविया को बतलाये। वे लिखते है— जिस छन्द मे आल्हा गाया जाता है वह यद्यपि किसी प्रसिद्ध पिंगल म हमन नही दखा पर अनक विद्वाना का मत है कि वह कडखा छन्द है जिसका प्रस्तार यो है कि पहिली यति १६ मात्रा पर होती है दूसरी १५ पर और अन्त का अक्षर अवश्य लघु एव उसक पहिल का एक अवश्य गुरु होगा। मात्रा छन्द होन स कुछ अधिक बन्धन नही युद्ध म वीरा को उत्साह दिलाने वाले गीतों को कडखा कहत है और आल्हा म विशेषत वीरा का ही वणन होना है। इसी मूल पर इस छन्द का नाम भी कडखा पड गया है नही कडखा छन्द का रूप और है और आल्हा (कदाचित् यह नाम अल्हन सिंह हो) का चरित्र ही इस छन्द म *बहुधा गाया जाता है* अत *इस गीत का भी आल्हा कहते हैं।* [२] इसी निबन्ध म आग मिश्र जी न आल्हा के ६० मिसरे भी दिय हैं जिनकी सहायता स लिखा जा सकता है। मिश्र जी न आल्हा को भी दो पुस्तक—कानपुर माहात्म्य और दगल खण्ड—लिखी हैं। य दोना ही पुस्तकें बडी सरस एव मनोहर हैं। मिश्र जी के आल्हे की कुछ पक्तिया यहा द्रष्टव्य हैं—

गड गड गड़ गड बादर गरज कौंधा लपकि लपकि रहिजाय।
दादुर मोर पपीहा बोल औ बन मां कोयल कुक्हाय॥
भगत मनाव निराकार का रसिया बागन कर विहार।
परे हिंडोरा हैं घर घर मा गोरिया गाव राग मलार॥
जिनक कन्ता हैं घर भीतर, तिनके सदा तीज्र त्योहार।
रचि रचि महदी बड़ हाथन मां चोटी गूथि कर सिंगार॥

---

१ स नारायणप्रसाद अरोडा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई) पृष्ठ १०० १०१ ('मन की लहर')

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ५ (आल्हा आल्हाद)

सब सुख बिसरि जाय उठ जिनके बसमा चलन चहैं परदेश।
मन मां सोच मनैं बिसूरैं कसे कटिहैं कठिन कलेश॥'[1]

आल्हा की ये पंक्तियाँ मिश्र जी के उपर्युक्त विवेचन पर ही आधारित हैं। इनमें १६ और १५ पर यति तथा अन्त का पहला अक्षर गुरु और दूसरा लघु है। मिश्र जी की-ही परम्परा में आगे चलकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपना सरगौ नरक ठिकाना नाहिं आल्हा लिखा।

होली

होलियाँ मिश्र जी ने बहुत सी—अनेक राग रागिनियों में लिखी हैं और अधिकांश के रागों का नाम भी उन्होंने, उससे सम्बन्धित होली के प्रारम्भ में दे दिया है। काफी राग में लिखी एक होली देखिए—

'हिलि मिलि भारत सन्तान होरी खेलिए।
बरस दिना पर आज सुदिन यह दिखरायो भगवान।
ऐसहू मे न अनन्द मनायो तो परिहै पछितान॥
प्रेम रंग बरसाय परस्पर गाय सुमंगल गान।
लाज छोड़ि बहु रूप सजौ जिहि होय देश कल्यान॥[2]

कुछ होलियों के प्रारम्भ में मिश्र जी ने प्राचीन गीतों के प्रथम चरण देकर (जिनके आधार पर उन्होंने अपनी होली लिखी है) उनकी ध्वनियों का संकेत भी कर दिया है जिससे गाने वालों को बड़ी सहायता मिलती है। यथा—

(कान्हा खेलत फागु आगु उठु देख ननदिया की धाम पर)

खेल सब फागु भागहत भारतवासी।
धन बल को नित धूरि उड़ावत गौरव पर धरि आग।
फूट बैर स्वारथ रंगराते बोरी देश अनुराग॥ खेल॥
गारी सुनत विधरमिन के मुख लाज वई सब त्याग।
छाके रहैं अविद्या आसव मदु सुख विष सम लाग॥[3] खल०॥

कजली

मिश्र जी की कई कजलियाँ भी प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ एक कजली देखिए—

'कसक मोरे रे करेजवा तोरे नैना बांके बान।
मोंहि मूरति जस वह दिन ताको बांकी मोंह कमान॥
जादू भरी रसीली चितवन प्रेम भरी मुसकान।
छिन छिन पल-पल पर सुधि आवत बिसरावत सब ज्ञान॥

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२२ २२३ (बंगला खण्ड)
२ ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ८ (काफी)
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३७ ('होली')

अब परताप' न जीवत रहिहैं बिना अधर रसदान ।
धाय आय गर लागु पियरवा नाहितु निक्स प्रान ॥ [१]

दादरा

मिश्र जी का एक दादरा भी देखिए—

तोहिं छला मैं छाती लगाये रहिहौं ।
आंखिन तें कछु दूरि न करिहौं पुतरी प्यारे बनाये रहिहौं ॥
पलकन ते नित पांय दाबि के उर पर सदा सोआये रहिहौं ।
जो कछु मोंहि चढ़ी देखिहौं तौ परि-परि पयां मनाये रहिहौं ॥
डारि गरे तोरे अपनी बहियां, प्रेम के जाल फसाये रहिहौं ।
प्रिय प्रताप तोरी इक इक छबि पर तीनों लोक लुटाये रहिहौं ॥ [२]

इसके अतिरिक्त 'संगीत शाकुन्तल' में मिश्र जी ने अनेक छन्दों और राग रागिनियों में लोक-गीत लिखे हैं । लोक-गीतों के लिए संगीत शाकुन्तल दृष्टव्य है। छन्दों के ज्ञाता होने के साथ-साथ मिश्र जी संगीत के भी आचार्य थे इससे उनके छन्द रागों पर भी बड़े अच्छे उतरते हैं । संगीत शाकुन्तल में मिश्र जी ने लगभग ७२ राग रागिनियों में गीत लिखे हैं और सभी गीत अपनी गेयता में सफल हैं । उदाहरण के लिए दरबारी काहरा राग में लिखा एक गान देखिए—

'कहौं कहा मूल भई बड़ी आय ।
निरदोसी को दोष लगायो रह्यो तासु फल पाय ॥
वा सुखदायिनि के सनेह को कीन्हौं सुधि बिसराय ।
सोई अब छिन छिन सुधि करि-करि रह्यो हियो अकुलाय ॥
बिदित वियोगी जानि मोंहि अति रतिपति रह्यो सताय ।
आम बौर मिस बान तानि के उर भेदत नित आय ॥ [१]

मिश्र जी का छन्द-विधान बड़ा विस्तृत है । उसमें यदि एक ओर प्राचीन छन्दों की-सी सीमाबद्धता है तो दूसरी ओर नवीन गीतों की-सी स्वच्छन्दता भी है । उनके प्राचीन-छन्द शास्त्रीय परम्परा से युक्त हैं तथा उन छन्दों और लोक-गीतों में उनकी वैयक्तिकता की प्रधानता है इससे बहुत से नये गीतों का भी सृजन हो गया है । मिश्र जी ने अपनी प्रतिभा से गीतों में जान डाल दी है । इनके सभी गीत सरस प्रवाहपूर्ण हृदयस्पर्शी और गेयता से युक्त हैं ।

अलंकार योजना

मिश्र जी मनमौजी कवि थे । वे अलंकारों के पीछे नहीं पड़े । जो भी अलंकार

---

१ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ११ (कजरी)
२ ब्राह्मण खण्ड संख्या ११ (दादरा)
३ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) छठवां अंक पहला पृष्ठ

उनकी कविताओं म दिखाई पडते है वे स्वत ही आ गये हैं। मिश्र जी की कविताओ म प्राय प्रमुख अलकार ही मिलते है जो प्रयासजन्य न होने के कारण बडे स्वाभाविक हैं। शब्दालकारों मे अनुप्रास यमक श्लेष आदि तथा अर्थालकारो में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक आदि का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास मिश्र जी की कविताओ म अधिक आये हैं। यथा—

जाकी महिमा अपार गावत नित मति उदार
निराकार निर्विकार निगुण गुणराशी।
अद्वितीय अज अनूप विपुल विविध मूर्ति भूप
सत चित आनन्द रूप कठिन क्लेश नाशी॥ १

यमक के भी कुछ उदाहरण यहा हर द्रष्टव्य हैं—

जग के सुख जावहि कत्रा सांचे सेवक तोर।
साय सकत तिन हेतु तू मम के तारे तोर॥ २
'कल पाव न प्रान तुम्हें बिन देखे इन्हें अधिको कलपाइये ना।
परतापनरायणजू' के निहोरे पिरीति प्रथा बिसराइये ना॥ ३

इन उद्धरणा म तोर और कलपाना शब्द दो-दो बार आये हैं और इनके अथ भिन्न-भिन्न है अत इनमें यमक छन्द सहज ही देखी जा सकती है।

श्लेष अलकार का प्रयोग भी निम्नलिखित सवया के 'बान' और निशिनाथ शब्दो मे देखिए—

माथ अवासहि म दुरि बठिबो बास में आनन ढांकि रहे हैं।
बास चले प्रतापनरायण' गात सबै थहरात महे हैं॥
द्वार कर सिसकी के घने निनि नाथ ते दूरि रह्योई चहै हैं।
लोग सब रितु सीत की मीत ते नारि नओढ़ा की रीति गहै हैं॥ ४

उपमालकार प्राय प्रत्येक कवि को प्रिय होता है। मिश्र जी न भी इसका प्रयोग बहुतायत मे किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं—

विष लागत व्यवहार जगत के
सुमिरि सुधा सम बचन तिहारे। ५
वह कोमल तन कमल बदन—
जेहि लखि जग होत निहाल। ६

---

१ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १४६ (प्रम पुष्पावली')
२ ब्राह्मण खण्ड १ सख्या ९ १० (तारापात पचीसी)
३ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ११८
४ स० नारायण प्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ ११८
५ ब्राह्मण खण्ड ७ सख्या १० (नोहाष्ट)
६ ,, —वही—

अब 'परताप' न जीवत रहिहैं बिना अधर रसदान ।
धाय आय गर लागु पियरवा नाहितु निकस प्रान ॥ [1]

दादरा

मिश्र जी का एक दादरा भी देखिए—

तोहिं छला में छाती लगाये रहिहौं ।
आँखिन ते कछु दूरि न करिहौं पुतरी प्यारे बनाये रहिहौं ॥
पलकन ते नित पाँव चापि क उर पर सदा सोआये रहिहौं ।
जो कछु भौंह चढ़ी देखिहौं तो परि-परि पैयाँ मनाये रहिहौं ॥
डारि गरे तोरे अपनी बहियाँ, प्रेम क जाल फँसाये रहिहौं ।
प्रिय 'प्रताप तोरी इक इक छबि पर तीनों लोक लुटाये रहिहौं ॥ [2]

इसक अतिरिक्त सगीत शाकुन्तल मे मिश्र जी न अनक छन्दो और राग रागिनियो म लोक-गीत लिख है । लोक गीता क लिए सगीत शाकुन्तल दृष्टव्य है । छन्दो क ज्ञाता होन क साथ-साथ मिश्र जी सगीत क भी आचाय थ इससे उनक छद रागो पर भी बड अच्छ उतरत ह । सगीत शाकुन्तल म मिश्र जी ने लगभग ७२ राग रागिनियो म गीत लिख हैं और सभी गीत अपनी गयता म सफल हैं । उदाहरण क लिए दरबारी कान्हरा राग म लिखा एक गीत दखिए—

'कहाँ कहा मुज भई बड़ो आय ।
निरदासा को दाय लगायो रह्यो तासु फल पाय ॥
वा सुखदायिनि के सनेह को दीन्हीं सुधि विसराय ।
सोई अब छिन छिन सुधि करि-करि रह्यो हियो अकुलाय ॥
विवित वियोगी जानि मोहिं अति रतिपति रह्यो सताय ।
आम बौर मिस बान तानि क उर भेदत नित आय ॥ [3]

मिश्र जी का छद विधान बड़ा विस्तृत है । उसम यदि एक ओर प्राचीन छन्दों की-सी सीमाबद्धता है तो दूसरी ओर नवीन गीतो की-सी स्वच्छदता भी है । उनक प्राचीन छन्द शास्त्रीय परम्परा स युक्त हैं तथा उद छन्द और लोक-गाथा म उनकी वैयक्तिकता की प्रधानता है इससे बहुत म नय गीतो का भी सृजन हो गया है । मिश्र जी ने अपनी प्रतिभा स गीतो म जान डाल दी है । इनक सभी गीत सरल प्रवाहपूर्ण हृदयस्पर्शी और गेयता स युक्त हैं ।

अलकार योजना

मिश्र जी मनमौजी कवि थ । वे अलकारो क पीछे नहीं पड । जो भी अलकार

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ११ (कजरी)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड सख्या ११ ('दादरा)
३ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवां अक पहला दृश्य

उनकी कविताओं में दिखाई पड़ते हैं स्वतः ही आ गये हैं। मिश्र जी की कविताओं में प्रायः प्रमुख अलंकार ही मिलते हैं जो प्रयासजन्य न होने के कारण बड़े स्वाभाविक हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक श्लेष आदि तथा अर्थालंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास मिश्र जी की कविताओं में अधिक आये हैं। यथा—

> जाकी महिमा अपार गावत नित मति उदार
> निराकार निर्विकार निर्गुण गुणराशी।
> अद्वितीय अज अनूप विपुल विविध भूति भूप
> सत् चित् आनन्द रूप कठिन क्लेश नाशी॥'[1]

यमक के भी कुछ उदाहरण यहाँ पर द्रष्टव्य हैं—

> 'जग के सुख चाहहिं फरा साँचे सेवक तोर।
> लाय सकत तिन हेतु तू नभ के तारे तोर॥'[2]

> 'कल पावै न प्रान तुम्हें बिन देखे इन्हें अधिको कलपाइये ना।
> परतापनरायणजू के निहोरे, पिरीति प्रथा बिसराइये ना॥'[3]

इन उदाहरणों में 'तोर' और 'कलपाना' शब्द दो-दो बार आये हैं और इनके अर्थ भिन्न भिन्न हैं अतः इनमें यमक छटा सहज ही देखी जा सकती है।

श्लेष अलंकार का प्रयोग भी निम्नलिखित सवैया के 'बात' और 'निशिनाथ' शब्दों में देखिए—

> 'भाव अवासहि में दुरि बठिबो घास मे आनन ढाँपि रहे हैं।
> बात चले 'प्रतापनरायण' गात सब थहरात भये हैं॥
> ...ार कर मिसरी के घने निशि नाथ ते दूरि रहाई भये हैं।
> लोग सब रितु सीत की भीत ते, नारि नवोढ़ा की रीति गहे हैं॥'[4]

उपमालंकार प्रायः प्रत्येक कवि का प्रिय होता है। मिश्र जी ने भी इसका प्रयोग बहुतायत में किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं—

> 'विष लागत व्यवहार जगत के
> सुमिरि सुधा सम वचन तिहार।'[5]
> यह कोमल तन कमल बदन—
> जेहि लखि जग हाँन निहाल।'[6]

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १६१ ('कुसुम पुष्पावली')
२ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ११० ('तारागण पचासा')
३ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १०८
४ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १०८
५ ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या १२ ('गोरक्षा')
६ , '—वही—'

उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग भी जहाँ-तहाँ उत्कृष्ट है। यथा—

> बेद सन्दरिन के मनो, टूटे हार समुदाय।
> सो मसलन की भाँति सब, गिरत घहत इत आय॥
> दीन दशा हिन्दून की, देखि दया उर लाय।
> सुजन समुझि देखन दिये भूषण मनहु चलाय॥' [१]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने रूपकों की भी—अपनी कविताओं में अच्छी योजना की है। देखिए—

> अति गाढ़ मोह तम नाशी उर विद्या सूय प्रकाशो।
> सुखदायक मार्ग दिखाओ कुपथ से सदा बचाओ॥ [२]

ऐसे ही साग-रूपकों की रचना में मिश्र जी को अत्यन्त सफलता मिली है—

> 'कविता तरु कुम्हिलात लखि दुर्दिन ग्रीषम हेत।
> सींचन को ताके भये श्री हरिश्चन्द्र सचेत॥
> श्री हरिश्चन्द्र सचेत सदा रहि प्रफुलित कीन्ह्यो।
> थोरहि दिन मे सरस, मधुर जस को फल लीन्ह्यौ॥
> हाय! अचानक उयो आज दुख दाहन सविता।
> भारतेन्दु भो अस्त बिलानो उडगन कविता॥ [३]

सामान्य अलकारो मे पुनरुक्ति प्रकाश शब्दालंकार भी मिश्र जी की कवितामों मे यत्र-तत्र मिलता है। जैसे—

> स्वागत! स्वागत! स्वागत! श्री भारत हितकारी।
> आवहु निभ्रम न्याय निरत नित पगधारी॥
> आवहु आवहु भली करी इहि ओर पधारे।
> बहुत दिनन के भये मनोरथ सफल हमारे॥' [४]

मिश्र जी के अलंकार कविता मे भूषण बनकर ही आये हैं। उनसे भावो पर किसी प्रकार का दबाव नही पडता बल्कि उनसे भाव अधिक तीव्रतर और कविताए अधिक आकर्षक बन गयी हैं। मिश्र जी कविता के स्वाभाविक विकास के ही पक्ष पाती थे उन्हें चमत्कारिकता प्रिय नही थी। कम एक-दो कविताओं मे उनकी कलात्मकता मिलती है फिर भी वह खिलवाड़ या हास्यास्पद नही प्रतीत होती

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ९-१० (तारापात पचीसी)

२ स नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५९ (प्रेम पुष्पावली)

३ 'ब्राह्मण खण्ड ८ सख्या ९, ('भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का मर्सिया)

४ 'ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ५ (स्वागतं ते महाराज)

इसमें भी बहुत-कुछ स्वाभाविकता ही है। उदाहरण के लिए 'कवाराष्टक' की निम्न लिखित पंक्तियां देखिए—

कसहु करावन हार परम पंडित कलुपाकर।
कोटिन कलित पय प्रचारि सद्धम मौलि हर॥
काम कला सिसुताहिं माहिं सिखवत यल नासत।
बहु महगी बहु कुरुज भांति भांतिन परकासत॥
करि के मिस दीन प्रजान कर सब प्रकार सरबस हरन।
कलिराज कपटमय जयति जय भारत कहं गारत करन॥[1]

इस कविता की प्रत्येक पंक्ति 'क' से ही प्रारम्भ होती है और कविता के भीतर भी 'क' की ही आनुप्रासिकता दिखाई पड़ती है पर इसमें—भावों के स्पष्टीकरण में किसी प्रकार का अवरोध नहीं पड़ता। मिश्र जी की कविता के भाव पक्ष और कलापक्ष में पूर्ण सामंजस्य है। भावपक्ष समुचित कला को पाकर आकर्षण और कलापक्ष भी उत्कृष्ट भावों को पाकर सरस हो गया है। यहां तक कि मिश्र जी की उपदेशात्मक कविताओं का भी बहिरंग अत्यन्त प्रभावशाली है।

मिश्र जी की कविता में उनकी विलक्षण प्रतिभा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, क्या भाव, क्या भाषा क्या छन्द—सभी में उनकी अपनी स्वच्छन्दता है। इसी स्वच्छन्दता के ही कारण उनकी कविता-बहुमुखी होकर विकसित हुई है। उनकी कविता में—भावी स्वच्छन्दतावादी कविता का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कुछ साहित्यकार उनकी कविता की उपदेशात्मकता देखकर उन्हें उपदेशक या समाज सुधारक की कोटि में ले आते हैं पर मिश्र जी में एक कवि के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे उनकी कल्पना की सजीवता और भाव प्रबलता उनकी प्रत्येक कविता में देखी जा सकती है। डा० मुंशीराम शर्मा के शब्दों में—'पद्य रचना में तो वे जन्मजात कवि ही प्रमाणित होते थे। जिस प्रकार का मस्तिष्कापन कल्पना प्रवीणता सजीवता तथा भावुकता एक कवि में होनी चाहिए—वैसा सबका सब प्रभूत मात्रा में स्वर्गीय मिश्र जी के अन्दर विद्यमान था।[2] यह उपदेशात्मकता उनमें है अवश्य पर वह उनकी लोक-मंगल की भावना का प्रभाव है। कविता के लिए कोरा मनोरंजन ही आवश्यक नहीं होता लोक हित भी उसके लिए उतना ही अभीष्ट है जितना कि मनोरंजन। गोस्वामी तुलसीदास जी तो उसी कविता को श्रेष्ठ समझते थे जिसमें कि लोक हित की भावना हो—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई॥[3]

---

1 'ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १० (कवाराष्टक')
2 डा० मुंशीराम शर्मा सारस्वत (सं० २०१७ वि०) पृष्ठ २०
3 गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरितमानस (मझला साइज) पृष्ठ ४६ गीता प्रेस गोरखपुर।

इसी से डा० रामविलास शर्मा भी मिश्र जी की कविता पर विचार करते हुए लिखते हैं—जो लोग आनिक माधुकों की अदाओं के बाकपन में बांके हो गये हैं या जो कच-कुच कटाक्ष की कविता में कट मरे हैं उन्हें ये रचनाएं शायद कविता कहलाने की अधिकारी भी न जान पड़ेंगी। परन्तु यदि सहृदयता का अर्थ पीड़ित जन-समुदाय के प्रति निर्दयता नहीं है यदि रस की सृष्टि केवल मानवता के पतन के लिए नहीं वरन् उसके विकास के लिए है यदि रस कच-कुच-कटाक्ष के वर्णन से उत्पन्न होकर भी ब्रह्मानंद सहोदर नहीं हो जाता वरन् उसकी परिणति त्याग और सेवा की प्रेरणा में भी हो सकती है तो ये कृतियां भी कविता हैं और उस कोटि की *कविता हैं जिसकी टक्कर की कम रचनाएं उस युग के हिंदी साहित्य में हैं।* [1] फिर मिश्र जी ने तो उपदेशात्मक—और रसात्मक दोनों प्रकार की कविताएं लिखी हैं इससे उनपर तो ऐसा आक्षेप किया ही नहीं जा सकता। मिश्र जी तो हर दृष्टि से एक सफल और सच्चे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। अतः हम निःसन्देह कह सकते हैं कि मिश्र जी की कविता—समाजसुधारक की भावनाओं से युक्त होते हुए भी काव्यात्मकता से परिपुष्ट है और हम इसे उस युग की या अपने ढंग की सर्वश्रेष्ठ कविता कहने में किंचित संकोच नहीं कर सकते।

१ डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ १४७।

दूसरा अध्याय

मिश्र जी के नाटक

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो का अपना ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि इसी युग स साहित्य का—एक नये सिर स विभिन्न रूपो मे विकास प्रारम्भ होता है। अत इस युग के किसी भी साहित्यकार की किसी भी साहित्यिक विधा का अध्ययन करने स पहले उसकी पूर्व परम्परा को देखना आवश्यक हो जाता है। मिश्र जी क नाटको का वास्तविक मूल्याकन तभी किया जा सकता है जब उनसे पूर्व क नाटकों के उद्भव और विकास के परिवेश म उनके नाटको को देखा जाय। अतएव यहा पर मिश्र जी के नाटकों को देखा जाय। अतएव यहा पर मिश्र जी क नाटको की समीक्षा करने मे पहले उनके पूव की हिन्दी नाटय-परम्परा का सक्षिप्त परिचय दना समीचीन होगा।

हिन्दी नाटक-साहित्य

भारतवर्ष में सस्कृत भाषा म लिखे नाटको की प्राचीन परम्परा मिलती है लकिन हिन्दी नाटक-साहित्य का उद्भव बहुत बाद म हुआ। इसका उद्भव-काल ईसा की उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है यद्यपि कुछ विद्वानो न इसकी क्षीण परम्परा की तेरहवी शताब्दी म जोडन का प्रयत्न किया है और गय सुकुमार रास (१२३२ ई०) को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है पर नाटकीय तत्वो का इसम पूण अभाव है। इसकी भाषा पर भी राजस्थानी हिन्दी का प्रभुत्व है अत इस हिन्दी का प्रथम नाटक कहना उपयुक्त नही जान पडता। इसक बाद ब्रज अवधी और मैथिली भाषाओ म लिख नाटक मिलत हैं जिन्ह हिन्दी-नाटक की विकास परम्परा म जोडा जाता है। ब्रज और अवधी क नाटक राम लीला की गीति-नाट्य परम्परा म लिख गय हैं। इनका विकास सोलहवी शताब्दी स प्रारम्भ होता है। लोगों का अनुमान है कि स्वामी वल्लभाचाय (सन् १४८८ १५३०) द्वारा ब्रजभाषा क्षत्र म कृष्णलीला की गीति-नाट्य परम्परा का और गोस्वामी तुलसीदास (सन् १५२२ १६२३ ई०) द्वारा अवधी भाषा के क्षत्र म 'रामलीला' का सूत्रपात हुआ। इस परम्परा म लिख गय नाटकों म नन्ददास, ध्रुवदास वृन्दावनदास, ब्रजवासीदास आदि के लिख लीला-नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों म गीति और नृत्य की प्रधानता है क्योंकि य रास-मण्डलियो क अभिनयार्थ लिख गय है।। मैथिली भाषा म लिखे नाटक नाटकीय तत्वो म परिपूर्ण हैं। इनका प्रणयन विद्यापति स प्रारम्भ

होता है। विद्यापति का 'गोरक्षा विजय नाटक' (१५वीं शताब्दी) इस दिशा में सर्वप्रथम नाटक माना जाता है। इस नाटक का गद्य भाग संस्कृत और पद्यभाग मैथिली में है। विद्यापति के बाद इस परम्परा में अनेक नाटककार हुए जिनमें गोविन्द रामनाथ झा देवानन्द रमापति उपाध्याय उमापति उपाध्याय आदि के नाटक विशेष प्रसिद्ध हैं। मैथिली भाषा के नाटकों का शिल्प विधान पूर्ण विकसित है। अभिनेयता के गुणों से भी ये परिपूर्ण हैं। इनकी भाषा प्रायः सरल मैथिली है।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में कुछ पद्यबद्ध नाटक भी लिखे गये जो अपनी सम्वाद शैली के लिए उत्कृष्ट हैं। इन नाटकों में रामायण महानाटक (१६१० ई०) हनुमन्नाटक (१६२० ई०), समयसार नाटक (१६३६ ई०) नवाज कृत शकुन्तला नाटक (१६७० ई०) समासार नाटक (१७०० ई०) करुणाभरण (१७१५ ई०) आदि उल्लेखनीय है। इन नाटकों में नाटकीय तत्व नहीं मिलते। केवल 'नाटक' का नाम मात्र ही इनमें मिलता है। हाँ, सम्वाद शैली इनकी दृष्टव्य है।

सत्रहवीं शताब्दी में लिखे दो नाटक यहाँ पर और उल्लेखनीय हैं—एक प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' दूसरा आनन्द रघुनन्दन नाटक'। प्रबोध चन्द्रोदय संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' का अनुवाद है। इसके अनुवादक जोधपुर नरेश महाराज जसवतसिंह है। यह नाटक काव्यात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट है। इस अनुवाद के गद्य और पद्य दोनों ब्रजभाषा में हैं। 'आनन्द रघुनन्दन' मौलिक नाटक है। इसके लेखक रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू हैं। इस नाटक की भी भाषा ब्रजभाषा ही है। इन नाटकों के उपरान्त भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र कृत नहुष' (१८४१ ई०) सैयद आगाहसन अमानत रचित इन्दर-सभा (१८५३ ई०) राजा लक्ष्मण सिंह कृत शकुन्तला' (१८६१ ई०) और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत विद्यासुन्दर' (१८६८ ई०) नाटक लिखे गये। नहुष' पौराणिक नाटक है यह ब्रज भाषा में लिखा गया है। 'इन्दर-सभा उर्दू में लिखा गया गीत-नाट्य है। 'शकुन्तला' और 'विद्या सुन्दर क्रमशः संस्कृत और बंगला के अनुवाद हैं।

उपर्युक्त नाटकों में राजा लक्ष्मणसिंह कृत 'शकुन्तला' और भारतेन्दु कृत विद्यासुन्दर हिन्दी के प्रारम्भिक अनूदित नाटक माने जा सकते हैं। शेष नाटक ब्रज अवधी, मैथिली और उर्दू में लिखे गये हैं इसलिये उन्हें हिन्दी (खड़ी बोली) नाटकों के अन्तर्गत रखना उपयुक्त नहीं जान पड़ता। वैसे इन नाटकों का प्रभाव अवश्य ही हिन्दी पर पड़ा है और इन्हीं नाटकों के विकास क्रम में हिन्दी नाटकों का उद्भव हुआ है। संस्कृत नाटकों का भी हिन्दी-नाटकों पर पूर्ण प्रभाव है। यहाँ तक कि हिन्दी के प्रारम्भिक नाटक संस्कृत नाटकों के ही अनुवाद हैं। हिन्दी नाटकों का विकास इन्हीं अनूदित नाटकों से ही प्रारम्भ होता है।

हिन्दी के मौलिक नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रथम

मौलिक प्रहसन 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७३ ई०) से माना जाता है। भारतेन्दु जी ही आधुनिक नाटक-साहित्य के जनक हैं। आपने अनूदित और मौलिक दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। आपके अनूदित नाटकों में पाखण्ड-विडम्बन (१८७२ ई०), धनंजय विजय, मुद्राराक्षस (१८७५ ई०) कर्पूर-मंजरी (१८७६ ई०) दुर्लभ बन्धु (१८८० ई०) आदि तथा मौलिक नाटकों में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (१८७३ ई०), प्रेम-योगिनी (१८७५ ई०) चन्द्रावली (१८७६ ई०) भारत-जननी (१८७७ ई०) विषस्य विषमौषधम (१८७७ ई०) भारत-दुर्दशा (१८८० ई०) नीलदेवी (१८८१ ई०) सती प्रताप (१८८३ ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु जी के नाटक मुख्यतः पौराणिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय विषयों पर आधारित हैं। इनके मौलिक नाटकों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय विचारों की प्रधानता है। सामाजिक नाटकों में सामाजिक कुरीतियों पर गहरा व्यंग्य किया गया है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' इसी प्रकार का नाटक है। भारत जननी और भारत-दुर्दशा राष्ट्रीय नाटक हैं। इनमें राष्ट्र प्रेम प्रमुख है। इन नाटकों द्वारा उन्होंने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया है तथा अंग्रेजों की कटु भर्त्सना की है। इनके नाटकों की भाषा सरल है तथा अधिकांश नाटक अभिनेय हैं। इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला नाटकों की प्रमुख विशेषताओं को अपने नाटकों में समन्वित किया है, इससे इनके नाटकों का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। उदार दृष्टिकोण होने के कारण वे प्राचीन और नवीन को एक साथ लेकर चले हैं। डा० सोमनाथ गुप्त ने शब्दों में—"भारतेन्दु आरम्भ में अवश्य संस्कृत से प्रभावित हुए परन्तु धीरे धीरे उनके ऊपर तत्कालीन रुचि का ही प्रभाव अधिक होता गया। वह वास्तव में खुली दृष्टि के व्यक्ति थे और केवल वर्तमान को ही न देखकर भविष्य के विषय में भी पहले से ही सोच लेने की प्रवृत्ति उनमें विद्यमान थी। वह समझते थे कि सब कुछ करने पर भी हम तत्कालीन प्रवृत्तियों के प्रभाव से अपने साहित्य को बचाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन्हें बंगला साहित्य में मिल रहा था। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने यही उचित समझा कि वह अपनी रचनाओं को समाधीन बनावें। उनका मार्ग सीधा-साधा था। प्राचीन संस्कृत नाट्य शास्त्र को उन्होंने अपना आधार बनाया और यथासम्भव आधुनिक पुट भी उसमें मिला लिया। ऐसा करने में ब्राह्म-धर्म विशिष्ट काशी जैसी नगरी में भी वे पढ़े लिखे एवं काव्य मार्जन करने से वंचित हो गये और आगे का मार्ग भी प्रशस्त करने में समर्थ हुए।। पूर्व और पश्चिम का यह समन्वय भावी पीढ़ी के लिए बड़ा शुभ हुआ।"[1] भारतेन्दु जी ने अभिनय की दिशा में भी पर्याप्त कार्य किया। कई

---

1. डा० सोमनाथ गुप्त 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ ५२।

नाटकों के अभिनय में स्वत अभिनेता भी बने तथा अपने सहयोगियों को अभिनय के लिए प्रोत्साहित भी किया। इसके अतिरिक्त नाटक पर इन्होंने नाटक (१८८३ ई०) नाम से एक लक्षण ग्रन्थ भी लिखा जो इनके शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है। कहना न होगा कि भारतेन्दु द्वारा हिन्दी नाटक-साहित्य उत्पन्न तो हुआ ही साथ ही उसका सम्यक विकास भी इन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेन्दु के ही समय मे—भारतेन्दु के अतिरिक्त और भी बहुत से लेखकों ने नाटक लिखे हैं जिनमे बालकृष्ण भट्ट लिखित शिक्षादान (१८७७ ई०) राधाकृष्ण दास के दुखिनीबाला (१८८० ई०) और पद्मावती (१८८२ ई०), देवकी नन्दन त्रिपाठी के बाल-विवाह (१८८१ ई०) तथा गोवध निषेध (१८८१ ई०), अम्बिका दत्त व्यास के गोसंकट (१८८२ ई०) और ललिता नाटिका (१८८४ ई०) आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों के गद्य की भाषा खड़ी बोली तथा तथा पद्य की भाषा ब्रजभाषा है। इनमे देश और समाज का चित्रण ही प्रमुख रूप से किया गया है। ये नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही नाटकों के अनुकरण पर लिखे गये हैं। इनकी भाषा सरल और पात्रानुकूल है। इस युग के लेखक भाषा को प्रौढ़ बनाने में नहीं लगे। उनका उद्देश्य तो केवल समाज सुधार था। इसीलिए इस युग के अधिकांश नाटक उपदेश प्रधान हैं। भारतेन्दु जी स्वयं ही विचारों का महत्व देते हुए भाषा के विषय में लिखते हैं—

जामें रस कछु होत है पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय॥[१]

इस युग के नाटकों की शैली भी बड़ी स्वाभाविक सरल और रोचक है। साथ ही सभी नाटक प्राय अभिनेय हैं। इन नाटकों के उपरान्त प्रतापनारायण मिश्र जी से नाटकों का विकास प्रारम्भ हो जाता है इसलिए आगे नाटकों की विकास परम्परा दिखाने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

नाटक का प्रथम उत्थान-काल होते हुए भी इस युग में नाटकों का विकास बड़ी शीघ्रता से हुआ क्योंकि नाटककारों को संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के प्रौढ़ नाटक धरोहर के रूप में प्राप्त थे। इससे इन्हें आगे बढ़ने में बड़ी सहायता मिली। नाटक के सभी तत्व इस युग में विकसित हुए, साथ ही सामाजिक राजनीतिक पौराणिक ऐतिहासिक और प्रेम प्रधान सभी प्रकार के नाटक इस युग में लिखे गये। मौलिक नाटकों के साथ ही अनूदित नाटकों की भी परम्परा इस युग में बराबर चलती रही। इसके अतिरिक्त प्रथम उत्थान-काल के नाटकों में गीति-तत्व की प्रधानता रही पर गीत सरसता में सहायक होकर ही आये हैं उनसे रोचकता और

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला खण्ड (२००७ वि०) पृ० ३७२ (कपूर-मंजरी)

अभिनय म किसी प्रकार का अवरोध नही पडता। इस युग के नाटक प्रारभिक होते हुए भी सफल हैं।

हिन्दी रग-मच

नाटक दृश्य-काव्य है। इसम अभिनय की प्रधानता रहती है और अभिनय के लिए रगमच नितान्त आवश्यक है। आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों म—नाटकीय अनुकृति की स्वाभाविकता और वास्तविकता के विकास म सबसे महत्वपूर्ण स्थान रगमच की रचना का है। रगमच का निर्माण नाटकीय विकास का कदाचित् सबसे अधिक महत्वपूर्ण अग है।[1] हिन्दी रगमच का विकास पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों की प्रतिस्पर्द्धा म हुआ। पारसी कम्पनियाँ व्यावसायिक रूप म नाटकों का अभिनय करती थी। इनके अभिनय भाषा वेश और देश काल आदि की दृष्टि से बड हास्यास्पद होते थे। इनम अधिकतर उर्दू के—इन्दर-सभा' गुलबकावली' आदि नाटक ही खेले जाते थ। यदि कभी हिन्दी के नाटक खेलने का प्रयास भी किया जाता था तो व लोग न तो शब्दों का शुद्ध उच्चारण ही कर पाते थे और न पात्रों के अनुकूल वातावरण ही जुटा पाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पारसी थियेट्रिकल कम्पनी द्वारा खेले गये शकुन्तला नाटक का वर्णन इस प्रकार करते हैं—'काशी म पारसी नाटक वालो ने नाचघर म शकुन्तला नाटक खेला और उसम धीरोदात्त (धीरललित) नायक दुष्यन्त खेमटेवालियो की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटककर नाचने और पतली कमर बल खाये यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।[2] पारसी नाटक कम्पनियो के दृश्य म अभद्रता एव अश्लीलता की मात्रा अधिक रहती थी। भारतेन्दु-युग म हिन्दी रगमच का विकसित करने के अनेक प्रयत्न हुए। बनारस, कानपुर प्रयाग और कलकत्ता म नाटक मण्डलियो की स्थापना हुई और इन मण्डलियो के प्रबन्ध म कई हिन्दी नाटक खेले गये। बनारस म सर्वप्रथम सन् १८६२ ई० म 'जानकी-मगल' नाटक खेला गया। इसके विषय म भारतेन्दु जी लिखते हैं—हिन्दी भाषा म जो सबसे पहले नाटक खेला गया वह जानकी-मगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ सवत् १९२५ (सन् १८६२ ई०) में बनारस थियेटर बडी धूमधाम से यह खेला गया।[3] कानपुर म भी सन् १८७६ ई० म प० रामनारायण त्रिपाठी 'प्रभाकर' के प्रयत्न म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'वैदिकी हिंसा

---

१ आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी 'आधुनिक साहित्य' (२०१३ वि०) पृ० २९८

२ भारतेन्दु ग्रन्थावली' पहला खण्ड (२००७ वि०) पृष्ठ ७५३ (परिशिष्ट)

३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'नाटक' (१८८३ ई०) पृष्ठ ६६

हिसा न भवति नाटक खल गय और आगे चलकर भारत एनटरटेनमेंट क्लब (१८८५ ई०) की स्थापना हुई[१]। हिन्दी रंगमंच पर अंग्रेजी रंगमंच का पर्याप्त प्रभाव पड़ा क्योंकि अंग्रेजी रंगमंच का भारत में—भारतेन्दु युग तक काफी प्रचार हो चुका था। भारतेन्दु-युग के लेखकों ने नाटक तो लिखे ही साथ ही उनके अभिनय भी किये और हिन्दी रंगमंच को समृद्धिशाली बनाने का पूर्ण उद्योग किया पर यह विकास परम्परा क्रम-बद्ध रूप से आगे न बढ़ सकी। इसका अस्थायी विकास ही जहाँ-तहाँ होता रहा और आगे चलकर यह धीरे धीरे क्षीण पड़ गयी। आधुनिक समय में—सिनेमा के प्रादुर्भाव से तो हिन्दी रंगमंच का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। कहना न होगा कि हिन्दी का रंगमंच अभी पूर्ण अविकसित है।

मिश्र जी के नाटकों का क्रम विकास

मिश्र जी के कुल ६ नाटक प्राप्त हैं जिनके नाम विकास क्रम के अनुसार इस प्रकार हैं—दूध का दूध पानी का पानी (१८८३ ई०), जुआरी-खुआरी (१८८३ ई०) कलि कौतुक रूपक (१८८५ ई०) हठी हम्मीर नाटक (१८८७ ई० के पूर्व) संगीत शाकुन्तल (१८९१ ई०) और भारत-दुर्दशा रूपक (१८०३ ई० के लगभग)। इनमें संगीत शाकुन्तल' महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का छायानुवाद है शेष मौलिक हैं। दूध का दूध पानी का पानी भाण है। इसमें अकबरपुर निवासी [illegible] की न्याय-वृत्ति का वर्णन है। यह एक सत्य घटना पर आधारित है। जुआरी-खुआरी प्रहसन है। इसमें जुआ की भर्त्सना की गयी है। यह दर्शकों के मनोरंजनार्थ लिखा गया है। कलि कौतुक रूपक और हठी हम्मीर—रूपक के भेदों के अनुसार नाटक की कोटि में आयेंगे पर इनकी कथावस्तु में नाटक का-सा विस्तार नहीं है। कलि कौतुक रूपक में तो कुल चार ही दृश्य हैं। हाँ हठी हम्मीर नाटक' अवश्य ही कुछ बड़ा है। यह छः अंकों में लिखा गया है। संगीत शाकुन्तल और भारत-दुर्दशा रूपक' में गीतों की अधिकता है अतः ये गीति-नाट्य की कोटि में लिए जा सकते हैं। इस प्रकार मिश्र जी के प्रथम चार नाटक चरित्र प्रधान हैं और अन्तिम दो नाटक गीति प्रधान हैं। मिश्र जी चरित्र प्रधान नाटक लिखने में ही अधिक रमे हैं क्योंकि इनके द्वारा समाज का सुधार अधिक शीघ्रता से हो सकता था। मिश्र जी ने भाण और प्रहसन उनके नाट्य-शास्त्र विषयक शास्त्रीय ज्ञान के प्रतीक हैं। बस मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का भी नाटकों में पूर्ण उपयोग किया है जिससे इनके नाटक अधिक सरस तथा प्रगतिशील बन गये हैं।

वर्ण्य विषय

मिश्र जी की रुचि मौलिक नाटकों के लिखने में अधिक थी। छायानुवाद के क्षेत्र में उन्होंने केवल एक—संगीत शाकुन्तल' ही लिखा है जो सर्व प्रसिद्ध

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १, कानपुर और नाटक' प्रतापनारायण मिश्र

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथावस्तु पर आधारित है। इसके विषय का विवेचन यहाँ अनावश्यक है। मिश्र जी के मौलिक नाटकों को विषय की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—सामाजिक नाटक, राष्ट्रीय नाटक और ऐतिहासिक नाटक।

सामाजिक नाटक

इन नाटकों के अन्तर्गत मिश्र जी के 'दूध का दूध पानी का पानी', 'जुआरी खुआरी प्रहसन' और 'कलि कौतुक रूपक' की गणना की जायगी। इनमें तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण है। समाज में फैले हुए स्वार्थ, नशा-खोरी, व्यभिचार, पाखण्ड, फूट, अपव्यय आदि की इनमें तीक्ष्ण आलोचना की गयी है। 'कलि कौतुक रूपक' में पुरुष और नारी समाज के पतित चरित्र स्पष्ट दिखाये गये हैं। यह नाटक पूर्ण यथार्थ या नग्न यथार्थवादी पीठिका पर लिखा गया है। मिश्र जी समाज के सच्चे चित्र दिखाकर उसे सुधार की ओर मोड़ना चाहते थे। सबल व्यक्तित्व के होने के कारण सही बात कहने में वे हिचकते न थे। 'कलि कौतुक रूपक' के यथार्थ की कल्पना करके उसके समर्पण में वे लिखते हैं—'हाँ, हाँ, साँच को आँच क्या?'[1] इस नाटक के लिखने में यथार्थ का अनुरोध इतना अधिक रहा है कि कहीं-कहीं अभद्र कार्यों का वर्णन भी खुलकर किया गया है। इसमें तत्कालीन बगुला भक्तों, लम्पट साधुओं, दुश्चरित्र विधवाओं और धनवानों की खूब खबर ली गयी है और अन्त में उनका परिणाम भी बुरा दिखाया गया है जिससे दर्शकों के मन में ऐसे कार्यों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। स्वाभाविक चित्रण होने के कारण यह नाटक बड़ा सरस है। इस नाटक के विषय में डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'उच्च कोटि के नाटकीय संघर्ष का इसमें अभाव है परन्तु उसकी कमी सजीव चरित्र चित्रण और स्वाभाविक संवादों से हो जाती है। प्रतापनारायण मिश्र ने बड़े साहस से समाज में फैले अनाचार पर लेखनी उठाई है। यह अनाचार कितना व्यापक है और कब से चला आ रहा है यह इस नाटक तथा उग्र जी की रचनाओं का मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है। साथ ही उन्होंने इस अनाचार का सम्बन्ध एक विशेष वर्ग-संस्कृति से जोड़ा है जिसमें धर्म की आराधना मुख्य है।'[2] मिश्र जी के 'कलि कौतुक रूपक' की सजीवता की प्रशंसा ब्रजरत्नदास[3], डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी[4], डा० गोपीनाथ

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) समर्पण से

२ डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ७७

३ ब्रजरत्नदास 'हिन्दी-नाट्य-साहित्य' (२००१ वि०) पृष्ठ ९७

४ डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य में हास्य रस' (१९५७ ई०) पृ० ८९

तिवारी[1] आदि अनेक विद्वानों ने की है। डा० गोपीनाथ तिवारी ने तो इसे त्रिया चरित्र का सुन्दर प्रतीक बताया है[2] पर इसमें त्रिया चरित्र न दिखाकर पति की धूर्तता का पत्नी पर प्रभाव दिखलाया गया है और नारी-समाज का चित्रण किया गया है। यह नाटक अपने यथार्थ चित्रण में सफल है।

राष्ट्रीय नाटक

मिश्र जी का 'भारत-दुर्दशा रूपक' राष्ट्रीय नाटक है। इसमें परतन्त्र भारत की दशा का चित्रण है। इसके पात्र भारत, विद्या, लाज, कलियुग, कुमत, आलस्य, कुपथ्य, रोगराज, मदिरा, चौपटसिंह आदि हैं। इसमें पात्रों का मानवीकरण (परसोनिफिकेशन) किया गया है। यह प्रबोध-चन्द्रोदय वाली प्रतीक-परम्परा का द्योतक है। भारत की दशा मदिरा सेवन, आलस्य, कुमत, कुपथ्य और रोगों आदि से कितनी चौपट होती जा रही थी यह प्रतीक पात्रों के माध्यम से चित्रित किया गया है। विद्यार्थी विद्या की अवहेलना करते दिखाये गये हैं उनका उद्देश्य खाओ पीयो और मौज उड़ाओ तक सीमित हो गया है। भारत निर्धनता के कारण दूसरे देशों पर अवलम्बित होता जा रहा है व्यापार आदि नष्ट हो गये हैं दवाओं और मशीनों के लिए दूसरों का मुख ताकना पड़ रहा है। यह सब कलियुग के प्रभाव के रूप में दिखाया गया है। कुमत, मदिरा, आलस्य, कुपथ्य आदि कलियुग के मंत्री तथा सिपाही हैं जो भारत पर छाये हुए हैं और इनकी सेना भारत को जर्जरित कर रही है। इस नाटक में लेखक ने भारत की तत्कालीन स्थिति पर बड़ा दुःख प्रकट किया है—आज परमेश्वर ने यह दुर्दिन दिखलाया है कि जिन महामान्य परमपिता भारत की गोद में हम और हमारे पूर्वज लालित-पालित हुए हैं उनको हम इस दीन हीन क्षीण मन मलीन अवस्था में देखते हैं। यद्यपि हृदय विदीर्ण हुआ जाता है पर क्या कीजिए?[3] इस नाटक में देश-व्यापी फूट का भी अच्छा चित्रण है। पंडित ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी, बंगाली, महाराष्ट्री, पंजाबी, मुसलमान और ईसाइयों के मनभेद बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किये गये हैं और इन्हीं को देश के पतन का कारण माना गया है। भारत-दुर्दशा में मिश्र जी का देश प्रेम बड़ा उत्कृष्ट है।

ऐतिहासिक नाटक

मिश्र जी ने 'हठी हम्मीर' नामक एक ही ऐतिहासिक नाटक लिखा है पर वह अपनी ऐतिहासिकता में इतना पूर्ण है कि वह अकेला ही अपने क्षेत्र में पर्याप्त है (इसकी ऐतिहासिकता का उल्लेख पीछे हो चुका है)। इस नाटक में रणथम्भौर

---

१ डा० गोपीनाथ तिवारी 'भारतेन्दु कालीन नाटक-साहित्य' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १९४

२ —वही— „ , १९४

३ प्रतापनारायण मिश्र 'भारत दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) अंक तीन दृश्य पहला

मे राजा हम्मीर देव की शरणागत-वत्सलता वचन-बद्धता और वीरता का वर्णन है। इसकी कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध अलाउद्दीन की रणथम्भौर पर चढ़ाई पर आधारित है। हम्मीर ने अपने यहाँ मीर मुहम्मद को शरण दी थी जिसके परिणाम-स्वरूप अलाउद्दीन ने हम्मीर पर चढ़ाई की और भीषण युद्ध हुआ। हम्मीर की वचन-बद्धता के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार'। इस नाटक में मिश्र जी ने भारत के अतीत गौरव का सजीव चित्र खींचा है। युद्ध के अन्तिम परिणाम में—बड़ी कुशलता के साथ हम्मीर की मर्यादा की रक्षा की है। 'हठी हम्मीर नाटक' के अन्त में मिश्र जी ने (उपसंहार शीर्षक के अन्तर्गत) इस नाटक के ऐतिहासिक आधार भी दिए हैं जो इनके ऐतिहासिक अनुसंधान का प्रतीक हैं। यह नाटक पूर्ण रूपेण सफल है। आगे चलकर इसी के वृत्त को लेकर हरिकृष्ण प्रेमी ने अपना 'आहुति' नामक नाटक लिखा।

मिश्र जी के नाटकों में कथावस्तु का संगठन बड़ी सतर्कता से किया गया है। कथावस्तु में जितने मोड़ हैं उन्हीं के अनुसार अंकों और दृश्यों की योजना की गयी है। 'संगीत शाकुन्तल' के अंकों को भी उन्होंने मूल के विपरीत दृश्यों में विभक्त कर दिया है जिससे कथावस्तु अधिक प्रवाह पूर्ण और अभिनय के लिए उपयुक्त हो गयी है। कथावस्तु के बीच-बीच में हास्य की योजना कथावस्तु को और भी हृदयस्पर्शी बना देती है। उन्हें सदैव यह ध्यान रहता है कि यह कथावस्तु दृश्य-काव्य की है, इसलिए वह इस दुरूहता को हाने ही नहीं देते साथ ही सरस बनाने के लिए वह बार बार प्रयत्न करते हैं। मिश्र जी की दृष्टि निरन्तर मुख्य-कथा तथा उसके उद्देश्य पर ही रहती है इससे उनके नाटक सीधे बाण की तरह चलते हैं और आकार से स्थूल नहीं होने पाते। प्रासंगिक कथाओं का तो पूर्ण अभाव सा रहता है। कथावस्तु बड़े साथ-साथ ढंग से आगे बढ़ती है पर कौतूहल का उसमें अभाव नहीं रहता। नाटकों का प्रारम्भ और अन्त बड़े प्रभाव पूर्ण ढंग से होता है। 'हठी हम्मीर नाटक' को वे मरहट्टी वर्गम के प्रमालाप से प्रारम्भ करते हैं जिससे दर्शक रससिक्त हो जाते हैं। मध्य वीरता और कर्तव्य-परायणता से परिपूर्ण रहता है और अन्त विजय के शान्त वातावरण में होता है। दर्शकों में बराबर आगामी घटना के जानने की उत्सुकता बनी रहती है। इस ही 'भारत-दुर्दशा स्वप्न' का प्रारम्भ भारत के स्वप्न और उसकी व्याकुलता में होता है मध्य में कलियुग की सेना का प्रभाव दिखाया जाता है और अन्त में भारत की दुर्दशा का चित्रण है। प्रारम्भ में मिश्र जी कथा का हल्का सा सूत्र रखकर दर्शकों में उत्सुकता पैदा करते हैं फिर मध्य में कथा का विस्तार दिखाते हैं और अन्त में उसका परिणाम देकर नाटक को समाप्त कर देते हैं। उनके नाटकों की कथावस्तु में अधिक ऊहापोह नहीं है। वह बड़ी सीधी हुई

स्वाभाविक सरस और यथार्थ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके नाटक संक्षिप्त कथावस्तु से मुक्त होते हुए भी पूर्ण और सजीव हैं।

चरित्र निर्माण

मिश्र जी ने ऊँच और नीच-दोनों घरानों के पात्रों को अपने नाटकों में स्थान दिया है। यहाँ तक कि भारतीय परम्परा के विरुद्ध दुश्चरित्र पात्रों को भी नायक के रूप में स्वीकार किया है पर इतना अवश्य है कि दुश्चरित्र पात्रों के अन्तिम परिणाम बुरे और सुचरित्र पात्रों के अन्तिम परिणाम अच्छे दिखाये गये हैं। इससे भारतीय परम्परा की मर्यादा में किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचता। मिश्र जी ने प्रमुख रूप से पात्रों के कार्य-कलाप द्वारा चरित्र का निर्माण किया है। उनके नाटकों में पात्रों के चरित्र पूरी तरह विकसित हुए हैं। 'कलि कौतुक रूपक' में लाला किशोरीदास और श्यामा का 'हठी हम्मीर नाटक' में हम्मीर देव मीरमहम्मद और मरहट्टी बेगम का 'संगीत शाकुन्तल' में दुष्यन्त और शकुन्तला का 'भारत दुर्दशा रूपक' में एडीटर का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। वैसे इन नाटकों में पात्रों की संख्या बहुत अधिक है पर उक्त चरित्र ही प्रमुख हैं अतः इन्हीं का विवेचन यहाँ उपयुक्त होगा।

लाला किशोरीदास

यह 'कलि कौतुक रूपक' का नायक है। समाज में यह एक सुचरित्र और प्रतिष्ठित धनाढ्य के रूप में आदृत है। इसे अपने सम्मान का बड़ा ध्यान रहता है। जब यह अपने घर से बाहर निकलता है तब इसके मुँह से तुलसीकृत रामचरित मानस की चौपाइयाँ ही सुनायी पड़ती हैं। बजार के पान तक लोगों के सामने नहीं खाता। विलायती दवाइयों को भी हेय-दृष्टि से देखता है। ब्रह्मानंद पंडित से वह विदेशी दवाइयों के प्रयोग के विषय में कहता है 'आप ठीक कहते हैं पर मेरी समझ में तो जब मरना हुई है तो क्या आज क्या चार दिन पीछे। फिर क्यों ऐसी चीजें ग्रहण करें जो अपने यहाँ मना है।'[1] पर यह इसका बाहरी या सामाजिक रूप है अपने व्यक्तिगत जीवन में किशोरी बड़ा दुश्चरित्र वेश्यागामी और शराबी है। समाज के सामने वह बाजारू पान तो नहीं खाता लेकिन लश्करी जान वेश्या के जूठे पान वह बड़े शौक से खा जाता है। यही नहीं लश्करीजान की जूतियों के प्रहार से इसके पुरखे तक तर जाते हैं। लश्करीजान से वह जूठे पात्र में शराब पिलाने के लिए कहता है। देखिए—

> किशोरी—क्यों जान साहब! हमको नहीं?
>
> किशोरी जान—तुमको? (उपानह प्रहार) यह है (सब हँसते हैं)

---

[1] प्रतापनारायण मिश्र, 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।

किशोरी—खोपड़ी तर हो गई। पुरखे तर गये। (लिपट के)

मजब लुत्फ है यार की जूतियों का।[1]

आगे किशोरी द्वारा की शराब की प्रशंसा की भी कुछ पंक्तियाँ देखिए—मई यह अहमक हैं जो इसकी निन्दा करते हैं नहीं तो जिसे बड़े-बड़े देवता रिषि मुनि पीर पैगम्बर सदा से पीते आये हैं वह निन्दा के लायक है? और कुछ हो। पाप-पुण्य नुकसान-फायदा चाहे इसमें लाख हो पर मजा ऐसा है कि सब भला देता है। हमको लोग भगत जी कहते हैं पर इस वक्त तो—

जात-पांत कंठी तिलक धर्म सन प्रान।

लोक और परलोक सब बोतल पर कुरबान॥[2]

किशोरी ये उपर्युक्त कार्य समाज से छिपकर ही करता है। उसकी शराब और वेश्या-मण्डली अपनी पृथक ही है। इस मण्डली में मुंशी शकारनाल उर्दू भक्त पंडित चण्डीदत्त विगड़ल देहाती बाबू मायादास अंग्रेजी बाज और लश्करीजान वेश्या तथा उसका भड़ुवा नम्बू सम्मिलित हैं। वह अपना राज समाज में नहीं खोलना चाहता। एक बार शकारलाल चण्डीदत्त और मायादास इससे बाजार में शराब पीने के लिए कहते हैं तब वह कहता है राह में न बोलना। कोई मित्र तो बात न करना। और दूर निकल चलो जहां कोई न देखे।[3] अपनी स्त्री से भी वह यह राज सदैव छिपाता रहता है। प्रियाचरण के यहां रास का बहाना बनाकर वह रात्रि में अपनी वेश्या-मण्डली में सम्मिलित होता है। बस इसकी पत्नी इसका सब रहस्य जानती है पर वह भी इसे बनाती रहती है। आगे चलकर किशोरी परवेश्या, शराब और मदाब से-हजारों का कर्ज हो जाता है। सब सामान कुर्क हो जाता है और मुकदमा चलता है तथा इसे तीन साल की सजा हो जाती है। इस प्रकार इसका सब राज समाज के सामने खुल जाता है और उसके दुष्कृत्यों का फल उसे मिल जाता है। इसके चरित्र का निर्माण एक बनावटी और दुराचारी नायक के रूप में किया गया है।

स्यामा

यह 'कलि कौतुक रूपक' की नायिका है। इसका चित्रण परकीया नायका के रूप में किया गया है। यह अपने पति किशोरीदास से दुश्चरित्रता में होड़ करती दिखाई पड़ती है। इसका प्रेम रसिकबिहारी से है। रसिकबिहारी किशोरीदास की अनुपस्थिति में स्यामा के पास आता है जिससे स्यामा को किशोरीदास का अभाव

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।

२ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।

३ —वही— वही

नही खटकने पाता। किशोरीदास उधर सरकरी जान म लिप्त रहता है स्यामा इधर रसिकबिहारी के साथ गुलछर्रे उडाती है। लाला किशोरीदास की तरह स्यामा भी बातें बनाने म बडी चतुर है। एक बार स्यामा रसिकबिहारी स बातें कर रही है इतने मे किशोरीदास आ जाता है। स्यामा रसिकबिहारी को छिपा देती है और किशोरीदास से खुब बनावटी प्रम दिखाती है। किशोरीदास उससे कहता मैं रास देखने जा रहा हू तुम खाना खा लेना। इसका उत्तर वह बड प्रम-पूर्ण शब्दो म देती है। देखिए—

स्यामा—भला तुम्हारे विना मै कैसे खा ल ? धरम छोड़ू।

किशोरी—नही नही। हम कहते जो हैं। जाना है नही तो कुछ खा लेते।

स्यामा—दुपहर के गये तो अब आये हो रात भर को फिर जाओ हो मे इकल्ली मैं कस रहूगी ?

किशोरी—पछो को मैं भेज दूगा और मैं भी जल्दी आऊगा। पर गये बिना नही बनती, आपस का वास्ता ठहरा, ठाकुर जो का काम है। कोई डर थाडे ही है ? (जाना चाहता है)

स्यामा—(प्यारस)ता मई जल्दी आइयो।[1]

किशोरीदास के जाते ही स्यामा कहती है तुम डाल डाल हम पात-पात'। और पुन रसिकबिहारी स प्रमालाप प्रारम्भ कर देती है। स्यामा का जीवन बडा वासनामय है। वह अपनी सखी चम्पा से भी सदैव अश्लील बातें ही किया करती है। स्यामा के वार्तालाप की निम्नलिखित पक्तियां-उसके भ्रष्ट-जीवन को अच्छी तरह स्पष्ट करती हैं—

स्यामा—सुन हैं गगा जो पर कोई बाबा जी आय है सो हात का रखा देवें हैं उनही की स्थिाई होती।

चम्पा—तू भी बाबा जी को जाने है ? भाई बड पहुच है। एक दिन मैं गई सो कहै क्या हैं कि सन्तान तो लिखी है पर गिरस्त से नही— मैं ता सुन क रही गयी।

स्यामा—हि हि हि हि तो ता स रोज सवा किया कर तेरे सतान होगी मैं कहू हू।

स्यामा—बहन यह ता हुआ पर यह तो कहो गगा पर थाने कौन है ?

चम्पा—(मुसकराकर) क्या क्या तेरा भी मन ?

स्यामा—भला अच्छी सूरत किस नही भावे ?

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९०ई०) प्रथम दृश्य।

चम्पा— हा, रानी सूरत म वो मोहनी है और इधर ख्स भी बहुत करें हैं। घर की तरफ से आवें भी हैं रोज। पर अभी तो गनी घाट ही की मुहब्बत है, देखू हुनमिया कव तक—अगडाई लेके स्यामा पर देहाक्षेप)। [१]

इस प्रकार स्यामा और चम्पा दोनो ही चरित्र से पतित है। मिश्र जी ने तत्कालीन पतित नारी-समाज का यथाथ चित्र इस नाटक म खीचा है। स्यामा को अपन कुकृत्यो का परिणाम भी बडा दुखद मिलता है। किशोरीदास का तीन साल की सजा हो जाने पर वह नाना प्रकार के कष्ट—अपने भाई के यहा उठाती है।

हम्मीर देव

हम्मीरदेव रणथम्भोर के राजा और 'हठी हम्मीर नाटक' के नायक हैं। इनका चरित्र धीरोदात्त नायक क गुणा स युक्त है। इनक राज्य म सम्पूर्ण प्रजा सतुष्ट है। ये प्रजा को पुत्रवत् मानते हैं। अपन प्रधान वीरसिंह से प्रजा की कुशलता सदव पूछते रहते हैं और स्वत भी प्रजा की बातें सुनने को उत्सुक रहत हैं। वीरसिंह के यह कहन पर कि प्रजा पूणतया सतुष्ट है, हम्मीर कहत हैं—'निश्च मैं तुम्हारी सम्पति से अति सतुष्ट हू यद्यपि मुझ विश्वास है कि रणथभौरवासी मेरे शासन म अप्रसन्न कभी न होंगे पर तो भी बहुत सी बातें ऐसी है जा कर्मचारियो क द्वारा ठीक-ठीक नही जानी जा सकतीं और बहुत म राजा भी ता नगर म भेस बदल के फिरते रहे हैं। इसम मेरा कोई हानि नही वरच यह एक बडा लाभ है कि प्रजागण का ठीक-ठीक हाल मिलना रहेगा। कौन दुखी है कौन सुखी है, कौन प्रत्यक्ष म मित्र और छिपा हुआ शत्रु है।' [२] हम्मीर पूण धर्मनिष्ठ भी हैं। शिवालय का जीर्णोद्धार कराना दस हजार ब्राह्मणो को प्रत्याय पर खिलाना उनकी धर्म-परायणता का द्योतक है। राज्य-काय भी व बडी तत्परता स देखत हैं। सना तोपा आदि की भी व पूण निगरानी रखते हैं। अनैतिक कार्य वे कभी नही करना चाहते। उनक भाई उनस शत्रुता रखते हैं फिर भी वीरसिंह के यह कहन पर कि कहिए तो मैं उन्ह ठिकान लगा दू—हम्मीर कहत हैं—नहीं नहीं जब तक कोई प्रगट होकर शत्रुता नहा करता तब तक उसको दण्ड देना धर्म के विरुद्ध है क्योकि वह किसी बात के डर ही म अपन विचार को पूरा नही कर सकता और डरना कायरता का चिन्ह है फिर ऐसा कायर पर हाथ चलाना वीरों को शोभा देता है ? [३] हम्मीर अपना बात का पक्का है।

१ प्रतापनारायण मिश्र कलि कौतुक रूपक (१८ ० ई०) प्रथम दृश्य

२ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक (प्रथम सस्करण) एक्ट २ सीन पहला।

३ —वही—

वह अपनी शरण म आये हुए की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है। मीर महम्मद का अलाउद्दीन का शत्रु समझकर भी वह अपने यहा शरण देता है और उससे कहता है— मैं जीते जी तुम्हारा साथ न छोडूगा। तुम निश्चित होकर मेरी सेना मे रहो।[1] इसपर वीरसिंह कहता है कि अलाउद्दीन बडा प्रबल शत्रु है/तब हम्मीर उसको यह उत्तर देता है—'युद्ध का आनन्द भी प्रबल ही शत्रु के साथ लडने में आता है। छोटों को दबा लेना तो अन्याय और निर्दयता है। बराबर वालों को छेड बैठना क्रीडा मात्र है। पर वीर पुरुषो को तभी सतोष होता है जब किसी अच्छे के सामने पड। अपना पूर्ण पुरुषार्थ दिखाना जीत क ज लक्ष्मी पाना मर कर सीधे परम धाम को जाना मरने जीत दानो प्रकार ससार म जस पाना ता तभी होता है।[2] हम्मीर म दृढता नस-नस म समायी हुई है। अलाउद्दीन का पत्र पाकर उसका स्वाभिमान अपनी चरम गति का पहुच जाता है और उसका चरित्र इस स्थल पर निखर उठना है। वह कहता है—'मैं ऐसो क साथ झगडा करने को नही डरता। क्या उसकी धमकी म आकर अपने शरणागत को उसके हाथ म सौंप दूगा? कभी नहीं। बात और बाप एक हात हैं।

सिंघ सुवन सुपुरुष वचन कदली फरै एक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ न दूजी बार॥[3]

इसी दृढता क साथ वह अलाउद्दीन के पत्र का उत्तर भी देता है—

जो रन हम प्रचार कोई।
सर सुखेम काल किन कोई॥

यदि आपकी मरहट्टी बेगम पर एसी करुणा है तो यही क्यो न भज दीजिए जिसम मीर साहब की भी विरह बेदनादूर हो और उनका भी हृदय शीतल हो। अन्यथा सूय का पश्चिम म उन्य हाना सम्भव है सुमर का टल जाना सहज है अग्नि का शीतल हो जाना साध्य है पर हमीर का वचन टलना असम्भव है। मीर महम्मद तुम्हारे यहा कभी न भज जाएग। तुम्हारी सना कल आती हो तो आज ही आजाय।[4]

हम्मीर बडा वीर योद्धा था। अलाउद्दीन की विकराल सना को भी देखकर वह नहीं घबडाता और वह अपन वीरा का प्रात्साहित करता हुआ कहता है—

कर धीर कठिन कृपान अस्त्र औ शस्त्र चलावहु।
क्षत्रिय कुल को बल प्रताप अरिन दिखरावहु॥
जिमि मृगगण मह सिंह यथा इधन मह आगी।
धसहु शत्रुदल माहि सबहिं भागहु भय त्यागी॥[5]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम सस्करण) एक्ट २ सीन पहला
२ —वही—
३ —वही— सीन दूसरा।
४ —वही— एक्ट ३ सीन पहला
५ —वही— एक्ट ४ सीन दूसरा

हम्मीर के एक-एक शब्द से वीरता स्वाभिमान और उत्साह टपका पड़ता है। गढ़ी का एक कोना शत्रुओं द्वारा गिरा दिया जाने पर भी उसका धैर्य नहीं टूटता और वह कहता है—कदाचित महिपाल ने कोई भेद बता दिया हो तो आश्चर्य नहीं क्योंकि वह मुझसे बैर सा रखता ही है। औसर पाकर खुल खेला हो। ओह्! क्या होता है? कुछ हमने महिपाल या कृपाल के भरोसे पर थोड़ी अलाउद्दीन से बैर किया है? यदि सम्पूर्ण जगत उसकी ओर हो जाय तो भी अकेला हमीर उसके दमन करने को प्रस्तुत है।[1] हम्मीर युद्ध-स्थल में बड़ी वीरता के साथ लड़ता है। शत्रुओं के दांत खट्टे हो जाते हैं। शत्रु तक उसकी प्रशंसा करने लगते हैं। अलाउद्दीन का सैनिक शमशेर उसकी वीरता को देखकर कहता हैं—'किबला बहादुरी का क्या कहना? रणथंभौर गोया बहादुरों की खान है—राजा को देखिये अगर रुस्तम कहें तो भी मुबालगा न होगा। एहे! वाह रे जवान

जो पड़ा सामने उसके ये हुआ हाल उसका।
कि गोया बाज के चंगुल में कबूतर आया॥
दावए सफ शिकनी हुच या अजीरों का।
काम उस वक्त न तेग आयी न खंजर आया॥
भागते राह न सूझी उन्हें पेशे हम्मीर।
या शहादत का जिन्हें शौक जिवस चर्राया॥
जिस तरफ टूट गिरा वुह असदे रथम्भौर।
सबका दिल कांपा जिगर धड़का बदन थर्राया॥
दमहि सने न कोई या लड़ना कैसा?
या मिसाले मलकुल मौत वुह सर पर आया[2]॥

दूसरे पात्रों के कथन से हम्मीर का चरित्र और निखर उठता है। युद्ध के अन्त में हम्मीर का पता नहीं चलता इस पर जुल्फकार खां कहता है—'मगर यह नहीं ख्याल में आता कि सौ पचास लोगों ने उस शेर को मार डाला हो। हां शायद दो चार हजार जवामरदों ने उसे घेरा हो और पीछे से किसी ने मार दिया हो तो कोई अजब नहीं।[3] हम्मीर की बहादुरी कर्त्तव्य-परायणता और स्वाभिमान की भी प्रशंसा देवतागण तक करते हैं। हम्मीर प्रजापालक धर्मपरायण कुशल राजनीतिज्ञ शरणागत रक्षक दृढ़ प्रतिज्ञ सही और वीर राजा है। इसका चरित्र इस नाटक में बड़ी उत्कृष्टता का पहुंचा हुआ है। हम्मीर के चरित्र निर्माण में मिश्र जी निश्चित हो सफल हैं।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४ सीन पहला।
२ —वही— एक्ट ५ सीन पहला
३ —वही— "

मीर महम्मद

यह अलाउद्दीन की सेना का एक वीर सैनिक है। मरहट्टी बेगम के दबाव में पड़कर इसे चरित्र भ्रष्ट होना पड़ा। वैसे यह अपने आचरण से शुद्ध है। साथ ही अपने वचन का भी पक्का है। हम्मीर देव को वचन देता हुआ कहता है— बन्दा हुजूर मैं भी इसी उम्मीद पर आपका पनाहगीर होता हूँ। इंशा-अल्लाह-ताला जब तक जिन्दगी है हुजूर की खिदमत में कोताही कभी न करूंगा। जान बचाने वाले का और बाप का रुतबा एक हुआ करता है। अगर हुजूर ने मुझ नाचीज का वार अपने सिरे मुबारक पर लिया है तो यहाँ भी नमक हराम और दगाबाज पर चार हर्फ भेजता हूँ। मीर महम्मद अपने इस प्रण को जीते-जी निभाता है।[1] मीरमहम्मद बड़ा निष्कपट सैनिक है वह अपने शरणागत प्रस्ताव के समय ही सब बातें स्पष्ट हम्मीर देव से बता देता है तथा वह कहकर हम्मीर देव को आगाह भी करता है कि अलाउद्दीन बड़ा जालिम है इसे आपको अपना शत्रु नहीं बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त मीर महम्मद बड़ा साहसी और शूरवीर है। इसकी वीरता की प्रशंसा स्वयं अलाउद्दीन भी दरबार में करता है— अरे म्यां ! लड़ने का तो उसके जिक्र ही क्या था मैंने तो उसे जाकदना की हालत में देखा था। जख्मों के सबब सारा बदन गिरवाह हो रहा था। मैदान में पड़ा सिसकता था उस वक्त मैंने पूछा कि क्या मियां अगर तुमको देहली उठा ले चलें और मआलजा करायें तुम्हें चंगा कर दें तो हमारे साथ क्या सलूक करोगे ? इसके जवाब में नालायक कहता क्या है मीर महम्मद तुम्हें मार कर महाराज हमीरदेव के कुंवर साहब को देहली के तख्त पर बिठाऊंगा।[2] आगे अलाउद्दीन उसे हाथी से कुचलवाकर मार डालता है पर वह अपनी बात से मुंह नहीं मोड़ता। मीर मुहम्मद खरा साहसी स्वामिभक्त वचनपालक और वीर सैनिक के रूप में चित्रित किया गया है।

मरहट्टी बेगम

यह अलाउद्दीन की रानी है। इसका सम्पूर्ण जीवन कामना की ही गोद में बीता है। यह बड़ी चपल प्रकृति की है। इसकी वासना की तृप्ति अलाउद्दीन से नहीं होती। एकबार यह शिकार खेलने के लिए जंगल में आती है। प्रकृति का सुरम्य वातावरण पाकर इसमें कामोद्दीपन होता है और एक पेड़ के नीचे बैठकर कहती है— क्या ठंडी हवा है जी चाहता है दिन रात यहीं पड़े रहें। भला महलों में यह सुख कहाँ ? सख्त रंग के महल इस कुदरती सब्जे की बराबरी थोड़े ही कर सकते हैं ? फिर यहाँ एक तरह की कैद तो है नाम कर हम मालिक हैं। न खाना पीना, सोना बैठना,

---

1 प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ २ सीन पहिला।
2 —वही— पृष्ठ ५ सीन पहला।

सब है पर असली सज्जन कहां ? क्योंकि हजरत सलामत के सैकड़ों बेगमात ठहरीं। हजारों काम-काज के बंध ठहरे। फिर हम क्या करें मुमकिन हो सकता है कि हर वक्त मेरी ही दिलजाई किया करें। (गाता है गज़ल)—

जब बेरुखी से यार हमेशा कुढ़ाए दिल।
फिर क्यों न कोई और से अपना लगाए दिल ॥'[1]

निलज्जता की भी इसमें कमी नहीं है। यह अपनी वासना की तृप्ति का प्रस्ताव स्वतः मीरमहम्मद के सामने रखती है। अपना मर्यादा का तो इसको बिल्कुल ही ध्यान नहीं है—

'मरहट्टी—(मुसकराकर) तो मालूम होता है कि आप शिकारी भी हैं (दिल में)—
देखूं इस रम्ज को समझता है या नहीं।
मीर०— शिकारी क्या तबीयत बहला लेता हूं।
मरहट्टी- खैर जो तबीयत ही बहलाना है तो जरा इस दरख्त के ठंडे साये में बैठिये।
मीर०— (दिल में) यह तो कुछ और ही रंग मालूम होता है (जाहिर) हुजूर का हुक्म बसरो चश्म कबूल है (बैठकर) इरशाद।
मरहट्टी—जरा इधर आकर आराम से बैठिए।
मीर०— हुजूर बड़े आराम से बैठा हूं।[2]

आगे तो यह मीरमहम्मद का—प्रस्ताव की अवहेलना करने पर धमकाती हुई कहती है कि मैं बादशाह से शिकायत कर दूंगी कि मीर हमसे गुस्ताखी कर रहे थे। तदुपरान्त तो उसकी निलज्जता चरमसीमा पर पहुंच जाती है। वह कहती है—'लहा मीर साहब आप हमारे जानोमाल के हमेशा के लिए मुख्तार हैं (कुछ ठहर कर) चलिए उन झाड़ियों की सैर करें यहां बैठे क्या करेंगे ? (जाते हैं)[3] इस प्रकार मरहट्टी का एक विलासी और दुश्चरित्र नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

दुष्यन्त

यह संगीत शाकुन्तल का नायक है। इसका चरित्र धीरललित नायक के गुणों से युक्त है। इसके चरित्र का निर्माण कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के आधार पर हुआ है क्योंकि संगीत शाकुन्तल इसी का छायानुवाद है। दुष्यन्त

---

१ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १, सीन पहला।

२ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १, सीन पहला।

३ —वही—

कोमल स्वभाव का सुखान्वेषी राजा है। वह शकुन्तला के रूप को देखकर मोहित हो जाता है और अपनी मर्यादा का ध्यान न रखकर शकुन्तला के साथ पौधा को सींचने लगता है। हां, आकृष्ट होने से पहले इसका ध्यान इस ओर अवश्य जाता है कि हो न हो शकुन्तला क्षत्रिय-कन्या ही होगी। क्योंकि—

"ऐसो ह्व सकति कबहू कसेहु माहि।
मम छत्रिन के आत हैं कबहु कुमारग माहि॥
निहच क्षत्रिय बंश की जनमी है यह बाम।
नाहित यहि लखि मम हिए कबहू न उपजत काम॥"[1]

दुष्यन्त बड़े सरस हृदय का है। वह शकुन्तला से बड़े प्रेम से बातें करता है। एक बार दोपहर को शकुन्तला उसके पास से जाने लगता है इसपर वह उसे रोकता हुआ कहता है—

'अबहिं न जाहु पियारी तजि यह छांह।
धूरि धूप अति मारी मारग मांह॥
जायहु बिस दुपहरी मैं बलि जाउ।
भुइ भुभरि कस परिहौ कोमल पाउ॥'[2]

दुष्यन्त का प्रेम प्रबल वासना की तृप्ति के लिए ही रहा है। वियुक्त होने पर जब उसे शकुन्तला का स्मरण आता है तब वह विरह से व्याकुल हो उठता है। संयोगकालीन चित्र उसकी आंखों के सामने नाचने लगते हैं। वह कहता है—

कहौं कहा भूल भई बड़ी हाय।
निरबोवो को बाय लगायो रह्यो तासु फल पाय॥
वा मुसकाइनि के सनेह को दीन्हो सुधि बिसराय।
सोई अब छिन छिन सुधि करि-करि रह्यो हियो अकुलाय॥
विधित वियोगी जानि मोहिं अति, रतिपति रह्यो सताय।
आम बौर मिस बान तानि के, उर बेधत निस आय॥[3]

पर इसके साथ ही दुष्यन्त एक वीर क्षत्रिय भी है। उसे वीर और प्रेमी हृदय साथ-साथ प्राप्त है। विरह से विदग्ध होते हुए भी—मातलि द्वारा इन्द्र का निमन्त्रण मिलने पर वह तत्क्षण उसकी रक्षा के लिए चल देता है— (माढव्य से) अच्छा मित्र! यह तो हुआ पर देवराज की आज्ञा अवश्य माननी है। इसमें तुम जाकर मंत्री जी से कहो कि—

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) पहिला अंक दूसरा दृश्य।
२ —वही— तीसरा अंक दूसरा दृश्य
३ —वही— छठवां अंक, पहिला दृश्य

जब लग मेरो धनुष यह कर असुर सहार।
तब लौं ये निज बुद्धि सों, कर प्रजा निरधार॥"[1]

इस प्रकार दुष्यन्त एक प्रेमी और वीर—दो रूपों में दर्शकों के समक्ष आता है।

शकुन्तला

शकुन्तला संगीत शाकुन्तल नाटक की नायिका है। यह बड़ी सहृदय, लज्जाशील और आदर्श प्रेमिका है। दुष्यन्त से यह प्रेम करती है पर इसका प्रेम कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन करता नहीं दिखाई पड़ता। भारतीय परम्परा के अनुसार वह दुष्यन्त को सदैव पूज्य भाव से देखती है। दुष्यन्त के यह कहने पर कि कहो तो पंखा करूं पर दबाऊं वह कहती है—

नहिं-नहिं कबहूं न कहिहौं में असि बात।
छांडे कानि बड़े न की धरम नसात॥"[2]

ऐसे ही सखियाँ शकुन्तला को दुष्यन्त के पास अकेली छोड़कर जाने लगती हैं तो शकुन्तला भी उनके पीछे चल देती है पर दुष्यन्त उसका हाथ पकड़ लेता है। इस पर वह कहती है—

छांड़हु-छांड़हु अहै ग्वयन साथ।
नाहिन मोर जियरवा मोरे हाथ॥[3]

शकुन्तला दुष्यन्त से सच्चा प्रेम करती है। उससे वियुक्त होने पर उसे कुछ अच्छा नहीं लगता। फिर भी दुष्यन्त जब उसे नहीं पहचानता तो शकुन्तला को बड़ा दुख होता है। उसे अपना जीवन ही अब भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है। वह कहती है—'हाय मैं तो कहीं की न हुई। हे धरती माता! तुम क्यों नहीं फट जातीं कि मैं समा जाऊं। मेरे पापी प्राण अब इस देह को किस आसरे से नहीं छोड़ते। हाय![4]

शकुन्तला की सहृदयता भी महान है। वह अपने स्नेह से तपोवन के सभी प्राणियों को वशीभूत कर लेती है। सखियों का तो कहना ही क्या पशु, पक्षी और लताएं तक शकुन्तला से स्नेह करता हैं। जब वह तपोवन से—दुष्यन्त के यहाँ जाने को—विदा होने लगता है तब सभी स्नेह से विह्वल हो उठते हैं। सखियाँ दुख प्रकट करती हैं। कण्व का धीर मन भी विचलित हो हो जाता है। वे कहते हैं—

---

१ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) छठवाँ अंक तीसरा दृश्य
२ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) तीसरा अंक दूसरा दृश्य
३ —वही—
४ —वही— पाँचवाँ अंक तीसरा दृश्य

> 'नेह बस मोर मन उठत अकुलाय
> मन धीर धारन बिल परत करिबो जतन।
> कौन बिधि सों गृही करहिं बेटी बिदा,
> सहत अब यों दशा हमहू ले जोगि जन ॥'[1]

शकुन्तला भी कण्व के गले से लिपटकर कहती है—

> 'गोद म जिनकी पली जिन साथ खेली भाज लौं।
> का दशा उनक बिना ह्वैहै हमारी हाय हाय ॥
> बाप को घर खेल की कुज, सदा को साथिनी।
> आज एकहिं साथ छूटी जाहिं सारी हाय हाय[2] ॥

वन लतिया आदि को देखकर वह और दुखित होती है—

> बिरिछ बेलि खग मृग सब साथिनि सबहिं छाँडि इहि ठाँव।
> हाय आज मैं परबस परि क जाति पराए गाँव[3] ॥

शकुन्तला का अन्त करण बड़ा विशाल है उसम कण्व की ममता तपोवन वासियो का स्नेह और दुष्यन्त का प्रेम पूरी तरह समाया हुआ है। उसका सौन्दर्य जसा बाहर स आकषक और अद्वितीय है वैसा ही उसका हृदय भी सुन्दर और निष्कपट है। शकुन्तला एक आदश नायिका के गुणो स युक्त है।

एडीटर

एडीटर भारत-दुदशा रूपक का एक सहायक पात्र है। फिर भी इसका चरित्र पूण उत्कर्ष्ना पर पहुँचा हुआ है। वह भारत की तत्कालीन दशा स बड़ा क्षुब्ध है। अतीत का स्मरण करता हुआ वह कहता है—

> 'जह नित्य वेद पुराण ध्वनि को घोष नभ पहुचत रह्यो।
> तह निलज गीत अपार गावे आत सुन धधकत हियो ॥
> जह नारि नर निज धर्म कर्म मनक बत चित धारते।
> तह आज सम्पट दुष्ट धारे, भक्त महितिन मारते ॥
> जह निम दधीचि, बला-बली, क्षितिनाथ लीला कर गये।
> तह दुष्ट नादिरशाह अरु अवरग अति पापी भये ॥'[4]

भारत क घायल हो जाने पर ब्रह्मसमाजी आयसमाजी ईसाई सेठ जी मुसलमान महाराष्ट्री पजाबी बगाली आदि बड़ा दुख प्रकट करते हैं और उसके

---

१ प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) चौथा अक तीसरा दृश्य
२ —वही— चौथा दृश्य
३ —वही— तीसरा दृश्य
४ प्रतापनारायण मिश्र 'भारत-दुदशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अंक पहिला दृश्य

उपचार के लिए अनेक उपाय बताते है पर उपायों की सख्या यहाँ तक पाई जाती है कि आपस म तर्क-वितर्क और झगडा होन लगता है उपचार पीछे छूट जाता है इस पर एडीटर कहता है—'हमारा परम कर्तव्य यही है कि हम सब कटिबद्ध होकर एक चित्तता से इनके दुख दूर करने का उपाय करें होगा तो वही जो परमेश्वर की इच्छा है परन्तु यत्न मे त्रुटि होना ठीक नही है।' एडीटर आपसी मतभेद को अच्छा नहीं समझता। भारत की अवनति का कारण वह अनैक्य को ही मानता है। उसका कहना है— यदि सच पूछो तो अभी भारत म किसी वस्तु का सवथा अभाव नही है। विद्वान् बलवान धनवान् सैकड़ो है पर कोई किसी के काम का नही। अपने रगमाते सब है। हाय! दुष्टे अनक्यते पिशाचिनि! तैने ही हमारा सवनाश किया। हाय! हम किस प्रकार से धय धारण करें? तीरो स छिदे हुए हृदय पर कही पत्थर रखा जाता है? ' एडीटर सच्चा देश भक्त है। भारत की निर्धनता को देखकर उसे दुख होता है। व्यापार की उन्नति के लिए विदेश से मशीनें मगाने का प्रस्ताव भी उसे अच्छा नही प्रतीत होता। वह भारत को स्वाव लम्बी बनाने के पक्ष मे है। एडीटर का चरित्र एक देश-सुधारक की भावना स परिपूर्ण है।

मिश्र जी पात्रो के चरित्र निर्माण म पूण सफल है। चरित्रो की सजीवता और यथार्थता ही उनके नाटको म सरसता और सजीवनी-शक्ति का सचार करती है। उनके पात्र बड स्वाभाविक और अपन काय म तत्पर दिखाइ पडते है। उन्ह यह ध्यान रहता है कि हम कहा पर किमना और किस प्रकार बालना चाहिए। उनम पागल प्रलाप कही तो होता ही नहा। उनके चरित्र बड ठोस और मौलिक है।

देश काल

मिश्र जी के अधिकाश नाटको के वण्य विषय उनके अपने काल स ही सम्ब न्धित हैं। केवल सगीत शाकुन्तल' और हठी हम्मीर नाटक ही क्रमश पुराण काल और मुस्लिम-काल (१३०० ई) के हैं। लेकिन इन नाटको की कथावस्तु ही उस काल विशेष से सम्बन्धित है बाकी रूप रग आदि आधुनिक है। यहा तक कि कही-कहा मिश्र-काल की समस्याए भी इनम स्थान पा गयी हैं। सगीत शाकु न्तल' म दिया हुआ एक धूम का प्रसग देखिए—

धामन स्याम रे दया पीतम-भीतम अब हू नहीं अघाया बूढा बाबा स्याया देखो छाड़ीम्बार परान।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र भारत दुदशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अक पहिला दृश्य।

दूसरा दूत-अरे नहीं हम घूस न लेंगे इसमें पाप बड़ा है मन का धन, अधर्म की कौड़ी करेगी क्या कल्यान ॥ [१]

ऐसी ही देश भक्ति का स्वर भी निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है—

"देश भक्ति हरि भक्ति हेत, तन, मन धन वारो।
सत कविता को स्वादु पाय नित रहहिं सुखारो॥
भारत में चहुं दिसि प्रेममय धवल धुजा फहरत रहै।
बानी प्रताप हरि मिश्र की सुहृदय हृदय आदर लहै॥ [२]

हठी हम्मीर नाटक में भी मतवादियों पर गहरा आक्षेप किया गया है जो मिश्र-काल की देश-दशा का प्रतीक है— किसी लोक में गये? यह प्रश्न तो मतवादियों के विषय में हो सकता है क्योंकि उनका जन्म केवल व्यर्थ के प्रश्नोत्तरों ही में बीतता है। जिस बात का वे सद्‌गति मानते हैं उसके विषय में भी अविदित सुख दुःख निर्विशेष स्वरूप के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकते। उन्हीं को आप भी पूछा करें मर कर कहां गये? मैं भी कह दूंगा अपने व्यर्थ बकवाद में गये। [३] इसके साथ ही गोरक्षा की समस्या भी हठी हम्मीर नाटक में इस प्रकार व्यक्त हुई है—

मद पियहिं मलिच्छन साथ मांस नित खाहीं।
ताहू पर महि द्विजवंशी बनत लजाहीं॥
गनिका गृह जातहिं कल्प वस्त्र मन चाहीं।
गोरक्षा हितु अनु पर मह अन्नहु नाहीं॥
ऐसेन को मति गति वरहि नाम सुधारो।
प्रभु भारत की सुध ऐसो लो म बिसारो॥ [४]

इन नाटकों के अतिरिक्त 'कलि कौतुक रूपक' तो शुद्ध सामाजिक नाटक ही है। इसमें तत्कालीन समाज का पूरा चित्र खींचा गया है। इस नाटक में पदमचन्द तत्कालीन विद्यार्थी-समाज का प्रतीक बन कर आया है। वह अपने जीवन के सुमधुर क्षण का वर्णन इस प्रकार करता है 'अभी सिर्फ आठ बजा होगा पर हम मनसा दसन के ध्यान मा पी के दुरुस्त होगये। अब तीन बजे तक हम चाहे जहां जांय, चाचा साहब के हिसाब पढ़ो रहे है बल्कि चार बजे जायं तो भी कह सकते हैं कि हिसाब सीखने रहे। खर्च का कमी हई नहीं जहां किसी दोस्त से कोई चमकनी

---

१ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) छठवें अंक का अंकावतार
२ —वही— सातवाँ अंक तीसरा दृश्य
३ प्रतापनारायण मिश्र 'हठी 'हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट १
४ —वही— तीन पहिला।

हुई किताब माग के घर में दिखा दी जो चाहा सो ले लिया। कबूतर बुलबुल और पतंग वगैरह का खर्च उन दोस्तो से निकली आता है जो हम प्यार की नजर से देखते हैं। हम जिससे जिस चीज का फरमाइश करें भला वह इकार कर सकता है? क्या स्कूल में क्या घर में क्या मुहल्ले में क्या शहर मं-जिधर देखा हमी हम तो है।[1]

'भारत-रूपक' भी तत्कालीन देश-दशा का स्पष्ट चित्र दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है। इसलिए भारतीयो के उद्देश्य—निम्नांकित पंक्तियों में कितने अच्छे ढंग से व्यक्त किये गये हैं—

'अनेको लोग इगलिश पढ़ के मिस्टर।
हसे हर ढंग पर चाहे जमाना॥
गुलामी गर की मक्खूरे खातिर।
भले दुश्मन से बदतर है यगाना॥
जहाँ हो पेट भरने से फकत काम।
कहाँ वो वो तरक्की का ठिकाना॥[2]

भारत-दुर्दशा रूपक' के एडीटर का कथन भी तत्कालीन भारत की दशा पर अच्छा प्रकाश डालता है। देखिए—'अहो! कहाँ तो भारत को स्वतंत्र करने के लिए आये थे कहाँ परस्पर यह विरोध फूट और कलियुग की सेना अपने मित्रो का पकड़ ले गयी और फिर सत्य भी तो है कि जहाँ तनक-तनक बात पर बात भौंहें चढ़ जाती हैं वहाँ आगे किस बात की आशा की जाय? हा विधाता! देश भर का हम अकेले कहाँ तक रोवें। यदि कुछ दिना यही अवस्था रही तो यह पृथ्वी रसातल को चली जायगी ———सारा देश तो कलिराज का गुलाम हो रहा है। हिन्दूपन की तो कहीं गंध भी नहीं आती। केवल स्वार्थपरता का बल है। हृदयमों पराधीनता का चारों ओर विस्तार है। हाय! हम कहाँ जायें? क्या करें? अपना दुख किससे कहें? कोई श्रवण करने वाला नहीं।[3]

मिश्र जी समाज सेवी और देश हितैषी साहित्यकार थे इसलिए उनके नाटकों में तत्कालीन देश-दशा का चित्रण स्वतः हो हो गया है। साथ ही मिश्र जी का काल भी देश-व्यापी राष्ट्रीय-आन्दोलन का काल था जिससे पृथक रहना एक युग द्रष्टा साहित्यकार के लिए असम्भव था। मिश्र जी के नाटकों में उनका युग पूरी तरह साकार हो

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) तृतीय दृश्य।
२ प्रतापनारायण मिश्र भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) दूसरा अंक पहिला दृश्य।
३ —वही— तीसरा अंक पहिला दृश्य

गया है। दूसरे शब्दों म यदि यह कहा जाय कि मिश्र जी के नाटक अपने युग की अभिव्यक्ति हैं, तो भी अनुचित न होगा।

उद्देश्य

मिश्र जी के नाटकों का मूल उद्देश्य लोक हित और हिन्दी प्रचार है। लोक हित की भावना से ही अनुप्राणित होकर मिश्र जी समाज की कटु-स-कटु आलोचना करते और समाज म फैली हुई कुरीतियों के दुखद परिणाम दिखाकर, जनता को उनके उन्मूलन के लिए प्रेरित करते हैं। उनके पात्र प्रेमदास का कथन इस प्रसंग म द्रष्टव्य है— हाँ निन्दा और खुशामद तो सभी की बुरी है पर भाई अपने लोगों का मुख्य कर्तव्य यह है कि देश भ्राताओं के दुराचार से घृणा न करके उन्हे छटाने का उद्योग करें। पर क्या करूं मैं न ऐसा धनी हू, न बली जो किसी की पूर्ण रूप से सहायता कर सकूं। मेरा सुनता ही कौन है? केवल आप ही से मेरा वश है सो अनुरोध पूर्वक कहता हूँ कि मेरे विचारों म सब प्रकार साथ दीजिए, लोगों को उनके सच्चे सुख का मार्ग दिखाने और दुष्कर्म एवं तज्जनित क्लेश का ठीक-ठीक अनुभव कराने का प्रयत्न करते रहिए जिसमे किसी भाई की ऐसी दुदशा सुनने का अवसर न आवे।[1] मिश्र जी अपने नाटकों की भाषा को बड़ी सरल और स्पष्ट रखते है जिससे सामान्य बुद्धि वाले भी उन्ह देखें समझें और अपने आचरण को सुधारते हुए देशो द्धार म तत्पर हों। उनके सामाजिक और राष्ट्रीय नाटकों म समाज या राष्ट्र की किसी न किसी समस्या पर ही सीधा विचार किया गया है और समाज या राष्ट्र की अवनत अवस्था पर दुख प्रकट किया गया है। वे अपने उद्देश्य को— कलि कौतुक रूपक के शिवनाथ पात्र द्वारा इस प्रकार कहलाते हैं—

> तजि दुख प्रद दुरव्यसन पुरुष वनिता अरु बालक।
> मन क्रम बच सों होहिं सुखद आशा प्रति पालक॥
> निज गौरव पहिचान सजग रहिं कपटी जग सों।
> करहिं सबै सब काल देश हित तन, मन, धन सों॥[2]

अतीत घटनाओं पर आधारित नाटक भी अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाते हुए जनता म स्वाभिमान तथा आत्म शक्ति का संचार करते हैं। अतः मिश्र जी के सभी नाटकों म लोक हित की भावना ही निहित है।

इसके अतिरिक्त मिश्र जी हिन्दी को साहित्य की सभी विधाओं म प्रतिष्ठित कर उसे समृद्धिशाली बनाना चाहते थे। 'संगीत शाकुन्तल' के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं— कुछ भी हो यदि इसके द्वारा हमने सुनने को यह उपालम्भ

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि-कौतुक रूपक' (१८०९०) चतुर्थ दृश्य
२ —वही—'

भी दूर हो जाय कि हिन्दी म कोई ऐसा नाटक नही है जिसे सचमुच गीति रूपक कह सकें—तो भी हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।[1] सरल भाषा म नाटक लिखन का एक उद्देश्य यह भी था कि वे हिन्दी का प्रचार जन-सामान्य म करना चाहते थे। मिश्र जी के नाटको म उनके दोनो उद्देश्य-लोक-हित और हिन्दी प्रचार-एक म समन्वित होकर आये हैं और मिश्र जी अपने दोनो उद्देश्यो की पूर्ति म पूर्ण सफल है।

भाषा

मिश्र जी पात्रानुकूल भाषा लिखने के पक्षपाती थे। लाला श्रीनिवासदास कृत सयोगिता स्वयवर नाटक की आलोचना करते हुए वह लिखते हैं—स्त्रियाँ कैसी ही चतुर और पढी लिखी हो पर नाटककार को चाहिए कि उनकी भाषा पुरुषों से हल्की रक्खें नौकर चाकरो की बोली में सस्कृत के शब्द न भरें। युद्धभूमि मे पात्रो का बाजे की ताल पर पाँव उठाना दक्खिनियो के नाटक की नकल है पर वीर रस से दूर है नाचना और युद्ध दिखाना भेद रखता है। पृथिवीराज और सयोगिता की बातें कवियो की-सी हैं—तुम्हारा मुख चन्द्र सा है मेरा मन चकोर है—ऐसी बाते और बहुत सी बिजना भरी बातें केवल कवि लिखते हैं पर प्रेमिक और प्रेम पात्र कभी बोलते नही, उस अवसर म बात कम और लज्जापूर्ण सात्विक भाव अधिक होना चाहिए।[2] मिश्र जी ने अपने नाटको मे सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है। उनके नाटको म मुसलमान पात्र उर्दू देहाती पात्र बैसवाडी और ब्रजभाषा शिक्षित हिन्दू पात्र खडी बोली ईसाई पात्र अग्रेजी शब्दों म युक्त खडी बोली बगाली पात्र बगाली महाराष्ट्री पात्र मराठी पजाबी पात्र पजाबी बोलते दिखाई पड़ते हैं पर अभिनय की सुविधा के लिए बगाली मराठी और पजाबी कथनों के हिन्दी अनुवाद भी दे दिये गये हैं जिनका उपयोग उन कथनो के स्थान पर किया जा सकता है। इन विभिन्न भाषाओ के कथोपकथनो स उनकी बहुज्ञता और विविध भाषा ज्ञान का परिचय मिलता है। भारत-दुर्दशा रूपक म कलियुग और उनके सिपाहियों के तथा 'हठी हम्मीर नाटक' म मुसलमानो के सम्पूर्ण कथन उर्दू म हो है। अलाउद्दीन के दूत एलची का निम्नलिखित कथन उदाहरणार्थ दृष्टव्य है—

> 'हुजूर! उस मरदूद बुतपरस्त न कहा कि एक बादशाह क्या अगर हजार बादशाह चढ़ आवें तो भी अपने पनाहगीर को उनके हवाले न करूँगा। असलियात रनथभौर जलालुद्दीन का शाहजादा नही है जिनको मुरगो के चूजा

---

[1] प्रतापनारायण मिश्र सगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) भूमिका पृष्ठ १

[2] 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या १२ ('आलोचना')

की तरह कटवा डाला। यहाँ के एक-एक बच्चे में यह ताकत है कि खाते सलत दहला का तख्त उलटा दें।[१]

बसवाडी के कथन 'कलि कौतुक रूपक' और 'संगीत शाकुन्तल' में बहुतायत से मिलते हैं। पण्डाजी नेहाता का एक कथन देखिए—

'भाई सुनो। जसे हम बाम्हन आहिन। जब हम ही पीइयैं तौ दुसरेन के निंदा कौहें का होय-के भाई! हम बहोत ते नाही हुन भला। हमका सब जने पण्डीदत्त नाही रंडीदत्त कहा करो (सब हँसते हैं) हस यो। ते हम झूठ कहिथ? 'जल्हे जिउ तल्हे पिउ, जब न रही जिउ तब को ससोरका कही कि स पिउ।[२]

नारी-पात्रों की भाषा मिश्र जी ने बड़ी सामान्य रक्खी है। 'कलि कौतुक रूपक' में स्यामा और चम्पा के कथन बड़ी सरल भाषा में हैं। इनमें व्रज भाषापन अधिक है। उदाहरणार्थ स्यामा के कथन देखिए—

स्यामा—सो तो बीबी दुनिया की रीति ही है। जो जसी कर सो तसी पावै। वे मेरे साग भगत बने हैं तो मैं भी उन्हें छकाऊं हूं। इसमें क्या? पर तू तो मुझी को ठग है फिर भला चोर मैं कि तू?

*　　　　*　　　　*

स्यामा—बीबी की बात। इस जमाने में कोई भोला भी होय है। सब जाने है कि जवानी दिवानी कहावै है जब हमी को धन नहीं है तो बेपर वाली की कौन? पर जब तक एक बात परदे में रहै अच्छा ही है न।'[३]

मिश्र जी के नाटकों में शिक्षित और नागरिक पात्रों के कथन सरल खड़ी बोली में हैं। हम्मीर और उनकी माता में हुई बातचीत की भाषा देखिए—

'हम्मीर—हां फिर दीपक पर पतंग झुंड बांधकर भस्म होने को आया ही करते हैं, वरन हमारे दुर्ग का एक भाग गिरा भी दिया है।

माता—तो फिर तू किस नींद में सो रहा है?

हम्मीर—नहां नहीं सिंहनी-सावक को निद्रा कैसी? विशेषता मृग समूह के उपस्थित होने पर मैं तो तेरे चरण कमल की आज्ञा लेने आता ही था इतने में तू आ गया। इससे और भी निश्चय हुआ कि युद्ध में जय लाभ होगा।[४]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ३ सीन पहिला।

२ 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य

३ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) प्रथम दृश्य।

४ 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४ सीन पहिला।

मिश्र जी स्वाभाविक भाषा के पक्षपाती थे। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक पात्र की मातृ भाषा की ओर ध्यान रक्खा है और उसी प्रभाव को उसके कथनों में दिखाया है। ईसाई पात्र अंग्रेजी शब्दों से मिश्रित भाषा बोलते हैं। भारत-दुर्दशा रूपक के ईसाई का कथन उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है—

हमारा ओपीनियन (opinion सम्मति) में कन मगाने के वास्ते लेटर (letter चिट्ठी) भेजा जाय तो साथ ही सेसस फायल में इनका थोड़ा सा ब्लड (blood रुधिर) भी भेजना चाहिए। शायद वहां कोई डाक्टर और भी कोई तजवीज करे क्योंकि अभी इण्डिया का लोग इन बातों में पूरा नहीं है।'[1]

बंगाली महाराष्ट्री और पंजाबी से भी मिश्र जी क्रमशः बंगाली मराठी और पंजाबी ही बोलते हैं जो अभिनय के लिए कुछ अनुपयुक्त सी जान पड़ती है। उदाहरण के लिए एक बंगाली पात्र का कथन देखिए—

'आमार प्रिय मित्र जे कहिलेन ताहाते आमार किछु वक्तव्य आछे। आमी आशा कोरि यदि वक्तव्य विषय मध्ये किछु अनुचित हय, ताहोले मित्रगण क्षमा करिवेन। भ्रातृगण आपनेजे पोपादि शब्द आपनार व्याख्यान मध्य बलिया थाकेन इहा उचित नय। जखन पर्यन्त समस्त राग द्वेष छाड़िया समस्त भ्रातृगण एवं भगिनीगण एक संगे खाओ आ दाओ आ न करिवेन तथा जखन पर्यन्त समस्त जाति एक हइया विवाह इत्यादि सम्बन्ध परस्पर न करिवेन तखन पर्यन्त कोउन प्रकारे भारतेर उद्धार हइते पारेना।'[2]

पर इस कथन का हिन्दी में अनुवाद होने से अभिनय का दोष बहुत-कुछ दूर हो जाता है। वैसे इतनी अधिक पात्रानुकूल भाषा अभिनय के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती। ऐसी भाषा का प्रयोग, केवल भारत-दुर्दशा रूपक में दो चार कथनों में किया गया है। अन्यत्र मिश्र जी की भाषा पात्रानुकूल होते हुए भी अभिनय के लिए दुरूह नहीं है बल्कि उपयुक्त है। पात्रानुकूल भाषा होने से नाटकों के सम्वाद बड़े बलिष्ठ और सरस हो गये हैं।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र भारत-दुर्दशा (१९०२ ई०) तीसरा अंक पहिला दृश्य।

२ मेरे प्रिय मित्र ने जो कहा उसमें मुझे कुछ कहना है। मैं आशा करता हूं कि यदि इस कहने में कुछ अनुचित हो तो मित्रगण क्षमा करेंगे। भाई आप जो पोपादि शब्द अपने व्याख्यान में कहा करते हैं सो ठीक नहीं। जब तक कि समस्त झगड़ा झंझट छोड़कर सारे भाई और समस्त बहिनें एक संग में खाये पियेंगे तथा जब तक समस्त जाति एकाकार होकर परस्पर विवाह इत्यादि सम्बन्ध न करेंगी तब तक किसी भांति भारत का उद्धार नहीं हो सकता।

भारत-दुर्दशा रूपक' तीसरा अंक पहिला दृश्य।

मिश्र जी ने अपने नाटकों में सर्वत्र सरस भाषा का ही प्रयोग किया है। उन्हें सदय यह ध्यान रखा है कि ये नाटक अभिनय और सामान्य लोगों के लिए लिखे जा रहे हैं। उनके नाटकों का गद्य प्रमुख रूप से सरल खड़ी बोली में और पद्य ब्रजभाषा अवधी, खड़ी बोली और उर्दू में है। भाषा की दृष्टि से मिश्र जी के नाटक बड़े धनी हैं।

शैली

मिश्र जी की शैली में प्राचीनता और नवीनता का समुचित संयोग दिखाई पड़ता है। प्राचीन-नाट्य परम्परा के ही आधार पर उनके नाटकों में नान्दी पाठ और अंकों की अवतारणा हुई है। उनका प्रत्येक नाटक नान्दी पाठ से प्रारम्भ होता है। नान्दी पाठ बड़े संक्षेप में एक या दो दोहे में किया गया है। इसके अतिरिक्त कई नाटकों में-साहित्य से प्रेरित भरतवाक्य भी दिये गये हैं। दूसरी ओर-नवीनता के क्षेत्र में प्रस्तावना और वर्जित विषय दिखाने वाले गर्भांकों प्रवेशकों और विष्कम्भकों का उन्होंने अपने नाटकों में कोई स्थान नहीं दिया। उनके नाटक नान्दी पाठ से ही प्रारम्भ हो जाते हैं, केवल 'संगीत शाकुन्तल' में प्रस्तावना और अंकावतार की योजना है जो अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अनुवाद के रूप में की गयी है। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने इन सबको तिलांजलि दे दी है। अंकों और दृश्यों की योजना में भी मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का पूरा उपयोग किया है। अंकों से विभाजन का कोई क्रम नहीं है, किसी अंक में दो-तीन दृश्य हैं तो किसी में एक ही है या है भी नहीं। 'कलि कौतुक रूपक' में तो केवल चार दृश्य ही हैं। अंकों और दृश्यों का विभाजन, कथावस्तु और अभिनेयता की दृष्टि में रखकर किया गया है। नाटक भी आधुनिक मांग के अनुसार छोटे-छोटे हैं। तीन अंकों से लेकर ६ अंकों तक के नाटक उन्होंने लिखे हैं। उनका कोई भी मौलिक नाटक ७५ पृष्ठ से अधिक नहीं है। 'भारत-दुर्दशा रूपक' में तो कुल ३२ ही पृष्ठ हैं। मिश्र जी के नाटक आधुनिकता की ओर अधिक मुड़े हुए हैं प्राचीनता का मोह उनमें नहीं है।

कथोपकथन

मिश्र जी के कथोपकथन बड़े स्वाभाविक और सरस हैं। इन्होंने छोटे और लम्बे-दोनों प्रकार के कथोपकथन अपने नाटकों में रखे हैं। लम्बे कथोपकथन अधिकांश स्वगत कथन के रूप में हैं जैसे 'कलि कौतुक रूपक' के तृतीय दृश्य में पन्मथ और भारतीराम के कथन। लम्बे कथन भी सामान्य विषयों पर लिखे होने के कारण नीरस या अस्वाभाविक नहीं होने पाये हैं। इनमें जयशंकर प्रसाद के स्वगत कथनों की सी जटिलता एवं गम्भीरता नहीं है। ये बड़े सरस और अभिनेय हैं। वैसे मिश्र जी ने छोटे छोटे कथोपकथनों का प्रयोग ही अपने नाटकों में अधिक किया है और ये कथन—लम्बे कथनों की अपेक्षा नाटक के लिए अधिक उपयुक्त भी हैं। इनमें

मिश्र जी के सम्वादों की सजीवता सहज ही देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सम्वाद द्रष्टव्य है—

चण्डी—तो फिर अब विलम्ब केहि काज ?'
लश्करी—इस मडुए की गवारी बोली न गई।
चण्डी—तो का हम तुरुक आहिन ,
शकर—क्या साहब ! हम लोग तुरुक हैं जो उर्दू बोलते हैं।
चण्डी—उर्दू छिनारि क बोलइया सब सार तुरके आही।

(सब हसते हैं—शकर लज्जित होता है)

किशोरी—भाई किवाड़ बद करो जोर अब देर नाहक है।
नब्बू—मैं हजूर लगाता आया हू।
सब—ह ह ह सदा स (सब कई बार खाते पीते और कहते हैं)
लश्करी—(अपने पात्र म चण्डी को पिला के) अब तो बजा तुरुक हुए।
चण्डी—ई बिटिया। हम तुरुक, हमार पुरखा तुरुक ! कौन्या सारे को मिलै कहा।[1]

गद्यात्मक सम्वादों की भांति पद्यात्मक-सवाद भी मिश्र जी ने अपने नाटकों म रखे हैं। ये भी छोटे तथा बड़े दो रूपों म विभक्त किये जा सकते हैं। बड़े कथन 'भारत-दुर्दशा रूपक' के प्रथम तथा द्वितीय अक म विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं। य भी बड़े स्वाभाविक तथा सरस हैं। छोटे-सम्वाद 'सगीत शाकुन्तल' म अधिक मिलते हैं जिनसे 'सगीत शाकुन्तल' बड़ा प्रवाहपूर्ण बन गया है और मूल म अधिक इसम रसात्मकता आ गयी है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सम्वाद देखिए—

राजा— अबहिं न जाहु पियारी तजि यह छांह।
धूरि धूप अति भारी मारग मांह॥
आयहु बिन दुपहरी मैं बलि जाउ।
भुइ भूमरि कस परिहौंजहौं श्यमन साय॥

(हाथ पकड़ लिया)

शकुन्तला— छांड़हु छाड़हु जहौं कोमल पाउ।
मांहिन मोर जियरवा मोर हाथ॥
राजा—(स्वगत) कस-कस कोमल बहियां छाड़ौं हाथ।
प जिय डरत पियारी हसि न जाय॥

(छाड़ दिया)

---

[1] प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य

शकुन्तला— नाहिंन दोष पियरवा तनिक तुम्हार।
ई सब नाच नचावत भाग हमार॥"[1]

मिश्र जी के सम्वादों के निर्माण में पूर्ण सफल हैं। डा० राम विलास शर्मा मिश्र जी के सम्वादों के विषय में लिखते हैं— 'हिन्दी में आजकल जो नाटक निकलते हैं, उनमें बहुत कम ऐसे होते हैं जिनमें सम्वाद इतना स्वाभाविक और पात्रों के अनुकूल हो।[2] मिश्र जी के सम्वाद अपनी सरलता सरसता स्वाभाविकता और अभिनेयता में अद्वितीय है। सम्वादों के क्षेत्र में इतनी सफलता कम ही नाटककारों को मिली है।

हास्य और व्यंग्य

मिश्र जी ने सम्वादों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अपने नाटकों में यत्र-तत्र हास्य और व्यंग्य की भी योजना की है। इनके हास्य और व्यंग्य नाटक की मूल कथा के साथ ही आये हैं उनका पृथक से आयोजन नहीं किया गया। इसलिए वे नाटक के अभिन्न अंग से बने दिखाई पड़ते हैं। तमसखुर अली द्वारा गाया गया निम्नलिखित गीत इसके लिए दृष्टव्य है—

'आकर क्या जौहर दिखलाये टांय टांय फिस।
डरे डगर आज उठाये टांय टांय फिस॥
चले थे जिस दम रनथमौर।
सोचा नहीं मेव का ठौर॥
चढ़ आये जिस दम रजपूत।
करते बनी न कुछ करतूत॥
दुम दबाय के घर को भागे टांय टांय फिस।
डरे डगर आज उठाये टांय टांय फिस॥[3]

इसी प्रकार दुष्यन्त को अपनी मुद्रिका पर दुख प्रकट करता देखकर बृद्ध माढव्य अपनी लाठी पर दुख प्रकट करता हुआ कहता है—

'महाराज! लाठी पर अपनी मुझको भी दुख होय।
साथ न दिया तनिक भी मेरा, लज्जा दी सब खोय॥
हाय बुढ़ापे ने मेरी तो टेढ़ी कर दी पीठ।
है यह रांड आज तक सोयी, बांस की जायी ढीठ॥[4]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तला' (१९०६ ई०) तीसरा अंक दूसरा दृश्य
२ डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ ७४।
३ प्रतापनारायण मिश्र हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) एक ५ तीन पइसा।
४ , 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवां अंक दूसरा दृश्य

कलि कौतुक रूपक के द्वितीय और तृतीय दृश्य में भी हास्य की अच्छी सामग्री मिलती है। चण्डालन दहाना द्वारा गाया गया धोबा-गीत बाज-बाज रे सुनलिया ममविन तार अगना बना ही उत्कृष्ट है। कचासिंह और पन्मसन्त के कथन भी हास्य के लिए दृष्टव्य हैं—

कचा—(खूब घूर के) बाबू डरत क्या हो ? क्या कोई साई ाता है ? कोई साला तुमसे बोल तो आखें निकाल लें। तुम जानते हो कचासिंह किसी से डरते नहीं पर राजा तुम्हारे ताबेदार हैं। और तो क्या है हुकुम हो तो सिर काट के रख दें (गले में हाथ डाल के) हमसे तो न फरफट फिरा करो— देखो हां।

पन्म—नहीं बाबू तुमसे तो हम किसी तरह इनकार नहीं पर (हाथ जोड़ के) मिह बानी करके राह में न छेड़ा करो।

कचा—फिर क्या करें बाबू। बास बीस चक्कर लगाते हैं मुहल्ले में तुम्हारे दर्शन हो नहीं होते। हमारे घर तुम आते ही नहीं फिर भला रास्ते में न बोले तो दिन मानता है। आया करो राजा। हम तुम्हारी सब तरह खिजमत करेंगे।[१]

व्यंग्य तो मिश्र जी के नाटकों में बड़े तीव्र मिलते हैं। भारत—दुर्दशा रूपक' के महाराष्ट्री सज्जन के इस कथन में कि विदेश से कल मंगाकर स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे, भारतीयों की अकर्मण्यता पर सुन्दर व्यंग्य किया गया है।[२] ऐसे ही 'हठी हम्मीर नाटक' में मुसलमानों पर कई व्यंग्य किये गये हैं। एक स्थल पर निर्भयविजय सिंह मुसलमानों का उपहास करता हुआ हम्मीर से कहता है—'काम धंधा से छुट्टी पायी और मद्यपान तथा वेश्यासेवन में जा लगे। महाराज ! युद्ध-क्षेत्र में बहुधा आपने इनके मुंह से बिजन बिजन ऐसा शब्द सुना होगा इसका अर्थ हो स्त्रियों का संग। फारसी में वे कहते हैं साथ को और जन कहते हैं स्त्री को। फिर आपही बतलाइए जो लड़ाई के समय भी स्त्री-स्त्री चिल्लाते हैं उनमें वीरता कभी ?[३]

मिश्र जी का हास्य और व्यंग्य बड़ा सबल है इसके सामने—उनके नाटकों में—नीरसता एक क्षण के लिए भी नहीं ठहरने पाती। हास्य और व्यंग्य कथानक में मिला होने के कारण नाटकों पर ऊपर से लादा गया नहीं प्रतीत होता। इनकी योजना सादृश्य होती है और कथा प्रवाह इनके साथ बराबर, अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता रहता है। यहां यह कह देना अनावश्यक न होगा कि हास्य और

---

१ 'प्रतापनारायण मिश्र कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) तृतीय दृश्य।

२ भारत-दुर्दशा रूपक (१९०२ ई०) तीसरा अङ्क पहिला दृश्य

३ 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४ सीन दूसरा।

व्यग्य मिश्र जी की अपनी एक शैली ही बन गयी है जिसका प्रयोग वे बराबर अपनी कृतियों में करते रहते हैं।

गीतात्मकता

मिश्र जी ने गीतों का प्रयोग अपने नाटकों में बहुतायत से किया है। 'संगीत शाकुन्तल' और 'भारत दुर्दशा रूपक' तो गीति-नाट्य के रूप में लिखे ही गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य नाटकों में भी गीत पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। मिश्र जी के अधिकांश गीत छोटे-छोटे सम्वादों के रूप में लिखे गये हैं जिन्हें नाटक से पृथक नहीं किया जा सकता। ये गीत नाटकों में सरसता तो उत्पन्न ही करते हैं साथ ही इनसे कथानक भी रोचक बन जाता है। वह गीत भी संख्या में कम नहीं हैं इनकी उपयोगिता नाटक में तो है ही स्वतन्त्र भी इनका अस्तित्व है। संगीत शाकुन्तल का कंचुकी द्वारा गाया गीत—'हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन'[1] और हठी हम्मीर नाटक का इन्द्र द्वारा गाया गीत—'प्रभु भारत की सुध एसी तो न बिसारो'[2] अलग से भी प्रसिद्ध है। मिश्र जी के गीत नाटकों के उपयुक्त हैं। उनमें गम्भीरता नहीं है। दर्शक तत्क्षण ही उन्हें समझ लेते हैं। इनसे गद्य की एकरसता तो भंग होती ही है साथ ही पाठकों का मनोरंजन भी होता है। मिश्र जी के गीत बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक स्पर्श करते हैं। इससे सामान्य दर्शक भी उनसे पूरा आनन्द उठा सकते हैं। प्रमुख रूप से मिश्र जी के नाटकीय गीत तीन भागों में बांटे जा सकते हैं—देश प्रेम विषयक, शृंगारिक, तथा हास्य और व्यंग्यपरक। देश प्रेम विषयक गीत 'भारत-दुर्दशा रूपक' में, शृंगारिक गीत 'संगीत शाकुन्तल' में तथा हास्य और व्यंग्य-परक गीत 'हठी हम्मीर नाटक' और 'भारत-दुर्दशा रूपक' में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं।

देश प्रेम विषयक गीतों में भारत की दयनीय स्थिति पर दुख प्रकट किया गया है, देशद्रोहियों की भर्त्सना की गयी है और भारतीयों की अकर्मण्यता को कोसा गया है। मिश्र जी के समय में मुसलमान अंग्रेजों का पक्ष ले रहे थे और उनके गोवध आदि हिंसात्मक कार्य बढ़ते जा रहे थे। इसलिए मिश्र जी मुसलमानों को बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे और अवसर मिलने पर उनकी कटु आलोचना करते थे। हठी हम्मीर नाटक में मिश्र जी ने अपने इस क्षोभ को बड़े अच्छे शब्दों में—हम्मीर द्वारा व्यक्त कराया है—

---

1. प्रतापनारायण मिश्र : संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) पाँचवा अंक पहिला दृश्य
2. ,, : हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) एक्ट १ सीन पहिला।

जिन दुष्टन इत आय देव मन्दिरन ढहायो।
कल बल छल करि बहुतन को सद्धर्म छुड़ायो॥
* * *

जिनके विषय मुनीश लिखहिं निज ग्रन्थन माहीं।
नीच यवन ते और जगत में कोऊ नाहीं॥
जिनके शासन दुखित रहहिं सज्जन जग माहीं।
तिन दुष्टन सों पाप किए हू पुण्य सदाहीं॥
छाड़ि देहु सब नेक एक भृकुटी करि धावहु।
मातृ भूमि हित हेतु इनहिं मारहु जह पावहु॥[1]

शृंगारिक गीत मिश्र जी के बड़े चटीले हैं। इनमें नायिका के हाव भाव और सौंदर्य का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। नायक-नायिका के वार्तालाप भी इन गीतों में बड़े स्वाभाविक हैं। नायक-नायिका का विछोह हो जाने पर विरह-गीत भी बड़े सजीव लिखे गये हैं। दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र देखकर विरह विह्वल हो जाता है। मिश्र जी ने दुष्यन्त के चित्रात्मक विरह को बड़े अच्छे शब्दों में चित्रित किया है। दुष्यन्त शकुन्तला के चित्र का इस प्रकार वर्णन करता है—

'थकि बैठी है इहि काल विटप सींचन ते।
ह्वै रही शिथिल भुज चुवत स्वेद कन तन ते॥
खसि रहे फूल बिखरी सुथरी अलकन ते।
सिर सों सारी खसि खसि छतियन ते॥'[2]

दुष्यन्त का विरह गीतों में बड़ी तीव्रता को पहुँचा हुआ है। एक स्थान पर वह मुद्रिका की निन्दा करता हुआ कहता है—

कैसी भागमिन या मुंदरी है।
प्यारी के कर कमल पहुँचि के
धिक हतभागिनि छूटि परी।
अब तू कहाँ कहाँ वह अंगुरी
नास नखन नग दुति निदरी है।"[3]

हास्य और व्यंग्य परक गीत मिश्र जी के नाटकों में बहुत अधिक हैं और ये गीत इतने सफल हैं कि इनको सुनकर दर्शकों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ जाते हैं। उदाहरण के लिए रागराज और घोपटसिंह के कथन देखिए—

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक ४ सीन दूसरा।
२ संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवाँ अंक दूसरा दृश्य।
३ —वही—

रोगराज—

'हे कुपथ्य तुम मित्र हमारे शाह का येही है फरमान ।
बातों का अब काम नहीं है, जल्दी करिए भाई आन ॥
पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन घेरो आकर हिन्दुस्तान ।
बेशक अपने भी दिल में यह, बहुत दिनों से है अरमान ॥
बुढ़वा बड़ा मकड़ी खोरा, इनकी अब करना पहिचान ।
बेहतर है हैजा बदहजमी, खूब मचावेंगे घमसान ॥'[1]

चोपटसिंह अपनी सेना को आज्ञा देता है—

'मूछों प देव ताव
और आस्तीं चढ़ाव ।
झाड़ो दया के जोर सब ॥
हिन्दू हैं कछविले,
आपस नहीं मिले ।
जीतेगा तुमसे कोई कब ॥
साथ चलो मेरे सब ॥[2]

मिश्र जी ने अपने नाटकों में अनेक राग रागिनियों में गीत लिखे हैं। अकेले 'संगीत शाकुन्तल' में ही लगभग ७२ राग रागिनियों में गीत हैं। कई गीत तो ग्राम गीतों की धुन पर लिखे गए हैं जो बड़े उत्कृष्ट हैं। संगीत शाकुन्तल के चौथे अंक में धीमर का 'चलो गोरीपियन' गाना तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। मिश्र जी अपने नाटकीय गीतों में पूर्ण सफल हैं।

अभिनेयता

मिश्र जी के नाटक साहित्यिक और रंगमंचीय नाटकों का समन्वित रूप हैं। इनमें साहित्यिकता तो सम्पूर्ण है ही साथ ही ये रंगमंच के भी पूर्ण अनुकूल हैं। अपने साहित्यिक और रंगमंचीय—दोनों गुणों से युक्त होने के कारण मिश्र जी के नाटक कहीं भी सीमा का अतिक्रमण करते नहीं दिखाई देते। इनमें न तो जयशंकर प्रसाद के नाटकों की सी गम्भीरता और रूक्षता ही है और न पारसी नाटकों की सी उच्छृंखलता ही है। ये बड़ी स्वाभाविक गति से—अपनी सीमा में बँधे हुए चलते हैं। नाटकों के लिखने में मिश्र जी की दृष्टि-साहित्यिकता के साथ-साथ अभिनेयता की ओर बराबर रही है। संगीत शाकुन्तल की भूमिका में वे उसके अभिनय का सुझाव इस प्रकार देते हैं—"गाने में इतना ध्यान अवश्य रक्खें कि ताल बड़ा है अतः प्रबन्ध

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) दूसरा अंक, पहिला दृश्य
२ —वही— दूसरा अंक दूसरा दृश्य ।

में त्रुटि न होने पावे आठ नौ बजे रात तक अवश्य हो आरम्भ हो जाना चाहिए तब कहीं सूर्योदय के लगभग पूरा हो सकेगा। सो भी कब ? जब अभिनय कर्ता के गान्धर्वत्व प्रदर्शन बहुत चाव न रख के—जहाँ खड़ी बोली के छन्द हैं वा एक ही छन्द दूर तक चला गया है वहाँ के वाक्य नियत स्वरों में अथवा गद्य ही की भाँति एक बार मात्र उच्चरित करके केवल दो ही चार पद्य वाले गीत पूर्ण रूप से गाये जायँ तब। सुभीते के लिए यह चिह्न (+ + +) भी कर दिये हैं इनके बीच वाले वचन यदि छोड़ दिये जायँ तो भी खेल का रूप न बिगड़ेगा[1]। मिश्र जी के सभी नाटक अभिनेयता को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं।

अभिनय के उपक्रम

अपने नाटकों को अभिनय बनाने के लिए मिश्र जी ने अनेक साधन जुटाये हैं। सर्वप्रथम तो उन्होंने नाटकों की कथावस्तु ही ऐसी चुनी है जो देशकाल और दर्शकों के अनुकूल है। उससे दर्शकों का मनोरंजन तो होता ही है साथ ही उनका नैतिक सुधार भी होता है। फिर कथावस्तु को उन्होंने अंकों और दृश्यों में ऐसी कुशलता से विभक्त किया है कि उसमें अभिनेय-तत्व आप से आप आ गये हैं। छोटे छोटे दृश्य होने के कारण प्रबंध और उनके अभिनय निर्वाह में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। वर्जित कथावस्तु और दृश्यों को उन्होंने अपने नाटकों में बिलकुल स्थान नहीं दिया। हत्याएँ और युद्ध आदि के दृश्य रंगमंच पर न दिखाकर पात्रों द्वारा सूचित कराये गये हैं। पात्रों की संख्या भी बहुत-कुछ अभिनय के अनुकूल ही रक्खी गयी है। किसी भी दृश्य में—रंगमंच पर पात्रों की भीड़ नहीं लगने पाती। उनका आवागमन नैमित्तिक रूप में होता रहता है। सम्वाद भी अभिनय के अनुकूल छोटे सरल और स्वाभाविक हैं। भाषा भी पात्रानुकूल रक्खी गयी है। इसके अतिरिक्त हास्य और व्यंग्य तथा गीतात्मकता द्वारा उन्होंने अपने नाटकों में ऐसी सजीवनी शक्ति फूँक दी है कि दर्शकों के मन ज्वार से पीड़ित मुर्झाये मन प्रफुल्लित होकर नाचने लगते हैं और बार-बार देखने पर भी उनके मन तृप्त नहीं होते।

अभिनय की उपर्युक्त अनुकूलताओं के साथ ही कुछ प्रतिकूलतायें भी मिश्र जी के नाटकों में मिलती हैं, उनका भी उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक है। संगीत शाकुन्तल में प्रथम अंक में दुष्यन्त रथ पर बैठे हुए हिरन का पीछा करते दिखाये गये हैं। यह दृश्य अभिनय के लिए उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इस ही इसी नाटक के सातवें अंक में दुष्यन्त का मातलि के साथ रथ पर बैठकर—आकाश मार्ग से—स्वर्ग लोक से आना दिखाया गया है और रास्ते में दुष्यन्त से आकाश मार्ग की छटा का वर्णन भी कराया गया है जो नितान्त अस्वाभाविक और अभिनय के लिए अनुपयुक्त

---

१ प्रतापनारायण मिश्र संगीत शाकुन्तल (१९०८ ई०) भूमिका पृष्ठ १ २

है। इसके अतिरिक्त 'भारत-दुदशा रूपक' के प्रथम दो अंकों के गीत और कलि कौतुक रूपक' के ततीय दृश्य के गद्य-कथन बड़े लम्बे हैं। 'भारत-दुर्दशा रूपक' के ततीय अंक के बगला मराठी और पजाबी भाषाओं के कथन भी अभिनय के लिए दुरूह हैं। तथा 'हठी हम्मीर नाटक' के छठवें अंक मे शिवलोक का दृश्य और देव ताओं का अमघट भी आधुनिक युग की वैज्ञानिकता की दृष्टि से अस्वाभाविक प्रतीत होता है। फिर भी ये प्रतिकूलताए, अभिनय की अनुकूलताओ को देखते हुए नगण्य हैं। सगीत शाकुतल के दृश्यो की योजना महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' के अनुकरण पर की गयी है इसलिए उनके दोषी मिश्र जी नहीं हैं। 'भारत दुर्दशा रूपक' के लम्बे गीत भी हास्य और व्यग्य से युक्त होने के कारण सरस है और उनका अभिनय दर्शकों को खलने वाला नहीं है। 'कलि कौतुक रूपक' के भी लम्बे गद्य कथन रोचक हैं। भारत-दुर्दशा रूपक' के बगला मराठी और पजाबी भाषाओं के सम्वाद भी हिन्दी अनुवाद के स्थानापन्न किये जा सकते हैं और हठी हम्मीर नाटक' का भी शिवलोक अभिनय की दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं जान पड़ता—धार्मिक दृष्टि से भले ही हो। फिर मिश्र जी के नाटकों के अनेक सफल अभिनय भी हो चुके हैं जो उनकी अभिनेयता के पुष्ट प्रमाण हैं। इसके साथ ही मिश्र जी स्वय एक अभिनेता थे इसलिए भी उनके नाटकों का अभिनेय होना अवश्यम्भावी है। अत यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि मिश्र जी के नाटक अभि नयता के गुणो से पूरी तरह युक्त हैं।

नाट्याभिनय की दिशा मे मिश्र जी का योगदान

मिश्र जी ने हिन्दी-जगत् को अभिनय नाटक ही प्रदान नहीं किये साथ ही अभिनय की दिशा में भी सक्रिय योग दिया। वे स्वत ही एक कुशल अभिनेता थे स्त्री और पुरुष—दोनों पात्रों के अभिनय वे करते थे। कानपुर में सुचारु रूप से नाटकों का अभिनय मिश्र जी द्वारा ही प्रारम्भ हुआ। मिश्र जी के ही प्रयत्न से सन् १८८२ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत नीलदेवी और 'अधेर नगरी' नाटक सफलता के साथ खेले गये।[1] इसके बाद सर्वप्रथम सन् १८८५ ई० कानपुर में भारत एनटरटेनमेट क्लब' के नाम से एक नाट्य समिति—मिश्र जी और उनके मित्रों के सहयोग से—स्थापित हुई।[2] इस समिति द्वारा अनेक नाटक खेले गये और इसके द्वारा अभिनय की एक परम्परा सी चल पड़ी। थोड़े ही दिनों में—'भारत एनटरटेनमेट क्लब' के अनुकरण पर एम० ए० क्लब ए० बी० क्लब आदि, कई क्लब आदि स्थापित हो गये और इनके द्वारा अनेक सुन्दर नाटक अभिनीत हुए।[3]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या १ 'कानपुर और नाटक' प्रतापनारायण मिश्र
२ —वही—
३ —वही—

आगे चलकर भारत एनटरटेनमट क्लब' का नाम 'भारत मनोरजनी सभा हो गया'[1] और इस सभा क प्रबन्ध से सन् १८८७ ई० में हठी हम्मीर नाटक कलि प्रवेश नीति रूपक गोसकट नाटक और जयनारसिंह प्रहसन खेला गया। इनम प्रथम दो नाटक मिश्र जी के लिखे हैं । इनम मिश्र जी ने अभिनय भी किया था। इन नाटकों के अभिनय म सभा को बडी सफलता मिली। दर्शकों की भी सख्या आठ सौ के थी और सभी ने नाटकों के कुशल अभिनय की प्रशसा की।[2] मिश्र जी उक्त अभिनय के विषय म लिखते है— जिसकी प्रशसा तो अपने मुह मिया मिट्ठू बनना है क्योंकि इस पत्र का सम्पादक भी एक अभिनय कर्ता था और दोनो नाटक भी उसी के लिखे है एवं कानपुर मे उसे दावा भी है कि श्री हरिश्चन्द्र की बराबरी करना ता पाप है पर उसी कविवर के महराज मन्त्री हम भी है।[3] इस प्रकार कानपुर मिश्र जी स नाटककार और अभिनेता को पाकर थोड़ ही दिन म जगमगा उठा।

मिश्र जी ने स्वत अपने नाटका का अभिनय तो किया ही, साथ ही अन्य नाटककारा क नाटका का भी अभिनय कर उन्हें प्रोत्साहित किया। यद्यपि मिश्र जी को अभिनय के क्षेत्र म अनेक परेशानियाँ उठानी पडी पर वह अपने उद्देश्य म सफल रहे। कानपुर के लोग उन्हें अधिक सहायता नही दे सके । वे कहते हैं— बडी भारी छूत इस शहर क लोगा म यह है कि यदि कोई पुरुष अच्छा काम करना विचारे और अन्य लोग उस समझ भी ल कि अच्छा है, तो भी उनके सहायक हो के उन्नति न देंगे। अपनी नामवरी के लालच म कुछ सामय न होने पर भी ढाई चावल की खिचडी अलग पकावेंगे। इनम दोना की हानि होती है। यदि यह सभायें एक हो क या परस्पर सहायता करके सुयोग्य कवियो के बनाय हुए वा बनवा क नाटक खेला करें तो क्या कहना है। पर कह कौन ?[4] मिश्र जी कानपुर की तत्कालीन सभी नाट्य-समितियो की प्रशसा किया करते थे और उन्हें अच्छे नागरी नाटक खेलने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सन १८८८ ई० म ए० वी क्लब न पहले-पहल गम्माए इन्क' और गोरक्षा नाटक खेला । अभिनय उतना अच्छा नही हुआ । एम० ए० क्लब न ता उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा पर मिश्र जी ने प्रथम प्रयास समझकर उसकी सराहना की—'९ अगस्त को इस क्लब न अभिनय किया पर हम यह मुक्त कण्ठ स कहेंगे कि यदि हमारे प्रिय मित्र श्री भरव प्रसाद वर्मा तन मन धन म बद्धपरिकर न होत तो यह दिन कठिन था । नाटक पहिले-पहल था और भाषा भी उर्दू थी पर पात्रगण

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या एक कानपुर और नाटक —प्रतापनारायण मिश्र
२ —वही—' ४ ५ कानपुर कुछ कुनमुनाया है—प्रतापनारायण मिश्र
३ '—वही—
४ —वही— ५ १ कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र

चतुर थे इससे अभिनय सराहने योग्य था इसमें शक नहीं। एम० ए० क्लब के कई सभासद नाराज हो के उठ गये। यह अयोग्य किया और बहुत से अशिक्षित जन कोलाहल की सत भी सिखाते रहे, पर हमारे कोटपाल अलीहुसन साहब के परिश्रम और प्रबन्ध से शान्ति रही। सम्मए इश्क और गारज़ा' निर्विघ्न खेला गया। सुनते हैं कि इस क्लब में उत्तमोत्तम नागरी के नाटक भी खेल जाया करेंगे। परमेश्वर इस किंवदन्ती को सत्य करे। हम अपने सुहृदवर भैरवप्रसाद (मोलो बाबू) से आशा रखते हैं कि नाटक का असली अमृतरस परिणाम करने में सब प्रोत्साहित रहेंगे।'[1]
मिश्र जी का किसी समिति से द्वेष नहीं था वे तो केवल नाट्याभिनय को प्रगतिशील देखना चाहते थे।

मिश्र जी कानपुर से बाहर भी नाटक खेलने जाते थे और अभिनय कला का प्रचार किया करते थे। बांकीपुर (पटना) में इनके नाटक खेलने का वृत्तांत तो प्रसिद्ध ही है। बाबू रामदीन सिंह के प्रयत्न से वहाँ भारतेन्दु कृत 'हरिश्चन्द्र नाटक' खेला गया था जिसमें स्वयं भारतेन्दु जी ने राजा हरिश्चन्द्र का और प्रतापनारायण जी ने रोहिताश्व का अभिनय किया था। (विशेष विवरण के लिए इसी शोध प्रबन्ध का आठवाँ वाला अध्याय देखिये) इस प्रकार मिश्र जी आजीवन नाट्याभिनय को आगे बढ़ाने में लगे रहे और पर्याप्त सफलता भी प्राप्त की। पर खेद का विषय है की नयी अभिनय-परम्परा उनके जीवन के साथ ही समाप्त हो गयी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि यह परम्परा आगे चलती रहती तो आज हिन्दी रंगमंच की इतनी दयनीय दशा न होती।

नाटकों के लिखने में मिश्र जी का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक रहा है। भारतेन्दु युग की सभी विशेषताएं उनके नाटकों में एकीकृत हो गयी हैं। पुरातनवादी संकीर्णता एवं धार्मिकता उनके नाटकों में नहीं है। वे शुद्ध वैज्ञानिक पीठिका पर लिखे गये हैं। सभी नाटक राष्ट्रीयता और लोक-हित की भावना से आप्लावित हैं। मिश्र जी ने सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। इनके लिखने में उन्होंने किसी परम्परा का अनुसरण नहीं किया। इनमें उनकी अपनी स्वच्छन्दता ही सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इसी से ब्रजरत्नदास जी मिश्र जी के नाटकों की विशेषताएं बताने लगते हैं— "मिश्र जी की प्रतिभा कवित्व शक्ति तथा शिष्ट परिहास प्रियता अच्छी मात्रा में थी और कई भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। मुहाविरों ग्रामीण कहावतों का वह ऐसा अच्छा प्रयोग करते थे कि भाषा में जान आ जाती थी। उर्दू की जिंदादिली इनके नस-नस में भरी थी।"[2] निश्चित ही मिश्र जी के नाटकों में उनकी प्रतिभा

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या १ कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र
२ ब्रजरत्नदास—'हिन्दी-नाट्य-साहित्य' (२००१ वि०)-पृष्ठ ९७

प्रधान है और उसी क बल पर उनक नाटक इतन प्रभावोत्पादक हो गये हैं। मिश्र जी से पूर्व नाटकों का कवल श्रीगणेश ही हो पाया था । मिश्र जी ने उनम सरसता अभिनेयता और वज्ञानिकता का सयोग कर उन्ह विकास की आर बढाया और अगामी नाटककारो का मार्ग निर्देशन किया । इस प्रकार मिश्र जी के नाटक एतिहासिक प्रगति के प्रतीक हैं। जब तक साहित्यकारो में इतिहास अभिनय और यथार्थता के प्रति ममता रहगी तब तक मिश्र जी क नाटक अजर और अमर रहग ।

तीसरा अध्याय

मिश्र जी के निबंध

भारतेन्दु-युग में हिन्दी निबन्ध का विकास

निबन्ध गद्य की एक ठोस और परिमार्जित विधा है। इसका विकास गद्य के प्रौढ़ काल में होता है। जब-तक गद्य का रूप स्थिर और परिष्कृत नहीं हो जाता तब-तक उत्कृष्ट निबन्ध नहीं लिखे जा सकते। जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं— निबन्ध में गद्य के सम्पूर्ण बल, तीव्रतम प्रवाह, अमिट प्रभाव, शरीर-संकोच और अर्थ विस्तार की परख होती है। निबन्ध गद्य को अधिक-से-अधिक प्राणवान बनाता है। निबन्ध किसी भी साहित्य के गद्य विकास का मापदण्ड है।[1] इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी निबन्ध को गद्य की कसौटी कहा है।[2] भारतेन्दु-युग तक हिन्दी-गद्य पूरी तरह विकसित हो चुका था उसमें निबन्ध लिखने की पूरी शक्ति आ गयी थी। अतः भारतेन्दु युग के उत्तरार्द्ध में ही हिन्दी निबन्ध का जन्म हुआ। वैसे भारतवर्ष में विचार प्रधान और निर्णयात्मक शास्त्रीय वक्तव्यों की एक परम्परा मिलती है जिसमें अनेक प्रकार के धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर विभिन्न आचार्यों ने अपने मत प्रकट किये हैं। इनमें खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। उदाहरणार्थ वल्लभाचार्य आदि के वक्तव्यों में विचारात्मक निबन्ध का रूप देखा जा सकता है। पर खड़ी बोली गद्य में निबन्ध का स्वरूप भारतेन्दु-युग से पूर्व नहीं मिलता।

पाश्चात्य निबन्ध साहित्य हिन्दी निबन्ध-साहित्य से प्राचीन है। पाश्चात्य साहित्य में निबन्धों का प्रणयन सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हो गया था क्योंकि हिन्दी में उस समय गद्य का भी विकास नहीं हुआ था। प्रारम्भ में अंग्रेजी निबन्ध बड़े सामान्य स्तर के होते थे। उनमें लेखक अपने विचारों, रुचियों और अनुभवों को छोटे छोटे रूपों में व्यक्त करते थे। आगे चलकर लेखकों में जब अधिक मुखरता आयी तब वैयक्तिक निबन्धों की सृष्टि हुई। निबन्ध-साहित्य के विकसित हो जाने पर पाश्चात्य निबन्धों की दो कोटियाँ हो गयीं—एक विषयी प्रधान (Subjective Essays) दूसरी विषय प्रधान (Objective Essays)। विषयी प्रधान निबन्धों को पाश्चात्य-साहित्य में प्रमुखता रही क्योंकि विषयी प्रधान निबन्ध अधिक

---

१ प्रो० जयनाथ 'नलिन' 'हिन्दी निबन्धकार' (१९५४ ई०) पृष्ठ २

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००६ वि०) पृ० ५०५

सरस तथा स्वाभाविक होते हैं और विषयप्रधान निबन्ध नीरस, चिन्तनपरक और स्थूल होते हैं। विषयीप्रधान निबन्धों में लेखक का व्यक्तित्व ही प्रधान रहता है। लेखक विषय को अपने अनुकूल बना लेता है। विषय प्रधान निबन्धों में लेखक विषय को प्रमुख मानकर चलता है और उसके पक्ष विपक्ष में अनेक तर्क-वितर्क उपस्थित करता है तथा अपने मत के समर्थन में अनेक प्रमाण भी देता है। पाश्चात्य साहित्य में विषयी प्रधान निबन्ध को ही वास्तविक निबन्ध समझा जाता है।

भारतेन्दु युग तक बंगला भाषा में भी निबन्ध का पूर्ण विकास हो चुका था। बंग निबन्धकारों की उत्कृष्ट कृतियाँ साहित्य जगत के सामने आ चुकी थीं। इस प्रकार भारतेन्दु-युग में साहित्यकारों के समक्ष संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला की परम्पराएं विद्यमान थीं। इनसे लेखकों को बहुत-कुछ प्रेरणाएं मिलीं। भारतेन्दु युगीन प्रायः सभी लेखक संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा का ज्ञान रखते थे। इससे तत्कालीन निबन्ध की प्रवृत्तियों के समर्थन में बड़ी सहायता मिली। लेकिन अपनी पूर्व परम्पराओं से प्रेरित होकर भी हिन्दी निबन्ध साहित्य पूर्ण मौलिक है। इसपर लेखकों के व्यक्तित्व और तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक प्रभाव पड़ा है। कुछ साहित्यकार हिन्दी निबन्ध को अंग्रेजी-साहित्य की देन मानते हैं[1] पर यह धारणा निर्मूल है। अकेला अंग्रेजी-साहित्य ही हिन्दी निबन्ध का मूल प्रेरक नहीं है। इसके मूल में अनेक पूर्वी तथा पश्चिमी परम्पराएं, जातीय विशेषताएं और लेखकों के मौलिक विचार समन्वित हैं। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं— भारतेन्दु-युग का साहित्य हिन्दी भाषी जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। भारतेन्दु-युग की जिन्दादिली, उसका व्यंग्य और हास्य, उसका सरल, सरस गद्य और लोक संस्कृति से उसकी निकटता से सभी परिचित हैं, ये उसकी जातीय विशेषताएं हैं। भारतेन्दु युग ने साहित्य न केवल अंग्रेजी साहित्य से वरन् बंगला साहित्य से भी प्रेरणा पायी है। लेकिन उसके साहित्य की जड़ें इसी धरती में हैं और ऊपर बताई हुई उसकी जातीय विशेषताएं उसकी अपनी हैं, मौलिक हैं। उनके लिए हम किसी के ऋणी नहीं हैं।[2] डा० गुलाबराय तो बाहरी प्रेरणाओं को बिलकुल ही महत्व नहीं देते। वे लिखते हैं— भारतेन्दु-युग में निबन्ध-साहित्य का उदय किन्हीं बाहरी प्रेरणाओं से नहीं हुआ वरन् उसका जन्म परिस्थिति की आवश्यकताओं में हृदय की उमंग से हुआ। उस युग का निबन्ध-साहित्य वाग्विलास था अवश्य किन्तु उसका सम्बन्ध तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से था। उसमें निर्वैयक्तिकता न

---

१ शितिकण्ठ मिश्र खड़ी बोली का आन्दोलन (२०१ वि०) पृष्ठ ११२

२ डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ ५ (तीसरे संस्करण की भूमिका)

थी।[1] पर अंग्रेजी साहित्य का आंशिक प्रभाव तो हिन्दी निबन्ध पर पड़ा ही है। नहीं कुछ तो निबन्ध का ढांचा ही पाश्चात्य निबन्ध से प्रभावित है। भारतेन्दु-युग तक अंग्रेजी भाषा का पूर्ण प्रचार भी भारत में हो चुका था अतः अंग्रेजी-साहित्य का कुछ-न-कुछ प्रभाव तो अवश्य ही निबन्ध पर पड़ा है। लेकिन अंग्रेजी-साहित्य के प्रभाव को प्रमुख मानना या उसकी देन कहना, हिन्दी निबन्ध का उपहास करना है।

हिन्दी निबन्ध के विकास में खड़ी बोली गद्य संस्कृत अंग्रेजी और बंगला साहित्य तथा लेखकों के स्वतन्त्र और सबल व्यक्तित्व का तो महत्त्वपूर्ण स्थान है ही, साथ ही और भी ऐसे अनेक शक्ति-स्रोत हैं जिन्होंने निबन्ध के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया। यदि खड़ी बोली—गद्य ने अभिव्यक्ति को प्रवाहपूर्ण बनाया, संस्कृत अंग्रेजी और बंगला साहित्य ने रूप विधान को पुष्ट किया तथा व्यक्तित्व ने उसे सरसता प्रदान की तो अन्य सहयोगी शक्ति स्रोतों ने उसके आत्म तत्व को बल दिया और जन जन तक पहुंचाकर उसे विकास क्रम में आगे बढ़ाया। इन शक्ति-स्रोतों में राष्ट्रीय-जागृति का विशेष स्थान है। अंग्रेजों की शोषण-नीति भारतेन्दु-युग के लेखकों से छिपी न रही। उनके हृदय में—प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रीय चेतना के भाव जागृत होने लगे। उन भावों को उन्होंने प्रत्येक भारतवासी तक पहुंचाना चाहा। इसके लिए उन्हें भावाभिव्यक्ति के स्पष्ट प्रभावपूर्ण और सरल माध्यम की आवश्यकता हुई। कहना न होगा कि निबन्ध ही उनकी अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम बना और यही कारण है कि उस समय के प्रत्येक निबन्ध में प्रायः राष्ट्रीय भावना के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त इस युग तक आते-आते हिन्दी को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में शिक्षा-संस्थाओं में भी स्थान मिल गया था इसलिए हिन्दी के अध्ययन तथा अध्यापन के लिए पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी, और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बरबस पुस्तकों का सृजन प्रारम्भ हुआ। पाठ्यक्रम के स्तर का ध्यान में रखते हुए कृतियों का प्रणयन होने के कारण निबन्ध के तत्व उनमें स्वतः आने लगे। इस प्रकार निबन्ध साहित्य को शिक्षा संस्थाओं द्वारा बड़ा प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही भारतेन्दु युग तक भारतवर्ष में मुद्रणयन्त्रों की भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी जिसके कारण दैनिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएं इतनी अधिक संख्या में निकलने लगी थीं कि इस युग का प्रायः प्रत्येक लेखक किसी-न-किसी पत्र का सम्पादक था और अपने पत्र में अधिकतर अपने लिए निबन्ध या लेख ही लिखा करता था। पत्रकला के विकास के कारण लेखक और पाठक के बीच सहज ही गहरा सम्बन्ध स्थापित हो गया और इससे निबन्ध साहित्य के प्रचार में बड़ी सहायता मिली। डा० शितिकंठ मिश्र पत्र-पत्रिकाओं को ही निबन्ध के विकास का मुख्य आधार मानते हैं—"पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से ही

---

१ डा० गुलाबराय 'काव्य के रूप (१९५८ ई०) पृष्ठ २३३

निबन्ध-साहित्य की भी नींव पड़ी। इसके पहले गद्य कथन कथात्मक होता था।[1] इस विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि हिन्दी निबन्ध का आत्मतत्व पूर्णतया भारतीय है इसमें पाश्चात्य-साहित्य का आरोप लगाना निरा भ्रम पूर्ण है।

भारतेन्दु-युग के लेखक भी बड़े प्रतिभा सम्पन्न थे। उनके सबल व्यक्तित्व और कर्मठता ने निबन्ध के विकास में बड़ा सहयोग दिया। इस युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्री निवासदास, अम्बिकादत्त व्यास और गोविन्दनारायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५० १८८५ ई०) प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। इन्होंने साहित्य की प्रायः प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी है। निबन्ध के क्षेत्र में यद्यपि इन्हें सफलता नहीं मिली फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से इनके निबन्धों का साहित्य में स्थान है। इनके निबन्ध अधिकतर लेख की कोटि में आते हैं। उनमें भावात्मकता तथा अनुभूति की गहराई नहीं है। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्ध सामान्य और चलतू भाषा में लिखे गये हैं। इनकी शैली व्यास है। बालकृष्ण भट्ट (१८४४ १९१४ ई०) के निबन्ध उत्कृष्ट हैं। इन्होंने साहित्यिक कोटि के बड़े सुन्दर विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं। कुछ निबन्ध इनके भावात्मक और व्यंग्यात्मक भी हैं पर इनमें इनका व्यक्तित्व पूर्ण प्रत्यक्ष नहीं हो सका है कारण ये परिमार्जित और संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने के पक्षपाती थे। इनके भाव इनकी भाषा में दब दिखाई देते हैं। भट्ट जी ने भी साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्धों की शैली व्यास और समास है। पं० प्रतापनारायण मिश्र (१८५६ १८९४ ई०) के निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान हैं। इन्होंने छोटे-छोटे तथा सामान्य विषयों पर उत्कृष्ट निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्धों की भाषा प्रवाहपूर्ण और मुहावरेदार है। हास्य और व्यंग्य के लिए ग्रामीणता का पुट भी यत्र-तत्र मिलता है। इन्होंने हास्य और व्यंग्य तथा मुहावरेदार शैली का प्रयोग अधिकतर अपने निबन्धों में किया है। बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन (१८५५ १९२२ ई०) ने प्रमुख रूप से विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं। ये अलंकारिक भाषा लिखने के पक्ष में थे। अनुप्रासिक छटा लाने के लिए अर्थ का भी विचार नहीं करते थे। एक-एक शब्द चुन चुन कर रखते थे। ये शब्दों के गढ़िया थे। इनकी भाषा जन-सामान्य की समझ से बाहर की थी। शब्दों की कलाबाजी और चमत्कार प्रदर्शन में अधिक लिप्त होने के कारण इनके निबन्ध नीरस बन गये हैं। अपने युग में ये सबसे अधिक क्लिष्ट भाषा लिखने वालों में थे। लाला श्री निवास दास (१८५० १८८७ ई०) ने यद्यपि

---

१ डा० शितिकण्ठ मिश्र 'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०), पृ० ११३

निबन्ध बहुत-कम लिखे हैं। पर जितने लिखे है वे बड़े सरस और पुष्ट है। भाषा भी इनकी साफ-सुथरी और चलतू है, दिल्ली के प्रान्तीय तथा उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया गया है। अम्बिकादत्त व्यास (१८५८ १९०० ई०) ने भी बहुत-कम निबन्ध लिखे हैं। इनकी भाषा में पंडिताऊपन अधिक है तथा भाषा भी अधिक व्यवस्थित नहीं है। गोविन्दनारायण मिश्र (१८५९-१९२३ ई०) भी 'प्रेमघन' की तरह काव्यात्मक भाषा लिखने के पक्षपाती थे। इनके निबन्ध भी विचारात्मक कोटि के ही है। इनकी शैली में प्रतीक और लाक्षणिकता का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। वाक्य भी अनुप्रासों के मोह में बड़े लम्बे हैं। स्वाभाविकता इनके निबन्धों में बहुत-कम है। इन निबन्धकारों के अतिरिक्त ठाकुर जगमोहन सिंह (१८५७ १८९९ ई०) राधाचरण गोस्वामी (१८५९ १९२३ ई०) आदि ने भी कुछ निबन्ध लिखे हैं जो तत्कालीन स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। भाषा भी इन निबन्धों की सरल है।

उपयुक्त निबन्धकारों में बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ही प्रमुख हैं। शेष निबन्धकारों में वास्तविक निबन्ध-कला के दर्शन नहीं होते। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्धों की भाषा सुसंगठित या सुव्यवस्थित नहीं है। उसमें रस के गुण अधिक हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की भाषा अस्वाभाविक और क्लिष्ट है। वह एक निबन्धकार की भाषा न होकर, एक कवि की भाषा है। लाला श्री निवासदास की भाषा में प्रान्तीय और उर्दू भाषा के शब्दों का बाहुल्य है। अम्बिकादत्त व्यास में पंडिताऊपन अधिक होने के कारण उनकी भाषा भ्रान्तिपूर्ण और गम्भीरता से हीन है। गोविन्दनारायण मिश्र में चमत्कारिकता अधिक होने के कारण स्पष्टता कम है उनकी भाषा प्रवीरता आदि में दबी हुई है। ठाकुर जगमोहनसिंह और राधाचरण गोस्वामी के निबन्ध भी लेख की कोटि में हैं। इनमें निबन्ध का विकास नहीं दिखाई देता। इस प्रकार इन लेखकों के निबन्धों में स्वाभाविकता साहित्यिक कला की विशिष्टता गम्भीरता एवं क्रमबद्धता के दर्शन नहीं होते। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय भी इन सभी को निबन्धकार नहीं मानते। वे लिखते हैं— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास राधाचरण गोस्वामी गोविन्दनारायण मिश्र आदि अनेक लेखकों की ऐसी रचनाएं मिलती हैं जिनमें निबन्ध के कुछ लक्षण अवश्य मिल जाते हैं किन्तु उन्हें निबन्ध न कहकर लेख कहना ही अधिक युक्ति संगत होगा। निबन्ध रचना के कुछ लक्षण होने पर भी निबन्ध जैसे होने चाहिए वैसे नहीं है। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक सफल गद्य-लेखक होते हुए भी निबन्ध लेखक की कोटि में नहीं आ सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निबन्ध रचना का यदि वास्तविक रूप कहीं मिलता है तो बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओं में मिलता

है। [1] बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ही इस युग के वास्तविक निबन्धकार हैं। दोनों ही लेखक अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं दोनों की अपनी मौलिकता और विशिष्टता है। भट्ट जी सुव्यवस्थित और संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने वालों में हैं। इनके निबन्ध प्रमुख रूप में विचारात्मक हैं। मिश्र जी स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण भाषा लिखने वालों में हैं। इनकी भाषा में वैयक्तिकता अधिक है। इनके निबन्ध प्रमुख रूप में वर्णनात्मक हैं। दोनों ही लेखकों का अपना अलग क्षेत्र है। अतः भारतेन्दु-युगीन निबन्ध साहित्य दोनों का समान रूप से ऋणी है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं— 'पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य-साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य-साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था। [2]

भारतेन्दु-युगीन निबन्ध-साहित्य को प्रमुख रूप में दो भागों में बाँटा जा सकता है—विचारात्मक निबन्ध और रंजनात्मक निबन्ध। विचारात्मक निबन्ध बहुत कुछ भारतीय संस्कृत-परम्परा से प्रभावित हैं और रंजनात्मक निबन्ध किसी हद तक पश्चिमी अंग्रेजी साहित्य से। विचारात्मक निबन्धों में लेखक के विचार या निबन्ध का विषय प्रमुख है। इन निबन्धों की शैली समास है। लेखकों ने इन निबन्धों में बड़े तर्कपूर्ण ढंग से अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। रंजनात्मक निबन्ध व्यंग्यविनोद से युक्त हैं इनकी भाषा बड़ी सरल—कहावतों और मुहावरों से परिपूर्ण है। इनके मूल में लोक भावना प्रमुख है। इन निबन्धों में विषय प्रधान न होकर लेखक का व्यक्तित्व प्रधान है। वैयक्तिकता की प्रमुखता के कारण ये निबन्ध बड़े स्वाभाविक हैं। इनमें विचारात्मक निबन्धों की अपेक्षा वास्तविक निबन्ध के गुण अधिक हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं— 'आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषताएं हों।' [3] इस विभाजन के अनुसार विचारात्मक निबन्धों के जनक बालकृष्ण भट्ट और रंजनात्मक निबन्धों के जनक प्रतापनारायण मिश्र निर्विवाद कहे जा सकते हैं। प्रा० जयनाथ नलिन लिखते हैं— मिश्र जी भारतेन्दु-युग के अत्यन्त प्रिय लेखक हैं। इनके अनेक निबन्ध हिन्दी के श्रेष्ठ निबन्धों में गिने जा सकते हैं। आत्मीयता आकार-लाघव भाषा का चटपटापन उछलता उमंग भरा व्यक्तित्व जवानी का फक्कड़पन

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १२३

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ४६७

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५ ५

और तेज उक्ति चमत्कार और व्यग्य की बौछार आदि विशेषताएं मिश्र जी को शक्तिशाली निबंधकार प्रमाणित करती है। अपने क्षेत्र में वह एक मात्र लेखक स्वयं हैं।'[1] मिश्र जी के रंजनात्मक निबंधों में उनकी अपनी मौलिकता भी है। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं— निबन्ध लिखना हिन्दी में नई चीज थी। बंगला में उपन्यास कविता नाटक आदि के लिए आदर्श मिल सकते थे परन्तु प्रतापनारायण मिश्र आदि के निबंध हिन्दी की अपनी उपज थे।[2] इस प्रकार हिन्दी में रंजनात्मक निबंधों का प्रणयन मिश्र जी से ही प्रारम्भ होता है। विचारात्मक निबंधों की परम्परा तो भारत में किसी-न किसी रूप में मिलती भी है, पर रंजनात्मक निबंधों का रूप भारत में मिश्र जी से पूर्व नहीं मिलता। हाँ, लेख भारतेन्दु जी के दो एक अवश्य मिलते हैं, पर उन्हें मिश्र जी के निबंधों की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। मिश्र जी के निबंधों की मौलिकता स्वाभाविकता और सरसता को ही देखकर डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय मिश्र जी को बालकृष्ण भट्ट से भी श्रेष्ठ निबंधकार मानते हैं—'भाषा प्रमाण आदि की दृष्टि से मिश्र जी में चाहे जो दोष आ गये हों किन्तु निबंधकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्ट जी की अपेक्षा हम उन्हीं में अधिक होते हैं। उनके निबंधों में दोष केवल इसलिए दिखाई देते हैं कि वे जन-समुदाय को छोड़ना नहीं चाहते थे। इस प्रधान उद्देश्य के सामने उन्होंने अन्य बातों पर अधिक ध्यान न दिया। विद्वान होकर भी वे अपनी विद्वता प्रकट करना नहीं चाहते थे। विशिष्ट साहित्य की रचना वे भले ही न कर पाये हों किन्तु उनकी रचनाओं में साधारण समाज की रुचि प्रतिबिंबित है। उनकी लेखनी और स्वभाव ने एक नवीन पाठक समुदाय ही उत्पन्न कर दिया।[3] मिश्र जी की रंजनात्मक परम्परा हिन्दी साहित्य की उनकी अपनी देन है। उनकी मौलिकता और उनमें एक नयी विधा के उन्नायक का रूप देखकर ही डा० श्याम सुन्दरदास ने उन्हें हिन्दी का मोंतेन कहा है। जिस प्रकार पाश्चात्य निबंध-साहित्य के जन्मदाता मोंतेन कहे हैं। उसी प्रकार हिन्दी निबंध-साहित्य के प्रतापनारायण मिश्र हैं। वैसे विचारात्मक-निबंध का जहां तक प्रश्न है उसमें तो बालकृष्ण भट्ट सर्वोपरि हैं पर मिश्र जी में मौलिकता उनसे अधिक है। साथ ही मिश्र जी अपने रंजनात्मक निबंध क्षेत्र के जनक और सम्राट दोनों ही हैं जबकि भट्ट जी अपने क्षेत्र के केवल जनक ही हैं।

मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य लोक भावना से ओत प्रोत है। उनके जीवन का उद्देश्य ही देश-सेवा समाज-सेवा और हिन्दी-सेवा था। अन्य विधाओं की अपेक्षा

---

१ प्रो० जयनाथ नलिन हिन्दी निबंधकार (१९५४ ई०) पृष्ठ ७३
२ डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ८९
३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९५४ ई०) पृष्ठ १९४०

निबन्ध में उनका उद्देश्य अधिक स्पष्ट और जोरदार है। वे कहते हैं— अपना घर अपना मनोमन्दिर अपने बन्धु-बान्धव इष्ट मित्र पड़ोसी और स्वदेशी भाइयों के घरों की दशा और निज के घर समझ के उनके अभावों को दूर करो। सब गृही भाइयों के लिए सुख का उपाय करो पर आज ही में इसी क्षण से सन्नद्ध हो जाव क्योंकि निश्चिन्तपने से निर्वाह न होगा। मृत्यु पुकार रही है सभन शीघ्र सभन तेरी आँखें मुँदने में विलम्ब नहीं है। एक पल भर में सब मनोरथ विलीयमान हो जायेंगे। अपना भला चाहता है तो चाहने से कुछ न होगा जो करना है करने में जुट जा दिन थोड़ा है। भारतमाता रो रो कह रही है कि मेरी गति क्या से क्या हो रही है मेरे हिताय यदि तुम मेरे सच्चे सपूत हो तो तुम्हें दूर जाना है। क्या तुम्हारा मन इन बातों को सोच के नहीं कहने लगता कि अब मेरा यहाँ अर्थात आलस्य के साथ रहने में निर्वाह नहीं है।[1] हिन्दी सेवा का स्वर भी उनके निबन्धों में प्रमुख है। उर्दू के बढ़ते हुए प्रचार को दृष्टि में रख कर वे कहते हैं—'अब आज अन्य भाषा बरन अन्य भाषाओं की करवट (उर्दू) छाती की पापल हो रही है। तब यह चिन्ता साथ लगी है कि पहल में पीछा छूटे। एक बार उद्योग किया गया सो तो हण्टर साहब के पेट में समा गया। फिर भी चिन्ता पिशाची गला दबाए है।[2] लोक भावना की प्रमुखता के कारण मिश्र जी के निबन्धों में उपदेशात्मकता की मात्रा पर्याप्त है। यहाँ तक कि विचारात्मक निबन्धों में भी कहीं-कहीं उपदेशात्मकता के पुट विद्यमान हैं। तत्कालीन परिस्थिति के प्रति जागरूकता मिश्र जी के प्रत्येक निबन्ध में मिलती है। उनका देश और समाज की दयनीय स्थिति का क्षुब्ध हृदय प्रत्येक निबन्ध में झाँकता दिखायी देता है। उनके निबन्धों में धर्मान्धता नहीं है, वे शुद्ध व्यावहारिक धरातल पर लिखे गये हैं।

मिश्र जी के निबन्धों में उनका व्यक्तित्व प्रधान है। छोटे-से-छोटे विषय को वे सरस और रमणीय बना लेते हैं। वे विषय की अपेक्षा पाठकों की अभिरुचि को अधिक महत्व देते हैं इसलिए वे बराबर हास्य और व्यंग्य का साथ लिए चलते हैं। उनमें पाठकों के प्रति बड़ी आत्मीयता है। वे पाठकों के बहुत समीप पहुँच जाते हैं। लेखक और पाठक के बीच दूरी बिल्कुल ही नहीं है। वे उनके निकट पास बैठकर बातचीत करते हैं— लो भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहेंगे वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपने आयी? यह भी कोई पूछने का ढंग है? पूछा होता कि आप कौन हैं तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं और आप ब्राह्मण सम्पादक हैं अथवा आप पंडित जी हैं आप सेठ जी हैं आप लाला जी हैं

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या ८ ('दिन थोड़ा है दूर जाना है यहाँ रहने से मेरा निबाह नहीं है।)

२ ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ५ ('समाचार की मौत है')

आप बाबू साहब हैं आप मियां साहब आप मिस्टर साहब हैं। आप क्या हैं ? यह तो प्रश्न की कोई रीति ही नहीं है। [1] मिश्र जी बड़ी बेतकल्लुफी से बातचीत करते हैं इससे उनके निबन्धों में बड़ी स्वाभाविकता और सरसता आ गयी है। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय लिखते हैं—"मिश्र जी के निबन्धों के विषय और शैली दोनों में सरलता है किन्तु वे विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान हैं। स्वभाव के अनुसार ही उन्होंने विषय निर्वाचित किया है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि निबन्ध किसी भी विषय पर लिखा और साधारण विषय भी रोचक बनाया जा सकता है। लेखक के लिखने का ढंग भी ऐसा है मानों वह हमारे सामने साक्षात बैठा सब कुछ कह रहा हो। एक-एक शब्द से हम उनकी भंगिमाओं का चित्र अपने सामने चित्रित कर सकते हैं। विषय निरूपण करते समय मिश्र जी नीरस, शुष्क और विस्तृत बातें नहीं रखते। वे विषय का कोई एक पक्ष लेकर सब प्रकार से उसमें साहित्यिक सौन्दर्य उत्पन्न कर उसके साथ पाठकों का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। विषय प्रतिपादन शैली और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा वे अवर्णनीय रसात्मकता की सृष्टि किये बिना नहीं रहते। यह बात हम भट्ट जी के निबन्धों में नहीं मिलती। [2] मिश्र जी के निबन्धों में हास्य और व्यंग्य की प्रमुखता ही उनकी विशिष्ट मौलिकता है इसी में उनके व्यक्तित्व का विकासण छाया है। लेकिन मिश्र जी के निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान होते हुए भी पूर्ण वैयक्तिक नहीं हैं उनमें उपदेशात्मकता और पाठकों से समीपता अधिक है। वैयक्तिक निबन्धों में उपदेश शिक्षा, ज्ञान प्रदर्शन किसी के मत का खण्डन-मण्डन और तर्क वितर्क नहीं होता उसमें लेखक केवल विषय के सहारे अपने भावों की अभिव्यक्ति कर देता है। वैयक्तिक निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की विशदता मात्र प्रकट होती है तथा इसमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता रहती है। इन निबन्धों में लेखक का शिक्षा-दीक्षा का महत्व न होकर उसकी वैयक्तिक प्रतिभा का महत्व होता है। मिश्र जी में प्रतिभा तो प्रचुर मात्रा में थी और उसकी अभिव्यक्ति भी निबन्धों में पूरी तरह हुई है। उनके प्रत्येक निबन्ध में उनका व्यक्तित्व ही झलका रहा है। हास्य और व्यंग्य की मस्त भावना भी उनके निबन्धों में है और वे मस्त तथा प्रभावोत्पादक भी हैं पर उपदेश और उद्धरण शैली के कारण हम उन्हें शुद्ध वैयक्तिक निबन्ध नहीं कह सकते। हां वे वैयक्तिक निबन्धों के बहुत-समीप अवश्य हैं। उनके निबन्ध विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान ही हैं और उस युग के निबन्धकारों में सबसे अधिक वैयक्तिकता मिश्र जी के ही निबन्धों में है।

मिश्र जी के निबन्धों का वर्गीकरण

निबन्ध का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। अभी तक निबन्धों का कोई निश्चित वर्गी

---

१ ब्राह्मण खण्ड ९ संख्या ८ आप प्रतापनारायण मिश्र

२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१ ५४ ई०) पृष्ठ २१८

करण नहीं किया जा सका । अनेक विद्वानों ने विभिन्न मत निबन्धों के वर्गीकरण के विषय में दिये हैं । डा० केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्धों का वर्गीकरण करते हुए लिखते हैं— 'निबन्धों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है वस्तु विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक गवेषणात्मक चारित्रिक धार्मिक सामाजिक राजनीतिक यात्रा सम्बन्धी प्रकृति सम्बन्धी व्यंग्य तथा हास्य प्रधान एवं आत्मकथा या आत्मचरित्र सम्बन्धी निबन्धों की कोटियाँ स्थापित की जा सकती हैं । कथन के ढंग तथा निरूपण की दृष्टि से उन्हीं निबन्धों को हम तथ्यातथ्य निरूपक सूचनात्मक या शिक्षात्मक कल्पनात्मक और वर्णनात्मक कह सकते हैं ।'[1] निबन्धों के वर्गीकरण की दुरूहता को देखकर प्रभाकर माचवे कहते हैं— 'निबन्ध के प्रकार कौन से हैं ? जितने लिखने वाले और जितनी उनकी मनोभूमिकायें उतनी पद्धतियाँ हो सकती हैं । इस प्रकार निबन्ध के प्रकार अनन्त हो सकते हैं ।'[2] प्रमुख रूप से अभी तक विद्वानों ने व्यक्तित्व विषय और शैली—तीन दृष्टियों से निबन्धों के वर्गीकरण किये हैं । व्यक्तित्व की दृष्टि से विषयी प्रधान (Sudjective) और विषय प्रधान (objective) दो भेद किये जाते हैं । निबन्ध के यही दो भेद पाश्चात्य समीक्षक भी मानते हैं । पर यह वर्गीकरण अपने में पूर्ण नहीं है । इन दो विभागों में निबन्ध को विभक्त कर उसके सम्पूर्ण क्षेत्र तथा विशिष्टताओं का विवेचन नहीं किया जा सकता है । उसके सम्यक विवेचन के लिए निबन्ध को उप विभागों में बाँटना आवश्यक होगा । विषय की दृष्टि से निबन्ध के राजनीतिक सामाजिक धार्मिक चारित्रिक हास्य और व्यंग्ययुक्त ऐतिहासिक पुरातत्व सम्बन्धी पौराणिक दार्शनिक अर्थ शास्त्र सम्बन्धी वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक व्यापारिक शिक्षा सम्बन्धी सांस्कृतिक प्रकृति सम्बन्धी त्योहार या पर्व सम्बन्धी यात्रा तथा भ्रमण सम्बन्धी आदि अनेक भेद किये जा सकते हैं । यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है । प्रत्येक निबन्ध का अपना पृथक विषय होता है । ऐसी स्थिति में जितने निबन्ध होंगे उतने ही उनके प्रकार हो सकते हैं । निबन्ध में विषयों की कोई सीमा नहीं है । किसी भी विषय पर निबन्ध लिखा जा सकता है । इसलिए विषय की दृष्टि से तो निबन्धों का वर्गीकरण करना ही असम्भव है । शैली या रूप की दृष्टि से विवरणात्मक वर्णनात्मक विचारात्मक भावात्मक हास्य-व्यंग्य परक आदि भेद किये जाते हैं । शैलीगत विभाजन की भी कोई सीमा नहीं है । प्रत्येक लेखक की अपनी पृथक शैली होती है । कभी-कभी तो एक ही लेखक में अनेक शैलियाँ मिलती हैं । पर यह वर्गीकरण अन्य विभाजनों की अपेक्षा अधिक तर्क-संगत और उपयुक्त है । निबन्ध शैली प्रधान विधा है । इसमें लेखक की शैली को ही प्रमुख रूप से देखा जाता है । शैली में ही लेखक का व्यक्तित्व

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल 'भारतेन्दु के निबन्ध' (२००८ वि० पृष्ठ १२

२ प्रभाकर माचवे हिन्दी निबन्ध (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १५

भी छिपा होता है। शैली की दृष्टि से विवेचन करने पर निबन्ध की प्राय सभी विशिष्टताए सामने आजाती हैं। फिर मिश्र जी के निबन्ध तो व्यक्तित्व या शैली प्रधान ही हैं। इनके निबन्धो के विवेचन के लिए तो शैलीगत वर्गीकरण ही अधिक समीचीन होगा। मिश्र जी के निबन्धो को रूप या शैली की दृष्टि से चार भागों म विभक्त किया जा सकता है—वर्णनात्मक निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध भावात्मक निबन्ध तथा हास्य और व्यग्यपरक निबन्ध। वस इस विभाजन की पृथक कोई सीमा रेखाए नहीं हैं। कहीं-कहीं एक ही निबन्ध में चारों रूपों के दर्शन हो जाते हैं। यह विभाजन केवल रूप विशेष की प्रमुखता को दृष्टि म रखकर किया गया है।

वर्णनात्मक निबन्धक

इन निबन्धों म इतिवृत्तात्मकता की प्रमुता रहती है। इनम विचार की अपेक्षा परिचय अधिक होता है। वर्णनात्मक निबन्धो म रोचक शैली और सरसता की विशेष आवश्यकता होती है। वर्णन प्रधान होने के कारण कल्पना शक्ति का अत्य धिक सहारा लिया जाता है। इन निबन्धो की भाषा बडी सरल और प्रवाह पूर्ण होता है। विषय सरल और सामान्य होते हैं पर लेखक अपनी विशिष्ट वर्णन शैली द्वारा उन्हे आकर्षक बना लेते हैं। मिश्र जी के अधिकांश निबन्ध वर्णनात्मक ही है। उन्होने राजनीतिक सामाजिक धार्मिक साहित्यिक आदि अनेक विषयो पर वर्णनात्मक निबन्ध लिखे हैं। इन निबधो म गंगा जी, बगार रिश्वत दयापात्र जीव कचहरी म शालिग्राम जी भेडियाधसान देशोन्नति जातीय भण्डार गंगा जी की स्थिति रसिक समाज कहाम न बैठ कुछ किया कर उन्नति की धूम, विस्फोटक हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो हीगा सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय पवन जगावन अगिन को दीर्घाहि दरस दिखाय भों नारी पादरी साहब का व्यय मल बलि पर विश्वास पतिव्रता, ब्वी हुई आग पर भानपुर और मान्क कन्नौज म तीन दिन हम राजभक्त हैं प्रतापचरित्र काव्य का जय धरती माता, धरती माता का पूजा सोन्यस का फरेंस वृद्ध द ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य नामक निबन्ध प्रमुख हैं। राजनीतिक विषयो म सम्बधित निबन्धो म अग्रजो की शासक प्रवृत्ति, अग्रेजो के पक्षपात और उनके द्वारा लगाय गय टैक्सो की आलोचना तथा देश भक्ति व्यक्तियो और सस्थाओ की प्रशसा की गयी है। अग्रेजो स भारत का कोई हित न देखकर मिश्र जी लिखते हैं हम आज पराधीन सब साधन हीन हैं। चाहो कर्म का फल कहो, चाहो ईश्वर की इच्छा समझो चाहो जमाने की गरदिश मानो हम दूसरो की आस देखते है और दूसरे लोग जैसे होते हैं इतिहास अक्षरो म छिपा नहा है। इसम हम अगरेजो के अत्याचार न रोना न चाहिए और यह दिखाने की म रखना चाहिए कि यह हमारी भलाई करन वाय हैं। इलबर्ट बिल, शिक्षा कमीशन, बैरम साहब का मुकदमा, सब इसी बात के उदाहरण हैं कि सर्व

सहायक सबल के इत्यादि। कोई क्यों न हो हमारी सहायता के लिए अपनी हानि तथा अपने मजातियों की रूप हानि न करेगा। जब तक हम ऐसे ही बन रहेंगे जैसे आज हैं तब तक हमारा रोना या चिल्लाना किसी के दिल पर असर न करेगा।"[1] सामाजिक निबंधों में फूट व्यभिचार कुरीतियों आदि की भर्त्सना करते हुए भारतीयों को समाज सुधार की ओर प्रेरित किया गया है। मिश्र जी देश या समाज की उन्नति एकता में ही निहित मानते हैं। वे कहते हैं यदि आप हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तान का उद्धार किया चाहते हैं तो किसी के कहने सुनने में न आ के अपने यहाँ की तुच्छ से तुच्छ वस्तु एवं व्यक्ति को सारे संसार के उत्तमोत्तम पदार्थों अथच पुरुषों से श्रेष्ठ समझिए और पूर्ण पुरुष के साथ दूसरों को भी यही समझाते रहिए तथा अपनों से अपनायत निभाने में किसी प्रकार का भय-संकोच लालच स्वप्न में भी मन में न आने दीजिए। यह प्रण कर लीजिए कि चाहे जैसी हानि हो चाहे जो कष्ट हो कुछ चिन्ता नहीं है। सर्वस्व जाता रहे अभी मृत्यु हो जाय मरने पर भी कठिन से कठिन नर्कयातना अनन्त काल तक सहनी पड़े पर अपने हिन्दू और अपनी हिन्दी से हम यह दो बात कहके हार हैं। तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं। बस फिर प्रत्यक्ष देख लीजिएगा कि कितने शीघ्र अथच कैसी शुद्ध उन्नति आपको के आगे दिखाई देती है। पर बातें कहने का नहीं है कर उठाने की है।[2] धार्मिक विषयों से सम्बन्धित निबन्धों में पाखण्डियों, बनावटी साधु-सन्तों मतमतान्तरों आडम्बरों आदि पर आक्षेप किये गये हैं। सम्पदासिस पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं सम्पददास बाबा की चेलियाँ क्योंकि गुरु साक्षात् परब्रह्म लिखा है। धरम (राम से अधिक राम का दाता)। फिर क्या जिसने अपना तन मन धन धरम धर्म कर्म सरबस्व 'कृष्णार्पण' कर दिया उस अनन्य भक्ति की मुक्ति में भी क्या कुछ सन्देह है?[3] साहित्यिक विषयों पर लिखे गये निबन्ध बड़े सरस हैं। इनमें विषय का उतना महत्व नहीं है जितना व्यक्तित्व का है। विषय सामान्य हैं पर उनका कथन चातुर्य प्रभावपूर्ण है। उदाहरण के लिए 'द' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—हमारी और फारसी वालों की वर्णमाला भर में इसके अधिक अप्रिय, कर्णकटु और अनिष्ट अक्षर हम तो जानते हैं और न होगा। हमारे नीति विशारद अंग्रेज बहादुरों ने अपनी वर्णमाला में बहुत अच्छा किया जो नहीं रक्खा। नहीं तो उस देश के लोग भी ऐसा सीख जाते तो हमारी तरह निरुद्यम हो बैठते। वहाँ के चतुर लोगों ने बड़ी दूरदर्शिता

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ (सबै सहायक सबल के कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत अगिन को दीपहिं देत बुझाय॥)

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ६ (उन्नति की धूम)

३ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० (मुक्ति के भागी)

तरफ इस अक्षर के ठौर पर इकार अर्थात ड़ी' रखो है जिसका अर्थ हा इकार आना अर्थात यावत् ससार की लक्ष्मी जस बन वस, हजम कर लेना।—इधर हमार यहाँ इकार का प्रचार देखिए तो नाम क लिए देओ यश के लिए देओ देवताओ क निमित्त देओ पितरो क निमित्त देओ राजा के हेतु देओ कन्या क हेतु देओ मज क वास्ते देओ अदालत के वास्ते देओ कहा तक कहिए हमारे वनवासी ऋषियो ने दया और दान को धर्म का अग ही लिख मारा है। सब बातो म देव और उसक बदल म लेव क्या ? झूठी नामवरी कोरी वाह वाह मरणातर स्वग पुरोहित जी का आशीर्वाद रुजगार करन की आशा या खिताब क्षणिक सुख इत्यादि। भला देश क्या न दरिद्री हो जाय ?'[1] साहित्यिक निबन्धो म मिश्र जी की देश भक्ति की छाप यत्र-तत्र मिलती है। भौ का वणन करत हुए भी वे अन्त म लिखत है यद्यपि हमारा धन बल भाषा इत्यादि सभी निर्जीव हो रहे है तो भी यदि हम पराई भौहें ताकने की लत छोड दें आपस म बात-बात पर भौह चढाना छोड दें दृढता स कटिबद्ध होकर वीरता से भौहें तान के देशहित मे सन्नद्ध हो जाय अपने देश की बनीवस्तुओ का अपन धर्म का अपनी भाषा का अपने पूर्व पुरुषो क रुजगार और व्यवहार का आदर करें तो परमेश्वर अन्वय हमारे उद्योग का फल दे। उसक सहज भृकुटी विलास म अनन्त कोटि ब्रह्माड की गति बदल जाती है भारत की दुर्गति बदल जाना कौन बडी बात है।[2]

मिश्र जी क वर्णन बड़ प्रभावोत्पादक हैं। वे अपने निबन्धो म भूमिका न बाधकर सीधे विषय पर आ जाते हैं पर वणन का ढग ऐसा सजीव है कि अस्वाभाविकता नहीं आने पाती। 'द' निबन्ध का देखिए वे किस कुशलता से प्रारम्भ करते हैं— यह दो अक्षर और तीन अर्थ का शब्द भी ऐसा उपयोगी है कि इसके बिना कोई काम ही नहीं चल सकता। यदी पक्षी क पख आन रह तो उसका जीना भारी हो जाय। यदि महीने म कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष न हो तो ज्योतिषियो की गणित म बडी गडबडी पड। यदि किसी का पक्ष करने वाला कोई न हो तो वह एक पग क्या एक क्षण भी सुख म नहीं बिता सकता।[3] बीच-बीच म मिश्र जी छोटी-छोटी कहानियो और घटनाओ को भी प्रसगानुकूल देते जाते हैं जिसम विषय भी स्पष्ट हो जाता है और वणन म भी सरसता आ जाती है। निबन्ध का अन्त भी वे या तो विषय का निष्कर्ष देकर करते हैं या उपदेश देते हुए उसे समाप्त कर देते हैं। दोनो ही ढग बड़ ममस्पर्शी उदाहरण क लिए 'पतिव्रता' निबन्ध का अन्त देखिए निरन्याय और धर्म से वे राह पर न आवेंगी। ऐसी युक्ति से बनना चाहिए कि वे प्रसन्न भी रहे और कुछ डरती भी रहे। तभी

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या २
२ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ३
३ ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ४

प्रीत करेंगी। कन्नौजिया की तरह निरी डड बाजी म व क्थन कर सकता है प्रीति न करेंगी। अगरवालों, खत्रिया की भाति निरी स्वतत्रता साप दन म भा वे सिर चढ़ेंगी। अत भय और प्रीति दाना दिखाना स्वतत्र परतत्र दोनो बनाए रहना। मौके-मौक से उन्ह अनुमति और शिक्षा भी देते रहना और कभी-कभी उनकी सलाह भी लेत रहना। बस इन उपाया म सम्भव है कि भारत कन्याए पुन पतिव्रत की ओर झुकन लगेंगी। और पतिव्रताओं क प्रभाव म फिर हमारी सामान्य लक्ष्मी की वद्धि हागी।[1]

रोचकता क लिए मिश्र जी न वणनात्मक निबन्धो म हास्य और व्यग्य की याजना भी जहां-तहां की है। नारी' निबन्ध की कुछ पक्तिया यहा पर द्रष्टव्य है— न रा अर्थ है नही और अरि कहते हैं शत्रु को भावार्थ यह हुआ कि न यह शत्रु है न इनसे अधिक कोई शत्रु है। जहा तक हो इन्ह स्वतत्रता न सौपा। अच्छ वद्या क द्वारा पथ्यापथ्य विचार द्वारा म्यूनिसिप्यलिटी द्वारा सदुपदेश द्वारा नारी मात्र का अनुकूल रखना ही श्रेयस्कर है। तनिक भी व्यतिक्रम पाआ ता वद्यराज स कहो महाराज नारी देखिए मुहल्ले के महतर स कहो कि चिलम पीन का यह पसा लो और नारी अभी साफ करो घर की लक्ष्मी म कहा नारी। एसा उचित नही। कोई अफीम खा गया हो तो उसके सम्बन्धी म कहो कि नारी का साग खिलाना चाहिए। इसी प्रकार सदैव नारी का विचार और भगवान सन्नारी (कामदेव का नाशक शिव) का ध्यान रखता करो नहा महाअनारी हा जाओग।[2] इनक अतिरिक्त कथन की आलकार बनान क लिए कहावतों और मुहावरा तथा ग्रामीण शब्दा का प्रयाग भी बहुतायत म किया गया है। उदाहरण क लिए कुछ पक्तिया देखिए— बहुतर बड़ कुल महापुरुष यह कहत है हमारे यहा तो विद्या फलति ही नाहिनु अथवा का सुवा मैना पढ़ाना है? ता इनम कौन कहे कि विश्वामित्र महाराज आदिक सर्वपि जो हमार वश के शिरोमणि थ उनको विद्या न फलती तो बड़-बड़ महाराज बड बड अवतार क्यों उनकी प्रतिष्ठा करत? श्री रामचन्द्र मर्यादा पुरुषात्तम न क्या सुवा मैना स धनुर्वेद पढ़ा था? इसी मिथ्याभिमान क कारण अनक्य इस जाति में एसी हो गयी कि एक भाई दूसरे भाई को तुच्छ समझता है।—यह तो कहां हा सकता कि मिसिर जी दुब जी का कुछ माय समझें। कुड़ने से कुछ नात दारी भा निकल आव ता 'हाई नात का नात पनात का' दूर्वांगरन कहक मुह फर लेंग। कनवजिया म किसी ने न देखा होगा कि एक हा कुल क पचास घर भी एक दूसरे क दुख-सुख म साथी हों। जहा सुनो यही सुनन में आवगा कि आही ता नयाचार प आवाज

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १२

२ ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या ४

ही छूटिग है। १ यही कही तो एक ही वाक्य म मुहावरो की झड़ी सी लगी दिखायी देती है यद्यपि बात का कोई रूप नही बतला सकता कि कसी है पर बुद्धि दौड़ाइए तो ईश्वर की भांति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा। बड़ी बात छोटी बात सीधी बात टेढ़ी बात खरी बात खोटी बात मीठी बात कड़वी बात भली बात बुरी बात, सुहाती बात लगती बात इत्यादि सब बात ही तो है? बात के काम भी इसी भांति अनेक देखने म आते है। प्रीति बर सुख-दुःख श्रद्धा घृणा उत्साह अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजतया बात के द्वारा विदित हो सकते हैं दूसरी रीति स वैसी सुविधा ही नही। पर बैठ लाखो कोस का समाचार मुख और लखनी स निगत बात ही बतला सकती है। डाकखान अथवा तारघर क सहारे स बात की बात म चाहे जहा की जो बात हो जान सकते है। इस क अतिरिक्त बात बनती है बात बिगड़ती है बात आ पड़ती है बात जाती रहती है बात उखड़ती है। हमारे तुम्हार भी सभी काम बात ही पर निभर करते हैं— बातहि हाथी पाइए बातहि हाथी पाव। २

वर्णनात्मक निबन्धो म मिश्र जी ने प्रमुख रूप स व्यास उद्धरण, उपदेशात्मक चित्रात्मक और काव्यात्मक शैलियो का प्रयोग किया है। सभी शैलिया पूर्ण उत्कष पर पहुची दिखाई पड़ती हैं। उनके वणनो की सजीवता का परिचय इन्ही शलियो स ही मिल जाता है वणनात्मक निबन्धो की सफलता शैलियो पर ही निभर होती है। व्यास शली वणनात्मक निबन्धो की प्रमुख शली है। व्यास का अर्थ होता है विस्तार। जिस शली म विस्तार स विचार या भाव अभिव्यक्त किय जायं उसे व्यास कहत हैं। इसम लखक चलती भाषा म सहज रूप म अपने विचार स्पष्ट करता चलता है कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी हो जाती है पर यह शैली बड़ी स्वाभाविक और सरल होती है। इसी का कुछ-कुछ रूप उपदेशात्मक और चित्रात्मक शैलियो म भी रहता है। व्यास शैली का एक उदाहरण देखिय— छोटे धनवालो का तो कहना ही क्या है बड़ बड़ कोठी वाले हाथ पर हाथ धरे बैठे रहत है। यह तो बहुधा सुन सोचिए कि आज कमान बिगड़ गये, आज डिकान का दिवाला निकल गया पर यह बरसो से सुनते ही म नही आता कि कमाने-खान रुजगार म बन बैठ। यो ही नौकरी करन वालो की कौन कहे उनकी जड़ तो धरती स सवा हाथ ऊपर (अधड़ म) रहती ही है जो रईस कहलाते हैं जिनके यहा दस बीस जन नौकरी करते है वे स्वय हाथ हाथ म धम रहत हैं। करें क्या बिचारे आमदनी आग की सी रही नहीं खर्च कम करें तो चार जन उगली उठावें पुरखा का नाम धरा जाय। सम्पत्ति

---

१ ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ (कायकुब्जा ही की सबसे हीन दशा क्यों है ?')
२ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १० ('बात')

यारी पति बडी यहै विपति इक आय । ज्यों-त्यों भरमाला बाव बठ रन्ते हैं। पता लगाया तो एसा विरला ही अमार होगा जो कर्ज म न डूबा हो।'[१]

उद्धरण शाली म अन्य लखकों के वाक्यांशों को उद्धृत करके अपने कथन का समथन किया जाता है। मिश्र जी न अपने निबन्धों म हिन्दी संस्कृत और उर्दू के अनेक उद्धरण दिये हैं। इनस उनके कथन बड बलिष्ठ हो गये हैं। यथा—'धन्य गंगे! सबदवमयी गंगा जिन्होंने कहा है निहायत ठीक कहा है क्योंकि श्राहरिपद-नख चन्द्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस। ब्रह्म-कमडल-मडन, भव-खण्डन सुर-सरवस। शिवसिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य-फल। एरावत-गज गिरि-पति हिमनग कण्ठहार कल॥ इत्यादि वाक्य स्मरण होते ही तबियत को ताजगी होती है। फिर तुम्ह अमृतमयी क्या न मानें? बहुत का विश्वास है बहुत पोथियों म लिखा है कि गंगास्नातक मरणान्तर शिवत्व अथवा विष्णुत्व को प्राप्त होता है। श्री मान् कविवर अब्दुल रहीमखां (खानखाना) जो अकबर के समय म संस्कृत के और भाषा के बडे अच्छे वेत्ता थ उनका एक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है कि अच्युतचरणतरंगिणि! शशिशेखरमौलिमालतीमाले। मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता। अर्थात विष्णु बनाओगी तो मुझ कृतघ्नता का दोष होगा क्योंकि तुम उनके चरण म निकली कहाती हो। अतएव शिव बनाना जिसम तुम्ह सिर पर धारण करू। अन्य मतवाले देख लें कि अच्छे मुसलमान भी हमारी गंगा को क्या कहत हैं। फिर उन हिन्दुओं का हम क्या कहें जो गंगा की प्रीति नहीं करते।[२]

उपदेशात्मक शैली के दर्शन मिश्र जी के प्राय सभी निबन्धों म होते हैं। कोई भी विषय हो व उपदेश का रास्ता निकाल लेते हैं। उपदेशात्मक शैली बडी सरल और सामान्य बुद्धिवालों के अनुकूल होती है। इसम शब्दों का चमत्कार न होकर विचारों का सीधा प्रकाशन होता है। पाठकों स इसमें बड़ी आत्मीयता से बात की जाती है। देखिए— हम और हमारे सहयोगीगण लिखते-लिखते हार गये कि देशोन्नति करो पर यहां वालों का सिद्धान्त है कि अपना भला हो देश चाहे चूल्हे म जाय' यद्यपि जब देश चूल्हे म जायगा तो हम बच न रहेंगे। पर समझना तो मुश्किल काम है ना। सो भाइयो यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है। आखिर कपडा पहिनते हो एक बेर हमारे कहन स एक-एक जोडा देशी कपडा बनवा डालो। यदि कुछ सुभीता देख पड़ तो मानना दाम कुछ दूने न लगेंगे चलेगा तिगुने से अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प के उद्धार का फल सेंतमेंत। यदि अब भी न चेतो तो तुमसे

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ८ ('समय का फेर')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ९ १० ('गंगा जी')

ज्यादा भड़ुआ कौन ? नहीं-नहीं हम सबसे अधिक, जो ऐसों को हितोपदेश करने में व्यर्थ जीवन खोते हैं । [1]

वर्णनात्मक निबंधों में चित्रात्मक और काव्यात्मक शैली का प्रयोग भी मिश्र जी ने कहीं-कहीं किया है । चित्रात्मक शैली में वर्णन ऐसी कुशलता से किया जाता है कि उसका चित्र सा सामने आ जाता है । इस शैली के लिए मिश्र जी का 'बट' निबंध दर्शनीय है । काव्यात्मक शैली में अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से होता है । मिश्र जी की काव्यात्मक शैली में रूपक, उपमा, श्लेष, अनुप्रास और यमक अलंकारों का प्रयोग अधिकतर किया गया है । इसके लिए नारी धर्म, इनकमटैक्स आदि निबंध उल्लेखनीय हैं । निम्नलिखित उद्धरण में चित्रात्मक और काव्यात्मक दोनों शैलियों को एक साथ देखिए—'इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोड़ी सी छोटी छोटी हड्डियों में भी उस चतुर कारीगर ने यह कला दिखलायी है कि जिसके मुँह में दांत हैं वह पूरा-पूरा वर्णन कर सके । मुख की सारी शोभा और यावत भोज्य पदार्थों का स्वादु इन्हीं पर निर्भर है । कवियों ने अलक (जुल्फ) भ्रू (भौं) तथा बरुणी आदि की छवि लिखने में बहुत-बहुत रीति से बाल की खाल निकाली है पर सच पूछिए तो इन्हीं की शोभा से सबकी शोभा है । जब दांतों के बिना पुपला सा मुँह निकल आता है और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एक में मिल जाती है उस समय सारी सुघराई मट्टी में मिल जाती है । नैनबाण की तीक्ष्णता, भ्रूचाप की खिंचावट और अलकपन्नगी का विष कुछ भी नहीं रहता । कवियों ने इसकी उपमा हीरा, मोती माणिक से दी है वह बहुत ठीक है वरन यह अवयव कथित वस्तुओं से भी अधिक मोल के हैं । यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्र के छहों रस एवं काव्य शास्त्र के नवों रस का आधार है । [2]

इस प्रकार मिश्र जी के वर्णनात्मक निबंध वर्णन शैली आदि की दृष्टि से बड़े उत्कृष्ट हैं । इनमें स्वाभाविकता और सजीवता प्रचुर मात्रा में है । हास्य और व्यंग्य के फुहारे तथा कहावतों और मुहावरों के सुष्ठु प्रयोग इनमें अवर्णनीय छटा का संचार करते हैं । इन निबंधों में मिश्र जी का व्यक्तित्व पूरी तरह निखरा दिखाई पड़ता है ।

विचारात्मक निबंध

ये निबंध बुद्धि प्रधान होते हैं । इनका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है । इनमें खण्डन-मण्डन, तर्क वितर्क आदि का विशेष सहारा लिया जाता है । भाषा भी इनकी कुछ क्लिष्ट होती है तथा विचारों का प्रतिपादन होने के कारण नीरसता भी आ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('देनी कपड़ा')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या २ ('दांत')

जाती है। विचारात्मक निबन्धों में लेखक की प्रवृत्ति थोड़े में बहुत कहने की ओर होती है। इन निबन्धों में लेखक का अपने विषय का तर्क-सम्मत विवेचन ही अभीष्ट होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विचारात्मक निबन्धों का विवेचन करते हुए लिखते हैं—'शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम उत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है जहां एक एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार-खण्ड को लिए हो।'[1] विचारात्मक निबन्ध लिखने में अध्ययन मनन और चिन्तन की बड़ी आवश्यकता होती है। इन निबन्धों में भाव और कल्पना को अधिक प्रश्रय नहीं मिलता। इनमें विचार ही सुदृढ़ रूप से सजाए जाते हैं। मिश्र जी स्वच्छन्द प्रकृति के होने के कारण अधिक विचारात्मक निबन्ध नहीं लिख सके। उनमें अध्ययन मनन और चिन्तन की मात्रा बहुत कम थी। वे जो कुछ लिखते थे अपनी प्रतिभा के बल पर लिखते थे। उनमें प्रतिभा विलक्षण थी। इसी प्रतिभा का ही प्रभाव उनके निबन्धों पर पड़ा है। उनके विचारात्मक निबन्ध संख्या में कम होते हुए भी उत्कृष्ट हैं। उनमें उनका प्रौढ़ ज्ञान सर्वत्र दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धों के विषय प्रायः साहित्यिक और धार्मिक हैं। इन निबन्धों में धान का डडा और पौढा, नास्तिक, ईश्वर की मूर्ति, मतवाला की समझ, शिवमूर्ति, मनोयोग, अवश्य नरक में जायगा, ईश्वर का बचन, धर्म और मत काज, पौराणिक गूढार्थ, भ्रम है, हरि जस का तैसा है, दशावतार, पुराण समझने को समझ चाहिए, भगवान् पर प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है, प्रेम एव परायण, मुनीनां च मतिभ्रम, खड़ी बोली का पद्य, आल्हा आह्लाद, अपभ्रंश, एक सलाह आदि निबन्ध प्रमुख हैं। साहित्यिक विषयों पर लिखे गए निबन्धों में भाषा और उस पर चल रहे तत्कालीन विवाद पर विचार किया गया है। इन निबन्धों से उनके भाषा सम्बन्धी शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है। 'आजी' शब्द पर किए गये आक्षेप पर दिया गया इनका उत्तर इस प्रसंग में द्रष्टव्य है—

आजा (पितामह) आजी (बरंच बैसवारे में मेरी आजी—आर्या जी) ऐसा और बजी, देजी तथा जी एवं मन्नासा एवर (कुलीन ब्राह्मण) सब आर्य शब्द की रंग बदलौअल हैं। बरंच हिन्दी की सृष्टि ही संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश से हुई है। अक्षि (आंख) कर्ण (कान) मुख (मुंह) इत्यादि सैकड़ों शब्द यदि शुद्ध रूप में प्रयोग किए जायं तो निरी संस्कृत ही बोलना पड़े। इससे अपभ्रंश का त्याग करना भी भाषा का अंगभंग करना है क्योंकि उसके बिना निर्वाह ही नहीं। प्रकृति का नियम ही संस्कृत के 'यत्' शब्द को बंगाल में ले जाकर जभी और ज तथा विलायत में पहुंच कर दट् (That) के रूप में प्रगट सा डाला है यस ही अनेक शब्दों के अनेक रूपान्तर करके अर्थान्तर की छटा दिखाता रहता है। अंग्रेजी 'जिआग्राफी' अरबी 'जुगराफिया' और फारसी

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृ० ५०९

'जायगाह' 'जागाह 'जागह' जगह 'जाय और जा' सब संस्कृत वाले जगत् अथवा जग' के रूपान्तर हैं। पर यदि कोई हठत उनट फर के किसी शब्द की किसी भाषा के साथ रजिस्ट्री किया चाहे तो हँसी कराने के सिवा कुछ लाभ न उठायेगा। १ मिश्र जी को शब्दों की व्युत्पत्ति का अच्छा ज्ञान था। वे वड तर्क पूर्ण ढग स शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार करते थे। उनके ये विचार उनके प्रौढ भाषा ज्ञान के प्रतीक हैं। आप शब्द की व्युत्पत्ति देखिए वे किस प्रकार सिद्ध करत हैं— संस्कृत मे एक आप्त शब्द है जो सवथा माननीय अर्थ म आता है यहा तक कि न्याय शास्त्र में प्रमाण चतुष्टय (प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द) क अ तगत शब्द प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि आप्तोपदेश शब्द अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणा के समान ही प्रमाणित होता है वा या समझ लो कि आप्त जन प्रत्यक्ष अनुमान और उपनाम प्रमाण स सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्द बद्ध करते हैं। इसस जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या बुद्धि सत्यभाषणादि सदगुणा से संयुक्त हो वह आप्त है और देवानगरी भाषा म आप्त शब्द सबका उच्चारण म सहजतया नही आ सकता इससे उस सरल करके आप बना लिया गया है और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यन्त आदर का द्योतन करने के काम म आता है। २ इसके साथ ही अन्य भाषाओ म भी वे आप का रूपान्तर बड़ी सुगमता से निकाल हैं— "अरबी के अब्ब (पिता बोलने म अब्बा) और योरोपीय भाषाओं के पापा (पिता) पोप (धम पिता) आदि भी इसी आप से निकले हैं। हां इसके समझाने म भी जी ऊब तो अंग्रेजी के एबाट (Abot महत) तो इसके हई हैं क्योंकि उस वाली म ह्रस्व और दीर्घ दोनो प्रकार का स्थानापन्न है और आकार या बकार स बन्ल लेना कई भाषाओ की चाल है। रही टी (T) सो वह तो तकार' हुई है। फिर क्या न मान लीजिएगा कि एबाट साहब हमारे बरंच शुद्ध आप्त स बन हैं। हमारे प्रान्त में बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते हैं उसे कोई-कोई लोग समझते हैं कि मुसलमानों के सहवास का फल है। पर उनकी समझ सही है। मुसलमान भाइयों के लड़के कहते हैं अब्बा और हिन्दू सन्तान के पक्ष म बकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नहीं होता यह अंग्रेजी की 'तकार' और फारस वाला की टकार नहीं है कि मुह स म निकले और सदा मोती का मानी अर्थात स्थूलांगी स्त्री और गम की टट्टी का तत्ती अर्थात् गरम ही हो जाय। फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा। हां आप्त म आप और अप्पा तथा आपा की सृष्टि हुई है उसी को अरबवालो न अब्बा में रूपान्तरित कर लिया होगा। क्योंकि उनकी वर्णमाला म में 'पकार' (P) नहीं होती। सो किस्वा बप्पा बाप बापू बब्बा बाबा बाबू आदि

१ 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ६ (अपभ्रंश)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ८ ('आप')

भी इसी से निकल हैं क्योंकि जैसे एशिया की कई बोलियों में पकार' को वकार' व फकार' से बदल देते हैं जैसे पादशाह-बादशाह और पारसी फारसी आदि वैसे ही कई भाषाओं में दाम्भिक आदि में 'बकार' भी मिला देते हैं जैसे बनने गव बवक्त वव तथा तग आमद बतग आमद इत्यादि और शब्द के आदि का ह्रस्व अकार का लोप भी हो जाता है जैसे अमावस का मावस (सतसई आदि ग्रन्थ में देखो) ह्रस्व अकारान्त शब्दों में अकार' के बदले ह्रस्व वा दीर्घ दीर्घ का ह्रस्व अ इ उ आदि की वृद्धि या लोप भी हुवा ही करता है फिर हम क्या न कहें कि जिन शब्दों में अकार और पकार का सम्पर्क हो एवं अर्थ में श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो वह प्रायः समस्त ससार शब्द हमारे आर्य महाशय या आप ही के उलट फेर से बने हैं।[1] मिश्र जी का यह विवेचन वस्तुतः किसी भाषा वैज्ञानिक के विवेचन से कम महत्व का नहीं है। इसमें उनकी बौद्धिकता सूझ और तार्किकता पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंची हुई है।

धार्मिक विषयों से सम्बन्धित निबन्धों में आस्तिक-नास्तिक धर्म-मत सगुण निर्गुण ज्ञान और प्रेम आदि पर तर्क-सम्मत विचार किया गया है। मूर्तिपूजा के विवाद का निराकरण करते हुए वे लिखते हैं— विचार कर देखिए तो प्रतिमा पूजन से नास्तिकों के अतिरिक्त बचा कोई भी नहीं है। जो ईश्वर को मानेगा उसका निर्वाह किसी न किसी प्रकार की प्रतिमा के बिना नहीं हो सकता चाहे ध्यानमयी प्रतिमा हो चाहे शब्दमयी प्रतिमा हो, ये सब हमारे ही मन और वचन का विकार और उस निराकार निर्विकार के महत्व का अभ्यास मात्र। पर क्या कीजिए ईश्वर को मानकर चुपचाप बैठ रहें अथवा मन में किसी भांति उसका विचार आने ही न दें तो भी नहीं बनता। इसी से आस्तिक मात्र को उसकी प्रतिमा बनानी पड़ती है। जहाँ हमने मन अथवा वचन से कहा— हे प्रभो हम पर दया करो वहाँ हम उस निराकार की छाती के भीतर मन की कल्पना कर चुके। क्योंकि मन न होगा तो दया ठहरेगी कहाँ और शरीर न होगा तो मन रहेगा कहाँ? जिस समय हम कहते हैं कि हे नाथ! हमारी रक्षा करो हम तुम्हें प्रणाम करते हैं उस समय उस अप्रतिमा के अस्तित्व में हाथ और पांव की कल्पना करते हैं क्योंकि रक्षा हाथों से की जाती है और प्रणाम चरणों पर किया जाता है। कारण के बिना कार्य का मान लेना तर्कशास्त्र के विरुद्ध है फिर कौन निराकारवाला ईश्वर के मन कल्पित हस्तपदादि रचना से बच गया?[2] मिश्र जी के धार्मिक विषयों पर लिखे गये निबन्धों में अवैज्ञानिकता एवं सकीर्णता नहीं है। उनमें विभिन्न देश दर्श हुए नवीन युग की मान्यताओं के अनुरूप विचारों का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि मिश्र जी में सनातन धर्म के प्रति ममत्व था पर वे उसके अन्धविश्वासों और पुरातन

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ८ (आप)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ११ (ईश्वर की मूर्ति)

विचारधाराओं से बहुत दूर थे। वे सनातन-मान्यताओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते थे। कामदेव के वाहन और कुसुमायुध नाम की व्याख्या देखिए वे कितने अच्छे ढंग से करते हैं—'भगवान मनोभव का वाहन तथा ध्वजाचिन्ह (जिस देवता का जो वाहन होता है बहुधा वही ध्वजा में भी रहता है) मत्स्य है। इसका तात्पर्य वैद्यक के मत से यह है कि मछली खाने तथा काडलिवर आइल (मछली का तेल) पीने से यह बहुत वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ज्योतिष के मत से मीन राशि के सूर्यो में अधिक उत्पन्न होते हैं। कर्मकाण्ड की रीति से मछलियों को चारा देने से अनेक कामना सिद्ध होती है तथा हमारे सिद्धान्त में— मीन काटि जल धोइए खाए अधिक पियास। तुलसी प्रीति सराहिए मुयहु मीत की आस। इस महावाक्य का अनुसरण करने से कोटि काम सुन्दर भगवान प्रेमदेव शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इनके कुसुमायुध नाम का अभिप्राय यह है कि नाना जाति के पुष्पों का अवलोकन और घ्राण करने से मन्मथ का उद्दीपन तथा विधान दृष्टि से देखने से अनेक सुख सतोषजनक विचार ऐसे उत्पन्न होते हैं कि उनका अनुभव करो तो जान पड़ता है कि किसी ने बाण मार दिया। संसारियों को फूल बूटा तथा मछलियों के चित्र काढ़ने से कीर्ति एवं धन लाभ होता है जिससे सारी कामना सफल होती है और सदा निशाने पर तीर लगता रहता है। अर्थात् निर्वाह योग्य वस्तुओं का मनोरथ निष्फल नहीं होने पाता। रसिकों के लिए कुसुम कोमल अवयव वालाओं का दर्शन स्पर्शन तथा मीन चचल नेत्रों का अवलोकन बाण के समान हृदयस्पर्शी होता है। एस-एस अगणित भाव अनुभव करके इस देवता के साथ मत्स्य और पुष्प का सम्बन्ध रखा गया है।'[1]

हास्य और व्यंग्य के अवतार होते हुए भी मिश्र जी अपने विचारात्मक निबन्धों में काफी सयत और गम्भीर हैं। ये निबन्ध उनके दोहरे व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। इनमें वे बड़ी सतर्कता के साथ विभिन्न मतों का खण्डन मण्डन करते हुए आगे बढ़ते हैं। इन निबन्धों में उनकी विवेचनात्मक और तार्किक शक्ति पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंची दिखाई देती है। अपने मत या विचार को पुष्ट करने के लिए वे प्रसिद्ध विद्वानों के उद्धरण भी बीच बीच में देते जाते हैं। प्रत्येक विचार खण्ड के प्रत्येक पहलू पर उनकी दृष्टि समान रूप से रहती है। वे एक-एक बात का क्रमिक विवेचन करते चलते हैं। कहीं-कहीं पर, महत्वपूर्ण तथ्यों की पारिभाषिक शब्दावली में भी बांध देते हैं— धर्म वास्तव में परमानन्दमय परमात्मा एव उनके भक्तों से प्रेम तथा संसार में शम-स्थापन का नाम मात्र है।[2] इन निबन्धों में हास्य और व्यंग्य कहावतों और मुहावरों तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बहुत कम किया गया क्योंकि विचारात्मक निबन्धों में इन्हें

---

१ ब्राह्मण खण्ड ८ सख्या ११ (ईश्वर की मूर्ति)

२ ब्राह्मण खण्ड ८ सख्या १२ ('धर्म')

बहुत कम स्थान दिया जाता है। मिश्र जी ने इनका प्रयोग नीरसता के परिहार के लिए यत्र-तत्र ही किया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां देखिए— जब आप हमारी मूर्तियों को वन्दिक प्रमाणों से पाषाण बनावेंगे तब हम भी कह देंगे कि आप प्रेममय परमात्मा को तो मानते ही नहीं, न उसका प्रेमानन्द लाभ करने में यत्नवान होते हैं केवल शास्त्रार्थ नाधने के लिए परमेश्वर नामक शब्द ठहरा रखा है जो परमेश्वर अक्षरों का विस्तार मात्र है तथा जिसके विषय में श्री मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि देवि त्वेश्वर सुमस्तलोकस्य परमेश्वर पर भइया हम तो उसकी सहारिणी आदिशक्ति को मानेंगे आपकी इच्छा रही। यदि इस उत्तर में आपको क्रोध आवे तो अपने निराकार निर्विकार से हमें दण्ड दिवाइए और हम अपने साकार दृश्यमान भगवत्स्वरूप से सहायता लेकर उन्हीं के द्वारा कपालभंजन करके तत्क्षण अपने ईश्वर की महिमा दिखा देंगे। पर यह बातें तो उस समय के लिए हैं जब झगड़ा खड़ा हो।[1]

मिश्र जी के विचारात्मक-निबन्ध प्रमुख रूप से समास व्यास उद्धरण काव्यात्मक और तर्कप्रधान शैलियों में लिखे गये हैं। समास शैली की इन निबन्धों में प्रधानता है। यह शैली विचारात्मक निबन्धों के लिए विशेष उपयोगी होती है। उसमें लेखक की प्रवृत्ति थोड़े में बहुत कहने की होती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग इस शैली में बहुतायत से किया जाता है। कहीं-कहीं कृत्रिमता आ जाती है। पर मिश्र जी की शैली बड़ी स्वाभाविक है। उसमें चमत्कार प्रदर्शन की भावना नहीं है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियां देखिए— जो इनके रसास्वादन के अभ्यासी हैं तथा इन्हें परिमितिबद्ध रख के दास्य स्वीकार करने के स्थान पर मनोविनोद सम्पादन मात्र में इनकी सहायता समयानुसार ले लिया करते हैं वे कदापि पागल नहीं बनते वरंच पागलपन की जड़ अर्थात् चित्त की उद्विग्नता दूर करके अधिक सावधान और चातुर्यमान हो जाते हैं और बहुधा देशकाल पात्र का विचार करके इन्हीं के द्वारा दूसरों को पागल बनाके हंसा लिया करते हैं।[2]"

व्यास शैली मिश्र जी को विशेष प्रिय है। इसके लिखने में उन्हें बड़ी स्वच्छन्दता रहती है। इसका प्रयोग वे अधिकतर अपने निबन्धों में करते हैं। देखिए— जिस देश में शिल्प विद्या का प्रचार और जहां लोगों के जी में स्नेह एवं सहृदयता का उद्गार होगा वहां मूर्तिपूजा किसी के हटाए नहीं हट सकता। मुहम्मदीय मत जब तक अरब के अशिक्षितों में रहा तभी तक प्रतिमापूजन से बचा रहा जहां फारस के रसिकों में पहुंचा झट 'सूफ़िया' सम्प्रदाय नियत हो गया। इसी प्रकार ख्रीष्टीय मत जब तक तुर्किस्तान में रहा, वहां के प्रेम की यह दशा है कि गुरु हजरत ईसा का

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १० ('पौराणिक गूढ़ार्थ')
२ ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ३ ('धर्म और मत')

उनक चुने हुए बारह शिष्यों म स एक शिष्य यहूदाह इस्करोती ने केवल तीस रुपये के लोभ म प्राण ग्राहक शत्रुओ के हाथ सौप दिया ऐसे देश म मूर्तिपूजा क्या होती जहां साक्षात ही पूजा के लाले पड थे। परन्तु रूम में मसीही धर्म को आते देर न हुई कि महात्मा मसीह की प्रतिकृति पूजने लगी रामन कैथोलिक मत फला गया। [1]

उद्धरण शली का प्रयोग मिश्र जी बहुतायत से करते है। उनका शायद ही कोई ऐसा निबन्ध हो जिसम एक-आध हिन्दी संस्कृत और उदू का उद्धरण न हो। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तिया देखिए—'उस अतव्य की उपासना भी अतव्य है। जसी श्री वल्लभाचाय स्वामी की आज्ञा है कि सवदा सवभावेन भजनीयो व्रजाधिप'। साई सब महानुभावो म देख पडता है। शकर स्वामी न 'अहब्रह्मास्मि कहा। सो प्रम की पराकाष्ठा म अहकार व नास्तिक्य स नही। अनलहक कहन का मसूर के कोई नही समझा। वह सद का भूल जाते हैं जो उनकी याद करते हैं। पर यह बात कहन व शास्त्रार्थ करत फिरन की नही है कवल आत्मा म उस आश्चर्यमय का अनुभव करो। आनन्द क आधा (उमग) म जो निकलेगा सच ही है। इसके बिना वही 'फलो सन्तितिनो सति फाल्गुने बालका इव' की गति होती है। हमार सर्वथा मान्य श्री भारतन्दु जी ने कहा है जा है तुम से जुदा व मेर नक्ष रब या राम नही। यार तुम्हारे सिवा दुनिया स मुझ कुछ काम नहीं।[2] अथवा प्यारे प्राणनाथ पिय प्रियतम सुनतहि हियो जरात। ईश्वर ब्रह्मनाम हा वासे कानन फारे सात। क्या कोई सहृदय इन वचना को नास्तिकता कह सकता है? कभी नही। [2]

व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग मिश्र जी ने विचारात्मक निबन्धों म अधिक नही किया क्योंकि उनक विचारात्मक निबन्धो का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन न होकर विचारो का प्रतिपादन करना था। इस शैली के उदाहरण उनके निबन्धो म यत्र-तत्र हो मिलते हैं। इसक लिए भगड़ालू पथ निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ दी जा सकती हैं—यदि मनोदृष्टि पक्षपात क राग स दूषित न हो और सहृदयता के अजन से अजित की जाय तो प्रत्यक्ष देख पड़ता कि शैव वष्णव शाक्त, सौर और गाणपत्य लोगों के यहा ईश्वर की महिमा तथा जीव के वास्तविक कल्याण क सभी मनोविनोद एवं शान्ति कारक सामान पुष्कलता क साथ विद्यमान है तथा प्रत्येक सम्प्रदाय की अनक शाखाओ म स एक-एक के मध्य उपास्यदेव की महान महिमा और उपासक क आनन्द प्राप्ति की रीति वह—वह देखने में आती है कि साधारण बुद्धि को समझन की सामर्थ्य नहीं। [3]

---

१ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ६ ('शिवपूजन')
२ 'ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ३ ('मतवालों की सभा')
३ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ ('झगड़ालू पथ')

तर्क प्रधान शैली का विचारात्मक निबन्धो मे विशेष महत्व है। इस शैली मे विषय से सम्बन्धित अन्य विचारो या शकाओ का खण्डन मण्डन करते हुए अपने विषय का प्रतिपादन किया जाता है। इसे विवेचन शैली भी कहते है। मिश्र जी के निबन्धो मे यह शैली काफी प्रयुक्त हुई है। उदाहरणार्थ कुछ पक्तिया देखिए— प्रत्यक्ष ज्ञानी का कथन वास्तव मे कुछ भलाई ही सिखाता है। जिन्होने कहा है संसार झूठा है वे निश्चय सच्चे थे। उनके इस कथन का तात्पर्य यह था कि सासारिक विषय केवल थोड़े दिन के लिए हैं। अत मे वही 'मूद गई आखें किहि काम की।' अतएव उनके स्वादु मे हमे ऐसा न लिप्त हो रहना चाहिए कि हम एग्लोइण्डियन लोगो कि भाति यह सिद्धान्त कर लें कि आप जियते जग जिए कुरमा मर न हानि। ऐसे ही जिन्होने जगत को सत्य माना है वे भी सच्चे है क्योकि व समझते थे कि जो ससार सर्वदा मिथ्या ही मान लिया जाय तो हम भी मिथ्या हो जायगे और हमारे अवश्य कर्तव्य धर्म कार्य भी मिथ्या ठहरेंगे। यदि किसी बुद्धि के शत्रु ने सत्यम मिथ्या समझ लिया तो उसने अपना तथा अपने मित्रो का जन्म ही नष्ट कर दिया जैसा राजर्षि भर्तृहरि जी का सिद्धान्त है कि यथा न विद्या न तपो न दान ज्ञान न शील न गुणो न धर्म। ते मर्त्य लोक भुविभारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।' अब हमारे सर्वहितैषी सज्जन विचार लें कि उपरोक्त दोनो बातें यद्यपि परस्पर विरुद्ध सी ज्ञात होती हैं पर वस्तुत दोनो का झुकाव यही है कि यावज्जीवन मनुष्य को निरा निजस्वार्थी न होकर प्रसन्नतापूर्वक सदनुष्ठानो मे लगे रहना चाहिए।[1]

मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धो के तर्क अकाट्य हैं। उनमे उद्धरण आदि यथास्थान होने से संदेह के लिए कही स्थान नही रह जाता। वे अपने विचारो के प्रमाण अनायास ही ढूढ लेते है। मिश्र जी को उद्धरण आदि के लिए कही भटकना नही पड़ता था। वे एक बार जो चीज पढ़ लेते थे वह उनके मस्तिष्क मे पत्थर की लकीर सी बन जाती थी। इसलिए वे गहन अध्ययन न करके भी उत्कृष्ट निबन्ध लिख जाते थे। बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं— दूसरे लोग बहुत सोच-सोच कर और बड़ी चेष्टा से जो सूक्तियाँ अपने गद्य मे पेश करते थे वह प्रतापनारायण मिश्र को सामने पड़ी मिल जाती हैं।[2] मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धो को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि ये निबन्ध किसी अध्ययनशील और सुदृढ़ विचारक के लिखे नहीं है। इन निबन्धों को देखने से उन पर लगाए प्रामाणिकता आदि के आक्षेपों का सहज ही परिहार हो जाता है। मिश्र जी अपने विचारात्मक निबन्धो मे पूर्ण सफल हैं।

---

१ ब्राह्मण खण्ड संख्या ३ (मतवालों की समझ)
२ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ २

इन निबन्धों का सम्बन्ध हृदय से होता है। इनमें भाव-व्यंजना और रागात्मकता की प्रमुखता रहती है। लेखक के अपने भाव ही इन निबंधों में अभिव्यक्त होते हैं। भावावेग में होने के कारण लेखक का ध्यान भाषा और भावों की क्रमबद्धता पर विशेष नहीं रहता। वह कल्पना के सहारे कवित्वपूर्ण ढंग से अपने भावों में उड़ता चला जाता है। इन निबन्धों में तर्क आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। अध्ययन भी इनके लिए अपेक्षित नहीं। लेखक की गहन अनुभूतियाँ और उनका स्पष्ट प्रकाशन ही भावात्मक निबन्धों का सर्वस्व है। कुछ साहित्यकार भावात्मक निबंधों को वैयक्तिक निबंध के अन्तर्गत मानते हैं पर इन दोनों की बड़ी गहरी सीमा रेखायें हैं। इन्हें एक में नहीं मिलाया जा सकता। भावात्मक निबंधों में हृदय प्रमुख होता है और वैयक्तिक निबन्धों में भौतिक सम्बन्ध परिवार आदि प्रमुख होते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी विषयी प्रधान निबन्धों के विषय में लिखते हैं— प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ पृथक्-पृथक् होती हैं। इन्हीं रुचियों का प्रकाशन ऐसी शैली में किया जाना जो एक विशेष वातावरण का निर्माण करे व्यक्तिमुखी निबन्ध शैली के उपयुक्त होता है। ऐसे निबन्ध प्रायः पारिवारिक वातावरण और सामान्य घरेलू दृष्टान्तों के लिए होते हैं।[1] प्रो० जयनाथ नलिन वैयक्तिक और भावात्मक निबन्धों का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट करते हैं— आत्मपरक निबन्ध-लेखक भौतिक जीवन समाज-सम्बन्ध घर-गृहस्थ से ही अधिक सम्बन्ध रखते हैं। भावात्मक तक हृदयानुभूति से सबद्ध हैं।[2] इस प्रकार दोनों कोटियों में पर्याप्त भेद है।

मिश्र जी के भावात्मक निबन्ध संख्या में बहुत अधिक नहीं हैं। इनके भावात्मक निबन्धों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—शुद्ध भावात्मक निबन्ध और विचार प्रचार प्रधान भावात्मक निबन्ध। शुद्ध भावात्मक निबन्धों में प्रायः *तत्कालीन देश-दशा या किसी महापुरुष की मृत्यु पर शोक-व्यक्त किया गया* है। इस कोटि के निबन्धों में रक्ताश्रु, वाजिदअलीशाह अहह कष्टमपंडितता विधे दीवाली में उपासना आदि निबन्ध मुख्य हैं। इन निबन्धों में प्रबलता का आधिक्य है। भावावेग में लिखे गये होने के कारण विचारों में क्रमबद्धता नहीं है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु पर लिखे गये शोक निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—
हाय! हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। आँसू रक्त हो रहा है। हाय हाय सुनने से पहिले ही हमारा निरलज्ज शरीर क्यों न छूट गया। हाय पापी प्राण तुम क्यों न

---

१ विष्णुदत्त अग्निहोत्री दृष्टिपात (१९५५ ई०) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्राक्कथन पृष्ठ ४

२ प्रो० जयनाथ नलिन : हिन्दी निबन्धकार (१९५४ ई०) पृष्ठ २७

निकल गये । हाय इस अधम जीवन का अन्त क्या न हो गया । हाय आशा की जड़ कट गयी । बस अब क्या है अभागा भारत डूब जा । अरे अब मेरा कौन है ? स्वामी दयानन्द चल बसे । छाती पर पत्थर धर लिया । केशव बाबू सिधार गये रो धो के कलेजा थाम लिया । यह दुःख नहीं सहा जाता हाय ! अब क्या होगा ? हाय हम तो हम, हमारे प्यारे राधाकृष्णदास का कौन समझाव नागरी ही नहीं अनाथ हुई भारत माता के कर्म में आग लग गयी । हाय देश-हितैषिता विधवा हो गयी । हाय हम क्या करेंगे ?[१] भावावेश में लेखक की पुनरावृत्ति का ना ध्यान नहीं रहता वह भावों में ही बहता चला जाता है । इसी प्रकार देश की दयनीय दशा देखकर भी मिश्र जी का बड़ा दुःख होता है और वे लिखते हैं - हाय भारत ! न जाने तुम कब तक ऐसे ही रहोगे । हाय वेद से ले के आल्हा तक की आधार हमारी प्यारी सब गुणागरी नागरी के अदृष्ट में न जाने क्या लिखा है कि इस बिचारी की वृद्धि के लिए हम चाहे जैसा हाय हाय करें पर सुनने वाला कोई देख ही नहीं पड़ता । हाय ! राजा अन्य देश होने के कारण इसके गुण नहीं समझते । प्रजा मूर्ख और दरिद्र होने से इसकी गौरवरक्षा नहीं कर सकती पर परमेश्वर को हम क्या कहें जो सबस, अन्तर्यामी दीनबन्धु इत्यादि अनेक विशेषण विशिष्ट होने पर भी हमारा मातृभाषा को भूला बैठा है । हा जगदीश ! क्या तुम्हारी दया से भी हमारे पाप बढ़ गये ।[१]

विचार प्रधान भावात्मक निबन्ध मनोविकारों पर लिखे गये हैं । इनमें हृदय की अपेक्षा बुद्धि से अधिक सहारा लिया गया है । इन निबन्धों में मनोयोग स्वाथ आत्मीयता चिन्ता काम निर्भिकता सारग्राहिता आत्मगौरव आदि उल्लेखनीय हैं । ये निबन्ध मनोविकारों से सम्बद्ध हैं अवश्य पर इनमें विवेचनात्मक अधिक है । चिन्ता नामक निबन्ध का कुछ परिचय इस प्रसंग में दृष्टव्य है— स्वप्न भी चिन्ता शक्ति की लीलाएं हैं और यह वह शक्ति है जिसका अवरोध करना मनुष्य के पक्ष में इतना दुःसाध्य है कि असाध्य कहना भी अत्युक्ति न समझनी चाहिए । वह चाहे जागने में अपना प्राबल्य दिखलावे चाहे सोने में किन्तु परवश सब अवस्था में कर देता है जिसके प्रभाव में हम सोते में भी मारे-मारे फिरते हैं और जिन पुरुषों तथा पदार्थों का अस्तित्व नहीं है उनका संसर्ग प्राप्त करके मुर्दों हुई शक्तिहीन आंखों से आगू बहाते अथवा नाना घटनाएं देखते हैं, बन्द मुह में बातें करते और ठट्ठा मारते हैं वरंच कभी-कभी उसी की प्रेरणा में मृतकवत् पड़े हुए भी सचमुच सखियां छोड़ भागते हैं उनकी जागृत दशा वाली हाथ पांव चलते हुए घटनावस्था वाली प्रबलता का क्या ही कहना है ।"[२]

---

१ ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ११ (रसाधु)
२ ब्राह्मण खण्ड ५, संख्या ६ (अहह कष्टमपण्डितता विधे'
" , , ९ ६ (चिन्ता)

मिश्र जी के शुद्ध भावात्मक निबन्धों में कहीं-कहीं वैयक्तिक निबन्धों का भी आभास होने लगता है। उनकी सहृदयता निबन्धों को बहुत-कुछ वैयक्तिक निबन्ध की कोटि में पहुंचा देती है। उन्हें तत्कालीन देश भक्तों समाज-सुधारकों और सच्चे पत्रकारों से बड़ी सहानुभूति थी। वे उनकी कठिनाइयों को जनता तक पहुंचाते और उनपर बड़ी सहृदयता से विचार करते थे। बालकृष्ण भट्ट की सच्चाई और कर्मठता पर वे बहुत मुग्ध थे। एक बार सरकार ने भट्ट जी पर, दस रुपया टैक्स लगा दिया। इसको सुनकर मिश्र जी का हृदय उद्विग्न हो उठा और उन्होंने 'मरे को मारे शाह मदार' निबन्ध में सरकार के इस कार्य की जोरदार भर्त्सना की। 'हमारे मान्यवर' हिन्दी प्रदीप' का हाल हम समझते हैं हमसे भी बुरा होगा। ब्राह्मण से दूना उसका आकार है चौगुनी उसकी आयु है उसके सम्पादक श्रीबालकृष्ण भट्ट हैं वह हम से भी गई बीती दशा में ठहरे। कुटुम्ब बड़ा सब बड़ा सहायक सगा बाप भी नहीं। स्पष्टवक्तापन के मारे जवानी दोस्त भी कोई नहीं। ऐसी हालत में सरकार ने १०) १० टैक्स के ले लिए। हम क्यों न कहें—मरे को मारे शाह मदार। वह बिचारे कौन धधा करते हैं जो उनपर टिक्कस! दस रुपये में क्या सरकार का खजाना भर गया। कर्मचारियों की कौन बड़ी नेकनामी हो गयी। कौन तनख्वाह बढ़ गई। कौन पदवी (खिताब) मिल गई। हाय क्या जमाना है। कि राजा प्रजा कोई गरीबों की हाय से नहीं डरता।''[1] इस प्रकार के सहृदयता पूर्ण निबन्ध बहुत कुछ वैयक्तिक निबन्ध की कोटि में पहुंच जाते हैं। पर मिश्रजी के अधिकांश निबन्धों में भावों विषय और विचारों की प्रमुखता है। इसलिए उन्हें वैयक्तिक निबन्धों में नहीं रखा जा सकता।

मिश्र जी के भावात्मक निबन्धों में काल्पनिकता अधिक नहीं है वे भावात्मक सत्यों की भूमिका पर लिखे गये हैं। हास्य और व्यंग्य को भी उनमें स्थान नहीं मिला। वैसे भी भावात्मक निबन्धों में भाव प्रबलता अधिक होती है इसलिए उनमें हास्य और व्यंग्य को स्थान नहीं मिल पाता। मुहावरों और मुहावरों का प्रयोग भी उनमें बहुत कम हुआ है। शैली भी उनकी आलंकारिकता से रहित है पर ओजपूर्ण (Forcible) होने के कारण बड़ी प्रभावोत्पादक है देखिए—

नाथ! जिस हाल तुम्हारी अलौकिक लीला देखी है तुम्हारे अकथनीय प्रेम देखे हैं, ये वचन तुम्हारे साथ हार जाने को अथाह सम्बन्ध पास पर लगा देते हैं, उन्हें तो केवल तुम्हीं सुना सकते हो। आहा! जगत में घोर जुआरी और इसमें बुरा कहना बर भी तुम्हारे साथ तन, मन धन सब हार बैठने में वह आनन्द है जिसके आगे सतयुग की जात भी तुच्छ जचती है। प्रभो तुम्हारी सभी बातें अलौकिक हैं।

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ४, संख्या ९ ('मरे को मारे शाह मदार')

यद्यपि तुम सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ हो पर हमारा विश्वास यही है कि तुम प्रेमियों के साथ प्रेमद्यूत में हार के अपनी प्रभुता छोड़ के उनसे स्नेह करते हो। १

मिश्र जी ने शुद्ध भावात्मक निबन्धों में प्रमुख रूप से तरंग और प्रलाप तथा विचार प्रधान भावात्मक निबन्धों में व्यास और समास शैली का प्रयोग किया है। तरंग शैली में भाव लहराते हुए—तरंग की भाँति उठते तथा गिरते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं— हे परमानन्दमय ! प्रेम स्वरूप ! प्राणप्रिय ! तुम्हारे प्रेम की झलक मात्र में हमारे हृदय मंदिर की चिर संचित पाप मलिनता एक साथ दूर होती है। हम चाहे कोटि यत्न करें तो भी न हो सके पर तुम्हारी सहज अनुग्रह से हमारा आत्मभवन स्वच्छ हो जाता है प्रकाशपूर्ण हो जाता है और नवीन शोभायुक्त हो जाता है। हे परम सुन्दर ! तुम्हारे सान्निध्य से सदैव समाज का नित्त त्योहार सदा दिवाली ही रहती है। हमारी सांसारिक चिन्ता की तो लीन-खील हो जाती है। तुम्हारे आगे सारा जगत लड़कों का घिरौंदा सा दिखाई देता है। तुम्हारे भक्ति पथ में बाधा करने को संसार चाहे कोटि रूप धरे पर तुम्हारे नानी का खिलौना ही सा जान पड़ेगा। अहा ! तुम्हारे गुणानुवाद में वह मिठाई है जिसके स्वादु अमृत भी तुच्छ है। २

प्रलाप शैली में भाव उमड़ से प्रतीत होते हैं। जहाँ भावाधिक्य के कारण लेखक भावों को संभाल नहीं पाता वहाँ इस शैली के दर्शन होते हैं। इस शैली में बुद्धि तथा संयम का प्रायः अभाव रहता है। भाव जैसे उमड़ते हैं वैसे ही असम्बद्ध स्थिति में रख दिये जाते हैं। लेखक का भावावेश में यह ध्यान ही नहीं रहता कि हम अपने भावों को कैसे अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस शैली में उदाहरणार्थ वाजिद अलीशाह निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'हाय ! आज हमीं नहीं रो रहे हैं हमारी लेखनी का भी हृदय विदीर्ण हो रहा है। हमीं मत समझो मारे दुःख के उन्माद हो रहा है इसका रस काला पड़ गया है और आंसुओं के साथ नेत्र द्वारा बहा जाता है। हाय शाह वाजिदअली! हा सुलतान आलम ! हा अख्तर ! हाय सूबे अवध के कन्हैया ! तुम हमारा ध्यान न करते थे, तुम हमारी जाति के न थे तो भी हमारा वाजिदशाह कलकत्ते में बैठा है यह स्मरण हमारे लिए संतोषजनक था। तुम्हारा अन्तःकरण हमसे ममता रखता था इसमें कोई सन्देह नहीं। पर हाय ! दुष्ट दैव से इतना भी न देखा गया। १

व्यास शैली का प्रयोग विचार प्रधान भावात्मक निबन्धों में बहुत अधिक

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या २, (दिवाली में उपासना)
२ '—वही—
३ ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ३

किया गया है। इस धानी म लिख गय मनोयोग निबन्ध की कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

"यदि एक तुच्छ तृण की दशा को विचार चलिए तो अनुमान शक्ति समझावेगी कि एक किसी बन वाटिका खत या मैदान की शोभा का वह अंग रहा होगा कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उसे देखने आते होंगे कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उस देखने आते होंगे कितने ही क्षत्र कीट एव पुरुष रत्नों न उस पर विहार किया होगा। कितने ही क्षुधित पशु उसके लिए लालायित होकर रह गय होंगे और आज वह कितने ही दैविक दैहिक सुख दुःख झेलता हुआ इस दशा को पहुंचा है तथा अब भी न जाने किस की आस म पड़के दुःख का हेतु हो किस ठौर पर जल वा पवन के मध्य नरय करे वा कहां पर अग्नि के द्वारा भस्म म रूपान्तरित हो जाय।[1]

मनोविकारों पर लिखे गये निबन्धों म कहीं-कहीं मिश्र जी ने समान शैली का भी प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण इस शैली के लिए दृष्टव्य है—

'ससार म असाधारण विद्याबुद्धिगुणगौरवादिविशिष्ट व्यक्ति रत्न बहुत थोड़े होते हैं पर निरे निरक्षर निर्बुद्धि गुणशून्य भी बहुत नहीं होते। सृष्टिकर्ता ने श्रेष्ठता प्राप्त करने का थोड़ी बहुत सुविधा सभी को द रक्खी है और मानवीय मानीपिया न सृष्टिशिरोमणि (अशरफुलमखलूकात) की पदवी मनुष्य मात्र को द रक्खी है अत किसी को भी अपना जीवन तुच्छ न समझना चाहिए।[2]

मिश्र जी के भावात्मक निबन्ध उनकी सहृदयता और उनके निश्छलहृदय की अभिव्यक्ति हैं। उनका कामन और उदार हृदय उन म पूरी तरह समन्वित है।

हास्य और व्यंग परक निबन्ध

इन निबन्धों का उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन तथा देश या समाज का सुधार करना होता है। हास्य प्रधान निबन्धों म मनोरंजन पर विशेष दृष्टि रहती है और व्यंग्यात्मक निबन्धों म सुधार पर। हास्य प्रधान निबन्ध कभी-कभी कोरे मनोरंजन के लिए भी लिख जाते हैं। इनम हास्य योजना के लिए असंगत, अस्वाभाविक और विद्रूप वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। इन निबन्धों के पढ़ने स पाठकों का हृदय प्रसन्न और ताजगीवाला बनता है उनम नयी चेतनता आ जाती है और वे थोड़े समय के लिए सांसारिक-संघर्षों म दूर हो जाते हैं। हास्य प्रधान निबन्धों का साहित्य म महत्वपूर्ण स्थान है। बालकृष्ण भट्ट तो निबन्ध का जीवन ही हास्य मानते

---

१ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ १६२।
२ प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ १७३-७४

हैं— रसिक पढ़ने वाले हास्य रस पर अधिक टूटते हैं। सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़ कुछ भी हंसी समान बात न लिख उठें तो वह लेख ही क्या—हमारे संस्कृत-साहित्य में तो वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन माना गया है वक्रोक्ति काव्य जीवनम्। हास्य में अवश्यमेव कुछ न कुछ वक्रोक्ति रहती है।'[1] व्यंग्यात्मक निबन्धों में लेखक व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात कहता है। व्यंग्य कहने का एक विशेष ढंग होता है जिसमें वास्तविक स्थिति में बढ़ाकर कोई बात कही जाती है और जिसके पढ़ने में स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि लेखक वर्णित वस्तु की प्रशंसा न करके निन्दा कर रहा है। इन निबन्धों में लेखक की दृष्टि सामाजिक कुरीतियों और अनाचारों पर रहती है वह इन पर अपने तीखे व्यंग्य-बाण चलाता है। इन निबन्धों में लेखक की वाणी ऊपर से बड़ी शिष्ट और मधुर रहती है पर भीतर से वही गहरी मार करती है। लेखक व्यंग के माध्यम से कटु-से-कटु बात निःसंकोच कहा जाता है। व्यंग्य से आवेष्टित होने के कारण वह बात पाठक को बुरी तो लगती ही नहीं बल्कि वह सीधी मर्म-स्थल पर चोट करती है। इससे समाज का उत्थान बड़ी शीघ्रता से होता है। प्रो० जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं— 'लेखक व्यंग के द्वारा अपनी रचना को प्रभावशाली ही नहीं अर्थ—विस्तार अर्थ गाम्भीर्य और अर्थ सिद्धि में भी सम्पन्न कर सकता है। व्यंग्य सम्पन्न-निबन्ध समाज साहित्य शासन के जीवन में जो उथल-पुथल मचाते हैं विचारात्मक सर्वपूर्ण, दार्शनिक निबन्ध भी नहीं मचा सकते।'[2] व्यंग्य लेखक के लिए आत्मिक-साधना की बड़ी आवश्यकता होती है। उसमें किसी प्रकार की दलगत संकीर्णता या पक्षपात की भावना न होनी चाहिए। व्यंग की प्रभावोत्पादकता और तीक्ष्णता लेखक के ही आधीन होती है। लेखक का हृदय जितना ही उदार और विशाल होगा उसके व्यंग्य भी उतने ही तीक्ष्ण और हृदयस्पर्शी होंगे। हास्य और व्यंग्य का शिष्ट और मर्यादित होना भी वांछनीय है क्योंकि इसका प्रभाव पाठकों के चरित्र पर सीधा पड़ता है।

मिश्र जी के हास्य और व्यंग्य-परक निबन्ध सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र की संकीर्णताओं को आधार बनाकर लिखे गये हैं। इन निबन्धों में हास्य भी आती है मस्ती की बड़ धारा जिस पद में जिसकी बनि आती है जिस पद में जिस पर आफत आती है, तिस छ! छ!! छ!!! मुच्छ, मनमत्गार का मौन है पूर कमसल किन्नै बनाता का ढोल बाघ ट हाला है सुनाम उपाधि स्वतन्त्रता मार मार कह जाओ नामद तो खुदा ही न बनाया है फूटी मढ़ैं आओ न गड्ढे आ

१ हिन्दी प्रदीप जिल्द २३ संख्या १२३।
२ प्रो० जयनाथ नलिन 'हिन्दी निबन्धकार' (१९५४ ई०) पृष्ठ १४।

निबन्ध प्रमुख हैं। इनमें भारतीयों के अन्धविश्वास और अकर्मण्यता पर खूब छींटा कसी की गयी है। बनावटी देश भक्त प्रचारकों और देश-द्रोहियों के कार्यों का भी खूब भण्डाफोड़ किया गया है। मिश्र जी सच्चे देश भक्त थे, इसलिए उनकी दृष्टि सभी पर समान रूप से पड़ी है। उन्होंने सच्ची तथा देश हित की बात डंके की चोट पर कही है। उन्हें खुशामद तो आती ही नहीं थी। वे स्पष्ट कहते हैं—"यार बुरा मानो चाहे भला पर कहेंगे वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो। जब तक आचरण न सुधरेंगे तब तक यह सब भगतई और भनमसी कौसी काम की नहीं है।"[1] बनावटी देश सुधारकों पर वे कहते हैं—"घर कि मेहरिया कहा नाही मानती चल हैं दुनियां भर को उपदेश देन घर में एक गाय नहीं बांध जाती, गौरक्षिणी सभा स्थापित करेंगे तन पर एक सूत देशी कपड़े का नहीं है बने हैं देश हितैषी साढ़े तीन हाथ का अपना शरीर है उसकी उन्नति नहीं कर सकते, देशोन्नति पर मर जाते हैं—कहां तक कहिए, हमारे नौसिखिया भाइयों को मालीखूलिया का आजार हो गया। करते धरते कुछ भी नहीं हैं बक-बक नाधे हैं।"[2] मिश्र जी जातिगत उच्चता को भी श्रेष्ठ नहीं मानते थे। ब्राह्मणों की निरक्षरता पर उन्होंने गहरा व्यंग्य किया है—"चाहे निरक्षर भट्टाचार्य हों, चाहे कुछ कुबुद्धि कौमुदी रट डाली हो पर जहां लम्बी धोती लटका के निकले बस-अहं पंडित-सरस्वती तो हमारे ही पेट में न बसती है। लाख कहो एक न मानेंगे। अपना सर्वस्व खोलकर हमारे पाऊषण्ड पेट का ठास-ठास न भरे वही नास्तिक जो हमारी बेसुरी तान पर वाह वाह न किये जाय वहां कृस्तान हम से चूं भी करे सो दयानन्दी। जो हम कहें वही सत्य है। भला हम तो हम दूसरा कौन।"[3] मिश्र जी बड़े निडर थे। वह सरकार के अनतिक कार्यों की भी जोरदार भर्त्सना करते थे। उस समय सरकार भारतीयों को प्रसन्न करने के लिए—बड़े-बड़े पर खुशामदी लोगों को-उपाधियां बांटती थी और उनसे फिर अनेक अनतिक कार्य कराती थी। मिश्र जी ने सरकारी उपाधियों पर बड़ा अच्छा व्यंग्य किया है— एक प्रकार की उपाधि सरकार से मिलती है। यदि उसकी भूख हो तो हाकिमों की खुशामद तथा गौरांगदेव की उपासना में कुछ दिन तक तन मन धन से लगे रहिए। कभी आपके नाम में भी सी० एस० आई० अथवा ए० बी० सी० से किसी अक्षर का पुछल्ला लग जायगा। अथवा राजा राजबहादुर, खां बहादुर अथवा महामहोपाध्याय की उपाधि लग जायगी। पर यह न समझिए कि राजा कहलाने के साथ कहीं की गद्दी भी मिल जायगी अथवा

१ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ४ (गुप्त ठग)

२ „ खण्ड २ संख्या १ (पूरे के सत्ता बिन कनातन का ठोस थाप)

३ खण्ड १ संख्या १ (हो ओ ओ सो है)

गद्य म व्यंग्यपूर्ण वक्रता लोकोक्तियो के द्वारा चलतापन लाने का श्रेय इन्ही का प्राप्त है।[1] मिश्र जी हास्य और व्यंग्य तथा कहावतो और मुहावरो से युक्त एक नवीन अकृत्रिम शैली के जन्मदाता है। उनकी शैली बडी स्वाभाविक सुबोध सरस और प्रभावोत्पादक है। उसमे उनका व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। वे बडी आत्मीयता के साथ पाठको से बातचीत करते हैं। उनकी शैली म लेखक और पाठक के बीच कोई दुराव नही है। मिश्र जी की शैली की आत्मीयता देखकर ही डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं— साहित्य की सच्ची सप्राणता उसी शैली म है जहा लेखक और पाठक के बीच कोई दुराव नही रह जाता।[2] मिश्र जी शैली के बड धनी थ इसी से उनके निबन्ध गद्य को एक नयी गति देने तथा उसे सरस और शक्तिशाली बनाने म सफल हो सके हैं।

निबन्धों की भाषा

मिश्र जी ने अपने निबन्ध अवधी, ब्रज उर्दू और खडी बोली में लिखे है। अवधी भाषा का आंशिक प्रभाव तो उनके कई निबन्धो पर पडा है। पर शुद्ध अवधी म लिखा उनका केवल एक ही तिल नामक निबन्ध प्राप्त है। यह निबन्ध हास्य योजना के उद्देश्य से लिखा गया है। कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ देखिए— वाह रे तिल जेह के बिना पितर पानी नाही पावति देवतन का होमु नाही होत तेहि के बडाई मनई कैसे कर सकत है? ई धर्मई का छवाट होत हैं प गुन बडे-बड भरे हैं। भिनसहरी के पहर उठि के पसा भ्याना भरि चबाय लीन करै तो कौनौ रोगु दाम् नेरे न आवै। तनु गहिका अस दूसर होत नाहाना। नैनू (मक्खन) के साथ साथ मेवा फुलेल एही म बनत हैं जिन के बिन बडे-बड़े रसिया और बडी-बड़ी सुन्दरिन का चिकनपट नाही होत। पुरी पृथ्वी तो तेल फुलेल से अवपाल सिगारद नाही होत आखिन की जोतिउ मारति है। माथ मा जुरुवनिया होनि है और थाह भरि निरगालित हो जाति हैं।[3] ब्रजभाषा का भी—अवधी की ही भांति—केवल एक ही—'नन' नामक निबन्ध मिलता है। यह भी हास्य के ही उद्देश्य से लिखा गया है। उदाहरणार्थ अवलोकनीय है—"परमेश्वर को नाना प्रकार की सृष्टि रचने की लत है। उनको कुछ प्रयोजन नाय प एक को बनाव हैं एक का नसावै हैं। कुछ अग मारे ग्रामीन म जगतपिता प्रवीन म जगजीवन कहाव हैं। याई लन के हैं। गवारन की गारी खाय हैं। पानी बहुत बरसै तो मूरख कहिंगे सारे के घर म पड लिखन म पूज जाय

---

1 डा० रमाशकर शुक्ल रसाल हिन्दी साहित्य का इतिहास' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ६५० ५१

२ डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ १०

३ ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ६

पाता हुा पानी है गया है। जब नाय बरस तब महे है कै नपूता सूख गयो है। धन्य रे नन्द के छोरा ! गारिऊ खाय है प सत नाय छोड़ हैं। हमार रिसिन को भगवान क भजन और जगत क उपकार की लत परी ही आव मारे सारे सुखन का छ डि ससार सा मुख मोड़ि कदमूल खाय-खाय बन म जाय रहे हैं। याई क फल सा ब्रह्ममय कहावें।'[1] उदू म मिश्र जी न कई निबन्ध लिख थ जो भारत प्रताप म प्रकाशित हुए थे[2] पर आज वे अप्राप्य हैं।

खड़ी बाली मिश्र जी क निबन्धा की प्रमुख भाषा है। इसके परिमार्जित और सरल दाना रूप उनके निबन्धो म मिलते है। परिमार्जित खड़ी बाली म कहावतों मुहावरा की उछल-कूद और व्यग्यात्मकता नहीं है इस भाषा का प्रयाग गम्भीर विषया क विवचन म किया गया है। मिश्र जी के विचारात्मक निबन्ध इसी भाषा म लिख गय हैं। सज्जनता निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए— 'विद्या सन्सग के द्वारा बुद्धि प्रकाशित हान पर बहुत स कत्तव्य आप स आप सूझन लगत है जिन म स यदि दा एक का भी भली भाति सग्रह त्याग निर्वाहित हो जाय ता जीवन क साफल्य म बड़ी भारी सुविधा हाती है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि एस बृहत्‌काय सहज म नहीं हात। सत कामा क पूर्ण हान म अनक अड़चनें तथा बुरे कर्मों की विफलता म भी बहुत स प्रत्यक्ष बाधा डालत हैं। दुष्प्रवृत्ति के लोग बहुधा निष्कारण भी कवल अपन मनोविनाद क उद्देश्य स विरोध कर उठते हैं आलस्य अथवा आत्मपण क अनुराध स बहुतरे चिरपरिचित मित्र भी विरोधी बन जाते है और ऐसी दशा मे एक या अनक बार उद्याग की पूर्ण सफलता म अवरोध की सम्भावना हुआ करती है।'[3] मिश्र जी ने अपनी 'सुचाल शिक्षा' और 'शैव सर्वस्व' पुस्तको म इसी भाषा का प्रयोग किया है।

सरल खड़ी बाली मिश्र जी की सबस प्रिय और स्वाभाविक भाषा है। इसी का प्रयाग उन्हान अपन अधिकांश निबन्धों म किया है। उनक वणनात्मक और व्यग्यात्मक निबन्ध इसी भाषा म लिख गय है। मिश्र जी क व्यक्तित्व का सम्यक अभिव्यक्ति इसी भाषा म दिखाई पड़ती है। एक उदाहरण लीजिए— यदि आप निरे सज्जन निरे साधु निरे त्यागी निरे सज्जन है ता रिषियो की भाति बनवास स्वीकार कीजिए। यदि आप हमारी तरह अधकचरे है कि प्रम सिद्धान्त भी नहीं छाड़ा चाहत बाह्यापन भी नहीं खाया चाहत और निर्वाह भी चाहत हैं ता जन्म को रोइए। आशा छोड़िय कि कभा आपक शुभचिन्तों जग मनारथ पूर हागे। पर हा, यदि आप

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ११

२ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (००७ वि० पृष्ठ १४

३ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ १८१ ८४

गुरुघटाल, गिरगिट के छन्ने, सब गुन भरी मदरा सोठ हो, धर्म कर्म स्वर्ग मुक्ति देवता पितर इत्यादि को धोखे की टट्टी बना के परामाधन, पराया कल, पराया यश मिट्टी म मिला के येन कन प्रकारेण अपनी टट्टी जमा सकते हो—उस्तादी यह है कि भेद म खुलने पाव—सभी सुख पूर्वक जीवन यात्रा कर सकते हैं। [1] इस भाषा में बैसवाड़ी क्षेत्र की लोकोक्तियों मुहावरों और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। यह भाषा जन सामान्य के स्तर को ध्यान म रखकर लिखी गयी है। जो शब्द समाज म—जिस रूप में—प्रचलित है उसका प्रयोग उसी रूप म—इस भाषा म किया गया है। इसके प्रमाण म उनके द्वारा प्रयुक्त किये गये—तिसपर इस्तर इसके उसके सकते रिपि राक्षस रिपु, औगुण औतार परकार, सभै मतलाब सौ सौ जाव आदि शब्द उल्लेखनीय हैं। बैसवाड़ी शब्दों के लिए वह बैलच्छि बिरौरी, आह्नि धौंकने, बिल पाव बाचत अगुवा, बहेतू डौंगु, निकरत चिकनई, पटिहई निवाह अकिञ्चन मनुबिस आदि शब्द देखे जा सकते हैं। कुछ निरर्थक शब्द भी तुक के मोह से उन्होंने भाषा म मिलाये हैं जसे अशुद्ध-फशुद्ध मागना-जूगना नागरी सागरी, परीक्षा-वरीक्षा आदि। एक-आध अरबी फारसी क शब्द भी इनकी भाषा में इधर उधर मिलते हैं जसे—कदर मुदर्रिस मुआफ जुल्म, इसाफ आदि। वैसे मिश्र जी ने अरबी फारसी के अनुचित प्रभाव से सदैव भाषा को बचाने का प्रयत्न किया है। अरबी फारसी के जो शब्द हिन्दी म घुलमिलगये हैं उन्ही शब्दों को उन्होंने अपनी भाषा म स्थान दिया है। संस्कृत के भी अधिक शब्द उनकी भाषा म नहीं आने पाये है। केवल विशेषणो के रूप म कही-कहा सस्कृत पदावली मिलती है। यथा— तो क्या हमारे यावदार्यकुलदिवाकर सूयवंशावतंस मेवाण दधाधिपति सरीखे सर्वसद्गुणालङ्कृत महाराना तथा अन्यान्य आर्यन्यगण पीछे रह जायंगे? [2] इसके अतिरिक्त अग्रजी के भी शब्द—Indirect Known Half Civilized Direct, Un known, Come Tax Mount, Born, Lover Preech Love Lady, Lnd Nature, Article Policy, Authority Progress आदि यत्र-तत्र इनकी भाषा म मिलते हैं। कहीं-कहीं अग्रजी की कहावता—All is not gold that glitters, Eat drink and be merry Might is right Necessity is the mother of invention आदि का भी प्रयोग उन्होंने अपनी भाषा म किया है। इन विभिन्न भाषाओं क शब्दों का प्रयोग, केवल भाषा के वास्तविक रूप को सामने लाने क उद्देश्य स किया गया है। ये शब्द भाषा में असमय से घुसे या भार बन नहीं प्रतीत होते और न इनके प्रयोग में किसी प्रकार के चमत्कार प्रदर्शन की भावना ही लक्षित होती है।

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १ ('दुनिया अपने मतलब की है)

२ ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या २ (हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार होगा')

इन शब्दों के प्रयोग से मिश्र जी की भाषा बड़ी सरल स्वाभाविक और जन-सामान्य के अनुकूल बन गयी है। कहावतों और मुहावरों ने तो इनकी अभिव्यक्ति को और भी जोरदार बना दिया है। इस भाषा में मिश्र जी की मौलिकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

मिश्र जी की सरल खड़ी बोली में ग्रामीणता का पुट देखकर कुछ साहित्यकार उन्हें सामान्य और अव्यवस्थित गद्य लेखक मानते हैं पर स्थिरता से विचार करने पर यह धारणा बड़ी निर्मूल जान पड़ती है। मिश्र जी परिमार्जित भाषा भी पूर्ण अधिकार के साथ लिखते थे, जिसका प्रमाण हमें उनके विचारात्मक निबन्धों में सहज ही मिल जाता है। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपनी भाषा में लोक-हित और हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से किया है। ग्रामीण शब्दों द्वारा वे भाषा में ऐसी सरसता, सरलता और लोच उत्पन्न कर देते थे कि पाठकों का मन बहुत शीघ्र उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था और वे उसमें कही बात सहज ही समझ लेते थे। मिश्र जी ने अपनी भाषा की सरसता द्वारा एक नया पाठक समुदाय ही तैयार कर लिया था। मिश्र जी की यह भाषा बड़ी भावानुरूपिणी है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' मिश्र जी की इस भाषा पर मुग्ध होकर लिखते हैं— अहा! भाषा हो तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है! क्या लोच! कैसी फड़कती और चलती भाषा है। दुःख है, यह भाषा पं० जी के साथ ही चली गयी फिर ऐसी भाषा लिखने वाला कोई उत्पन्न नहीं हुआ। मुहावरेदार भाषा लिखने में जैसा भाव विकास होता है वैसा अन्य भाषा लिखने में नहीं। यदि होता भी है तो उतना प्रभावजनक नहीं होता। पं० जी की भाषा में अनेक शब्द शुद्ध रूप में नहीं लिखे गये हैं, कारण इसका यह है कि उनको उस रूप में उन्होंने लिखा है जैसा वे बोल चाल में हैं। उनकी यह प्रणाली गृहीत नहीं हुई। कारण इसका यह है कि एक तो बोल चाल पर इतनी दृष्टि कौन डाले दूसरी बात यह कि जब कुछ विशेष कारणों से शब्द को तत्सम रूप में लिखा जाना ही अच्छा समझा जाने लगा तो व्यर्थ सर कौन मारे। चाहे जो हो परन्तु ऐसी भाषा लिखना टेढ़ी खीर है सब ऐसी भाषा नहीं लिख सकते। यह गौरव पं० प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी लिखने वालों में और पं० रतननाथ को उर्दू लिखने वालों में प्राप्त हुआ अन्य को नहीं। आश्चर्य नहीं कि कोई दिन ऐसा आवे जिस दिन यह भाषा ही आदर्श मानी जावे।[1] इस प्रकार मिश्र जी की ग्रामीणता उनकी भाषा में दूषण न होकर भूषण बन गयी है। उनकी भाषा बड़ी साधु, सुबोध, स्वच्छन्द चलती हुई, प्रभावपूर्ण रोचक और सजीव है।

---

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास (१९९७ वि०) पृष्ठ ६६२ ६३

मिश्र जी के निबन्धो में बुद्धि और भाव का समुचित सयोग दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपने विचारो को सरलता और रोचकता के बीच ऐसी आत्मीयता से सजोया है कि पाठक उन्हें अपनी वस्तु समझकर बडी अभिरुचि के साथ ग्रहण करले हैं। मिश्र जी का जसा फक्कड और स्वच्छन्द व्यक्तित्व था वसे ही उनके निबन्ध भी फक्कड़पन लिए, बडी स्वच्छन्द गति से चलते हैं। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दो म—'उनके लेखो म सवत्र व्यक्तित्व की छाप लगी मिलती है। जसा उनका स्वभाव था वसा ही उनका विषय निर्वाचन भी था। इसके अतिरिक्त उनकी रचना म आत्मीयता का भाव अधिक मात्रा म रहता था। साधारण विषयो को सरल रूप मे रखकर वे सुनने वाले का विश्वास अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।'[1] मिश्र जी ने जन-साहित्य की रचना कर हिन्दी के शब्द भण्डार को समृद्धिशाली बनाने में सराहनीय कार्य किया। मिश्र जी के-से साहित्यकार को पाकर हिन्दी-गद्य शक्ति और गति से परिपूर्ण होकर उर्दू की प्रतिस्पर्द्धा म बेरोक आग बढ़ सका। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी आजीवन हिन्दी-गद्य को उन्नति-शील बनाने म लगे रहे। मिश्र जी की कर्मठता और हिन्दी-सेवा के कारण उनका नाम हिन्दी-गद्य निर्माताओ की सूची में सदव ऊपर लिखा जायगा।

---

१ डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा 'हिन्दी गद्य-शैली का विकास' (२०१९ वि०) पृष्ठ ६२

चौथा अध्याय

मिश्र जी की पत्रकारिता

पत्रकारिता का जन्म मनुष्य की जिज्ञासावृत्ति के परिणाम स्वरूप हुआ है। मनुष्य आदिकाल से दूसरों के उत्थान-पतन और सुख-दुख को जानने का इच्छुक रहा है और अपनी इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिए समयानुसार विभिन्न साधनों को अपनाता आया है। ज्यों-ज्यों मनुष्य का बौद्धिक विकास होता गया त्यों-त्यों उसके साधन भी उत्कृष्ट और युगानुरूप होते गये। आधुनिक वैज्ञानिक काल में पत्रकारिता उसकी जिज्ञासापूर्ति का ही एक प्रमुख साधन है। पत्रकारिता मनुष्य को समय की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचय कराती और उसे युग के अनुरूप बढ़ने को प्रोत्साहित करती है। इसमें लोकहित की भावना प्रचुर मात्रा में रहती है। जनता के विचारों को समझना उसके हित की बात उसे समझाना और निर्भयतापूर्वक उसके दोषों को प्रकट करना ही पत्रकारिता का उद्देश्य है। पत्रकारिता युग का प्रतिबिम्ब है। युग आज कहाँ पहुँच चुका है? और हम कहाँ पहुँचना चाहिए? यह बताना पत्रकारिता का ही कार्य है। आज पत्रकारिता का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि जन-मन से सम्बन्धित कोई भी विषय उसके क्षेत्र से बाहर नहीं है। कमलापति त्रिपाठी लिखते हैं— साधक के लिए साधना का त्यागी के लिए उत्सर्ग का तपस्वी के लिए कष्ट सहन तथा अनासक्ति का योद्धा के लिए संघर्ष और रण का कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का कलाकार के लिए स्मृति के गूढ़ और रहस्यमय चित्रों के चित्रण करने का आलोचकों के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का साहित्यिक के लिए लौकिक और अलौकिक यथार्थ और भावुक जगत का प्रकाश में लाने का पथ एक साथ ही उपस्थित कर देने में सिवा पत्रकारिता के आज कौन समर्थ है? ज्ञान और विज्ञान दर्शन और साहित्य कला और कारीगरी राजनीति और अर्थनीति समाजशास्त्र और इतिहास संघर्ष और क्रान्ति उत्थान और पतन निर्माण और विनाश प्रगति और दुर्गति के छोटे-बड़े प्रवाह को प्रतिबिम्बित करने में पत्रकारिता के समान दूसरा कौन सफल होता है? [1] आधुनिक जनवाद के लिए तो पत्रकारिता नितान्त आवश्यक है, जनता में नयी चेतना फैलाना जन-समाज को

---

1 कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन : 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण) निवेदन से

संगठित करना, किसी विशेष आंदोलन को सक्रिय बनाना पत्रकारिता द्वारा सहज ही सम्भव है। साहित्यिक-क्षेत्र में भी पत्रकारिता का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी गद्य को व्यावहारिकता पत्रकारिता द्वारा ही प्राप्त हुई है। पत्रकारिता के लिए सरल और सीधी जन-सामान्य के अनुकूल भाषा की आवश्यकता होती है। इसमें विचारों को बड़े सरल और स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है। जिससे अधिक-से-अधिक लोग इससे लाभ उठा सकें। इस प्रकार पत्रकारिता समाज, राष्ट्र तथा साहित्य के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है और आजकल तो यह मानव-जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है।

मिश्र जी से पूर्व हिन्दी-पत्रकारिता

पत्रकारिता का जो रूप आज हम देख रहे हैं वह मुद्रण-यन्त्रों की देन है। वैसे भारत में मुद्रण-यन्त्रों के विकास के पहले भी बिना छपे हुए समाचारों के प्रकाशन और वितरण की क्षीण परम्परा विद्यमान थी। प्रजा के हितार्थ—राजाज्ञाओं के रूप में अनेक समाचार निकलते और जनता तक पहुंचाये जाते थे। समाचार पहुँचाने का काम प्रमुख रूप से भाट और दूत करते थे। कभी कभी डुग्गी पीट कर भी समाचार या आदेश सुनाये जाते थे। महत्वपूर्ण आज्ञायें शिला-लेखों या स्तम्भ लेखों के रूप में भी प्रकाशित की जाती थीं। आगे चलकर मुगल-काल में तो कई हस्त-लिखित अखबार भी निकलने लगे थे। इन अखबारों का भी सम्बन्ध राजकीय-कार्यों या आज्ञाओं से ही था। इनके लिखने के लिए अखबारनवीस या परचानवीस होते थे। अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी मुगल-कालीन अखबारों के विषय में लिखते हैं— वे हाथ से लिखे जाते थे और उनके लेखकों का वेतन चार पाँच रुपये मासिक होता था। अवध के बादशाह के यहां ६६० अखबारनवीस थे। प्रकाशित समाचार पत्रों में बहादुरशाह का 'सिराज-उल-अखबार' प्रसिद्ध है। इन सब अखबारों में सत्य घटनाएँ ही लिखी जाती थीं यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी वर्तमान ढंग के अखबारों के पहले इस तरह के अखबार थे। इनके सिवा राजदरबार से लगे हुए उमरा भी अपने वाकया नवीस रखते थे, जो उन्हें राजदरबार की घटनाएँ लिखकर दे दिया करते थे। इन अखबारों के एक से अधिक भी ग्राहक होते थे और अखबारनवीस इन अखबारों की नकलें करके अपने ग्राहकों को दिया करते थे जिनसे वेतन में धन पाते थे[1]।' लेकिन इन अखबारों या समाचारों में और आज की पत्रकारिता में बड़ा अन्तर है। आधुनिक पत्रकारिता इस परम्परा से सम्बद्ध न होकर पाश्चात्य-परम्परा और मुद्रण-यन्त्रों से सम्बन्धित है।

भारत में मुद्रण-यन्त्रों का विकास अंग्रेजों के आगमन के बाद हुआ। वैसे भारत में छापने की कला की भी क्षीण-परम्परा बहुत पहले से थी इसका प्रमाण

---

१ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृष्ठ १

गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज (सन् १७७२-८६ ई०) के समय में प्राप्त एक मुद्रण पत्र से मिलता है। यह मुद्रण-यंत्र काशी में गड़ा हुआ मिला था। इसके विषय में यह अनुमान किया जाता है कि यह एक हजार वर्ष से कम का गड़ा नहीं था।[1] पर भारतीय मुद्रण-यंत्रों की दूसरी सामग्री आज अप्राप्य है इसलिए इसका आधुनिक पत्रकारिता से कोई सम्बन्ध नहीं है। भारत में सबसे पहला प्रेस पोर्चुगीजों ने यूरोप से मंगाकर १६१६ ई० में बम्बई में स्थापित किया था।[2] इसके बाद डेनमार्क के पादरियों ने तिनकोवर (तनजोर) में एक प्रेस १७१२ ई० में खोला। इसमें पहले रोमन अक्षरों में छपाई होती थी बाद में तामिल अक्षरों में होने लगी।[3] इन्हीं पोर्चुगीजों के अनुकरण पर कुछ भारतीयों ने भी छापाखाने स्थापित किये। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने अपने धर्म के प्रचारार्थ अनेक छापाखाने खोले। सन् १७८९ ई० तक भारत में कई छापाखाने स्थापित हो चुके थे। इसी समय एक छापाखाना मद्रास में और एक कलकत्ता में चल रहा था। कलकत्ता का प्रेस सरकारी था। इसके प्रबन्धक चार्ल्स विलकिन्स थे।[4] इसके बाद फिर भारत में बहुत से छापाखाने स्थापित हो गये। आगे इनका विवरण देना यहाँ पर अनावश्यक होगा।

मुद्रण-यन्त्रों के स्थापित हो जाने के बाद भारत में पत्रकारिता का विकास प्रारम्भ हुआ। पत्रकारिता के विकास का श्रेय अंग्रेजों को है। अंग्रेजों ने ही सर्व प्रथम अंग्रेजी भाषा में पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पहले-पहल २९ जनवरी १७८९ ई० में कलकत्ता से जेम्स आगस्टस हिकी के सम्पादकत्व में 'बंगाल गजेट' प्रकाशित हुआ।[5] यही भारतीय-पत्रकारिता का पहला पत्र है और जेम्स आगस्टस हिकी भारतीय-पत्रकारिता के जन्मदाता हैं। यह पत्र केवल दो पृष्ठों का साप्ताहिक पत्र था। इसके पत्र बारह इंच लम्बे और आठ इंच चौड़े थे। इस पत्र में सरकारी कार्यों की कटु आलोचना की जाती थी। यह पत्र बड़ा निष्पक्ष और स्वतन्त्र था। आगे चलकर हिकी को सरकार की आलोचना करने के कारण—अनेक यातनाएं सहनी पड़ीं।[6] इस प्रकार भारतीय पत्रकारिता का प्रारम्भ ही संघर्ष और कठिना-

---

१ 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९३ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

२ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृष्ठ ७

३ '—वही—' '—वही—' पृ० ७

४ '—वही—' '—वही—' पृ० ९

५ कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टंडन 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ७८

६ —वही— '—वही— पृष्ठ ७—७९

इयों से होता है। इसके बाद अंग्रेजी में इण्डियन गजेट' (१७८० ई०) कलकत्ता गजेट' (१८८४ ई०), 'बंगाल जर्नल' (१७८५ ई०), आरियन्टल मैगजीन' (१७८५ ई०) आदि कई पत्र प्रकाशित हुए। धीरे धीरे तो प्राय सभी प्रान्तों में अंग्रजी पत्र फैल गये।

सन् १८१६ ई० तक भारत में जितने भी पत्र निकले सब अंग्रजी में थे और इनके प्रबंधक तथा सम्पादक अंग्रेज थे। ये सभी पत्र प्राय साप्ताहिक या मासिक थे। कलकत्ता अंग्रेजों का प्रमुख केन्द्र था इसलिए अधिकांश पत्र कलकत्ते से ही प्रकाशित हुए। आगे चलकर अंग्रेजो ने ईसाई मत फैलाने के उद्देश्य से देशी भाषाओं में भी पत्र निकालने प्रारम्भ किये। सर्व प्रथम १८१७ ई० में बपटिस्ट मिशनरियों ने सीरामपुर से दिग्दर्शन' नाम का मासिक पत्र निकला।[1] इसके निकलने के बाद दो महीने के अन्दर ही बेंगाल ग्याजेट' और समाचार-दर्पण' नाम के दो साप्ताहिक पत्र भी निकाले गये। इनमें पहला पत्र कलकत्ता से और दूसरा सीरामपुर से प्रकाशित हुआ। ये दोनों पत्र बंगला में थे।[2] समाचार-दर्पण' बंगला और अंग्रजी दोनों में प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक जोशुआ मार्शमन थे।[3] इस पत्र का मूल उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था। बेंगाल ग्याजेट बंगला भाषा में प्रकाशित पहला पत्र था। इसके प्रकाशक हरचन्द्रराय और गंगाकिशोरी भट्टाचार्य थे। ये दोनों बंगाली सज्जन राजा राममोहन राय के मित्र और आत्मीय-सभा के सदस्य थे। इनके द्वारा प्रकाशित 'बेंगाल ग्याजेट' ने समाचार-दर्पण से अच्छी प्रतियोगिता की और ईसाई-धर्म के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया।[4] इसके बाद सन् १८२० में संवाद-कौमुदी' नाम से एक और साप्ताहिक-पत्र ईसाईयों के विरोध में बंगला में प्रकाशित हुआ।[5] इस प्रकार प्रतिस्पर्द्धा स्वरूप देशी भाषाओं में पत्रों का निकलना प्रारम्भ हुआ और थोड़े ही समय में बहुत से पत्र निकलने लगे।

अंग्रेजी और देशी भाषाओं में पत्रकारिता का विकास हो जाने के बाद लोगों की दृष्टि हिन्दी में भी पत्र निकालने की ओर गयी और सबसे पहले युगुलकिशोर सुकुल ने उदन्त मार्तण्ड' नामक पत्र ३० मई १८२६ ई० को कलकत्ते से निकाला। यह पत्र साप्ताहिक था। इसका प्रकाशन प्रति मंगलवार को होता था। इसके पृष्ठ

---

१ अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १३

२ '—वही—' —वही—' पृ० १४

३ अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास (२०१० वि०) पृ० ४

४ —वही— —वही— पृ० १४

५ सं० रोसम्ड ई० वूल्सले भारतीय पत्रकार कला' (२०१० वि०) पृ० २४

२ अगुल लम्बे और १३ अंगुल चौड़े थे।[1] यह पत्र हिन्दी भाषियों के हितार्थ निकाला गया था। इसकी सूचना 'उदन्त मार्त्तण्ड' में इस प्रकार निकली थी— यह उदन्त मार्त्तण्ड पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रजी और फारसी और बगले में जो समाचार का कागज छपता है उनका सुख उन बोलियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है। इससे निरय समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ औ समझ लेंय औ पराई अपेक्षा न करें औ अपने भाषा के उपज न छोड़ें इसलिए बड़े दयावान करुणा और गुणनि के निधान सबके कल्याण के विषय गवर्नर जनेरल बहादुर की आयस से जैसे साहस में चित्त लगाय क एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा।[2] इस पत्र का वार्षिक मूल्य दो रुपया था। यह पत्र एक वर्ष सात महीने चलकर ११ दिसम्बर १८२७ ई० का बन्द हो गया।[3] इसक बाद १० मई १८२९ ई० को कलकत्ते से 'बंगदूत' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक नीलरतन हालदार थे। यह पत्र बंगला के 'बंगदूत' का हिन्दी में अनुवाद करके निकाला जाता था। यह पत्र भी अधिक नहीं चल सका। इसके केवल ११ १२ अंक ही प्रकाशित हो सके।[4] इस पत्र के बन्द होने के बाद लगभग १५ वर्ष तक हिन्दी का कोई भी पत्र नहीं निकला। इसका कारण यह था कि उस समय हिन्दी के पत्र पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम थी। इससे इन पत्रों के निकालने में लाभ तो दूर रहा हानि ही उठानी पड़ती थी। आगे फिर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने साहस करके १८४५ ई० में अपना बनारस अखबार निकाला। यह हिन्दी प्रदेश में प्रकाशित होने वाला पहला साप्ताहिक-पत्र था। लेकिन इसकी भाषा उर्दू के अधिक समीप थी। इसके सम्पादक गोविन्दरघुनाथ थत्ते थे जो राजा साहब के आदेशानुसार लिखते थे।[5] इसमें अंग्रेजो की खुशामद अधिक रहती थी। इस पत्र की प्रतिक्रिया स्वरूप तारामोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक सुधार (१८५० ई०) और राजा लक्ष्मणसिंह ने आगरा से प्रजा हितैषी' (१८५५ ई०) पत्र निकाले।[6] इसी बीच मार्त्तण्ड' (११ जून १८४६ ई०) ज्ञान दीपक (१८४६ ई०), मालवा अखबार' (१८४८ ई०) जगद्दीपक भास्कर' (१८४९ ई०), 'बुद्धि प्रकाश' (१८५२

---

१ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास (२०१ वि०) पृ० ९३
२ —वही— '—वही—' पृ० ९७
३ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ ९३
४ —वही— —वही— पृ० १०५
५ 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली पहला खण्ड (१९३० ई०) पृ० ४९५ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)
६ डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट (१९५८ ई० पृष्ठ १४३

ई०), 'मजहरुल सरूर' (१८५० ई०), 'ग्वालियर गजेट' (१८५३ ई०), सर्वहितकारक (१८५५ ई०) आदि पत्र भी निकले। अब धीरे-धीरे हिन्दी-पत्रों की सख्या बढने लगी। लोगो की दृष्टि अब हिन्दी पत्रकारिता की ओर विशेष उन्मुख हुई। सन् १८५४ में कलकत्ते से 'समाचार सुधावर्षण' नाम का दैनिक पत्र भी प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र था।[1] इसके बाद १८५७ ई० में क्रान्ति हो जाने से पत्रकारिता कुछ दिन शिथिल रहा। फिर सन् १८५९ ई० में अहमदाबाद से 'धर्मप्रकाश' नाम का एक मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक मनसुखराम थे।[2] इसके पश्चात् 'लोकमित्र' (१ जनवरी १८६० ई०) 'भारतखण्डामृत' (१८६४ ई०) 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' (१८६५ ई०) 'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका' (१८६६ ई०) 'वृत्तान्त विलास' (१८६७ ई०) आदि कई पत्र प्रकाशित हुए। अब तक हिन्दी में निकलने वाले पत्रों की सख्या पर्याप्त हो चुकी थी पर पाठकों की कमी के कारण अधिकाश पत्र एक-एक, दो-दो साल चलकर ही समाप्त हो गये।

सन् १८६७ ई० तक पत्रकारिता की दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई। हाँ, सख्या की दृष्टि से अवश्य पर्याप्त पत्र निकले जिनका ऐतिहासिक परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है पर इन पत्रों में सम्पादन और राष्ट्रीयता की निहायत कमी रही। इनमें अधिकांश पत्र किसी सम्प्रदाय या क्षेत्र विशेष से ही सम्बन्धित रहे। कुछ पर ईसाई धर्म के प्रचार तथा कुछ उसके विरोध में प्रकाशित हुए और कुछ पत्रों का उद्देश्य केवल अंग्रेजों की प्रशंसा मात्र करने तक ही सीमित रहा। इन पत्रों के विषय प्रमुख रूप से धार्मिक और सामाजिक रहे। इस प्रकार पत्रकारिता की दिशा में अब-तक सकीर्णता की मात्रा ही अधिक रही। भाषा भी प्रायः इनकी उर्दू-गर्भित और अव्यवस्थित रही। पत्रकारिता का समुचित विकास 'कविवचनसुधा' के प्रकाशन के बाद हुआ। यह पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा काशी से सन् १८६८ में निकाला गया। पहले यह पत्र मासिक था पर कुछ दिन चलने के बाद पाक्षिक और फिर साप्ताहिक हो गया। प्रारम्भ में इस पत्र में केवल कवियों की कविताओं के संग्रह ही प्रकाशित होते थे पर आगे चलकर सुन्दर राजनीतिक और सामाजिक लेख भी निकलने लगे।[3] इस पत्र का मूल उद्देश्य भारतीयों में स्वत्व भाव का सचार करना था। इसके उद्देश्य को समझने के लिए इसके मुख पृष्ठ पर दी हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'खल गनन सों सज्जन दुखी मति होइ हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटै सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै।

---

१ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि० पृ० ११९

२ —वही— —वही—' पृ० ११९

३ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १२८

सुध तजहिं मत्सर मारि मद सम होंइ जग आदर लहैं।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं। [1]

'कविवचन सुधा' के स्वाधीन उदार और महत्-दृष्टिकोण से इसे बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। थोड़े दिनों में इसकी कीर्ति संसार में फैल गयी। राधाकृष्ण दास इसके विषय में लिखते हैं 'कविवचन सुधा'' का आदर सर्व साधारण में बढ़ता गया और इसके लेख ऐसे ललित होते थे कि यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय गिने हुए थे तथापि लोग चाकित की भांति टकटकी लगाए रहते थे और हाथों हाथ सब बंट जाता था यहां तक कि अब एक फाइल भी कहीं नहीं मिलती है।'' [2] डा० रामविलास शर्मा ने भी लिखा है— कविवचन सुधा ने साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी को भाषा साहित्य और देश भक्ति की शिक्षा दी थी निस्संदेह इतना गौरवपूर्ण काम किसी सम्पादक या पत्रकार ने आज तक नही किया। [3] 'कविवचन सुधा' द्वारा भारतेन्दु जी जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया। शर्मा जी फिर आगे लिखते हैं— कविवचन सुधा का प्रकाशन प्रारम्भ करके भारतेन्दु ने वास्तव मे एक नये युग का सूत्रपात किया। पत्र पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहिले कभी इतना प्रभावित न किया था और कोई भी पत्रिका हिन्दी की घाटी के लेखकों को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नहीं ले सकती जैसे कविवचन सुधा। यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नही वरन उसे मशाल दिखाने वाली सचाई थी। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहिले लोगो ने पत्र निकाले थे लेकिन उनमे से कोई भी इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए जमकर न खड़ा था। भारतेन्दु ने सत्य का और न्याय का पक्ष लिया। चाटुकारो राजभक्तों और रुढ़वादियों की उन्होने जरा भी परवाह नकी। कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र मगजीन' जनता का सशक्त स्वर बन गई। सरकार का उन्हें कोप भाजन बनना पड़ा लेकिन देश सेवा का बीड़ा उठा कर उन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।''[4] 'कविवचन सुधा द्वारा पत्रकारिता को एक नया मोड़ मिला। सभी तत्कालीन पत्रों को इसने अपनी ओर प्रभावित किया और सभी में राष्ट्रीयता के बीज बोये।

---

१ राधाकृष्ण-ग्रंथावली पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९७ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

२—राधाकृष्ण ग्रन्थावाली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९८
(हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

३—डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (१९५३ ई०) पृ० ९६

४—डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५३ ई०) पृ ११७

प्रारम्भ म ब्रिटिश सरकार द्वारा इस पत्रिका की १०० प्रतियां ली जाती थी।"[1] लेकिन आगे इसकी देश भक्ति और उग्रता को देख कर सरकार न इसकी प्रतिया लेना बन्द कर दिया। इससे इस पत्रिका का बडी आर्थिक क्षति पहुची। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं—'दुःख की बात है कि बहुत जल्द कुछ चुगुलखोर लोगों की दृष्टि उस पर पडी। उन्होने 'कविवचन सुधा' क कई एक लेखों का राजद्रोह पूरित बताया। दिल्लगी की बातों को भी वह लोग निन्दा सूचक बताने लगे। 'मरसिया' नामक एक लेख उक्त पत्र म छपा था, यार लोगों ने छोटलाट सर विलियम म्योर को समझाया कि यह आपही की खबर ली गई है। सरकारी सहायता बन्द हो गई। शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर केम्पसन साहब ने बिगड़कर एक चिटठी लिखी। हरिश्चन्द्र जी ने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया बुझाया पर वहा यार लोगों ने जो रग चढा लिया था वह न उतरा।[2] इस घटना से भारतेन्दु जी का स्वर और भी तीव्र तथा उग्र हो गया। साथ ही पत्रिका भी पहिले की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गयी।

भारतेन्दु की व्यस्तता के कारण पत्रिका नियत समय पर न निकल पाती थी। इसलिए कुछ समय बाद भारतेन्दु जी ने इसे प० चिन्तामणि राव घड़फुले के हवाले कर दिया। चिन्तामणि राव के हाथ म जाते ही यह पत्र समय से निकलने लगा पर जब भारतेन्दु जी ने इसम लिखना छोड़ दिया तो यह पत्र निर्जीव हो गया। इसके बाद सन् १८८३ म तो इसकी हालत और भी बिगड गयी। इस बष इलबर्ट बिल का आन्दोलन हुआ। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द न उसका विरोध किया। जिसस वे देशवासियो की दृष्टि म गिर गय। दुर्भाग्य से कविवचन सुधा' न भी उनका पक्ष लिया। इसस यह भी देशवासियों की दृष्टि म गिर गयी।[3] आगे तो यह १८८५ ई० म सदा क लिए बन्द भी हो गयी।[4]

कविवचनसुधा' के बाद 'वृत्तान्तदर्पण (१८६८ ई०), विद्यादर्श (१८६९-ई०) समयविनोद' (१८६९ ई०) 'आगरा अखबार' (१८७० ई०) 'अल्मोड़ा अखबार (१८७१ ई०) 'हिन्दू प्रकाश' (१८७१ ई०), हिन्दी दीप्ति प्रकाश' (१८७२ ई०) बिहारबन्धु' (१८७२ ई०) आदि पत्र प्रकाशित हुए। ये पत्र सामान्य स्तर के ही रहे। इन्हें पत्रकारिता क क्षेत्र में कोई विशिष्ट स्थान नहीं मिल सका। १५ अक्टूबर, १८७३ ई० को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न काशी से हरिश्चन्द्र

---

१ 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग २००७ वि० पृष्ठ ३१५

१ '—वही—' '—वही'— पृष्ठ' ३१६

३ राधाकृष्ण-ग्रन्थावली पहला खंड (१९३० ई०) पृष्ठ ५०० ५०१ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

४ अम्बिका प्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास (२०१० वि० पृ० १९१

मैगज़ीन' निकाली जिसका नाम १८७४ ई० में बदलकर 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' कर दिया। यह मासिक पत्रिका थी। इसका वार्षिक मूल्य ६) था।[1] इसमे उपन्यास कविता, आलोचना लेख और कहानियां प्रकाशित होती थीं। इसके लेख ऐतिहासिक राजनीतिक साहित्यिक पुरातत्त्व सम्बन्धी तथा हास्य और व्यग्य से परिपूर्ण होते थे।[2] इसके लेखों के विषय मे स्वयं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कहते थे कि जैसे उमंग के जोरदार लेख मेरे और मेरे मित्रों के 'मैगजीन' में लिखे गये और छपे वैसे फिर न लिख सके।[3] इसकी भाषा भी बडी परिमार्जित और प्रभावपूर्ण थी। आचार्यरामचन्द्र शुक्ल हिन्दी गद्य का स्वच्छ रूप इसी पत्रिका में देखते हैं —' हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' से प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा जिसको जनता ने उत्कंठा-पूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका म हुआ। भारतेन्दु न नई सुधरी हुई हिन्दी का उदय इसी समय से माना है। उन्होने 'कालचक्र नाम की अपनी पुस्तक म नोट किया है कि 'हिन्दी नई चाल म ढली, सन् १८७३ ई०।[4] आगे भारतेन्दु के पुराने मित्र पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया के जोर देने से यह पत्रिका १८८० ई० से मोहन चन्द्रिका के साथ सम्मिलित रूप में प्रकाशित होने लगी और इसका पूरा कार्य भार भी पण्डया जी के हाथ में आ गया। पर भारतेन्दु की छत्रछाया से पृथक होकर यह चन्द्रिका' फिर पनप न सकी। १ जून १८७४ ई० को भारतेन्दु जी ने फिर बालाबोधिनी नाम की पत्रिका निकाली। यह मासिक पत्रिका स्त्रि-शिक्षा के प्रचारार्थ निकाली गयी थी।[5] इसके बाद फिर 'सदादर्श (१८७४ ई०) काशी-पत्रिका (१८७६ ई०), 'भारत-बन्धु' (१८७६ ई०) 'मित्रविलास' (१८७७ ई०) आदि पत्र निकले। ये पत्र भी अच्छी कोटि के थे।

उपर्युक्त पत्रो के बाद, १ सितम्बर १८७७ ई० को प्रयाग से पण्डित बाल कृष्ण भट्ट ने हिन्दी भाषा का अद्वितीय पत्र हिन्दी प्रदीप निकाला।[6] यह पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही उद्देश्यों को लेकर चलने वाला पत्र था। देश प्रेम का स्वर इसम प्रमुख था। भाषा भी इसकी बडी उत्कृष्ट थी। इसम निबन्ध अधिक और अच्छे

---

१ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ १४३
२ —वही— —वही— पृ १४४
३ राधाकृष्ण ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ५१२ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)
४ आचार्यरामचन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृ० ४५६
५ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १४४
६ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १५०

निकलते थे। डा० रामविलास शर्मा इसके विषय में लिखते हैं— 'इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' निकाला जो बत्तीस वर्ष तक हिन्दी की सेवा करता रहा, यह पत्र स्वाधीन विचारों का समर्थक और अपने समय के श्रेष्ठ पत्रों में था। जिस लगन से अनेक कष्ट सहते हुए वर्षों तक भट्ट जी ने इसे चलाया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है उनकी दृढ़ता और अध्यवसाय आदर्श हैं।[1] 'हिन्दी प्रदीप' अपने समकालीन पत्रों में (कुछ को छोड़कर) सबसे अधिक दिन जीवित रहा। इसने साहित्य और समाज की ३३ वर्ष तक सेवा की। इसके बाद आर्यमित्र (१८७८ ई०) भारत मित्र (१८७८ ई०) 'जयपुर गजट' (१८७८ ई०) 'सारसुधानिधि' (१८७९ ई०), 'सज्जनकीर्ति सुधाकर' (१८७९ ई०) 'उचितवक्ता' (१८८० ई०) 'आनन्द कादम्बिनी' (१८८१ ई०) 'प्रयागसमाचार' (१८८२ ई०) आदि पत्र निकले। इनमें 'भारतमित्र' और 'उचितवक्ता' विशेष उल्लेखनीय हैं। ये दोनों पत्र कलकत्ते से प्रकाशित होते थे। 'भारतमित्र' के प्रारम्भिक सम्पादक छोटूलाल मिश्र थे। यह एक राष्ट्रीय पत्र था। भाषा भी इसकी बड़ी सामञ्जस्यपूर्ण थी। थोड़े ही दिनों में इसकी गणना प्रतिष्ठित पत्रों में होने लगी। यह ५७ वर्ष तक हिन्दी हितैषियों और कलकत्ते की सेवा करता रहा[2] 'उचितवक्ता' के जन्मदाता और सम्पादक दुर्गाप्रसाद मिश्र थे। इस पत्र में लेख बड़े सुन्दर निकलते थे। भारतेन्दु जी ने भी इसमें कई लेख लिखे थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं— 'इस पत्र में कई गुण विशेष थे। मूल्य खूब कम था। एक बार रायल एक शीट पर छपता था और पैसे में एक पत्र में बेचा जाता था। फिर छपाई-सफाई कागज आदि सब बातें इसकी अच्छी होती थीं। इसमें बढ़कर इसके लेख और चटपटे लेख लोग पसन्द होते थे जो किसी को माफ नहीं करते थे। एक बार इसके ग्राहक भी दो डेढ़ हजार के लगभग हो गये थे। यह बात उस समय तक किसी पत्र को हासिल नहीं हुई थी। इतने पर भी यह पत्र गिरा। उसका कारण यह था कि इसके सुयोग्य सम्पादक पंडित दुर्गाप्रसाद जी पत्र को छोड़कर काश्मीर चले गये थे। पीछे से पत्र ढीला पड़ गया। अन्त में बन्द करना पड़ा।[3] यह पत्र अधिक दिन तक नहीं चल सका। फिर भी अपने जीवन-काल में इसने अच्छा काम किया। इन पत्रों के उपरान्त 'ब्राह्मण' (१८८३ ई०) का हिन्दी जगत् में पदार्पण हुआ।

हिन्दी-पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास देश के पराधीन-काल में हुआ। इसलिए इसे अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। शासक वर्ग शुरू से ही इसे अपने लिए घातक समझने लगा और उसकी वक्र-दृष्टि बराबर इस पर लगी रही। कोई भी पत्र

---

१ डा० रामविलास शर्मा नारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ २६ २७
२ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार पत्रों का इतिहास (२०१० वि) पृ० १५२
३ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ ११२

राज्य के खिलाफ लिखने का अधिकारी नहीं था। यदि इसके विरुद्ध भी कोई कुछ लिखता था तो उसे कठोर-दण्ड दिया जाता था। राज्य के खिलाफ लिखने के ही कारण अपने प्रथम पत्रकार जेम्स आगस्टस हिकी को कठिन कारा की यातना भोगनी पड़ी थी।[1] पत्रकारिता पर कड़े राजकीय प्रतिबन्ध लगे होने से सबल व्यक्तित्व वाले लोग ही इस क्षेत्र में आने का साहस करते थे और जो आते भी थे उनमें अधिकांश शासकों की खुशामद को ही अपना आधार बनाते थे। प्रारम्भ में तो राजकीय प्रतिबन्धों से पत्रकारिता के विकास में बड़ी बाधा पड़ी पर आगे चलकर देश में, जब विद्रोह की अग्नि भड़कने लगी तब ये प्रतिबन्ध पत्रकारिता के विकास में वरदान सिद्ध हुए। इनसे शासकों का दमनकारी रूप जनता के सामने आ गया जिसके परिणाम स्वरूप जनता की सद्भावनाएं पत्रकारिता के साथ हो गयी और पत्रकारिता का विकास सत्वर-गति से होने लगा।

भारतेन्दु-युग तक शासकों की शोषक नीति पूरी तरह स्पष्ट हो गयी थी। अंग्रेजों के अत्याचार बराबर भारतीयों पर बढ़ते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता ने जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने प्रेस एक्ट बनाकर पत्रकारिता पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये पर पत्रकारिता का स्वर धीमा न हुआ और थोड़े ही समय में विद्रोह की अग्नि सारे देश में धधकने लगी। भारतेन्दु युग के पत्रों ने राष्ट्रीय चेतना फैलाने में सराहनीय कार्य किया। उस युग के प्रायः सभी पत्र देश प्रेम और हिन्दी प्रचार की भावना से परिपूर्ण हैं।

भारतेन्दु-युग के पत्रकारों का भी जीवन आदर्श है। उस युग के पत्रकार अनेक कष्ट और आर्थिक हानि उठाते हुए पत्रकारिता को प्रगतिशील बनाने में लगे रहे। पत्रकारों का स्वतन्त्र निडर और सबल व्यक्तित्व पत्रकारिता के विकास में बड़ा सहायक हुआ। उस युग की पत्रकारिता भी पूरी तरह वयक्तिक थी। प्रायः सम्पादक ही अपने खर्च से पत्र को चलाते थे। ग्राहकों की कमी के कारण पत्र की हानि भी सम्पादक को ही उठानी पड़ती थी। लिखने से लेकर प्रकाशन तक का पूरा कार्य सम्पादक पर निर्भर था। उस युग के सम्पादक में त्याग, कर्मठता और लिखने की शक्ति का होना बड़ा आवश्यक था। प्रमुख रूप से पत्र का पूरा कलेवर सम्पादक को ही भरना पड़ता। उस समय आज की तरह लिखने वालों की भरमार नहीं थी। इसीलिए उस समय के प्रत्येक पत्र का सम्पादक प्रायः कोई-न कोई अच्छा साहित्यकार ही होता था। उस समय की पत्रकारिता संघर्ष और कठिनाइयों की धात्री थी।

---

1 कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण)—पृष्ठ ८१

उस युग के साहित्यकार धन्य है जिन्होंने पत्रकारिता के कण्टकाकीर्ण-पथ पर चलकर देश और हिन्दी की रक्षा की।

मिश्र जी का पत्रकारिता सम्बन्धी कार्य

मिश्र जी पत्रकारिता के क्षेत्र में ब्राह्मण द्वारा अवतरित हुए। बीच में एक वर्ष (जुलाई, १८८९ ई० से जुलाई १८९० ई० तक) उन्होंने दैनिक हिन्दोस्थान के सम्पादक मंडल में भी कार्य किया। यह पत्र उस समय कालाकांकर से निकलता था। मिश्र जी उसके काव्य भाग के सम्पादक थे।[१] प्रधान सम्पादक प० मदनमोहन मालवीय थे। मिश्र जी ने एक ही वर्ष में उस पत्र की काया पलट दी। उन्होंने हिन्दी के उत्थान के लिए हिन्दोस्थान' में साहित्य-स्तम्भ नाम का कालम सन्निवेश कराया। इसी कालम में आगे चलकर खड़ी बोली कविता पर हुआ प्रसिद्ध विवाद प्रकाशित हुआ।[२] मिश्र जी अपनी कविता द्वारा इस पत्र में जान डाल देते थे। पत्र में सरसता पैदा करना तो उनके बायें हाथ का खेल था। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं—"राजनीति सम्बन्धी गद्य ही में नहीं पद्य में भी इसमें अच्छे अच्छे लेख निकलते थे। उनमें से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के पद्य लेख बहुत ही सुन्दर हुए थे। सन् १८८९ ई० में मि० ब्राडला बम्बई की पाँचवीं कांग्रेस में आये थे। पण्डित प्रतापनारायण जी ने पद्य में ब्राडला का एक स्वागत लिखा था जिसमें इस देश की दशा की तसवीर खेंच दी थी। विलायत में मि० फ्रेडरिक पिनकाट ने उस कविता को इतना पसन्द किया था कि उसका अंग्रेजी अनुवाद करके इण्डिया पत्र में छपवाया था।[३] मिश्र जी ने इस लघु अवधि में सहायक सम्पादक होते हुए भी हिन्दोस्थान' में जो कार्य किया वह उनके सफल पत्रकार-जीवन का प्रतीक है।

ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी ने २७ वर्ष की अवस्था में, १५ मार्च १८८३ ई० को (होली के दिन) कानपुर से निकाला। यह पत्र मासिक था। यह प्रत्येक अंग्रेजी माह की १५ तारीख को प्रकाशित होता था। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया और एक प्रति का दाम दो आना था। इसके पृष्ठ ९॥ इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े थे। पहले यह १२ पृष्ठ का निकलता था। पर बांकीपुर जाने पर यह पत्र मैटर के अनुसार १४ १६ १८ २०, और २४ पृष्ठों में निकलने लगा। इसका पहला अंक नामी प्रेस कानपुर से बहुत मामूली कागज पर सीसा से छपा था। दूसरे अंक से यह टाइप से मुद्रित होने लगा। इसमें कोई बनाव चुनाव नहीं था मुख पृष्ठ और भीतर के पृष्ठों का कागज एक सा रहता था। मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर एक ओर उसके नीचे

---

१ 'सरस्वती' जून १९१८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी

२ सरस्वती जून १९१८ ई० 'स्व० प० प्रतापनारायण मिश्र' गोपालराम गहमरी

३ 'बालमुकुन्द-गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४४ ४५

अर्द्धचन्द्राङ्कित चिह्न (१) अंकित रहता था। यह चिह्न एकता और हरिश्चन्द्र की स्मृति का द्योतक है। एक (१) के विषय में मिश्र जी लिखते हैं—'क्या तुम्हें सदा 'ब्राह्मण' के मस्तक पर एक का चिह्न देख के उसका महत्व कुछ अनुभव होता है? तो फिर क्यों नहीं सब झगड़े छोड़के सब चित्त से एक ही धारण होते? क्यों न एक होने और एक करने का प्रयत्न करते?'[1] मिश्र जी भारतेन्दु को अपना उपास्य मानते थे।[2] इसीलिए उन्होंने स्मृति स्वरूप अपने 'ब्राह्मण' पर अर्द्धचन्द्राङ्कित चिह्न रक्खा था।[3] इस चिह्न के नीचे मिश्र जी का सिद्धान्त-वाक्य 'शत्रोरपि-गुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि' रहता था। कुछ समय तक यह वाक्य अर्द्धचन्द्र के भीतर भी छपता रहा। अर्द्धचन्द्र ही में कुछ दिन प्रेम एव परो धर्म वाक्य भी निकला। इसके उपरान्त ब्राह्मण नाम अंग्रेजी तथा नागरी लिपियों में छपता था। आगे जब बाँकीपुर से ब्राह्मण पत्र प्रकाशित होने लगा तो ब्राह्मण शब्द को ही बड़े अर्द्धचन्द्र में छापा जाने लगा। इसके अतिरिक्त मुख-पृष्ठ पर ही भर्तृहरि के एक श्लोक का हिन्दी अनुवाद भी इस रूप में छपता था—

नीति निपुन नर धीर बीर कछु सुजस करौ किन।
अथवा निन्दा कोटि कहौ दुवचन छिनहु छिन॥
सम्पति हू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन।
अबहि मृत्यु किन होहु अथवा निश्चल तन॥
पर न्यायपथ को तजत नहिं जे विवेक गुण ज्ञान निध।
यह सग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिध॥

इस अनुवाद के स्थान पर खण्ड ४ संख्या ५ से मूल श्लोक छपने लगा—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्यायात्पथ प्रविचलन्ति पदं नधीरा॥

इसके साथ ही मुख पृष्ठ पर स्थान, तिथि खण्ड और संख्या भी अंग्रेजी तथा नागरी लिपियों में लिखी रहती थी और सबसे नीचे नियमावली प्रकाशित होती थी। नियमावली विज्ञापन नाम से इस प्रकार थी—

'१—यह पत्र प्रति अंग्रेजी मास की १५ ता० को प्रकाशित होगा।

२—अग्रिम देने वालों से वार्षिक मूल्य १) पश्चात् २) लिया जायगा।

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ११ एक'—प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ बस बस होश में आइए'—प्रतापनारायण मिश्र

३ 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ' (२००७ वि०)—पृष्ठ ४९

३—एक प्रति का मूल्य =), डाक व्यय ग्राहकों से न लिया जायगा। जो वर्ष से कम के ग्राहक होंगे उनसे =) प्रति के दाम लिये जायगे, जो सज्जन इसकी एक प्रति को कृपा करके स्वीकार करेंगे वे ग्राहक गिन जायगे और उन्हें मूल्य देना होगा।

४—तीन महीने तक मूल्य भेज देंगे वे महाशय अग्रिम मूल्यदाता समझे जायंगे।

५—जो महाशय सच्चे समाचार सदैव भेजेंगे उनको एक पत्र बिना मूल्य भी दिया जायगा।

६—जो लेख सर्वसाधारण के हितकारी होंगे वह बिना मूल्य छाप दिये जायंगे और निज के हित के लेख का –) प्रति पंक्ति लिया जायगा।

७—जिन भाइयों का अपना कोई दुःख निवेदन हमारी नीतिमती सर्कार से इस पत्र द्वारा सूचित करना हो वह सच्चाई के साथ यदि हमको अपना लेख देंगे और इस पत्र सम्बन्धी कमेटी उसे छापने योग्य समझेगी तो वह लेख इस पत्र में दिया जायगा यदि वह इस पत्र में अपना नाम प्रगट न किया चाहेंगे तो उनका नाम प्रकाश न किया जायगा।[1]

इस नियमावली में समय-समय पर कुछ परिवर्तन भी होता रहता था। बाद में कुछ समय तक यह पत्र के अन्तिम पृष्ठ पर भी प्रकाशित हुई थी और इसके स्थान पर मुख-पृष्ठ से ही लेख प्रारम्भ हो जाते थे। 'ब्राह्मण' के अन्तिम पृष्ठ पर मुद्रक का नाम और पता रहता था। सम्पादक का नाम और विषय सूची पत्र में न रहती थी। केवल 'सम्पादक' के स्थान पर 'मैनेजर' का नाम और पता रहता था। हाँ, सूचनाएं आदि प्रायः सम्पादक के ही नाम से निकलती थीं।

मिश्र जी 'ब्राह्मण' पत्र के जन्मदाता और सम्पादक दोनों थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' का नामकरण अपनी जाति और तखल्लुस 'बरहमन' को दृष्टि में रखकर किया था। वे लिखते हैं—"इसका सम्पादक 'ब्राह्मण' है और उसका और कविता सम्बन्धी नाम (तखल्लुस) भी यही (बरहमन) है इससे नाम रखते समय व्यर्थ का सोच विचार न करके इस नाम से काम लेना उचित समझा गया था। जो लोग ऊटपटांग लम्बा चौड़ा ढेंगी से भरा हुआ नाम बहुत सोच-साच के रख लेते हैं पर कार्यवाही कुछ भी नहीं दिखा सकते उनका ढंग इस पत्र के सम्पादक को नापसंद है। हिन्दू जाति का समयानुकूल सुधर्मचिन्तन सदा से इसी नाम पर निर्भर रहा है। फिर जिस पत्र का यही एक मात्र उद्देश्य हो उसके लिए इसके अतिरिक्त और कौन नाम युक्ति-युक्त हो सकता था?[2]" मिश्र जी के 'ब्राह्मण' में किसी प्रकार का पापाचार अनाचार तथा

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ 'विज्ञापन'—प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १० (समझ की बलिहारी)

सकीर्णता नहीं थी। 'ब्राह्मण नाम होते हुए भी यह पत्र बड़ा वनानिक और उदार था। इसे अपने अतीत के प्रति अपूर्व निष्ठा थी। मिश्र जी लिखते हैं— इस नाम के साथ वेद और तदनुकूल ग्रन्थों का भी अवश्य सम्बन्ध है। पर इस सम्बन्ध से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि केवल मुख से वेद-वेद चिल्लाना पर तदनुकूल उपदेश के समय बाबा वाक्य प्रमाण का आश्रय लिया जाय। जो लोग वेद का तत्व जानते हैं वह हमारे मूल मत्र प्रेम एवं परोपर्म ' को कदापि वेद के विपरीत नहीं कह सकते। क्योंकि प्रेम के बिना वेद ही नहीं, परमेश्वर तक की महिमा नहीं स्थिर रह सकती। पर उन समझदारों के लिए हमारे पास कोई औषधि नहीं जो केवल दयानन्दी भाष्य ही को वेद समझ बैठे हैं। इसी प्रकार जिनके सिर मे खसखस के दाने भर भी समझ होगी व उपयुक्त नामगुण विशिष्ट ब्राह्मण नामक पुरुष को नकली नहीं कह सकते।[२] ब्राह्मण' पत्र केवल ब्राह्मण जाति विशेष से ही सम्बन्धित नहीं था। उसके लिए सम्पूर्ण जातियाँ अपनी थीं और सभी धर्मों के विशिष्ट-गुणों से सम्बन्धित उसका अपना धर्म था। उसमे कटुता विद्वेष और पक्षपात किंचित्मात्र नहीं था। उसके सामने लोकहित ही प्रमुख था। लोकहित की ही कसौटी में वह सम्पूर्ण तत्वों के गुण और दोष देखता था। हाँ ब्राह्मण जाति के प्रति उसे ममता कुछ अधिक इसलिए थी कि ब्राह्मणों को ऊपर उठाकर उन्हें लोक कल्याण की ओर प्रवृत्त करना चाहता था।

'ब्राह्मण पत्र का मूल उद्देश्य 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान' की सेवा करना था। वह सम्पूर्ण भारत में नागरी का प्रचार कर, उसे एकता के सूत्र में बाँधना चाहता था। उस समय भारत में देश भक्त और राजभक्त दो प्रकार के पत्र निकल रहे थे। ब्राह्मण' पहले प्रकार का पत्र था। इसमें देशभक्ति का स्वर बहुत ऊँचा था। मिश्र जी पत्रों को देशोन्नति और मनोरञ्जन का सर्वोत्तम साधन मानते थे। कानपुर में उनके समय मे एक भी नागरी पत्र नहीं था इसी कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने ब्राह्मण का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। वे 'ब्राह्मण' के पहले अक की प्रस्तावना में लिखते हैं— हम गुणी हैं वा औगुणी यह तो आप लोग कुछ दिन में आप ही जान लेंगे क्योंकि हमारी आपकी पहली भेंट है। पर यह तो जान रखिये कि भारतवासियों के लिए क्या लौकिक क्या पारलौकिक मार्ग में एक मात्र अगुवा हम और हमारे थोड़े से हिन्दी समाचार पत्र भाई ही बन सकते हैं। हम क्यों आये हैं ? यह न पूछिये। कानपुर इतना बड़ा नगर है! सहस्रावधि मनुष्यों की बस्ती!! पर नागरी पत्र जो हिन्दी रसिकों को एक मात्र मनबहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय दीपक और सभ्यता दर्शक सर्वोच्च ध्वजा यहाँ एक भी नहीं। भला यह हम

१ ब्राह्मण खण्ड ८ सख्या १० (समझ की बलिहारी)
२ —वही— —वही—'

से कब देखी जाती है ? हम तो बहुत शीघ्र आप लोगों की सेवा में आते और अपना कर्त्तव्य पूरा करते परन्तु अभी अल्पसामर्थी अल्पवयस्क हैं इसलिए महीने में एक ही बार आ सकते हैं। हमारा आना आप के लिए कुछ हानिकारक न होगा वरंच कभी न कभी कोई न कोई लाभ ही पहुँचावेगा। क्योंकि हम वह ब्राह्मण नहीं हैं कि केवल दक्षिणा के लिए निरी ठकुरसुहाती बातें करें। अपने काम से काम। कोई बने वा बिगड़े, प्रसन्न रहे या अप्रसन्न। नहीं, अन्तःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा। हम निरे मत मतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा दूसरे की निन्दा हो। वरंच वुह उपदेश करेंगे जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य, सब देश, सब काल के साध्य हों जो किसी में भी विरुद्ध न हो। वुह चाल-ढाल व्यवहार बतावेंगे जिनसे धन बल मान प्रतिष्ठा में कोई भी बाधा न हो।'[1] मिश्र जी 'ब्राह्मण' की प्रकृति की भी सूचना पहले ही अंक में दे देते हैं— हाँ एक बात रही जाती है कि हम में कुछ औगुण भी हैं सो सुनिए। जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली पदाइश प्रसिद्ध है। कभी कोई हँसी कर बैठें तो क्षमा कीजिएगा। सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगी। वास्तविक बैर हमसे किसी से नहीं है, पर अपने करमलेख से लाचार हैं। सच-सच कह देने में हमको कुछ संकोच न होगा। इससे जो महाशय हम पर अप्रसन्न होना चाहें पहिले उन्हें अपनी भूल पर अप्रसन्न होना चाहिए।[2] इस कथन का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण हास्य और व्यंग्य प्रधान पत्र था। सत्य बात वह डंके की चोट पर कहता था। स्वाभिमान भी उसमें अटूट था—"हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, जिस तरह सब जहान में सब कुछ है हम भी अपने गुमान में कुछ हैं।[3] इस प्रकार 'ब्राह्मण' आजीवन स्वाभिमानी, उदार स्पष्टवादी और परोपकारी रहा।

मिश्र जी ने ब्राह्मण का प्रकाशन धन या लाभ के उद्देश्य से नहीं किया था। वे अपने लेखों में अपना नाम तक न देते थे। यहाँ तक कि सम्पादक का नाम भी पत्र में न रहता था। मूल्य भी उन्होंने बहुत-कम रखा था। वे लिखते हैं— हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है। फिर यदि निर्वाह मात्र भी होता रहेगा तो हम, चाहे जो हो अपना वचन निबाहे जायँगे। आश्चर्य है जो इतने पर भी कोई कसर-मसर करे।'[4] आगे तो वे स्पष्ट कहते हैं— अरे भाई। हमने इस पत्र को अपने लाभ की

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ (१५ मार्च १८८३ ई०)
२ 'ब्राह्मण खण्ड १ (प्रस्तावना')
३ —वही— —वही—
४ —वही— —वही—'

गरज से नहीं निकाला। मै द बराबर हो जाय यही गनीमत है।' [1] 'ब्राह्मण' का जन्म लोक-कल्याण के लिए हुआ था। वह अपने जन्म की सफलता इसी में समझता था—

भारत हित भगवान हित सब जग के सुख खोय।
प्रिय हिन्दू एता कर जन्म सुफल तब होय॥ [2]

\+ + +

'लोक वेद के सब झगड़े बस दूर हों,
प्रेम मद्य में सगरे हिन्दू चूर हों।
चित्त में उस प्यारे का सरब टटोलना
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥' [3]

ब्राह्मण' में जो कुछ निकलता था उसका कोई न कोई उद्देश्य होता था। हास्य और व्यंग्य भी जनता के हित को दृष्टि में रखकर ही लिखे जाते थे। प्रारम्भ में 'ब्राह्मण' बिल्कुल हास्य प्रधान पत्र था। पर आगे इसकी प्रकृति में कुछ परिवर्तन हुआ। इसकी सूचना मिश्र जी इस प्रकार देते हैं— जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने बहुत से पढ़ लिए। यद्यपि इनमें भी बहुत सी समयोपयोगी शिक्षा रहती है, पर वाग-जाल में फंसी हुई बूंद निकालने योग्य। अतः अब हमारा विचार है कि कभी-कभी ऐसी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों, तथा हास्यपूर्ण न हो के सीधी-सादी भाषा में हों जिसमें देखते और विचारते समय किसी प्रकार का अवरोध न रहे अथवा हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समझकर छोड़ न दिया करें तथा केवल पढ़ ही न डाला करें, वरन् उनके लिए तन से धन से कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें। [4] मिश्र जी के ब्राह्मण का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वह देश के सामने व्यक्ति को कोई महत्व नहीं देता था। देशद्रोहियों की तो वह खुलकर भर्त्सना करता था। [5] गलतियों को माफ करना तो उसने कभी सीखा ही नहीं था। खुशामद से वह कोसों दूर था। उसका तो यह सिद्धान्त ही था— शत्रोरपिगुणावाच्या दोषा-वाच्यागुरोरपि। उसकी दृष्टि में श्रेष्ठ वही था जो देश भक्त हो। देशभक्तों की प्रशंसा भी वह खूब जमकर करता था। [6] देशभक्त चाहे मुसलमान या नीच जाति का क्यों न हो फिर भी वह

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ११ (जरा सुनो तो सही')
२ १ ६ (जन्म सुफल तब होय')
३ २ ९ १० (इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
४ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १ २ हमारी आवश्यकता प्रतापनारायण मिश्र
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ कांग्रेस की जय' प्रतापनारायण मिश्र
६ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ बस बस होश में आन्ए' प्रतापनारायण-मिश्र

'ब्राह्मण' के लिए पूज्य था। 'ब्राह्मण' का प्रमुख लक्ष्य हिन्दी और राष्ट्रीयता का प्रचार करना था। हिन्दी प्रचार के लिए ही वह सरल भाषा में अपने विचारों को पाठकों के सामने रखता था। 'ब्राह्मण' के सुगम-साहित्य ने न जाने कितने नये पाठक तैयार कर दिये थे। राष्ट्रीयता के प्रचार में वह सरकार की किंचित परवाह नहीं करता था। सरकार के अनाचार पूर्ण कृत्यों की कटु आलोचना करना वह अपना धर्म समझता था। 'ब्राह्मण' पत्र प्रतापनारायण जी के स्वभाव का ही सच्चा प्रतिरूप था। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'सम्पादक के व्यक्तित्व की छाप जैसी 'ब्राह्मण' पत्र पर थी, वैसी और किसी पर नहीं।—उनकी नस-नस में जो शरारत और विद्रोह भरा हुआ था वह उसकी एक एक लाइन से प्रकट होता था। हास्य के साथ स्वाधीन चेतना फैलाने में यह पत्र सबसे आगे था।'[1] 'ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी का ही तरह सरल निर्भीक, फक्कड़, विनोदप्रिय और समाज तथा देश का शुभ चिंतक था।

ब्राह्मण' पत्र कब-तक निकलता रहा यह तो निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पर इतना अवश्य है कि यह पत्र कुछ दिन तक मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी बाबू रामदीन सिंह के द्वारा निकाला गया था। इसकी सूचना बाबू राधा-कृष्णदास इस प्रकार देते हैं—"इसके गुणों से मोहित होकर खड्गविलास बाँकीपुर निवासी बाबू रामदीन सिंह ने इसे अपने खड्गविलास यन्त्रालय में उठा लिया, जहाँ से वह अब तक प्रकाशित होता है। खेद की बात है कि इस ग्रन्थ के यन्त्रालय में रहते ही हिन्दी के अमूल्य रत्न पंडित प्रतापनारायण जी अकालकालग्रसित हुए परन्तु बाबू रामदीन सिंह जी ने इस पत्र के चलाने की प्रतिज्ञा की है। इसके लिये उन्हें अनेक धन्यवाद हैं।'[2] इस कथन से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि 'ब्राह्मण' मिश्र जी के जीवनोपरान्त भी निकलता रहा। मिश्र जी का देहान्त ६ जुलाई १८९४ ई० को हुआ था। अतः मिश्र जी के सम्पादकत्व में 'ब्राह्मण' इसी तिथि तक निकला। मुझे 'ब्राह्मण' की नवें वर्ष के बारहवें अंक तक की प्रतियाँ देखने को मिली हैं। इन प्रतियों पर खण्ड २ संख्या १२ (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के बाद) से हरिश्चन्द्र सम्वत् पड़ा हुआ है इसलिए गणना करने पर नवें वर्ष के बारहवें अंक का समय जुलाई १८९३ ई० पड़ता है। इस गणना के अनुसार अभी मिश्र जी के जीवन काल में ही प्रकाशित 'ब्राह्मण' के एक वर्ष के बारह अंक और होने चाहिए। विजयशंकर मल्ल ने नवें वर्ष के बारहवें अंक का समय जुलाई १८९४ ई० लिखा है और इसी को मिश्र जी के जीवन काल का अन्तिम अंक माना है।[3] पर गणना करने पर यह

---

१ डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ-२७
२ 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०)-पृष्ठ २१६
३ 'प्रतापनारायण-ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०)-पृष्ठ ७०६

गरज से नहीं निकाला। लै द बराबर हो जाय यही गनीमत है।'[1] ब्राह्मण' का जन्म लोक-कल्याण के लिए हुआ था। वह अपने जन्म की सफलता इसी में समझता था—

मारत हित भगवान हित सब जग के सुख सोय।
प्रिय हिन्दू एवा कर जन्म सुफल तव होय॥'[2]
\+ \+ \+
'लोक वेद के सब झगड़े बस दूर हों,
प्रम मद्य में सगरे हिन्दू चूर हों।
चित्त में उस प्यारे का तत्व टटोलना
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥'[3]

ब्राह्मण' मे जो कुछ निकलता था उसका कोई न कोई उद्देश्य होता था। हास्य और व्यंग्य भी जनता के हित को दृष्टि मे रखकर ही लिखे जाते थे। प्रारम्भ मे ब्राह्मण' बिल्कुल हास्य प्रधान पत्र था। पर आगे इसकी प्रवृति मे कुछ परिवर्तन हुआ। इसकी सूचना मिश्र जी इस प्रकार देते हैं—'जी बहलाने के लख हमारे पाठकों ने बहुत से पढ़ लिए। यद्यपि इनमे भी बहुत सी समयोपयोगी शिक्षा रहती है, पर बाग-जाल मे फसी हुई, ढूढ निकालने योग्य। अत: अब हमारा विचार है कि कभी-कभी ऐसी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों, तथा हास्यपूर्ण न हो के सीधी-सादी भाषा में हों जिसमें देखते और विचारते समय किसी प्रकार का अवरोध न रहे अथवा हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समझकर छोड़ न दिया करें तथा केवल पढ़ ही न डाला करें, वरन उनके लिए तन से धन से कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें।[4] मिश्र जी के ब्राह्मण' का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वह देश के सामने व्यक्ति को कोई महत्व नहीं देता था। देशद्रोहियों की तो वह खुनकर भर्त्सना करता था।[5] गलतियों को माफ करना तो उसने कभी सीखा ही नहीं था। खुशामद से वह कोसों दूर था। उसका तो यह सिद्धान्त ही था— शत्रोरपिगुणावाच्या दोषा-वाच्यागुरोरपि। उसकी दृष्टि में श्रेष्ठ वही था जो देश भक्त हो। देशभक्तों की प्रशंसा भी वह खूब जमकर करता था।[6] देशभक्त चाहे मुसलमान या नीच जाति का क्यों न हो फिर भी वह

१ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ११ (जरा सुनो तो सही)
२ १ ९ (जन्म सुफल तब होय')
३ २ ९ १० ('इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
४ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १ २ हमारी आवश्यकता प्रतापनारायण मिश्र
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ कांग्रेस की जय' प्रतापनारायण मिश्र
६ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या २ बस बस होश में आइए' प्रतापनारायण मिश्र

'ब्राह्मण' के लिए पूज्य था। 'ब्राह्मण' का प्रमुख लक्ष्य हिन्दी और राष्ट्रीयता का प्रचार करना था। हिन्दी प्रचार के लिए ही यह सरल भाषा में अपने विचारों को पाठकों के सामने रखता था। 'ब्राह्मण' के सुगम-साहित्य ने न जाने कितने नये पाठक तैयार कर दिये थे। राष्ट्रीयता के प्रचार में वह सरकार की किंचित परवाह नहीं करता था। सरकार के अनाचार पूर्ण कृत्यों की कटु-आलोचना करना वह अपना धर्म समझता था। 'ब्राह्मण' पत्र प्रतापनारायण जी के स्वभाव का ही सच्चा प्रतिरूप था। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'सम्पादक के व्यक्तित्व की छाप जैसी 'ब्राह्मण' पत्र पर थी, वैसी और किसी पर नहीं।—उनकी नस-नस में जो शरारत और विद्रोह भरा हुआ था वह उनकी एक-एक लाइन से प्रकट होता था। हास्य के साथ स्वाधीन चेतना फैलाने में यह पत्र सबसे आगे था।'[1] 'ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी की ही तरह सरल, निर्भीक, फक्कड़, विनोदप्रिय और समाज तथा देश का शुभ चिंतक था।

'ब्राह्मण' पत्र कब-तक निकलता रहा यह तो निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पर इतना अवश्य है कि यह पत्र कुछ दिन तक मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी बाबू रामदीन सिंह के द्वारा निकाला गया था। इसकी सूचना बाबू राधा-कृष्णदास इस प्रकार देते हैं—"इसके गुणों से मोहित होकर बांकीपुर निवासी बाबू रामदीन सिंह ने इसे अपने खड्गविलास यंत्रालय में उठा लिया जहाँ से यह अब तक प्रकाशित होता है। खेद की बात है कि इस ग्रन्थ के यंत्रालय में रहते ही हिन्दी के अमूल्य रत्न पंडित प्रतापनारायण जी अकालकालग्रसित हुए परन्तु बाबू रामदीन सिंह जी ने इस पत्र के चलाने की प्रतिज्ञा की है। इसके लिये उन्हें अनेक धन्यवाद हैं।"[2] इस कथन से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि 'ब्राह्मण' मिश्र जी के जीवनोपरान्त भी निकलता रहा। मिश्र जी का देहान्त ६ जुलाई १८९४ ई० का हुआ था। अतः मिश्र जी के सम्पादकत्व में 'ब्राह्मण' इसी तिथि तक निकला। मुझे 'ब्राह्मण' की नवें वर्ष के बारहवें अंक तक की प्रतियाँ देखने को मिली हैं। इन प्रतियों पर खण्ड २ संख्या १२ (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के बाद) से हरिश्चन्द्र सम्वत् पड़ा हुआ है इसलिए गणना करने पर नवें वर्ष के बारहवें अंक का समय जुलाई, १८९३ ई० पड़ता है। इस गणना के अनुसार अभी मिश्र जी के जीवन काल में ही प्रकाशित 'ब्राह्मण' के एक वर्ष के बारह अंक और होने चाहिए। विजयशंकर मल्ल ने नवें वर्ष के बारहवें अंक का समय जुलाई १८९४ ई० लिखा है और इसी को मिश्र जी के जीवन काल का अन्तिम अंक माना है।[3] पर गणना करने पर यह

१ डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ-२७
२ 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०)-पृष्ठ २१६
३ प्रतापनारायण-ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०)-पृष्ठ ७०६

तिथि नितान्त भ्रामक सिद्ध हुई है। मैंने सम्पूर्ण अकों की तिथियों को ईसवी सन् म परिवर्तित किया है और उन अको म प्रकाशित अनेक ऐतिहासिक घटनाओ को इति हास से मिलाया है इसलिए मेरी गणना में त्रुटि के लिए कही स्थान नही रह जाता। इसके अतिरिक्त मुझे मिश्र जी के गौरक्षा,[१] स्वतंत्र,[२] बन्दरों की सभा[३] जानें न बूझें कठौता मके जूझें[४] उसी की जूती उसी का सिर,[५] हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और[६] गुरु गुड ही रहा चेला शक्कर हो गया[७] मां,[८] नाक,[९] धारिण,[१०] और,[११] कवि और कविता,[१२] शीर्षक निबन्धों के नाम मिले हैं जो नवें वर्ष तक के किसी अंक में प्रकाशित नही हैं। उक्त निबन्धों के प्रथम दो निबन्ध निबन्ध-नवनीत म संकलित भी है। हो सकता है ये निबन्ध ब्राह्मण' के दसवें वर्ष के ही अकों मे प्रकाशित हुए हों। पर आज 'ब्राह्मण का दसवां वर्ष अनुपलब्ध है। मिश्र जी ने ब्राह्मण के अंकों मे वर्ष के स्थान पर खण्ड' शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त जो ९ वर्ष के अंक मिले हैं वे क्रमबद्ध रूप से खण्ड १ संख्या १ से खण्ड ९ संख्या १२ तक के हैं। वैसे 'ब्राह्मण के जन्म (मार्च १८८३ ई०) और मिश्र जी की मृत्यु (जुलाई १८९४ ई०) के बीच का समय ११ वर्ष ५ महीने होता है पर बीच म मार्च १८८६ ई० से जुलाई १८८७ ई० (१ वर्ष ४ महीने) तक 'ब्राह्मण' बन्द रहा। इस बन्द होने की अवधि की भी गणना अभी तक विद्वान—प्रतियों पर हरिश्चन्द्र सम्वत् पड़ा होने के कारण—निश्चित रूप से नही कर सके। जिन्होंने

---

१ निबन्ध-नवनीत' पहला भाग (१९१९ ई०) निबन्ध संख्या २१
२ —वही— —वही— १८
३ —वही— - पृष्ठ ५
४ —वही— पृष्ठ ५
५ डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट (१९५८ ई०) पृष्ठ २१४
६ डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा 'हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट (१९५८ ई०)-पृष्ठ २१४
७ —वही— —वही— , २१४
८ डॉ० गुलाबराय 'काव्य के रूप' (१९५८ ई०)-पृष्ठ २२१
९ प्रो० जयनाथ 'नलिन' 'हिन्दी निबन्धकार' (१९५४ ई०)-पृष्ठ ८८
१० —वही— —वही— , ९०
११ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १३७
१२ डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त' द्वितीय भाग (१०५९ ई०)-पृ० ३२४

के खण्ड ३ सख्या १२ पर फरवरी, हरिश्चन्द्र सम्वत् २ (फरवरी १८८६ ई०) और अनुमान से कुछ किया भी है, वह निराभ्रम पूर्ण है। कोई लिखता है 'ब्राह्मण' १८८७ ई० म बन्द रहा तो कोई *लिखता है बीच में चार माह बन्द रहा।*[१] *'ब्राह्मण'* खण्ड ४ सख्या १ पर अगस्त हरिश्चन्द्र सम्वत् ३ (अगस्त १८८७ ई०) पड़ा है। इन दोनो संख्याओ के बीच का समय गणना करने पर एक वर्ष पाँच महीने निकलता है। इस अवधि में 'ब्राह्मण' के बन्द होने का कारण मिश्र जी की बीमारी और ग्राहकों से चन्दा न मिलना था। खण्ड ३, सख्या १२ का अक भी तीन माह देर से निकला था। मिश्र जी इस अक म लिखते हैं— हम तीन मास से ऐसे रोगग्रस्त हो रहे हैं कि जिसका वर्णन नही, पाठक यदि देखते तो त्राहि त्राहि करते। नित्य के मिलने वाले मित्रों से काइ पूछे, जिन्हें किसी-किसी दिन हमारी दशा पर रोना आता था। फिर आप जानिये अकेला मनुष्य पत्र सम्पादन करता कि रोग जातना भोगता। जिन समर्थकों को इस पत्र म मजा आता है जिन्होंने बहुधा ब्राह्मण के बचन सराहे हैं वे कुछ न कुछ कर सकें तो बेहतर है। और जिनके नीचे अभी तक रु० बाकी है वे भी यदि निरे कगाल न हो गए हों तो इस पत्र के पाते ही जी कड़ा करके दे डालें नहीं तो हम कुछ दिन के लिए असमर्थ हो जाएँगे कहा तक रिण का भार उठावें। यदि हमारे ग्राहक गण ध्यान देंगे तो हम तीन मास की कसर बहुत शीघ्र निकाल डालगे।'[२] इसी अक के बाद ब्राह्मण' बन्द हो गया था। आगे मिश्र जी बन्द होने की सूचना इस प्रकार देते हैं— जब हमने बीमारी के सबब 'ब्राह्मण' बन्द कर दिया था तब उलहने पर उलहने देते थे, तकाजे पर तकाजा करते थे कि निकालो हमतो तुम्हारे साथ हैं तुम घबराते क्यों हो? अस्तु हमने निकाला, पर उन महापुरुषों से सहायता के नाते एक पैसा एक लेख, एक नये ग्राहक का नाम भी मिला हो तो हम गुनहगार।'[३] यद्यपि मिश्र जी को ब्राह्मण के प्रकाशन *में अनेक कष्ट उठाने पड़े पर वे बड़ी कर्मठता के साथ आजीवन उसके प्रकाशन में* लगे रहे और यह पत्र उनके जीवन काल म दस वर्ष तक निकलता रहा।

मिश्र जी के पत्रकार-जीवन की कठिनाइयाँ

मिश्र जी के काल म पत्र निकालना बड़े जीवट का काम था। जो पत्रकार तन, मन धन-सभी कुछ अपण करने को तत्पर होता था वही पत्रकारिता म सफल हो सकता था। मिश्र जी लिखते हैं—"यह तो सभी जानते है कि हिन्दी पत्र कुछ कमाई के लिए नही होत खर्च भर निकलना भी गनीमत है।'[४] फिर मिश्र जी ने

---

१ सरस्वती माघ १९०९ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र महावीरप्रसाद द्विवेदी
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या १२ ('सूचना')
३ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ३ ४ (सब की देख ली')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या १२ ('सूचना')

अपना पत्र ऐसे स्थान से निकाला था जहाँ हिन्दी-पाठकों की निहायत कमी थी। कानपुर व्यावसायिक शहर होने के कारण मुड़िया भाषा की ओर विशेष झुका हुआ था, हिन्दी से प्रेम उसे बहुत ही कम था। मिश्र जी आगे स्वतः लिखते हैं—'कानपुर तो वह नगर है जहाँ बड़े-बड़े लोग बड़ों-बड़ों की सहायता के आदन भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छः महीने भी नहीं चला सके। और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृतकार्यत्व लाभ कर सकेगा। क्योंकि यहाँ के हिन्दू समुदाय में अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रक्खा ही नहीं फिर हम क्योंकर मान लें कि यहाँ हिन्दी और उसके भक्त-जन कभी सहारा पावेंगे। ऐसे स्थान पर जन्म ले के और खुशामदी तथा हिकमती न बन के 'ब्राह्मण' देवता इतने दिन तक बने रहे, सो भी एक स्वेच्छाचारी के द्वारा संचालित होके इस प्रेम देव की आश्चर्य लीला के सिवा क्या कहा जा सकता है?'[1] कानपुर में 'ब्राह्मण' से पूर्व सन् १८७१ ई० में एक 'हिन्दू प्रकाश' नाम का पत्र निकला भी था पर थोड़े ही दिन में वह कालकवलित हो गया।[2] कानपुर का वातावरण हिन्दी पत्र के अनुकूल नहीं था। मिश्र जी ही एक ऐसे थे जो कानपुर से 'ब्राह्मण' को किसी प्रकार निकालते रहे। 'ब्राह्मण' के बन्द होने के बाद आज तक कानपुर से कोई हिन्दी का उत्कृष्ट पत्र नहीं निकल सका। मिश्र जी के उक्त कथन को पढ़कर आज उनकी दूरदर्शिता पर आश्चर्य होता है।

अर्थाभाव।

मिश्र जी की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं थी।[3] मकानों के किराये से किसी प्रकार जीवन निर्वाह होता था। इसलिए 'ब्राह्मण' का जीवन जजमानों (ग्राहकों) की दक्षिणा (चन्दा) पर ही निर्भर था। लेकिन दक्षिणा इतनी कम मिलती थी कि 'ब्राह्मण' का खर्च न चल पाता था। मिश्र जी को ही किसी प्रकार अपना पेट काटकर उसका खर्च पूरा करना पड़ता था। मिश्र जी लिखते हैं—"हमारे 'ब्राह्मण' का हाल यह है कि हृदय का रक्त सुखा-सुखा के अब तक चलाये जाते हैं। वर्ष भर में डेढ़ सौ रुपया छपवाई और डाक महसूल को चाहिए और आमदनी इस वर्ष आठ मास में केवल २०) रु० की हुई है। चार वर्ष में दो सौ का कर्जा हुआ है। उसे कुछ भुगता चुके हैं, १५०) भुगतना बाकी है। महीनों से तगादा करते हैं ग्राहक सुनते ही नहीं।[4] मिश्र जी के इस कथन से उनकी आर्थिक-स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनकी स्थिति इस योग्य भी नहीं थी कि वे १५०) रु० आसानी से दे सकते।

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण'—प्रतापनारायण मिश्र।
२ अम्बिका प्रसाद वाजपेयी 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १४०
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ 'सूचना'—प्रतापनारायण मिश्र।
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ९ ('मरे का मारैं साह मदार')।

ग्राहकों की कमी

'ब्राह्मण' के ग्राहक बहुत-कम थे। उसके जीवन काल में कभी सौ ग्राहक भी नहीं रहे। जिनमें चन्दा देने वाले ग्राहक तो बहुत ही थोड़े थे। मिश्र जी 'ब्राह्मण' का विज्ञापन देते हुए लिखते हैं— अब इस पत्र के ग्राहक इतने थोड़े हैं कि यदि सब से मूल्य प्राप्त भी हो जाय तो भी इस वर्ष ५०) रु० से कम घाटा पड़ना सम्भव नहीं है। यद्यपि घाटा हर साल पड़ता है पर कभी बनावटी दोस्तों (साथियों) के सहारे भुगत लिया कभी यह समझ के टाल डाला कि आगामी वर्ष प्रबन्ध ठीक रक्खेंगे और ग्राहक बढ़ाने का यत्न करते रहेंगे तो सब घटी पूरी हो जायगी। और इसी विचार पर गत द्व वर्ष में पाँच सौ से ऊपर रुपया केवल अपनी गाँठ से दिया भी, पर अब मेहनत करके रुपया लगा के भी अपनी सरस्वती की विडम्बना असह्य है इससे इरादा तो इसी मास में बन्द कर देने का था पर क्रूं क्या, पाँच-सात सहृदयों का' इस पत्र का एकाएकी अन्त हो जाना अत्यन्त कष्टदायक होगा इसमे कुछ हो इस साल तो जैसे-तैसे चलाते हैं पर जहाँ यह वर्ष समाप्त हुआ वहीं 'ब्राह्मण' के जीवन की समाप्ति में संदेह न समझिए।[1] आगे तो मिश्र जी और भी क्षोभ के साथ लिखते हैं— 'जिन्हें 'ब्राह्मण' का जीवन न रुचता हो, द पाँच महीने और राम राम कर काट दें, फिर देख लेंगे कि हर महीने ऊटपटांग लख और हर साल सालाह आने का तकाजा समाप्त हो गया। क्योंकि जब हम सात महीने से देख रहे हैं कि सहायता के नाते बाजे-बाजे बड़े-बड़े लक्षपतियों से असली दाम भी नहीं मिलते, जो कुछ सहारा देते हैं वह केवल मुख से। जिनसे कुछ आसरा करो वे और कुछ से क रहन हैं। जो सचमुच सहायक हैं वे गिनती में दस भी नहीं। इसीसे कई एक उत्तमोत्तम पत्र बन्द हो गये कई एक आज हैं तो कल नहीं, कल हैं तो परसों नहीं। कई एक ज्यों-त्यों चले जाते हैं तो केवल चलाने वाले के साथ। पर अपने राम में अब सामर्थ्य नहीं रही। बरसों से सीसत झलते हिम्मत हार गयी।'[2]

चन्दा वसूली में कठिनाई

ग्राहकों की कमी के साथ चन्दा वसूली में भी बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। समय से चन्दा देना तो ग्राहक जानते ही न थे। बहुत से ग्राहक तो चन्दा हजम ही कर जाते थे। 'ब्राह्मण' के प्रायः सभी वर्षों में चन्दे का तकाजा रहता था। कुछ ग्राहक तो ऐसे भी थे जो आठ आठ, दस-दस महीने 'ब्राह्मण' मँगाते थे और फिर सभी प्रतियाँ फेर देते थे।[3] मिश्र जी ने जमामार ग्राहकों की एक पुस्तिका भी

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ६ ('विज्ञापन')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ७ ('सूचना')
'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १ 'वर्षारम्भ' —प्रतापनारायण मिश्र

'ब्रह्मघाती नाम से तयार की थी।[१] इस प्रकाशित कर व लोगों को सतर्क करना चाहते थे पर किन्हीं कारणों से वह इसे निकलवा नहीं सके।[२] इस पुस्तिका के कुछ नाम आगे 'ब्राह्मण' में क्रमश: प्रकाशित हुए थे।[३] मिश्र जी के चन्दा मांगने का ढंग भी बड़ा विशिष्ट था। कभी-कभी वे कविता में—बड़े हास्यपूर्ण ढंग से—चन्दा देने का निवेदन करते थे—

चार महीने हो चुके ब्राह्मण की सुधि लेव।
गंगा माई जै करें हमैं दक्षिणा देव॥
जो बिन मांगे दीजिए दुहुँ दिसि होय अनन्द।
तुम निश्चित हो हम करें मागन की सौगन्द॥
सदुपदेश नित ही करै मांग भोजन मात्र।
देसहु हम सम दूसरा कहाँ दान कर पात्र॥
रूप राज की डगर पर जितने होंय निशान।
तितै वर्ष सुखसुजसजुत जियत रहो जजमान॥[४]

लेकिन इतने पर भी जब ग्राहक न सुनते तो वे खीझ उठते थे और खूब जली कटी सुनाते थे— कपड़ा से भलमानुष जान पड़त हो, बोली बानी से रसिक जचते हो हम अंतरजामी थोड़े ही हैं कि तुम्हारा आंतरिक देवालियापन जान लें। जहाँ आठ दस महीने हो गए पत्र लौटाल दिया। लिख दिया— लेना मंजूर नहीं है। क्या यह ब्राह्मण क्षत्रियों का धर्म है? नहीं प्रच्छन्न चोरों का जिसका धर्म एक रुपये पर डिग गया। अगरेजी राज्य न हो तो ऐसे ही लोग डाका मारें। ऐसी ही बुद्धि वाले तो पराए लड़कों का गला घोंट के गहना उतार लेते हैं। भला ऐसों के लिए हमारे पास क्या है सिवा बीच वाले शब्द (अर्थात आशीरवाद) के कि सुखी रहो जजमान नैन ये दोनों फूटें जिसमें कोई समाचार पत्र देखने को जी न चाहे न हमारे सहयोगियों की हानि हो। और राह चलत गिर पड़ो दांत बत्तीसों टूटें जिसमें तकाजा करने पर खीस काढ़ के सुध नहीं रहती' न कहो।[५] कभी-कभी ब्राह्मण बन्द कर देने की धमकी भी देते थे।[६] ग्राहकों को उसके गुण भी समझाते थे।— हम अपने मुंह मियाँ मिठ्ठू नहीं बनते पर इतना कहना अनुचित भी नहीं समझते कि यह 'ब्राह्मण' गुण सम्पन्न नहीं है तो निरागुण भी नहीं है। पढ़ने वाले

---

१ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १२ 'सूचना' प्रतापनारायण मिश्र
२ ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ 'ब्रह्मघाती' प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १० सूचना' प्रतापनारायण मिश्र
४ ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ५ (विज्ञापन)
५ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १ (धर्मारम्भे मंगलाचरणाम्)
६ ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ६ (विज्ञापन) प्रतापनारायण मिश्र

आप इसाफ कर सकते हैं। कुछ न सही तो भी इस जिने की इस पत्र से कुछ शोभा ही है, कलक नहा। साल पूरा होने आया, कुछ न कुछ इसके सबब से लोगों का लाभ ही हुआ होगा, हानि किसी तरह की नहीं। इस पर भी जो इसके मूल्य पर ध्यान दिया जाय तो एक रुपया साल के हिसाब से महीने में सिर्फ पाच पैसे और एक पाई होती है। गवई गाँव के लोग गंगापुत्र को कम से कम पाँच टका की बछिया पुण्य करते हैं क्या हिंदुस्तानी रईस लोग इस विद्यानुरागी ब्राह्मण को महीने भर में बछिया के भी आधे दाम नहीं दे सकते? रईसों की कौन कहे इसका दाम तो लड़के भी दे सकते हैं।[1] इसी तरह मिश्र जी अनेक प्रकार से ग्राहकों को समझाते, पुचकारते, कर्तव्य का ध्यान दिलाते रिसाते—न सुनने पर डाटते फटकारते, धमकाते पर वज्रघाती अमामार ग्राहकों पर इसका कोई प्रभाव न पड़ता था। ग्राहक मिश्र जी के लिए सदैव एक समस्या ही बने रहते थे। आगे तो मिश्र जी वल्यूपेएबिल पोस्ट तक से 'ब्राह्मण' भेजने लगे थे— 'ऋण से अधिक डरता के वैल्यूपेएबिल डाक में 'ब्राह्मण' भेजा तो मक्तूब अलह इनकार करता है। खैर! यही क्या है, किसी का रुपया गया, किसी की गाली गयी, एक दिन ब्रह्मघाती की फहरिस्त—पर यह कहने का हम साहस बना बनाया है कि सबकी दस लो।[2]

प्रेस का सकट

ब्राह्मण निर्धन पत्रकार का पत्र था। उसके पास अपना प्रेस नहीं था। मुद्रण के लिए उसे दूसरे प्रेसों की शरण में जाना पड़ता था। ग्राहकों की कमी के कारण मिश्र जी मुद्रकों के पैसे भी समय से नहीं दे पाते थे।[3] इसलिए मुद्रक भी 'ब्राह्मण' के छापने में अधिक रुचि न लेते थे। अधिक पैसा उधार हो जाने पर तो वे छापने से इनकार भी कर देते थे।[4] यही कारण है कि 'ब्राह्मण' को अपने जीवन में कई प्रेसों का चक्कर काटना पड़ा था। इसका पहला अक नामी प्रेस, कानपुर में छपा था। इसके बाद क्रमश हरिप्रकाश यत्रालय बनारस (खण्ड १, संख्या २ से खण्ड १ संख्या ९ तक) धर्मचिंतक प्रेस शाहजहाँपुर (खण्ड १ संख्या १० से खण्ड २ संख्या ५ तक), धर्मचिंतक प्रेस कानपुर (खण्ड २ संख्या ६ से खण्ड ३ संख्या १ तक मर्केन्टाइल प्रेस कानपुर (खण्ड ३ संख्या २ केवल) ब्राह्मण यत्रालय लखनऊ (खण्ड ३, संख्या ३ से खण्ड ३ संख्या १० तक) भारतभूषण यत्रालय, शाहजहाँपुर (खण्ड ३, संख्या ११ से खण्ड ३, संख्या १२ तक) धर्मचिंतक

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ (जरा सुनो तो सही)

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ ४ सबकी बेस लो'—प्रतापनारायण मिश्र

३ ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ 'ब्रह्मघाती'—प्रतापनारायण मिश्र

४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ आप बीती—प्रतापनारायण मिश्र

प्रेस कानपुर (खण्ड ४, सख्या १ से खण्ड ६, सख्या २ तक, दूसरी बार), हनुमत प्रस कालाकाकर (खण्ड ६, सख्या ३ स खण्ड ६, सख्या ११ तक) और खगविलास प्रस बाकीपुर (खण्ड ६, सख्या १२ से अन्त तक) म छपा। प्रस की ही असुविधा क कारण ब्राह्मण समय स नही निकल पाता था। कभी-कभी पृष्ठ बढ़ाकर दो अक एक ही म निकाल दिये जाते थ। मिश्र जी लिखते हैं— इधर छापने वाला की घिस-घिस जुदा ही हैरान करती है। पहिल तो लिखते हैं—हम तुम्हार मित्र हैं हमारे प्रस को सहायता दो पीछ चिट्ठी पर चिट्ठी भेजो जवाब नदारत। इन्ही कारणो से विलम्ब होता है।[1] ग्राहकों और प्रस की कमी ब्राह्मण की वृद्धि म बडी बाधक थी। मिश्र जी इस पत्र को पाक्षिक करना चाहते थ[2] पर पाक्षिक होना तो दूर रहा महीने म ही निकालना मुश्किल हो गया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण ब्राह्मण' बहुत ही मामूली कागज पर छपता था। खगविलास प्रस (बाकीपुर) जान से पूर्व तो ब्राह्मण की स्थिति बडी ही खराब थी। खण्ड सात क समाप्त होने पर तो ब्राह्मण' ने अन्तिम विदा भी ले ली थी— सात वष का तमाशा देखते-देखते जी ऊब उठा है। यद्यपि उन लोगों से विदा होते मोह लगता है जिनके साथ इतने (अथवा कुछ कम) दिना सम्बन्ध रहा है और कभी कोई उलझने वाली बात नही आने पाई। पर क्या कीजिए समय का प्रभाव रोकना किसी का साध्य नही है। अत छाती पर पत्थर रख के विदा होते है।[3] लेकिन इस सूचना के बाद ही खगविलास प्रस क मालिक बाबू रामदीन सिंह ने ब्राह्मण के गुणो से प्रभावित होकर इसके मुद्रण और प्रकाशन का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया और खण्ड ८ सख्या १ स यह उनके प्रबन्ध स निकलन लगा। वैसे ब्राह्मण' की सहायता वे खण्ड ६ और सख्या १२ से ही कर रहे थे और खगविलास प्रेस से यह निकल भी रहा था।[4] पर अब पूरी तरह ब्राह्मण ठाकुर साहब पर ही आधारित हो गया और मिश्र जी अब उसकी मुद्रण और प्रकाशन सम्बन्धी परेशानियों स मुक्त हो गये। मिश्र जी लिखते है— अब हम पूण रूप से निर्द्वन्द हो गये अत अपनी सामर्थ्य भर इस पुनर्जीवित 'ब्राह्मण को मढक। प्रसिद्ध है कि मढक गर्मिया म मर जाते हैं और वर्षा म फिर जी उठते हैं) की नाई टर्र-टर्र करने वाला न बनावेंगे (यद्यपि एडीटर शब्द की यह भी दुम है) किन्तु मृत्युञ्जय मत्र की भाँति देश के शारीरिक मानसिक और सामाजिक रोग दोषादि को दूर करने वाला सिद्ध कर दिखावेंगे। पर

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या १ (आप बीती)

२ ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ११ जरा सुनो तो सही प्रतापनारायण मिश्र

३ 'ब्राह्मण खण्ड ७ सख्या १२ अन्तिम सम्भाषण' प्रतापनारायण मिश्र

४ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण' प्रतापनारायण मिश्र

कब ? जब आप लोग भी ध्यान दे के पढ़ेंगे और इसके प्रचार का पूर्ण उद्योग करते रहेंगे तथा समय-समय पर सुन्दर लेख भी भेजते रहेंगे। पर खबरदार मूल्य एवं साहाय्य इत्यादि का रुपया उपया कानपुर के पते पर न भेजिएगा, हम इसे न छुवेंगे, अथवा छूत ही उड़ा देंगे। इसलिए नए, पुराने खण्ड तथा हमारी पुस्तकों की माँग और दाम मनेजर खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर के पास भेजा कीजिए और अपने तथा हमारे लिए कोई बात पूछना भी हो तो खैर कानपुर ही सही। बस[1]।" मिश्र जी, राम दीनसिंह की इस सहायता से उनके बड़े प्रशंसक हो गये। वे उनकी कल्याण की ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं।

'याते माँगहिं जोरि कर धरि उर आन महान।
हिन्दी हिन्दू हिन्द कर करहु नाथ कल्यान॥
हैं इनके सचि हितू श्री महाराज कुमार।
रामदीन हरि विसवर, धरम धार समुदार॥
जासु कृपा सहित भयो मृत्युंजय यह पत्र।
राखहु निज कर कंज कर प्रभुवर[1] तेहि सिर छत्र[2]॥

रामदीन सिंह के संरक्षण में जाने के बाद 'ब्राह्मण' समय से निकलने लगा। खण्ड ९ के बाद तो उसका आकार भी पाँच फार्म हो गया और मूल्य भी १) रु० से बढ़ाकर १।=) कर दिया गया। इसकी सूचना 'ब्राह्मण' में इस प्रकार निकली थी— यदि आप सचमुच 'ब्राह्मण' के हितैषी हैं तो कृपा पूर्वक इसका मूल्य जितना आपके यहाँ बाकी है भेज दीजिए और आगे के लिए सदा है वा अब आप एक रुपया छः आना भेजिए क्योंकि अब इसका आकार प्रतिमास पाँच फार्म रहेगा और डाक व्यय प्रतिमास आठ आना लगेगा। यदि आप पहले का मूल्य न भेजेंगे तो कभी आपके पास यह पत्र न जायगा सचेत होइए और मुझे आशा है कि आप नादहंद ग्राहकों में नाम भी न लिखाइएगा। इसके सिवा कोई पृथक पत्र भी अब आपके पास न जायगा मूल्य मेरे पास १५ अगस्त तक आ जाना चाहिए[3]।" खण्ड ८ (अगस्त १८९१ ई०) से मिश्र जी को केवल लिखने की ही चिन्ता रह गयी थी, शेष 'ब्राह्मण' के सब कार्य खड्गविलास प्रेस से ही होते थे। पर दुख है कि मिश्र जी इस सुअवसर का अधिक दिन उपयोग न कर सके और तीन वर्ष बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। अन्यथा हिन्दी-साहित्य और समाज का बहुत-बड़ा

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ (नव सम्भाषण)
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ (मंगल पाठ)
३ ब्राह्मण खण्ड ९, संख्या १२, 'पहले इसे पढ़ लीजिऐ'-मैनेजर 'खड्गविलास' प्रेस बाँकीपुर

कल्याण हुआ होता। मिश्र जी ने प्रारम्भ में सात वर्ष जो ब्राह्मण के प्रकाशन में कष्ट उठाये वे उनकी अटूट कर्मठता और प्रखरसाधना के द्योतक हैं। ब्राह्मण की वास्तविक सप्राणता इन्हीं वर्षों में दिखाई पड़ती है। मिश्र जी को ब्राह्मण से प्रति पुत्र से भी अधिक मोह था। वे ब्राह्मण के बन्द होने की सूचना देते हुए लिखते हैं 'ब्राह्मण' को बन्द होने में परमेश्वर साक्षी है कि हम पुत्र शोक से कम शोक न होगा पर हत्यारे नादिहन्दों ने हमें लाचार कर दिया है[२]।

निष्पक्ष और यथार्थ विचार पत्र की बिक्री में बाधक

मिश्र जी देश भक्त पत्र कार थे। वे देशोन्नति में बाधक विचारों और कार्यों की कटु आलोचना करते थे[३]। विदेशी सरकार की भर्त्सना करने का तो उन्होंने व्रत ही ले लिया था।[३] इसलिए सरकार से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना थी। समाज में फैले हुए अन्धविश्वासों मनमानी तरो और कुरीतियों के वे पक्के विरोधी थे[४]। राजाओं, जमींदारों और धार्मिक सस्थाओं का भंडा फोड़ करना तो उनके लिए एक सहज कार्य था। अतः ऐसे क्रान्तिकारी और स्पष्टवादी पत्र को पराधीन भारत में प्रश्रय मिलना बहुत दूर की बात थी। यही कारण था कि मिश्र जी को उस समय दस साझीदार मिलना भी दूभर होगया—"यदि एक-एक रुपया महीना वाले दस साझीदार अथवा सच्चे सौ ग्राहक नियत कर देने का कोई जिम्मा ले तो फिर इसे चलाये जाए। पर न इसका आसरा है न इससे खुशामद हो सकती है इससे अब तक फिर हमारा हो जी फिर से न फुलफुलाय तब तक इसे बन्द ही समझिये[५]। मिश्र जी के युग में खुशामदी ही सुखी थे। भारतीयों में गुलामी का रंग इतना चढ़ा हुआ था कि देशहितैषी पत्रों को देखना भी वे पाप समझते थे। मिश्र जी अनेक कष्ट और हानि सहते हुए भी पत्र चलाने को तत्पर थे पर पाठकों की कमी ने ही उन्हें पत्र बन्द करने को बाध्य कर दिया था। वे लिखते हैं– अपने इष्ट मित्रों में दस-दस पाँच पाँच कापी बिकवा देने वाले दस-पन्द्रह सज्जन भी होते तो हम छः वर्ष साढ़े पाँच सौ की हानि क्यों सहनी पड़ती जिसके लिए साल भर तक कालाकांकर में स्वभाव विरुद्ध बनवास करना पड़ा। यह हानि और कष्ट हम बड़ी प्रसन्नता से अंगीकार किये रहते यदि देखते कि हमारे परिश्रम को देखने वाले और हमारे विचारों पर ध्यान देने वाले दस बीस सद्व्यक्ति भी

---

२ 'ब्राह्मण खण्ड ४, सख्या ११ ('हमारे उत्साह-वर्द्धक')

३ 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ६ ७ तथा खण्ड २ सख्या २ ५ ९ १० 'देशोन्नति प्रतापनारायण मिश्र

४ 'ब्राह्मण' खण्ड १ हो भी जो सी है—प्रतापनारायण मिश्र

५ 'ब्राह्मण' खण्ड १० मुक्ति के मार्ग—प्रतापनारायण मिश्र

है[1]।' ब्राह्मण के जीवन म तो 'खरी बात' शहिदुल्ला कह सब के जीते उनरे रहें ही चरितार्थ हो रहा था।

रुग्णावस्था

मिश्र जी प्राय बीमार हो बने रहते थे। कभी-कभी तो उनमें लेख लिखन की सामर्थ्य भी न रह जाती और ब्राह्मण' बिना उनके लेख के ही प्रकाशित हो जाता था[2]। बीच म बीमारी के ही कारण उन्हें 'ब्राह्मण बन्द भी करना पड़ा था।[3] 'ब्राह्मण के समय से न निकल पाने का एक प्रमुख कारण बीमारी बहुत-बड़ी अवरोध शक्ति थी।

सहायकों की कमी

'ब्राह्मण के सहायक बहुत कम थे। ब्राह्मण का प्रकाशन मिश्र जी ने पंडित बद्रीदीन शुक्ल लाला छोटेलाल गयाप्रसाद और बाबू वनीधर के प्रोत्साहन से प्रारम्भ किया था।[4] पर इन लोगो से 'ब्राह्मण' को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिली। कुछ दिन बाद रामसिंह देव शर्मा जगन्नाथ भारतीय और मगलदेव मन्यासी ने ब्राह्मण का कुछ आर्थिक सहायता देनी प्रारम्भ की परन्तु आगे मिश्र जी ने इन लोगो को अधिक कष्ट देना अच्छा नहीं समझा और खण्ड छान के बाद ब्राह्मण' को बन्द कर दन का निश्चय किया।[5] ऐसी स्थिति म कुछ लोगो ने मिश्र जी से कहा कि 'ब्राह्मण' हमारे पत्र म मिला दीजिए। लेकिन स्वाभिमानी मिश्र जी ने 'ब्राह्मण को दूसरे पत्र म मिलाना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। वे लिखते हैं—'कई लोगो ने यह लिखा है कि 'ब्राह्मण' हमारे पत्र म मिला दीजिए और सम्पादक का भार ले लीजिए तो हानि-लाभ हम भुगत लेंगे, पर हम दूसरे पत्र म मिला देना नहीं पसद करते। सात वर्ष का पत्र नये पत्र का आश्रित बनने से बस बसना उत्तम समझेगा। हम लिखने का साथ पुजाने को द्विज पत्रिका हिन्दी प्रदीप भारतमित्र भगवान ने दे रक्खे हैं फिर दूसरा म 'ब्राह्मण' क्या मिलावें ?[6] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के कर्मचारियों की सख्या तो और भी कम थी। केवल सम्पादक और मैनेजर दो ही उसके कर्मचारी थे। जिसमे ब्राह्मण' का मैनेजर होना तो कोई पसन्द ही नहीं करता था क्योंकि उसमे लाभ की तो कोई आशा ही नहीं थी और जो मैनेजर

---

१ ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या १२ 'विज्ञापन' प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या १२ (अन्तिम सम्भाषण)

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ४ 'जरा पढ़ लीजिऐ' प्रतापनारायण मिश्र

४ ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या ३ ४ सब को देख ली प्रतापनारायण मिश्र

५ ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या १ 'वर्षारम्भ' प्रतापनारायण मिश्र

६ 'ब्राह्मण खण्ड ७ सख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण' प्रतापनारायण मिश्र

होना स्वीकार भी करते थे वे कोरी बेगार करते थे। मिश्र जी लिखते हैं— यह झंझट सौंपने के लिए यदि किसी को अपना समझ करके मैनेजर ठहराते हैं तो या तो वह साहब आमदनी ही हजम कर बैठते हैं या बेगार का काम समझ के हमसे भी अधिक मस्त बन बैठते हैं जिसमें न किसी की चिट्ठी पत्री का जवाब है न कोई हिसाब है। इस रीति से हमें जब देना पड़ा है, गांठ ही से देना पड़ा है जिसके लिए समय पर रुपया पास न होने के कारण यन्त्राध्यक्षों से झूठ वादे और चित्त की झुंझलाहट रोज के बाबू साहब, बाबू साहब करना एक मामूली बात है। एक भले मानस हमारे हानि-लाभ के साक्षी बने थे पर जब कुछ दिन मैनेजमेंट अपने हाथ में रख के समझ गये कि इसमें हानि ही हानि है तो झट से तोते की तरह आंखें बदल बैठे।[1] मैनेजरों की इस बेगार के ही कारण कुछ दिनों मिश्र जी ने मैनेजर का काम भी अपने हाथों में ही ले लिया था। अवैतनिक होने के कारण कोई मैनेजर 'ब्राह्मण' में अधिक दिन नहीं ठहरता था। 'ब्राह्मण' के सबसे पहले मैनेजर गोपीनाथ खन्ना थे जो खण्ड १ संख्या १ से ८ तक मैनेजर रहे। इसके बाद क्रमशः मनोहरलाल मिश्र (खण्ड १, संख्या ९ से खण्ड २, संख्या २ तक) बद्रीदीन शुक्ल (खण्ड ४ संख्या १ से खण्ड ५, संख्या २ तक) व्रजभूषणलाल गुप्त (खण्ड ५ संख्या ३ से खण्ड ६ संख्या १२ तक) 'ब्राह्मण' के मैनेजर रहे। कर्मचारियों की कमी के कारण अधिकांश कार्य मिश्र जी को ही करने पड़ते थे। लिखने से लेकर प्रूफ देखने तक के सम्पूर्ण कार्य मिश्र जी पर ही निर्भर थे। काम की अधिकता के कारण 'ब्राह्मण' में अनेक प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी रह जाती थीं। यहाँ तक कि खण्डों और संख्याओं के नम्बर तक अशुद्ध छप जाते थे।[2] 'ब्राह्मण' की पूरी जिम्मेवारी मिश्र जी पर ही थी इसलिए बीमारी हालत में भी उन्हें विश्राम न मिल पाता था। जब-तक वे पूरी तरह काम्याधीन नहीं हो जाते थे तब-तक बराबर 'ब्राह्मण' के प्रकाशन में लगे रहते थे।

इस प्रकार अनेक कष्ट उठाते हुए भी मिश्र जी पत्रकारिता के क्षेत्र में बराबर अग्रसर रहे और अच्छी ख्याति प्राप्त की।

ब्राह्मण में प्रकाशित विषय

ब्राह्मण की विषय-सामग्री में बड़ी विविधता थी। सामाजिक राजनीतिक साहित्यिक धार्मिक आदि सभी विषय उसमें प्रकाशित होते थे। इसके साथ ही स्थानीय तथा देश विदेश के प्रमुख प्रमुख समाचार भी ब्राह्मण में निकलते थे। मिश्र जी ने पहले ही अंक में 'ब्राह्मण' की विषय-सामग्री की सूचना इस प्रकार दी थी— 'कभी राज्य सम्बन्धी कभी व्यापार सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे कभी-कभी

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ११ (हमारे उत्साहदाता')
२ ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ (अन्तिम सम्भाषण)

गद्य पद्यमय काव्य नाटक से भी रिझावेंगे। इधर उधर के समाचार तो सदा रहेंगे।''[1] इस कथन से उसकी विषय विविधता का सहज ही पता चल जाता है। उदाहरणार्थ—खण्ड १ संख्या २ का विषय विभाजन देखिए—

१—बेगारी विलाप (कविता)
२—असेसर
३—स्यापा
४—ज्यूरिसडिक्शन बिल
५—समालोचना
६—कानपुर
७—कुछ दोहे
८—विविध समाचार
९—औषधि
१०—विज्ञापन
११—मूल्य प्राप्ति स्वीकार

'ब्राह्मण' में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयों पर बड़े उत्कृष्ट लेख निबन्ध और कविताएँ निकलती थीं। इनमें उस समय का सजीव चित्र अंकित रहता था। ऐतिहासिक दृष्टि से भी 'ब्राह्मण' की संचिकाएँ बड़ी महत्व की हैं। लार्ड रिपन से लेकर लैंसडाउन के शासन काल तक का प्रामाणिक इतिहास इनमें मिलता है। इसके अतिरिक्त कानपुर की तत्कालीन स्थिति का जैसा विस्तृत चित्रण ब्राह्मण में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। पंडित लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के शब्दों में—'कानपुर नगर की पूरी चहल-पहल का चित्र भी 'ब्राह्मण' के प्रत्येक अंक की सामग्री में मिलता है। यहाँ के आर्यसमाजियों और सनातन धर्मियों के शास्त्रार्थ मन्दिरों के ट्रस्टियों के अंधेर, कट्टरपंथियों की धर्मान्धता और अनुदारता ईसाई पादरियों के धर्म प्रचार की उग्रता, गोरक्षिणी सभा की स्थापना का निष्फल प्रयास, मनोरंजक दंगल और नाटक ख्याल तथा अन्य लोक गीतों की धूम वेश्याओं के साथ अमीरों के दुर्व्यसन व दुराचार, घी में मिलावट, विलायती चीनी, नवयुवकों की उच्छृंखलता नये फैशन का समाज पर आक्रमण खान पान में बिगाड़ का प्रारम्भ सभा संगठन और उसका अनिवार्य सहचर चन्दा आदि आदि—प्रायः सभी की ब्राह्मण में चर्चा है।[2] 'ब्राह्मण' देश हितैषी पत्र था। उसे देश और समाज से बड़ी ममता थी। इसलिए उसमें देश और समाज के चित्र बड़ी स्पष्टता से खींचे गये हैं। साहित्यिक

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ (प्रस्तावना)
२ 'रामराज्य (कानपुर) ३ दिसम्बर १९५६ ई० प० प्रतापनारायण मिश्र—एक ऐतिहासिक विश्लेषण लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

विषय भी उसके बड़े सुन्दर हैं। ब्राह्मण में निबन्ध और कविताएँ प्रमुख रूप से निकलती थी। कभी-कभी नाटक और संग्रह ग्रंथ धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते थे। इसके साथ ही कुछ समालोचनात्मक लेख भी ब्राह्मण मे निकले थे। समालोचनाएँ प्राय नई प्रकाशित पुस्तको और सामयिक-पत्रों पर लिखी जाती थी। तत्कालीन पत्रों की समालोचना का एक नमूना देखिए—

> सारसुधानिधि राजनैतिक विषयो म उत्कृष्ट है पर भाषा ऐसी कड़ी है कि सब कोई नही समझ सकता और प्रत्येक नख शतान की आंत होता है जिसको पढ़ते-पढ़ते जी उकता जाता है। भारतमित्र' जरा चित्ताकर्षणीय शक्ति प्राप्त कर लें तो बहुत अच्छे हो जायें और जरा विस्तार भी सीखें। 'उचितवक्ता जो करते हैं ठीक करते हैं।—मासिक पत्रों मे हिन्दी प्रदीप' बेशक हिन्दी भास्कर है। दिनकर प्रकाश' जरा एडीटर साहब खुद भी लिखा करें तो बेहतर है। आनन्दकादम्बिनी' में दाग लगाना व्यर्थ है।—'धर्मजीवन यद्यपि उर्दू म है पर प्रशसनीय है। ज्ञान प्रदायिनी' भी खैर अच्छी है। रहे हम ब्राह्मण सो न हुगा न ब्रह्मचारी म पर खर (गालिब यह जाय रश्क नहीं जाय शुक्र है) दस स बुरा सो चार स बहतर बना दिया।—बस मुनासिब जानकर लिख मारा। हमबं, कोई सुन हो तो क्या कोई रूठ तो क्या है ? [1]

ब्राह्मण' हास्य और व्यग्य प्रधान पत्र था। उसम मनोरंजन की सामग्री प्रचुर मात्रा म रहती थी। गपशप नाम का उसम एक अलग स्तम्भ ही था जिसमें मनोरजक चुटकुले और पहेलियाँ प्रकाशित होती थी। उदाहरणार्थ एक चुटकुला देखिए—

> एक जने ने एक का बकरा चुरा के मार खाया, उस चोर से एक मौलवी साहब ने कहा—'बचा खुदा के सामने कयामत मे इस गुनाह का क्या जवाब दोगे ? चोर ने कहा— जवाब क्या देंगे इनकार कर जायगे। मौलवी बोले—'वहाँ इनकार न चलेगा। वहाँ तो बकरा और उसका मालिक दोनों मौजूद होंगे। चोर ने उत्तर दिया—'तो फिर क्या अंदेशा ? बकरे का कान पकड़ के उसके मालिक के हवाले कर देंगे और जुर्म से बरी हो जायँगे। [2]

गपशप स्तम्भ बच्चो के मनोरजनार्थ था। पहेलियों पर पुस्तकें इनाम में रक्खी जाती थी। जो उनके उत्तर लिख भेजते थे उन्हे ये प्रदान की जाती थीं। उदाहरण के लिए कुछ पहेलियाँ देखिए—

> 'आधी सरिता में बसै आधी नृप आधीन।
> अजब मिठाई सों भरी, नाम कहो परवीन ॥ (बालूशाही)

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ९ १६ ('आलोचना')
२ ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ८ 'गपशप' —प्रतापनारायण मिश्र

विसराव सब वस्तु प, कर मैन वेशाम।
चोरो करि राख्यो सबहिं चतुर बताओ नाम॥

(करोसिन तेल की रोशनी)

* * *

वक्ष बसत प लग नहीं जलजुत प धन नाहिं।
त्रिनयन पै शंकर नहीं, कहो समुझि मन माहिं॥ [1]

(नारियल)

कभी-कभी इसी स्तम्भ में कुछ उपयोगी बातें भी निकल जाती थीं। एक सेंत का लटका, पढ़िये—

भोजन करिके पर उतान।
आठ साँस लेहि क परमान॥
स्वारा बहिने चलिस बायें।
तब कस परे अन्न के खाये॥ [2]

समाचार देने के लिए भी 'ब्राह्मण म एक अलग समाचारावली नामक स्तम्भ था। इसम सामयिक घटनायें भाषणा और सभाओं के वर्णन, देश विदेश के समाचार जगह खाली होने की सूचनायें, परीक्षा फल, रेलवे-टाइम टेबिल आदि प्रकाशित होते थे। यद्यपि ब्राह्मण' मासिक पत्र था फिर भी इसमें प्रमुख समाचार अच्छी मात्रा में रहते थे। सच्चे समाचार भेजने वालों को एक पत्र भी बिना मूल्य दिया जाता था।[3] एक समाचार का नमूना देखिए—

और-और मुल्क वाला को देखो कि नई-नई चीजें निकालते आते हैं हिन्दुस्तानियो से पुरानी चीजों का लोप हुआ जाता है नई क्या निकालेंगे ? देखिए आलू को किसी मसाले में उबालकर हाथी दांत सा बनाय लेने की तदबीर निकाली है। भारतवासियो ? नसीब ठोके बठे रहो गुलमई तो कहीं नहीं गई। [4]

कानपुर के स्थानीय समाचार प्राय' कानपुर' शीर्षक से निकलते थे। इसम किसी प्रमुख अधिकारी के ट्रान्सफर देहान्त तथा तत्कालीन वातावरण की सूचनायें रहती थी। एक स्थानीय समाचार की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

---

१ —वही— ,, ७ ,, १० पहेली' —वही—'
२ —वही—' ,, ३ ,, ३४ सत का लटका' '—वही—'
३ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ विज्ञापन' —प्रतापनारायण मिश्र
४ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७ 'समाचारावली' —प्रतापनारायण मिश्र

श्री बाबू गोविन्दचन्द्र भट्टाचाय डिप्टी कलक्टर मैनपुरी बदले, ये एक बड़े भद्र पुरुष हैं और बाबू सुन्दरलाल हेड क्लर्क उनके स्थानापन्न हुए। पंडित चोहारीप्रसाद तहसीलदार साढ यहाँ के डिप्टी कलक्टर हुए। ता० ८ को यहाँ ओल गिरे आस पास के गावों में हानि हुई, सुनते हैं, मुहार मे ऐसा गिरा जिसका व्यास तीन इंच था।[१]

कभी-कभी सरस रोचक समाचार भी 'ब्राह्मण' में निकलते थे—

एक आदमी लंडन के बड़े डाकघर मे टिकट खरीदने गया। जब खिड़की की तरफ झुका तो क्या देखता है कि अन्दर दो जवान औरतें आपस में बातें कर रही हैं और ये डाकघर में मुन्शीगिरी का काम करती थी। आदमी को देखकर भी बेखटके बातें करती रही। एक बोली कि 'हू प्यारी क्या उसने तुम्हें चूमा भी था ?' और जब दूसरी ने ठीक-ठीक जवाब दिया तो बिचारे को टिकट मिली। 'न स्त्री स्वतंत्रता महति' गोरे चमड़े को सब मुआफ है, जो यह बात कहीं हमारे यहाँ की होती तो मियां इंगलिश मैन न जाने क्या क्या झख मारते ?[२]

इसके अतिरिक्त चन्दा देने वाले ग्राहकों के नाम भी (चन्दा की रकम सहित) ब्राह्मण में 'मूल्य प्राप्ति स्वीकार' शीर्षक के अन्तर्गत छाप जाते थे। कभी-कभी एजेंसियों पत्रों और पुस्तकों के विज्ञापन भी 'ब्राह्मण' में निकलते थे और विज्ञापन दर एक आना प्रति पंक्ति थी।[३]

इस प्रकार विषय-विविधता की दृष्टि से 'ब्राह्मण' बड़ा धनी था। एक मासिक पत्र मे जिस प्रकार के विषय होने चाहिए, वे सभी ब्राह्मण में पूरी मात्रा में थे। विभिन्न रुचि वाले व्यक्तियों के मनोनुकूल सामग्री 'ब्राह्मण' में सहज ही मिल जाती थी।

ब्राह्मण के लेखक

'ब्राह्मण' मे प्रमुख रूप से मिश्र जी की ही रचनाएँ प्रकाशित होती थी क्योंकि उस समय लेखकों की बड़ी कमी थी और जो लेखक थे भी वे स्वयं ही किसी न-किसी पत्र के सम्पादक थे इसलिए उन्हें अपने ही पत्र के कलेवर भरने की चिन्ता लगी रहती थी। ब्राह्मण' में लिखने वाले—प्रसिद्ध लेखकों में केवल राधाकृष्णदास और अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' थे। एकाध लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[४] और

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ 'स्थानीय समाचार' —प्रतापनारायण मिश्र

२ ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ९ 'समाचारावली' —प्रतापनारायण मिश्र

३ —वही— , १ „ १ विज्ञापन —वही—'

४ —वही—' „ ८ ९ 'हम मूर्ति पूजक हैं' —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

श्रीधर पाठक[1] के भी प्रकाशित हुए थे। राधाकृष्णदास की रचनाओं में बन्दर जातीय गौरव संरक्षिणी महासभा,[2] अनारेरी मैजिस्ट्रेट क्या नाम[3] हम क्या हैं[4] भक्तमाल[5] श्री प्रेम स्तोत्र[6] प्रेम भक्ति व स्नेह[7] दोहे,[8] जीवन की दस अवस्था[9] प्रमोद्गार[10] आदि और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की रचनाओं में मिश्र जी के नाम पत्र,[11] चार,[12] प्रेम प्रशंसा[13] संतान[14] हिन्दी भाषा की अवनति[15] आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। सामान्य लेखक-जिनकी रचनाएँ 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थीं—लगभग ४५ (नौ वर्ष के अंकों में) मिलते हैं। इनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं-काशीनाथ खत्री[16] केशवप्रसाद अग्निहोत्री,[17] परमसुख 'सुखी',[18] शिवराम पंड्या[19] मिजाजी लाल शर्मा[20] अम्बिकाप्रसाद मुदर्रिस[21] प्राणोपम[22] सीताराम[23] चकनाचूर वेन्हूर[24]

---

१ —वही— ,, २ ७ हिन्दुस्तान की चन्द कौमों की समालोचना —श्रीधरपाठक
२ ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ 'बंदर जातीय गौरव संरक्षिणी महासभा —राधाकृष्णदास
३ '—वही— २ , ६ 'अनारेरी मैजिस्ट्रेट क्या नाम —राधाकृष्णदास
४ —वही—' , २ ६ हम क्या हैं —वही—
५ —वही— ३ , ७ भक्तमाल —वही—'
६ '—वही— ३ , ८ श्री प्रेम स्तोत्र —वही—
७ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ११ प्रेम भक्ति व स्नेह' राधाकृष्णदास
८ —वही— ६ ३ दोहे' —वही—
९ , ६ ३ जीवन की दस अवस्था' ,,
१० , ७ १२ 'प्रेमोद्गार ,
११ ४ १२ मिश्र जी के नाम पत्र' अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
१२ , ६ ३ चार' —वही—
१३ ६ ४ प्रेम प्रशंसा' —वही—
१४ ६ ५ संतान'
१५ , , ६ १२ हिन्दी भाषा की अवनति'
१६ , १ १ प्ररित-पत्र' काशीनाथ खत्री
१७ , १ ४ प्ररित पत्र' केशवप्रसाद अग्निहोत्री
१८ , , १ ८ प्ररित पत्र परमसुख सुखी
१९ , , १ १२ 'होली शिवराम पंड्या
२० , २ ३ जमाई उपासना और सफरफूल से देश निर्धन और मूस मिजाजी लाल शर्मा
२१ ,, २ ७ प्ररित-पत्र' अम्बिकाप्रसाद मुदर्रिस
२२ , २ ७ 'मुलतवी रखने के बुरे फल' प्राणोपम
२३ २ ९ १० चि० विनयप्रदान को क्या होगया' सीताराम
२४ २ ९ १० 'चेतावनी' चकनाचूर वेन्हूर

विश्वेश्वरनाथ शुक्ल[१] शंकर,[२] काशीनाथ चौबे,[३] गदाधर प्रसाद 'नवीन',[४] कालीचरण द्विवेदी[५] शंकर प्रसाद दीक्षित[६] गुरुदयाल[७] सूर्यप्रसाद मिश्र,[८] विश्वनाथ सिंह[९] गंगाधर मुखोपाध्याय[१०] लाला खड्गबहादुर,[११] श्रीकृष्ण,[१२] साहिबप्रसाद सिंह[१३] खेलतदास पाण्डे[१४] आदि। इन लेखकों की एक-एक, दो-दो रचनाएँ ही 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थीं। 'ब्राह्मण' में मिश्र जी ही अधिक लिखते थे और उन्हीं की रचनाओं में 'ब्राह्मण' की जान थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य में 'ब्राह्मण' को जो विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ वह मिश्रजी की ही रचनाओं का परिणाम है, अन्य लेखकों की रचनाएँ तो उसमें केवल नाम मात्र के लिए थीं।

ब्राह्मण की भाषा

'ब्राह्मण' जन-सामान्य का पत्र था। इसमें जो कुछ निकलता था सामान्य जनता के हितार्थ और मनोरंजनार्थ निकलता था। इसका प्रमुख उद्देश्य ही सामान्य जनता में हिन्दी का प्रचार करना और उसके हित की बात उस तक पहुँचाना था। जनता का पत्र होने के कारण इसकी भाषा बड़ी सरल, प्रवाहपूर्ण और जन सामान्य के अनुकूल थी। कहावतों और मुहावरों तथा ग्रामीण शब्दों का सफल प्रयोग उसकी भाषा को और भी प्राणवान तथा रोचक बनाता था। 'ब्राह्मण' की भाषा का एक उदाहरण देखिए—

---

१ ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ३,४ 'षटपदी' — विश्वेश्वर नाथ शुक्ल

२ ,, ३ ३,४ कवित्त — शंकर

३ ३ ६ पद — काशीनाथ चौबे

४ ३१२ गो पुकार — गदाधरप्रसाद 'नवीन'

५ ४ २,३,४, स्वतन्त्रता संचार नाटक — कालीचरण द्विवेदी

६ , , ५ , ८ जड़ में चैतन्य गुण — शंकरप्रसाद दीक्षित

७ ५ ११ 'कविता' — गुरुदयाल

८ , ६ ७ खड़ी बोली का पद्य' — सूर्यप्रसाद मिश्र

९ , ˉ , ७ १२४ ध्रुवाष्टक — विश्वनाथ सिंह

१० , ८ , १ ब्रह्म व शक्ति' — गंगाधर मुखोपाध्याय

११ , ८ , ९ 'कविता' — लाला खड्गबहादुर

१२ ९ , ६ कविता — श्रीकृष्ण

१३ , ९ ६ भारतजीवन को क्या हो गया है — साहिबप्रसाद सिंह

१४ ,, ,, ९ , ९ बालकौतुक — खेलतदास पाण्डे

'आप चाहे जैसे कड़े मिजाज हों, रूखड़ हों, मक्खीचूस हों, जहाँ हम चार दिन झुक-झुक के सलाम करेंगे, दौड़-दौड़ आपके यहाँ आवेंगे आपकी हाँ में हाँ मिलावेंगे आपको इन्द्र, वरुण, हातिम करण, सूर्य, चन्द्र अली धोरी, इत्यादि बनावेंगे, आपको जमीन पर से उठा के झाड़ पर चढ़ावेंगे, फिर बतलाइए तो आप कब तक राह पर न आवेंगे ? हम चाहे जैसे निर्बुद्धि, निकम्म अविद्वान अकुलीन क्यों न हों, पर यदि हम लोकलज्जा परलोक भय सबको तिलाञ्जलि दे के आपही को अपना पिता, राजा गुरू पति अन्नदाता कहते रहेंगे तो इसमें कुछ मीन-मेख नहीं है कि आप हमें अपनावेंगे और हमारे दुःख दरिद्र मिटावेंगे। अजी साहब आप तो आप ही हैं हम दीनानाथ दीनबन्धु पतितपावन कह-कह के ईश्वर तक का फुसला लेने का दावा रखते हैं दूसरे किस खेत की मूली हैं'[1]।

'ब्राह्मण' की भाषा बड़ी स्वाभाविक और अनगढ़पन लिए हुए थी। इससे पाठक उसकी ओर बहुत शीघ्र आकृष्ट होजाते थे। 'ब्राह्मण' पत्र की भाषा में जैसी सरलता और रोचकता थी वैसी उस समय की किसी पत्र की भाषा में नहीं थी। बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं—'ब्राह्मण की समता करने वाला अपने समय में भारतवर्ष में कोई विरला ही मासिक पत्र था'[2]। 'ब्राह्मण' अपनी भाषा शक्ति के जोर से ही पाठकों से ऐसी बेतकल्लुफी और आत्मीयता से बातें करता था कि पाठकों की सहानुभूति शीघ्र ही उसकी ओर खिंच जाती थी और पाठक उसके अन्तराल में बैठकर अपने को भूल जाते थे।

मिश्र जी की सम्पादन-कला

सम्पादन-कला में सबसे प्रमुख कार्य सामग्री संचय और सामग्री वितरण का होता है। मिश्र जी सामग्री का संचय पाठकों की रुचि और उनके हित को दृष्टि में रखकर करते थे। पाठकों की रुचि मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना पर आधारित होता है इसलिए 'ब्राह्मण' की सामग्री भी विविध प्रकार की होती थी। कविता निबन्ध नाटक, प्रहसन, लेख समाचार आदि—सभी उसमें प्रकाशित होते थे। कभी-कभी मौलिक और अनूदित पुस्तकें भी धारावाहिक रूप में निकलती थीं। रोचकता तो सभी में रहती ही थी। समाचार पत्र में जैसी सरलता और तरलता होनी चाहिए वह 'ब्राह्मण' में प्रचुर मात्रा में थी। मिश्र जी जागरूक पत्रकार थे इसलिए वे अपने पाठकों को सदैव युग के अनुरूप आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करते थे। उनकी प्रत्येक पंक्ति में युग का स्पंदन और मानव भावना निहित रहती थी यहाँ तक कि रोचक-लेख भी उनके लोक-हित की भावना से ही आप्लावित रहते थे।

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ५ खुशामद' —प्रतापनारायण मिश्र

२ चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन भागलपुरी कार्य विवरण दूसरा भाग, लेखमाला—पृष्ठ ११७

सामग्री वितरण का भी पत्र सम्पादन कला म महत्वपूर्ण स्थान है। सामग्री का वितरण ऐसे मनोवैज्ञानिक ढग स होना चाहिए कि पाठक उसके पढने म किसी प्रकार की शिथिलता का अनुभव न करें। आजकल सामग्री वितरण का काय प्राय दो प्रकार से किया जाता है। एक तो, किसी विशेष विषय से सम्बन्धित रचनाए एक साथ छाप दी जाती हैं। दूसरे कई विषय की रचनाओं को –एक के बाद एक, मिला कर छापा जाता है। पहला ढग अधिक अच्छा नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक ही विषय स सम्बन्धित रचनाएँ लगातार पढने स पाठकों का जी ऊब जाता है। दूसरे ढग स सामग्री का वितरण होने से पाठकों की रुचि बदलती रहती है और उनका जी नहीं ऊबने पाता। मिश्र जी ने अपने 'ब्राह्मण म दूसरी पद्धति का ही अनुकरण किया है। मिश्र जी का सामग्री वितरण पक्ष बड़ा आकर्षक और सजीव है। मिश्र जी रचनाओं के शीर्षक ही ऐसे विशिष्ट ढग से रखते थे कि पाठक उन्हे देखते ही भाव विभोर हो जाते थे और रचना का पूरा आशय शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता था। उदाहरण के लिए ब्राह्मण' के कुछ शीर्षक देखिए—हो ओ ओ सी है मार मार क कहे जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है जरा अब तो आँखें खोलिए, चान्सकुन्जों ही की सबसे हीन दशा क्यों है, फूटी सहू आजी न सहैं बेकाम न बैठ कुछ किया कर पूरे की लत्ता थिर्रै कनातन का ढोल बाधे हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो होगा टेढ़ जानि शंका सब काहू मतवालों की समझ, सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय। पवन जगावत अगिन को दीपहि देत बुझाय॥ समक्षदार की मौत है कलिकोप मुनीतो च मतिभ्रम हुची चोट निहाई क माथे प्रम एव परोधर्म बाल्यविवाह विषयक एक चीज, पड़ पत्थर समझ पर आपकी समझे हा क्या समझे दिन थोड़ा है दूर जाना है यहाँ ठहरूँ तो मेरा निबाह नही है युवावस्था नारी ट दात मरे का मारें साह मदार, इस सादगी पर कौन न मर जाय ऐ खुदा लड़ते हैं और हाथ मे तलवार भी नहीं आदि। 'ब्राह्मण के बहुत से शीपक लोकोक्तिया में रखते गये हैं इसलिए उनमें और भी व्यापकता आ गयी है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण क समाचारावली समालोचना या प्राप्ति स्वीकार, गपशप आदि स्तम्भ भी सफल सामग्री वितरण कार्य-के प्रतीक हैं।

'ब्राह्मण सम्पादक मिश्र जी एक कुशल-पत्रकार के गुणों से युक्त थे। उनमे लेखन की क्षमता, संगठन-शक्ति कमठता साहस स्वच्छन्दता स्पष्टवादिता निर्भीकता अध्ययनशीलता हास्यप्रियता गम्भीरता, सहृदयता परदुखकारता आदि गुण एक साथ सन्निविष्ट थे और उनके यही गुण 'ब्राह्मण मे भी साकार हो गये थे। वे अपने ब्राह्मण में समयोपयोगी विषय ही प्रकाशित करते थे और प्रत्येक विषय पर अधिकार क साथ लिखते थे। उनमें किसी प्रकार की दलगत सकीर्णता नही थी। वे जो कुछ कहते थे समान-दृष्टि से-स्पष्ट और निष्पक्ष कहते थे। उन्हे निन्दा और

स्तुति की परवाह नहीं थी। समाज के गुण-दोष बताना ही उनका धर्म था। वे तत्कालीन समाज के आचार, व्यवहार, जीवन और रुचि से पूरी तरह परिचित थे। एक शिक्षक या उपदेशक की भाँति वे समाज के हित की बात कहते थे। स्मरण शक्ति भी उनकी बड़ी तीव्र थी पुरानी से-पुरानी बातसहज ही उनके सामने आ जाती थी। इसके साथ ही साहित्य विज्ञान कला व्यापार इतिहास भूगोल राजनीति समाज-नीति, नागरिकता सम्बन्धी अधिकारों तथा कर्तव्यों धार्मिक सिद्धान्तों कानूनों आदि की भी उन्हें जानकारी थी। तत्कालीन स्थिति से परिचित होने के लिए वे सामयिक पत्र बराबर पढ़ते थे। आचार्यमहावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— 'प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी-अखबार पढ़ने का लड़कपन ही से शौक था। इसी शौक से धीरे धीरे उत्साहित होकर गोपीनाथ खत्री इत्यादि की मदद से इन्होंने १५ मार्च १८८३ से ब्राह्मण नामक एक १२ पृष्ठ का मासिक पत्र निकालना शुरू किया।'[1] कालाकांकर में भी मिश्र जी प्रयाग-समाचार, हिन्दी प्रदीप आदि पत्र बड़ी रुचि से पढ़ते थे।[2] कभी कभी इन पत्रों में प्रकाशित वक्तव्यों का उत्तर भी बड़ी तार्किकता के साथ देते थे।[3] मिश्र जी में विवेचना आलोचना और तत्क्षण उत्तर देने की विलक्षण शक्ति थी। पत्रकारों के आपसी झगड़े भी उन्हें असह्य थे। सभी पत्रकारों में वे भ्रातृत्व भाव स्थापित करना चाहते थे। एक बार 'उचितवक्ता' और 'भारतजीवन' के सम्पादकों में—'हरिश्चन्द्र-सर्वस्व छापने के विषय को लेकर—झगड़ा हो गया। इस पर मिश्र जी दोनों को समझाते हुए लिखते हैं— उचितवक्ता भाई! वाह! भारतजीवन साहब! धन्य! सबको ज्ञान दें आप कुत्तों से चिथवावें— तुम्हें क्या हुआ है। जो बातें आपुस में निबट सकें की हैं उनका गोहराते फिरना। छि! छि! बच्चे हो? सावनी वालों की सी पत्रकारों से फायदा। यदि गाली गलौज ही करना हो तो हम जो चाहो दाना कह लो। एक कर तो दूसरा नंग नाच पर कमर बाँध यह कौन सभ्यता है? अरे बाबा! तुम सब साधारण के अगुवा हो। तुम्हारा नमूना देख के औरों को क्या उपदेश होगा? साबों तो! खैर बहुत हो चुका अब तक कैसा खराब रहेगा? इसीसे कहते हैं होश में आओ। होनी थी सो हो ली आगे से हम विश्वास है हमारे प्यारे दोनों सहवर्ती ऐसा गजब न करेंगे।[4] मिश्र जी के इस कथन में एक उत्तरदायी और सहृदय पत्रकार की सम्वेदना है मिश्र जी का यह कथन उन्हें एक सच्चे पत्रकार की कोटि में पहुँचा देता है। इसके अतिरिक्त

---

१ सरस्वती' मार्च, १९०६ ई० प्रतापनारायण मिश्र—आचार्यमहावीरप्रसाद द्विवेदी।

२ बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ ३८१

३ 'ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ५ समाचार की मौत है—प्रतापनारायण मिश्र।

४ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या २ ('बस बस होश में आइए)

मिश्र जी सरल और रोचक भाषा लिखने के पक्षपाती थे । उन्होने अपने ब्राह्मण में सर्वत्र-हास्य और व्यग्य से युक्त—सहज और सरस भाषा का प्रयोग किया है ब्राह्मण' भाषा शैली की दृष्टि से बडा धनी है। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा लिखते हैं- ब्राह्मण और हिन्दी प्रदीप की सचिकाओं म हिन्दी के अद्भुत निबन्ध भरे पडे हैं शैलियों की विविधता की दृष्टि से तो आज भी अच्छे से अच्छा पत्र उनकी तुलना म कुछ नही।' [१] मिश्र जी सम्पादन कला में रोचकता और देशहितपिता पर विशेष बल देते थे यही दोनों तत्व उनकी सम्पादन कला के मूलाधार हैं।

पत्रकारिता की दिशा में मिश्र जी का योगदान

मिश्र जी ने अपने ब्राह्मण' द्वारा पत्रकारिता को एक नया रास्ता दिखाया और उसे शक्ति प्रदान की। मिश्र जी से पूर्व पत्रकारिता म रोचकता और भाषा की सरलता की बडी कमी थी। मिश्र जी ने इन दोनो उपकरणो पर बडा जोर दिया और तत्कालीन पत्रकारो को इनकी ओर प्रभावित किया । बाबू राधाकृष्णदास 'ब्राह्मण की रोचकता के विषय मे लिखते हैं— 'उस पत्र का आदर हिन्दी रसिक मण्डली मे बहुत ही हुआ और उसके लेखों की मनोहरता न सबको मोहित कर लिया यहां तक कि स्वय भारतेन्दु जी उसके लेखो से मोहित हो जाते थे ।'[२] कानपुर से ब्राह्मण' ने एक साहित्यिक वातावरण ही तैयार कर दिया था और उसके द्वारा सरसता की धार सी बह चली थी। ब्राह्मण' अपने युग का निराला पत्र था। इसने पाठको को सबसे अधिक अपनी ओर आकृष्ट किया और पत्रों को पढ़ने की सामान्य जनता म रुचि पैदा की । विजयशकर मल्ल लिखते हैं- "भारतेन्दु युग के पत्रो मे कानपुर के ब्राह्मण का अपना निराला रग है। इस क्षीण-कलेवर पत्र मे कोई बनाव चुनाव न होने पर भी कुछ ऐसा बाँकपन है जो सजग पाठक को तुरन्त अपनी ओर खींच लेता है। उसकी हर टिप्पणी, लेख और कविता म निपट सरलता अनगढ़पन और बेहद जिन्दा दिली का मेल एक खास असर पैदा करता है।[३] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण की साहित्यिक सेवायें भी विशेष उल्लेखनीय हैं । इसने सुगम साहित्य की रचना कर हिन्दी-साहित्य का विकास के लिए प्रेरित किया । त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दों में— साहित्य के अगो को भरने म जहाँ अन्य पत्रों का कलात्मक

---

१ डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा— हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई)—पृष्ठ २१३

२ 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली पहला खण्ड (१९३० ई०)—पृष्ठ ४१५ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रा का इतिहास)

३ 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०—पृष्ठ ७०२ (ब्राह्मण एक परिचय)

सहयोग रहा, वहाँ 'ब्राह्मण' की सेवायें भी विशेष उल्लेखनीय हैं। 'ब्राह्मण' का प्रकाशन उस युग के साहित्यिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।[1] 'ब्राह्मण' से समाज का भी बड़ा उपकार हुआ। जन-जन में राष्ट्रीय चेतना भरने में 'ब्राह्मण' ने सराहनीय कार्य किया। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं— मिश्र जी निर्भीक पत्रकार व खरे आलोचक थे। ब्राह्मण में लिखी हुई उनकी टिप्पणियाँ, स्फूर्ति साहस भरने वाली और जिस पर प्रहार किया जाता उसे तिलमिला देने वाली होती थीं। कुलमुत नीति में उनका विश्वास नहीं था। खतरा मोल लेकर भी वे विदेशी सरकार का तीव्र विरोध करते रहे।[2] मिश्र जी का 'ब्राह्मण' सम्पादन, मन धन से देशोद्धार में लगा रहा। मिश्र जी स्वतः उसके कार्यों की प्रशंसा इस प्रकार करते हैं— 'वाह रे ब्राह्मण' देवता! यद्यपि आप ऋण में फंसे हैं आपके एडीटर को रागराज के एकलौते बेटे दौरबल्य राम पसे हैं तो भी लोटा-लंगोटा ले देशोद्धार और प्रेम प्रचार पर कमर कसे हैं।[3] आगे मिश्र जी 'ब्राह्मण' के बन्द होने की स्थिति पर पुनः लिखते हैं— 'यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा अपने कर्तव्य-पालन में योग्य था या अयोग्य यह कहने का हम कोई अधिकार नहीं है। न्यायशील सहृदय लोग अपना विचार आप प्रकट कर चुके हैं और करेंगे, पर हाँ इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी पत्रों की गणना में एक संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिलता रहता था।'[4] 'ब्राह्मण' साहित्यिक सामाजिक और राष्ट्रीय पत्र था। इसने साहित्य समाज और राष्ट्र की एक साथ सेवा की। मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' के माध्यम से पत्रकारों के समक्ष लोकहित का नया आदर्श उपस्थित किया और उन्हें दृढ़ता और निष्पक्षता से आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। 'ब्राह्मण' के उद्देश्य इतने समष्टिपरक और व्यवहारिक थे कि तत्कालीन पत्रकारों ने उससे अनेक प्रेरणाएँ ग्रहण की। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी का पत्रकारिता सम्बन्धी कार्य उस युग के लिए तो वरदान सिद्ध हो हुआ आज भी उससे पत्रकार बहुत कुछ सीख सकते हैं। मिश्र जी ने पत्रकारिता की दिशा में जो कार्य किया वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

---

१ 'सम्मेलन पत्रिका' श्रावण माह सं० २००२ वि० 'ब्राह्मण' त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

२ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ १०१

३ ब्राह्मण खण्ड ४ संख्या १ ('धन्यवाद')

४ ,, ,, ७, १२ (अन्तिम सम्भाषण)

पाँचवाँ अध्याय

मिश्र जी का अन्य स्फुट साहित्य

समालोचना साहित्य

हिन्दी समालोचना साहित्य का विकास भारतेन्दु-युग से ही प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य में आधुनिक समालोचना का रूप नहीं मिलता। हाँ संस्कृत साहित्य में आचार्यों और मीमांसकों के विवेचन अवश्य मिलते हैं जिनमें समालोचना कुछ आभास मिलता है पर उनमें आचार्यों की दृष्टि गुण-दोष दिखाने की ओर ही अधिक रही है रस और अलंकारों पर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। हिन्दी में समालोचना साहित्य की उद्भावना पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के साथ हुई। अंग्रेजी के 'बुक रिव्यू' के ही अनुकरण पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में 'पुस्तक परिचय' नामक स्तम्भ रक्खा गया और इसी से हिन्दी समालोचना का श्री गणेश हुआ। हिन्दी समालोचना का प्रारम्भिक स्वरूप पत्र पत्रिकाओं में ही मिलता है। पत्र पत्रिकाएँ ही हिन्दी समालोचना साहित्य की जननी हैं। कविवचनसुधा (१८६८ ई०) हरिश्चन्द्र मैगजीन बाद में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (१८७२ ई०) हिन्दी प्रदीप (१८७७ ई०) ब्राह्मण (१८८३ ई०) आदि पत्रों में अनेक समालोचना टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई थीं। स्वयं भारतेन्दु जी ने भी कुछ समालोचनाएं भूमिकाओं के रूप में लिखी थीं। आगे चलकर बालकृष्ण भट्ट और उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने लाला श्री निवासदास कृत 'संयोगिता-स्वयंवर (१८८५ ई०) नाटक की आलोचना लिखकर क्रमशः हिन्दी प्रदीप (१८८६ ई०) और आनंद कादम्बिनी (१८८६ ई०) में प्रकाशित किया। भट्ट जी और प्रेमघन की आलोचनाएं कुछ अधिक नवीनता और विस्तार लिए थीं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी समालोचनाएँ तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुईं।

भारतेन्दु युग में समालोचनाएँ पुस्तक-परिचय के रूप में लिखी जाती थीं। लेखकगण सम्पादकों के पास अपनी नवीन पुस्तकें विज्ञापन के लिए भेजते थे। सम्पादक उन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखकर अपने पत्र में निकालते थे। इन टिप्पणियों में मूल्य प्रकाशन स्थान का पता और पुस्तक का सूक्ष्म परिचय रहता था। परिचय के साथ ही पुस्तक के गुण-दोष भी संक्षेप में बताये जाते थे। कभी कभी इन टिप्पणियों में कृति की कलात्मक और भावात्मक विशिष्टताएँ भी आंशिक रूप में अभिव्यक्त हो जाती थीं। उस समय पाठकों की बड़ी कमी थी इसलिए इन टिप्पणियों

का प्रमुख उद्देश्य जनता में पुस्तकों का प्रचार करना होता था। 'भारतोद्धारक' में प्रकाशित प्रारंभिक समालोचना का एक रूप देखिए— काश्मीर कुसुम अथवा राजतरंगिणी समेत (काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास राजाओं के नाम और समय का सविस्तार चक्र राजतरंगिणी की समालोचना श्री हर्ष और वर्तमान महाराज काश्मीर के वंश का छोटा इतिहास) श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु लिखित अत्युत्तम ४४ पृष्ठ टाइप से मुद्रित भारतेन्दु जी के उत्साह और परिश्रम का फल[1]। ऐसी समालोचनाओं से जनता को तत्कालीन प्रकाशित पुस्तकों की गतिविधि समझने में बड़ी सहायता मिलती थी। साथ ही समालोचना का अंकुर भी इनमें प्रस्फुटित होने लगा था। इन समालोचनाओं का मूल्यांकन करते हुए डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं—

इस प्रकार की समालोचनाओं द्वारा सम्पादक अपने समय की रुचि पर नियन्त्रण रखते थे। साथ ही समकालीन जनता की कृतियों की प्रशंसा अथवा निन्दा मात्र कर वे साहित्यिक गतिविधि का भी परिचय देते थे। उस समय के शिक्षित समुदाय में किस प्रकार की पुस्तकें पसन्द की जाती थीं और किस प्रकार की पुस्तकें पसन्द नहीं की जाती थीं इस बात का पता हमें इन समालोचनाओं से लग जाता है। इसलिए समय को देखते हुए उनका महत्व किसी हालत में कम नहीं माना जा सकता। हम उन्हें आने वाली समालोचना का प्रारम्भिक रूप मान लें तो सम्भवतः कोई अनौचित्य न होगा[2]।

भारतेन्दु-युग आरम्भ की अपनी मर्यादा पर अधिक बल दे रहा था इसलिए इस युग की समालोचनाएँ प्रायः लोकहित को आधार मानकर लिखी गयी हैं। इनमें भाषा, भाव आदि पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। लोक-मंगल की भावना ही इन समालोचनाओं में प्रमुख है। डॉ० नत्थन सिंह लिखते हैं— आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति के अभाव में उस काल के आलोचक कवि अथवा लेखक पर युग प्रभाव, उसके जीवन और जीवन सम्बन्धी परिस्थितियों का सूक्ष्म एवं निष्पक्ष अध्ययन करके उसकी अन्तःप्रवृत्तियों का विश्लेषण न कर पाते थे। रचना-गत विशेषताओं और रचनाकार की विचार धारा में प्रविष्ट होकर उसकी अन्तर्वृत्तियों का निरूपण करना मार्मिक दृष्टि से आलोचना का विशिष्ट गुण है। इस प्रकार की आलोचना का उस काल में अभाव ही था। उस युग के लेखक तो रचनागत और कभी-कभी रचनाकार के गुण और दोषों का निरूपण किया करते थे।[3] भारतेन्दु-युग के समालोचक कोरे समालोचक न होकर प्रधानतः कलाकार थे। अतः उस युग की समालोचना में आधुनिक समालोचना की वैज्ञानिक पद्धति खोजना अनावश्यक है। वह काल समालोचना

---

१ 'भारतोद्धारक' भाग १ संख्या २ समालोचना मुन्नालाल नामा
२ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १२०
३ डॉ० नत्थनसिंह 'गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त' (१९५ ई०) पृष्ठ २२८

या प्रारम्भिक काल था। उस युग की समालोचना को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना ही उपयुक्त है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में— उनके आलोचनात्मक लेख कलाकार के रूप में उनके निजी अनुभव के प्रकाश में लिखे गए माने जा सकते हैं। उनका वही महत्व है जो एक चित्रकार द्वारा अपने चित्र के सम्बन्ध में लिखे गये लेखों का महत्व होता है। दूसरे कलाकार उनके विचारों से लाभ उठा सकते हैं विशेष रूप से उस समय जब कि उनके विचारों का अध्ययन उनकी कलात्मक कृतियों के साथ किया जाय।[1] उस युग के समालोचक सरल भाषा में युक्त लोक हित प्रधान पुस्तकों को अधिक अच्छा समझते थे और इसी दृष्टिकोण से पुस्तकों की समालोचना करते थे। उन समालोचकों में किसी प्रकार की ईर्ष्या और पक्षपात की भावना नहीं थी। वे बड़े स्पष्ट और निःसंकोच भाव से समालोचनाएं लिखते थे।

प्रतापनारायण मिश्र जी भी आधुनिक समालोचना साहित्य के उन्नायकों में से थे। हिंदी समालोचना साहित्य का प्रादुर्भाव इन्हीं के समय में हुआ। मिश्र जी अपने ब्राह्मण के प्राय प्रत्येक अंक में किसी-न किसी पुस्तक या पत्र की समालोचना निकालते थे। उनके पास जो भी पत्र या पुस्तकें समालोचना के लिए आती थीं उनकी वे निष्पक्ष उचित और स्पष्ट समालोचना लिखते थे। उनका कहना था— हमको दूसरों की भाँति खुशामद नहीं आती कि कोरी प्रशंसा करें। 'समालोचना के समय गुण औगुण प्रकट करना चाहिए।[2] मिश्र जी ने समालोचनाओं के लिए ब्राह्मण में एक अलग समालोचना' या प्राप्ति स्वीकार' नाम का स्तम्भ ही बना लिया था और इसी में अपनी लिखी समालोचनाएं प्रकाशित करते थे। मिश्र जी को आलोचक हृदय जन्म से ही प्राप्त था। यदि गहराई से देखें तो उनकी प्राय सम्पूर्ण रचनाओं में उनका आलोचक हृदय ही झाँकता दिखायी देता है। उनकी बहुत-कम रचनाएं ऐसी होंगी जिनमें समाज या देश के किसी न किसी अंग की आलोचना न की गयी हो। लेकिन यहाँ पर हमारा संबंध केवल उनकी साहित्यिक समालोचनाओं से ही है। ये समालोचनाएँ अधिकतर सामयिक पुस्तकों पर लिखी गयी हैं कुछ समालोचनाएं तत्कालीन पत्रों से भी सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने कई समालोचनात्मक निबंध पुराणों पर भी लिखे हैं। इन निबंधों में वैज्ञानिक दृष्टि से पुराणों का महत्व प्रतिपादित किया गया है। मिश्र जी का दृष्टिकोण समालोचना के क्षेत्र में बड़ा व्यापक और वैज्ञानिक था। वे साहित्य का संबंध जीवन से मानते थे। साहित्य में कोरा विलास उन्हें प्रिय नहीं था। समालोचना करते समय वे आलोच्य वस्तु में सबसे पहले लोक हित के तत्व ही ढूँढते थे। इसके

---

१ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १६२
२ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १२, आलोचना' प्रतापनारायण मिश्र।

बाद फिर उसकी सरसता और भाषा पर जाते थे। प० चतुर्भुज मिश्र कृत आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड की समालोचना करते हुए वे लिखते हैं— पण्डित जी को चाहिए कि इस छन्द तथा इस भाषा में वह विषय लिखें जो सर्वसाधारण के लिए सांसारिक उपकार का हेतु हो। राम चरित्र को इस रूप में लाने का देश के लिए कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।[1] इसी प्रकार अम्बिकादत्त व्यास कृत 'ललिता नाटिका' की समालोचना में मिश्र जी लिखते हैं— कथा प्रबन्ध इसका ऐसा है कि न तो उससे कोई सदुपदेश ही निकलता है न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है।'[2] भाषा के क्षेत्र में मिश्र जी सरल, रोचक और प्रभावपूर्ण भाषा लिखने के पक्ष में थे। वे सरल भाषा द्वारा नागरी का प्रचार जन जन में करना चाहते थे। इसके साथ ही—राष्ट्रीय चेतना फैलाने के उद्देश्य से—नाई भाषाओं में भी काव्य रचना करने के लिए कवियों को प्रोत्साहित करते थे।[3] उस समय उर्दू भाषा हिन्दी के विरोध में आगे बढ़ रही थी इसलिए उर्दू-गर्भित भाषा लिखने वालों की भी मिश्र जी ने निन्दा की थी और पृथक आलोचना लिखकर भी उर्दू को हेय सिद्ध किया था। उर्दू का क्षेत्र बताते हुए वे लिखते हैं— 'माशूक के रूप गुण नख शिख की प्रशंसा, अपनी सफलता का घमण्ड, उसे गुल और शमअ अर्थात् मोमबत्ती एवं अपने को बुलबुल और परवाना अर्थात् पतंग से उपमा दिया करो, रकीब इत्यादि पर जल-भुन के गाली दिया करो बस उर्दू का सर्वस्व आपको मिल जायगा। चाहे गद्य हो चाहे पद्य हो चाहे कविता हो चाहे नाटक हो चाहे अखबार हो चाहे उपदेश हो, सब में यही बातें भरी हैं। यदि और कोई विद्या का विषय लिखना हो तो संस्कृत, बंगला, नागरी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी का शरण लीजिए। इन बीबी के यहाँ अधिक गुंजायश नहीं है। और लिखना तो दरकिनार सुन्दर सुन्दर शब्द हों लिख के किसी मौलवी से पढ़ा लीजिए, अरे क्यों मजा ही न आवेगा। हमारे एक मित्र का यह वाक्य कितना सच्चा है कि और सब विद्या है यह अविद्या है। जन्म भर पढ़ा कीजिए, तेली के बैल की तरह एक ही जगह घूमा कीजिए। सत्य विद्या के बतलाइए तो कै पद हैं? हाय न जाने देश का दुर्भाग्य कब मिटेगा कि राजा प्रजा दोनों इस मुलम्मे के फेर से सच्चे सोने को पहिचानेंगे।[4] मर्मान्तक अशुद्ध भाषा लिखने वालों की भी मिश्र जी भर्त्सना करते थे। राधाचरण गोस्वामी द्वारा 'बगीची' शब्द का प्रयोग करने पर वे कहते हैं— अगस्त के भारतेन्दु में आपने एक पुस्तिका दी है। उसका नाम 'प्रेम बगीची' रक्खा है। ऐसा नाम रखने की क्या

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ८, संख्या ८ ('प्राप्ति स्वीकार')
२ ,, खण्ड १, संख्या ७ (समालोचना)
३ ,, खण्ड ६ संख्या ५ ६ (आल्हा आल्हाद)
४ खण्ड ४ संख्या २ (उरदू बीबी की पूजा)

सस्कृत शब्द न जुरता था ? प्रेम वाग्मिया बुरा था जो एक अरबी का शब्द सा भी महा महा अशुद्ध रखते हैं ? गोस्वामी जी को भली भाँति ज्ञान होगा कि वह शब्द बाग है जिसको बागीचा कह सकते हैं। वागीचा भी अशुद्ध है पर शहर के अपढ़ लोग बोलते हैं। परन्तु बगीचा और बगवा तो सिवाय अक्षर शत्रुओं के कोई बोलता ही नही। तिसम भी वगीची। ह ह ह। खतरानिया की बोली।—इस अशुद्ध और जनाने शब्द को पोथी के नाम मे लाते समय यह ध्यान न रहा कि हम लोग क्या समझेंगे।[१] इसके अतिरिक्त मिश्र जी गद्य में खड़ी बोली और पद्य म व्रज भाषा क समर्थक थे। उनका यह कहना था कि खड़ी बोली कर्कश होने के कारण कविता क लिए अधिक उपयुक्त नही है उसम गद्य का ही समुचित विकास हो सकता है। कविता तो व्रज भाषा म ही सुमधुर लिखी जा सकती है—

'यदि सबको समझाना मात्र प्रयोजन है तो सीधी-सीधी गद्य लिखिए। कविता के कर्ता और रसिक होना हर एक का काम नही है। उनके विचारो की चलती गाड़ी म पत्थर अटकाना जो कविता जानते है कभी अच्छा न होगा। व्रज भाषा भी नागरी देवी की सगी बहिन है उसका निज स्वत्व दूसरी बहिन को सौपना सहृदयता क गले पर छुरी फेरना है। हमारा गौरव जितना इसमे है कि गद्य की भाषा और रखें पद्य की और उतना एक को बिल्कुल त्याग देने मेक दापि नहीं। कोई किसी की इच्छा को रोक नही सकता।[२]

मिश्र जी ने अपने आलोच्य विषयो को उपयुक्त कसौटी मे ही कसा है और बड़ी निर्भीकता के साथ अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। नवीनता भी उनकी समालोचना म अक्षुण्ण है। जहाँ वे वस्तु का भावपक्ष और कलापक्ष पर समान रूप म विचार करते हैं व हाँ वे अपने युग से आग बढ़े दिखायी देते हैं। अब यहाँ उनकी समालोचना के सभी पक्षो का विस्तार से विवेचन करेंगे।

सामयिक पुस्तकों की समालोचना

उस समय प्रकाशित होनेवाली प्राय सभी प्रमुख पुस्तको की समालोचनाएँ मिश्रजी ने अपने ब्राह्मण में लिखी थी। जिनम भाषा दीपिका[३] सुखद वार्ता[४] ललिता

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ७ (मुनीनां च मतिभ्रम)

२ ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या ७ 'खड़ी बोली का पद्य प्रतापनारायण मिश्र

३ " १ " २ (समालोचना)

४ " १ " ७

नाटिका[1], सप्तासंवरण[2], पारपाठ[3] शृंगार लतिका[4], स्त्री शिक्षा[5], प्रेम तरंग[6] संयोगिता स्वयंवर[7] दुर्गा शतक,[8], वेनिस का बांका[9], पद्मावती[10] वीर नारी नाटक[11] ऊजड़ ग्राम[12], तन मन धन गोसाईं जी के अर्पण[13] भारत सौभाग्य[14], निस्सहाय हिन्दू[15], माध्यवती[16], चन्द्र तरंग[17], आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड[18], नारी धर्म[19], देवी स्तुति शतक[20] आदि पुस्तकों की समालोचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन समालोचनाओं में कुछ तो परिचयात्मक हैं जिनका उद्देश्य केवल विज्ञापन देना ही रहा है। उदाहरण के लिए 'भाषा दीपिका' की समालोचना देखिए—'हम श्रीयुत प० बलभद्र मिश्र (उपमंत्री ना० सा० लखनौ) विरचित (भाषा दीपिका) पुस्तक को धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करते हैं। इसमें तीन भाग हैं। प्रथम भाग में गद्य लिखा गया है। इसमें हमारी मातृ भाषा नागरी है उसी का पढ़ाना हमें उचित है और उर्दू के दोष भली भाँति दर्शाए गये हैं। दूसरे भाग में पद्य (नज़्म) में है इसमें नागरी के प्रचार से जो-जो लाभ हो सकते हैं इस विषय

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७ ('समालोचना')
२ " , १ ८ "
३ " १ , ९ ,
४ " " १ " ९
५ " " २ २ "
६ , , २ , ५ ,
७ " , ३ " १२ ('आलोचना')
८ , ४ , २ ('समालोचना')
९ , ५ " ६ "
१० ५ " ८
११ " ५ " ८ "
१२ " " ६ " ६ "
१३ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ८ ('समालोचना')
१४ " ६ " ८ ,
१५ " " ६ , १० ('प्राप्ति स्वीकार')
१६ , , ७ १ ४ "
१७ " " ७ , ९ ,
१८ " , ८ ८ "
१९ , , ८ " ११ "
२० " " ९ " ४ "

में श्रीमान् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का व्याख्यान है इसका क्या ही कहना है ? तीसरा भाग भी गद्यमय है इसमें हिन्दी की कुलांगना और उर्दू को वेश्या और सम्कृत को ऋषि रूपकालकार से दर्शाया । । ग्रन्थ अच्छा है । सज्जना का एक बेर तो अवश्य देखना चाहिए । मूल्य डाक व्यय सहित साढ़े तीन आने । बाबू गंगा प्रसाद वर्मा हिन्दुस्तानी यंत्र के स्वामी के पास अमीनाबाद लखनऊ म मिलेगी[1] ।'
इसके अतिरिक्त कुछ समालोचनाएँ मिश्र जी ने विवेचनात्मक भी लिखी हैं, जिनमें गुण-दोषा के साथ ही, कृति की काव्यगत विशेषताएँ भी बताई गयी हैं । अम्बिका दत्त व्यास कृत 'ललितानाटिका' की समालोचना लिखते समय उनकी दृष्टि भाषा और सरसता पर बराबर रही है । वे लिखते हैं— 'इसकी भाषा बहुत अच्छी है । नाट्यरीति अत्युत्तम है । पुस्तक प्रशसनीय है पर दो बातों की कसर है एक यह कि दृश्य लेख के पद्य मात्र म कवि का नाम होना अशोभित लगता है क्योकि नाटक पात्रों के मुख स बार-बार एक ऐसे पुरुष का नाम निकलना जिसका नाटक भर में कही काम नही पड़ता निरा निरर्थक है, दूसर कथा प्रबन्ध इसका ऐसा है कि न तो उसस कोई सदुपदेश ही निकलता है न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है । भगवान कृष्णचन्द्र जी का गोबरधन गोप की स्त्री ललिता के पास रात का छिप क जाना पुरान बुड्ढो को हम नही कह सकते पर आजकल के नवशिक्षित युवक समाज को पारसीयो के गुलबकावली से अधिक मनोहर न लगेगा । [2]

नाटकों की आलोचना करते समय मिश्र जी भाषा और अभिनेयता पर विशेष बल देते हैं । नाटक की मर्यादाएँ सदव उनके सामने रहती हैं । कहीं भी वे पुरानी रूढ़ियो का पालन करते नही दिखाई देते । उदाहरणार्थ लाला श्री निवासदास कृत सयोगिता स्वयंवर' नाटक की समालोचना देखिए—"ग्रन्थ म कई एक बड़े-बड़े दोष भी हैं स्त्रियां कैसी ही चतुर और पढ़ी लिखी हो पर नाटककार को चाहिए कि उनकी भाषा पुरुषा स हल्की रक्ख, नौकरों-चाकरों की बोली म संस्कृत के शब्द न भरें । युद्ध क्षेत्र म यात्रा को बाजे की ताल पर पाँव उठाना दक्खिनियों क नाटक की नकल है पर वीर रस स दूर है नाचना और युद्ध दिखाना भेद रखता है । पृथिवीराज और संयोगिता की बातें कवियो की सी हैं तुम्हारा मुख चन्द्र सा है मेरा मन समुद्र है ऐसी या और बहुत सी विजना भरी बातें केवल कवि लिखते हैं पर प्रेमिक और प्रेमपात्र कभी बोलते नही । उस अंक मे बात कम और लज्जापूर्ण सात्विक भाव अधिक होना चाहिए । शराब का जिक्र मियाँ भाइयो के नाटकों के लिए रहने दें, नही तो उसका आरम्भ पृथिवीराज की तरफ से हो तो बड़ी हानि

१ 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या २ (समालोचना')
२ " , १ , ७ (आलोचना')

नहीं पर प्रथम समागम में न होना चाहिए। भूषण का कवित्त भी बेमौक है। बहुत से फुटनोट किसी पात्र द्वारा घटा बढ़ा के कह दिये जाएँ तो अच्छा हो क्या दर्शकगण को प्रोग्राम के साथ एक-एक पुस्तक दिये बिना काम चलेगा? कविता में कई ठौर मधुर भाषा के बदल संस्कृत आयी है। निरदोष अकेला ईश्वर है हम भी लिखें ना अशुद्धता से बच न जाएँ पर समालोचना के समय गुण औगुण प्रकट करना चाहिए।"[1]

मिश्र जी की उपर्युक्त समालोचना बड़ी विवेकशील और तर्क-सम्मत है इसमें आधुनिक समालोचना के कई एक तत्व आ गये हैं। ऐसे ही श्रीधर पाठक के 'ऊजड़ ग्राम' की समालोचना भी मिश्र जी ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से लिखी है और अनुवादों की ओर लोगों को आकृष्ट किया है। देखिए— ऊजड़ ग्राम कविवर गोल्ड स्मिथ कृत डजर्टेड विलेज का पद्यमय अनुवाद। इस ग्रन्थ को हमारे प्रिय मित्र पण्डितवर श्रीधर पाठक ने बड़ी रसज्ञता से लिखा है। भाषा का माधुर्य, कविता का लावण्य, सहृदय मनोहारित्व इत्यादि गुणों के अतिरिक्त योरोपीय विचारांश का एतद्देशीय लोगों को पूर्ण स्वादु देने में भी सच्ची दक्षता दिखलाई है। हमारी समझ में यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है कि जिस आभूषण को इंगलैंड स्वर्णकार (गोल्ड स्मिथ) ने बड़ा चतुरता के साथ केवल हरिविमुख ललना (अंग्रेजी भाषा) के लिए निर्माण किया है उसे पाठक जी ने रत्न-जटित करके नागरी देवी के शृंगार योग्य बना लिया है।"[2]

मिश्र जी का युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। उस समय के प्रायः सभी लेखक लोकहित को ही दृष्टि में रखकर अपनी पुस्तकें लिखते थे और समालोचकगण भी उन्हें लोकहित की कसौटी पर कसते थे। मिश्र जी तो अन्य गुणों से हीन होने पर भी—देशहितवा पुस्तकों को बड़ा महत्व देते थे। अम्बिकादत्त व्यास कृत 'भारत सौभाग्य' नाटक की समालोचना करते हुए वे लिखते हैं— यद्यपि नाटकीय दोषों से रहित नहीं है पर कविता मनोहारिणी है और देश के स्नेह से पूर्ण है विशेषतः एन्टी कांग्रेस वालों के मनोभाव बड़ी अच्छी तरह दिखाए गये हैं।'[3] इसी प्रकार मास्टर महेशनन्द रचित 'सुखान्तार्णव' यद्यपि भाषा की दृष्टि से बहुत अच्छी नहीं है फिर भी मिश्र जी उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। यद्यपि यह छोटा सी पुस्तक है और भाषा भी इसकी कुछ बहुत अच्छी नहीं है तथापि अपने ढंग की अद्वितीय है। हमें निश्चय है कि जो बुद्धिमान पक्षपात छोड़ के इसे पढ़ेंगे अवश्य वह कहेंगे कि साधु चरित शुभ सरिस कपासू निरस विसद गुणमय फल जासू।' हम पहिली बार

१ 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या १२ (समालोचना')
२ 'ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ९ (समालोचना')
३ ,, ,, ६, संख्या ८, (,,)

देखने से बहुतेरों को कई एक सन्देह भी उठेंगे पर विचारने से मालूम हो जायगा कि उनके बिना संसार म काम ही नही चल सकता। जस मुँह से कह देना या पुस्तक मे लिख देना सहज है कि सदा सत्य ही बोलना चाहिए' पर बाजे-बाजे ठौर पर इस नियम का निबाह कैसे हो सकता है, यह एक बड़े औरेब का विषय है। वास्तव में इस पुस्तक की उत्तमता जहाँ तक लिखी जाय थोडी है। सच पूछो तो न्याय, बुद्धिमता, व्यवहारकुशलता, आस्तिकता आदि के महासागरा को छोटे से पात्र म भरा हुआ देखना चाहो तो एकान्त म बैठ सच्चे जी से विचार पूर्वक इस पुस्तक को देखो। हम प्रण करके कहते हैं कि इस पर ठीक-ठीक चलने वाले को कभी किसी प्रकार की उलझन सपने म भी न होगी।"[1]

मिश्र जी देश भक्त साहित्यकार थे इसलिए उन्हें देश हितषी कृतियो से बड़ा ममत्व था। वे जब-जब देश हितषी पुस्तकें लिखने के लिए लेखको को प्रोत्साहित भी करते रहते थे। राधाकृष्णदास की 'महारानी पद्मावती' की समालोचना म वे कहते हैं—'श्री राधाकृष्णदास जी के पद्मावती नाटक में जो बात है अद्वितीय है। इधर आय वीरों की धमनिष्ठता देशवत्सलता इत्यादि वास्तविक सद्गुण एवं आय रमणीगण का पतिव्रत कार्यकौशल्य दृढ़ता आदिक सच्चे उदार चरित्र और उधर म्लेच्छाधम वग की स्वार्थपरता तुच्छ मनस्कता लम्पटता निलज्जता, वचकता प्रभृति घृणित कर्मों के ठीक-ठीक फोटोग्राफ देख के किस सहृदय के हृदय मे अलौकिक भाव म उत्पन्न हो जायेंगे सच तो यह है कि यदि प्रत्येक नगर म प्रतिवर्ष ऐसे-ऐसे दो चार नाटक लिखे और खेले जाया करें तो कोई आश्चय नहीं कि भारत भूमि फिर से अपना पूर्व गौरव ग्रहण करने लगे।"[2]

मिश्र जी की समालोचनाओं में कहीं-कहीं तुलनात्मक समीक्षा का भी क्षीण रूप दिखाई पड़ता है जो उस समय के लिए एक नई वस्तु है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की प्रेम प्रशसा नामक—व्रजभाषा की कविता के साथ एक उर्दू मुसद्दस को रखते हुए मिश्र जी लिखते हैं—'लखनऊ निवासी मिरजा रजब अली बेग साहब सुरूर का लिखा हुआ 'फिसाने अजायब' उरदू के उत्तम ग्रन्थों में से है उसम एक मनोहर मुसद्दस है जिसका पहला चरण यह है कि क्या मैं इस काफिरे बदकेश का अहवाल कहूँ, यह छप्पै उन्हीं पदपदियों का अनुवाद है जो रसिक उरदू वाले छद को देख-देख के इन्हें पढ़ेंगे वे अधिक आनन्द पावेंगे। यद्यपि कविता के लिए उरदू भी बुरी नही है वरंच खड़ी पड़ी बोली से कहीं भली होती है पर व्रजभाषा के आगे

---

१ ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ७ ('समालोचना')

२ राधाकृष्णदास महारानी पद्मावती' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ २ सम्मति से।

क्या है ? यही दिखलाने को हम यह छप्पय यहाँ प्रकाशित करते और उर्दू वाले मुनसिफ को भी दखते जाने का निवेदन करते हैं। [1]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने समालोचना की समालोचना करने का भी सूत्रपात किया। एक बार राधाचरण गोस्वामी ने गोविन्दनारायण कृत 'शिक्षा सोपान' की की समालोचना की और उसमें ग्रन्थकर्त्ता का दोष सिद्ध किया पर यह मत मिश्र जी को उचित नहीं जान पड़ा। वे लिखते हैं—'श्री गोविन्दनारायण जी कृत शिक्षा सोपान की समालोचना में श्री मुख की आज्ञा है कि ग्रन्थकर्ता दोष मालूम होते हैं। अर्धचन्द्र पर बड़ा जोर दिया है।' भला पठन पाठन की पुस्तकों में अर्धचन्द्र क्या न रहना चाहिए? फिर गोस्वामी जी को कौन वर्ण-पिशाची सिद्ध है जो ग्रन्थकार को मत बदल गई? आप वैष्णव हैं तो क्या अर्धचन्द्र उड़ा देंगे? ऐसा हठोद्-दन किस काम का।' [2]

मिश्र जी किसी-किसी समालोचना—में आवश्यकतानुसार लेखक को सुझाव भी देते थे। मास्टर नन्हेमल रचित 'सुखस्वाती' की समालोचना के अन्त में वे कहते हैं— मास्टर साहब से हमारा इतना सानुरोध निवेदन और है कि यदि इसकी टीका भी छापा दें तो केवल अक्षर जानने वाले भी इसके स्वाद से विमुख न रहें। अभी इसके समझने में बुद्धि लड़ानी पड़ती है। [3] इस प्रकार मिश्र जी की समालोचना युग सापेक्ष थी। वे अपने युग के साहित्य को युगानुरूप देखना चाहते थे।

सामयिक पत्रों की समालोचना

सामयिक पत्रों में मिश्र जी ने वैष्णव-पत्रिका [4] हिन्दोस्थान [5] दिनकर प्रकाश [6] कान्यकुब्ज प्रकाश, [7] आनन्द कादम्बिनी [8] सुश्रुत-संहिता [9] आदि की समालोचनाएँ लिखी हैं। ये समालोचनाएँ मात्र विज्ञापन के रूप में लिखी गई हैं। इनका उद्देश्य जनता में पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार करना रहा है। उदाहरण के लिए 'सुश्रुत-संहिता' की समालोचना देखिए—'वैद्यक वह विद्या है जिसके बिना जीवमात्र

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ४ 'प्रेम प्रशंसा' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
२ ,, ,, ३ ,, ७, ('मुनीनां च मतिभ्रम')
३ ,, ,, १ ,, ७ ('समालोचना')
४ ,, ,, १ ,, ५, ('आलोचना')
५ ,, ,, १ ,, १० ('प्राप्ति स्वीकार')
६ ,, ,, २, ,, १ (समालोचना)
७ ,, ,, २, ,, २ ('समालोचना')
८ ,, ,, ३ ,, ७ ('प्राप्ति स्वीकार')
९ ,, ,, ३ ,, ८, ('सुश्रुत-संहिता)

की जीवनयात्रा नहीं चल सकती। शास्त्रकारों ने जो लिखा है—'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यम्मूलमुत्तमम'—हम जानते हैं कि इस वाक्य में सहृदयगण का तो कहना ही क्या है नर पशु को भी सदेह न होगा। पर यह खेद का विषय है कि अब सब हमारे देश भाई इससे ऐसे वचित हैं कि कहना ही नहीं। भला हमारे महर्षियों से अधिक भी किसी विद्या का कोई जानता होगा जिनकी असीम बुद्धिमता इसी से प्रगट है कि इस विद्या का नाम आयुर्वेद रक्खा है। यदि और ग्रन्थ न पढ़ो तो अपन वेद को तो न छोड़ो। इस विषय म हम बहुत लिखने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दुओं से और वद से कितना सम्बन्ध है। वेद का ही छोटा भाई आयुर्वेद है। क्योंकि उपवद कहाता है वरच हम तो बड़ा भाई कहगे क्योकि उसम बरसों विवाद करने पर भी सदेह बना रहना संभव है। वरच बहुत सी बातें केवल आंख मूंद के मान लव, नहीं तो नास्तिक्य का भय है और इसकी जो बात है प्रत्यक्ष है। सुश्रुत चरक और वाग्भट्ट इस विषय के परम प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। यदि उनमे से कोई ग्रथ मिलता हो और न ले तो उससे ज्यादा भकुआ कौन होगा। कलकत्ते के श्री अविनाशचन्द्र कविरत्न और श्री चन्द्रकुमार कविभूषण इस प्रतिमास प्रकाशित करते है। चिकित्सा सम्मिलनी आफिस म मिलता है। बहुत रु० भी न चाहिए केवल ॥) महीने का नुस्खा है।[१]

मिश्र जी पत्र पत्रिकाओं की समालोचना लोकहित और हिन्दी प्रचार को दृष्टि मे रखकर करते थे। जो पत्र जितना ही लोकहितैषी और हिन्दी प्रचारक होता था मिश्र जी उसकी उतनी ही प्रशंसा करते थे। वैष्णव पत्रिका" की समालोचना म वे लिखते हैं— इस पत्र क उत्तम प्रबन्ध और लखों पर जब ध्यान किया जाता है तो हिन्दी भाषा के पत्रों की प्रतिष्ठा के कारण ऐसे ही पत्र कहे जा सकते हैं। इस पत्र का जो उद्देश्य है उसके विपरीत किसी नम्बर में कोई लेख नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त लेखों में परस्पर विरोध नहीं होने पाता और ऐसा विचार रखना साधारण मनुष्य का काम नहीं किन्तु वह विद्वान और न्यायशील से ऐसा निर्वाह हो सक्ता है। फिर दर्शनों का हिन्दी में अनुवाद कितना उत्तम है और लाभदायक विषय है सो इसमे भली भाँति देखने में आता है। हम सम्पादक महाशय को बड़ा धन्यवाद देते हैं कि इतना बड़ा परिश्रम सर्वसाधारण के हित के लिए करते हैं। कोई यह न समझे कि यह केवल वैष्णवों का हितकारी है वरन यह वह पत्र है कि जिसका देखना आर्य मात्र को अत्यावश्यक है।[२] ऐसे ही मिश्र जी ने 'हिन्दोस्थान' पत्र की भी बड़ी प्रशंसा की है। यह पत्र सन् १८८३ ई० में राजा रामपालसिंह

१ ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ८ ('सुश्रुत संहिता')
२ १ संख्या ५, ('आलोचना)

द्वारा इग्लैंड से निकाला गया था। इसका मूल उद्देश्य भारतीयों की दयनीय स्थिति को अंग्रेजों के सामने रखना था। यह पत्र अंग्रेजी और हिन्दी-दो भाषाओं में निकलता था। मिश्र जी इसके विषय में लिखते हैं— श्रीयुत राजा रामपालसिंह जी महामान्य ने विलायत जाकर हम लोगों के हितार्थ एक मासिक पत्र निकाला है। इसका नाम 'हिन्दोस्थान', भाषा अंग्रेजी और हिन्दी गुण निर्भयत्व निष्पक्षत्व देशहितैषित्व है। परमेश्वर का अनेकानेक धन्यवाद है कि उसने इस चिरकालिक अनर्पतित पराधीन देश की सुधि लेने को ऐसे पुरुषोत्तम उत्पन्न किए हैं जो सहस्रावधि रुपये और वर्षावधि समय लगा के, नाना कष्ट उठा के दूर देश जाके, अन्य देशियों में अपने देश भाइयों की दीन दशा ठीक-ठीक दिखलाके, उनके सुख साधन का प्रयत्न करते हैं निश्चय आर्यावर्त के दिन फिरने का आरम्भ हो चला है। हमारी समझ में इस पत्र को अमूल्य दिव्य औषधि ही कहना चाहिए।[1]

मिश्र जी देशहितैषी पत्रकार थे इसलिए वे सभी सामयिक पत्रों में देश-हितैषी तत्व ही ढूँढते थे और यह उस क्रान्तिकारी युग के लिए आवश्यक भी था। अतः मिश्र जी की सामयिक पत्रों पर लिखी गई समालोचनाएं लोक कल्याण की भावना से परिपूर्ण हैं।

पुराणों की समालोचना

मिश्र जी के समय में नई रोशनी वाले लोग पुराणों को पापाचार अन्ध-विश्वास और आडम्बर का घर समझते थे तथा उनकी—बिना समझे बूझे—कटु भर्त्सना करते थे। मिश्र जी लिखते हैं— 'अंग्रेजी ढंग की शिक्षा पाने वालों में न जाने यह दोष क्यों हो जाता है कि जो बातें सहज में नहीं समझ पड़ती उन्हें मिथ्या समझ बैठते हैं। यदि इतना ही होता तो भी इसके अतिरिक्त कोई बड़ी हानि न थी कि थोड़े से लोग कुछ का कुछ समझ लें। पर रोना यह है कि वे अपनी अनुमति देने में अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न करके बिना समझी बातों के विषय में भी बहुधा निरंकुश भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं जिससे विद्वानों को खेद और साधारण लोगों को क्षोभ उत्पन्न हो के परस्पर की प्रीति में बड़ा भारी धक्का लगता है। आजकल सब समाजें आपस के हेल-मेल को आवश्यक समझती हैं एवं विचारशील लोग सारे धर्म कर्मों से एकता को श्रेष्ठ समझते हैं। पर इन एकताभावुकों में भी बहुत से लोग ऐसे विद्यमान हैं जो अपने यहाँ के मुहाविरे और प्राचीन काल के रंग ढंग से अनभिज्ञ होने के कारण जब तब यह कहते हैं कि पुराण मिथ्या हैं, प्रतिमा पूजन वाहियात है यह सब पंडितों के ढकोसले हैं।'[2] ऐसी स्थिति में मिश्र जी ने

1 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० (प्राप्ति स्वीकार')
2 " १, संख्या ८, ('पौराणिक गूढ़ार्थ')

पुराणों का वैज्ञानिक ढंग से समर्थन किया और उनकी तर्क पूर्ण समालोचना प्रस्तुत की। वे कहते हैं— 'उनके द्वारा संस्कृत के अनेकानेक मुहाविरे मालूम होते हैं फिर क्या उनकी निन्दा की जाय ? क्या चहारदर्वेश और राबिन्सन क्रूसो की कहानियों के समान भी वे नहीं हैं जिनके पढ़ने में लोग महीनों आँखें फोड़ते हैं ?—विदेशी भाषाओं के मारे संस्कृत का पठन-पाठन छूट गया है। अपने यहाँ की उत्तम बातों का खोजना अनभ्यस्त हो रहा है। नहीं तो हम समझा देते, वरंच सब लोग आप समझ जाते कि जिन सज्जनों ने संसार के सारे झगड़े केवल परमेश्वर का भजन अथवा जगत उपकार करने के लिए छोड़ दिये थे जिन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग विद्या पढ़ने और ग्रन्थ बनाने में बिताया था उनकी कोई छोटी से छोटी बात भी निरर्थक नहीं है। फिर पुराण तो बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं।—पुराणों में कोई बात मिथ्या नहीं है वरंच जहाँ-जहाँ मिथ्या की भ्रान्ति होती है वहाँ गूढ़ार्थ भरा हुआ है, जिसे अंगीकार किये बिना भारत का कल्याण नहीं हो सकता।'[1] मिश्र जी ने पुराणों के समर्थन में पौराणिक गूढार्थ,[2] पुराण समझने को समझ चाहिए[3] प्रह्लादचरित्र[4] आदि समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। ये सभी निबन्ध पूर्ण वैज्ञानिक तथा वास्तविक हैं।

मिश्र जी ने पुराणों में छिपे गूढार्थ को बड़ी चतुरता से स्पष्ट किया है। पुराणों में देवताओं के कई हाथ (चतुर्भुजी अष्टभुजी दशभुजी आदि) होने के वर्णन मिलते हैं। मिश्र जी अपने निबन्ध में इसके आशय को इस प्रकार समझाते हैं— 'देवताओं अर्थात् निराकार के पौराणिक रीति से साकार कल्पनामय स्वरूपों के बहुधा चार अथवा आठ भुजा होती हैं। यह उनकी महासामर्थ्य का द्योतन है। हिन्दी में मुहाविरा है कि जब कोई बड़ा काम शीघ्रता के साथ पूर्ण रूप से कोई नहीं कर सकता तो अपने उपासकों से बहुधा कहता है कि भाई अपनी सामर्थ्य भर कर तो रहे हैं, कुछ हमारे चार हाथ तो हुई नहीं कि एक बारगी कर डालें। हमें उन लोगों पर आश्चर्य आता है जो आप तो दिन भर चार हाथ-हाथ कहते सुनते रहते हैं पर प्राचीन विद्वानों की लेखनी से चार हाथ (चतुर्भुज) लिखा हुआ देख सुन के आक्षेप करने दौड़ते हैं। यदि कुछ भी बुद्धि हो तो स्वयं समझ सकते हैं कि चार अथवा आठ हाथ वाले का अर्थ महासामर्थ्यवान है। इसमें तर्क वितर्क का क्या प्रयोजन ? इससे हमम यह उपदेश भी प्राप्त होता है कि यदि हम दो अथवा चार

---

१ ब्राह्मण खण्ड ६   ८ (पौराणिक गूढ़ार्थ)
२ „ „ ९, „ ८९,१०,१२, तथा खण्ड ७ संख्या १२
३ „ ८   १२
४ ९, „ १,

मनुष्य मिल कर अर्थात् चार वा आठ हाथ एकत्रित करके किसी काम को आरम्भ करें तो अकेले की अपेक्षा अधिक सहज और सुन्दर रीति से कर सकते हैं।[१]

मिश्र जी की पुराणों पर लिखी गयी समालोचनाएँ—उस युग को देखते हुए—बड़ी तार्किक और प्रगतिशील हैं। इनकी प्रतिपादन शैली भी बड़ी सुस्पष्ट और प्रभावपूर्ण है। यद्यपि इन समालोचनाओं का सम्बन्ध धार्मिक क्षेत्र से ही है फिर भी इनमें साहित्यिकता पर्याप्त मात्रा में है।

मिश्र जी समालोचनाएँ लिखते समय सरसता पर भी बराबर ध्यान रखते थे। उनकी समालोचनाओं में पाठकों का मन किंचित भी नहीं ऊबने पाता। एक तो उनकी समालोचनाएँ आकार से ही इतनी छोटी हैं कि उनमें कभी भी नीरसता नहीं फटकने पाती। दूसरे वे नीरसता के परिहार के लिए बीच-बीच में हास्य और व्यंग्य के फुहारे भी छोड़ते जाते हैं जिनसे पाठकों का और भी मनोरंजन होता रहता है। उदाहरण के लिए 'सुश्रुत-संहिता' पर लिखी गई समालोचना की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

यदि इसकी टीका नागरी में होती तो सोने में सुगन्ध थी। हिन्दू मात्र के काम की थी पर निरी संस्कृत होने के कारण हम अपने वैद्यराजों से अनुरोध करते हैं कि अवश्य मँगावें। अरे यार जाना दो महीने में एक रोगी सैंत ही में देखा। जाना अमलबयादि का गोली कुछ अधिक बँट गई। इसमें महामुनि डुल्लनाचार्य की टीका है। संस्कृत सरल है दाम थोड़े हैं। फिर काहे को अपनी तारीफ में आपकी यही नासिका सो एको घटी नादिका' औ जाहि दई गोला ताहि गोला सी संगति है' सुनाय ?[२]

मिश्र जी की समालोचनाओं की भाषा भी बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण है। उनकी प्रायः सभी समालोचनाएँ विज्ञापन के रूप में लिखी गयी हैं इसलिए उनकी भाषा कहीं भी जन सामान्य के लिए दुरूह नहीं होने पाई। उदाहरणार्थ अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'वेनिस का बाँका' की समालोचना देखिए—

'यह ऐसा अच्छा उपन्यास है कि हाथ से छोड़ने को जी नहीं चाहता और जिस बात का जिस अध्याय में वर्णन है उसका पूरा स्वादु अनुभव होता है। हिन्दी के भण्डार का गौरव ऐसे ही ग्रन्थों से है। भाषा, कागज और प्रेस अत्युत्तम है। केवल दो दोष हैं। एक छोटा सा तो यह कि छापने वालों की असावधानी से अशुद्धियाँ कई ठौर रह गई हैं। दूसरे बड़ा दोष यह है कि बंगाली आदि में नहीं है कि अब तक छापा हाथ बिक जाती। पर हमारे मित्र उपाध्याय जी को यह समझ के संतोष करना चाहिए कि उनके महान परिश्रम के बदले उन्हें हिन्दी मातृभाषा की सहायता का पुण्य होगा जिसके आगे धन और प्रतिष्ठा का लाभ तुच्छ है।'[३]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ९ ('पौराणिक गुड़ाम')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ८ (सुश्रुत-संहिता)
३, " , ५ " ६, ('समालोचना')

पुराणों का वैज्ञानिक ढग से समर्थन किया और उनकी तर्क पूर्ण समालोचना प्रस्तुत की। वे कहते हैं— 'उनके द्वारा संस्कृत के अनेकानेक मुहाविरे मालूम होते हैं फिर क्यों उनकी निन्दा की जाय ? क्या चहारदर्वेश और राबिन्सन क्रूसो की कहानियों के समान भी वे नहीं हैं, जिनके पढ़ने में लोग महीनों आँखें फोड़ते हैं ?—विदेशी भाषाओं के मारे संस्कृत का पठन-पाठन छूट गया है। अपने यहाँ की उत्तम बातों का खोजना अनभ्यस्त हो रहा है। नहीं तो हम समझा देते वरंच सब लोग आप समझ जाते कि जिन सज्जनों ने संसार के सारे झगड़े केवल परमेश्वर का भजन अथवा जगत उपकार करने के लिए छोड़ दिये थे, जिन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग विद्या पढ़ने और ग्रन्थ बनाने में बिताया था उनकी कोई छोटी से छोटी बात भी निरर्थक नहीं है। फिर पुराण तो बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं।—पुराणों में कोई बात मिथ्या नहीं है वरंच जहाँ-जहाँ मिथ्या की भ्रान्ति होती है वहाँ गूढ़ाशय भरा हुआ है, जिसे अंगीकार किये बिना भारत का कल्याण नहीं हो सकता।[1] मिश्र जी ने पुराणों के समर्थन में पौराणिक गूढ़ार्थ,[2] पुराण समझने को समझ चाहिए,[3] प्रह्लादचरित्र[4] आदि समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। ये सभी निबन्ध पूर्ण वैज्ञानिक तथा वास्तविक हैं।

मिश्र जी ने पुराणों में छिपे गूढ़ार्थ को बड़ी चतुरता से स्पष्ट किया है। पुराणों में देवताओं के कई हाथ (चतुर्भुजी अष्टभुजी, दशभुजी आदि) होने के वर्णन मिलते हैं। मिश्र जी अपने निबन्ध में इसके आशय को इस प्रकार समझाते हैं— 'देवताओं अर्थात् निराकार के पौराणिक रीति से साकार कल्पनामय स्वरूपों के बहुधा चार अथवा आठ भुजा होती हैं। यह उनकी महासामर्थ्य का द्योतन है। हिन्दी में मुहाविरा है कि जब कोई बड़ा काम शीघ्रता के साथ पूर्ण रूप से कोई नहीं कर सकता तो अपने उपासकों से बहुधा कहता है कि भाई, अपनी सामर्थ्य भर कर तो रहे हैं कुछ हमारे चार हाथ तो हई नहीं कि एक बारगी कर डालें। हमें उन लोगों पर आश्चर्य आता है जो आप तो दिन भर चार हाथ-हाथ कहते सुनते रहते हैं पर प्राचीन विद्वानों की लेखनी से चार हाथ (चतुर्भुज) लिखा हुआ देख सुन के आक्षेप करने दौड़ते हैं। यदि कुछ भी बुद्धि हो तो स्वयं समझ सकते हैं कि चार अथवा आठ हाथ वाले का अर्थ महासामर्थ्यवान है। इसमें तर्क वितर्क का क्या प्रयोजन ? इससे हममें यह उपदेश भी प्राप्त होता है कि यदि हम दो अथवा चार

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ ८ ('पौराणिक गूढ़ार्थ)
२ „ „ ६, ८९,१०,१२, तथा खण्ड ७, संख्या १,२
३ „ ८, १२
४ „ ९, १,

मनुष्य मिल क अर्थात् चार वा आठ हाथ एकत्रित करके किसी काम को आरम्भ करें तो अकेले की अपेक्षा अधिक सहज और सुन्दर रीति से कर सकते हैं। [1]

मिश्र जी की पुराणो पर लिखी गयी समालोचनाए—उस युग को देखते हुए—बड़ी तार्किक और प्रगतिशील है। इनकी प्रतिपादन शैली भी बड़ी उत्कृष्ट और प्रभावपूर्ण है। यद्यपि इन समालोचनाओ का सम्बन्ध धार्मिक क्षेत्र से ही है फिर भी इनमे साहित्यिकता पर्याप्त मात्रा म है।

मिश्र जी समालोचनाएँ लिखते समय सरसता पर भी बराबर ध्यान रखते थे। उनकी समालोचनाओ म पाठको का मन किंचित भी नही ऊबने पाता। एक तो उनकी समालोचनाए आकार से ही इतनी छोटी है कि उनम कसे नी नीरसता नही फटकने पाती। दूसरे वे नीरसता के परिहार क लिए बीच-बीच म हास्य और व्यग्य के फुहारे भी छोड़ते जाते हैं जिनसे पाठको का और भी मनोरजन होता रहता है। उदाहरण के लिए 'सुश्रुत-सहिता' पर लिखी गई समालोचना की कुछ पक्तियाँ देखिए—

यदि इसकी टीका नागरी म होती तो सोने म सुगन्ध थी। हिन्दू मात्र क काम की थी पर निरी सस्कृत होने के कारण हम अपने वैद्यराजो से अनुरोध करते हैं कि अवश्य मँगावें। अरे यार जानो दो महीने म एक रोगी सँत ही में देखा। जानो अमलक्यादि की गोली कुछ अधिक घट गई। इसमें महामति डुल्लनाचार्य की टीका है। सस्कृत सरल है दाम थोड़े हैं। फिर काहे को अपनी तारीफ म 'जाकी गही नाटिका सो एकौ घड़ी नाटिका औ जाहि दई गोली ताहि गोनी सी लगति है' सुनावे? [2]

मिश्र जी की समालोचनाओ की भाषा भी बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण है। उनकी प्राय सभी समालोचनाए विज्ञापन के रूप म लिखी गयी हैं इसलिए उनकी भाषा कहा भी जन सामान्य के लिए दुरूह नही होन पाई। उदाहरणार्थ अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत वेनिस का बाँका की समालोचना देखिए—

'यह ऐसा अच्छा उपन्यास है कि हाथ से छोड़न का जी नही चाहता और जिस बात का जिस अध्याय म वणन है उसका पूरा स्वादु अनुभव होता है। हिन्दी क भण्डार का गौरव ऐसे ही ग्रन्थों से है। भाषा, कागज और श्रम अत्युत्तम है। केवल दो दोष हैं। एक छोटा सा तो यह कि छापने वालों की असावधानी स अशुद्धियाँ कई ठौर रह गई हैं। दूसरे बड़ा दोष यह है मराठी बगाली आदि म नहीं है कि अब तक हाथो हाथ बिक जाती। और हमारे मित्र उपाध्याय जी को यह समझ क संतोष करना चाहिए कि उनके महान परिश्रम के बदले उन्हें दु खिनी मातृभाषा की सहायता का पुण्य होगा जिसके आगे धन और प्रतिष्ठा का लाभ तुच्छ है। [3]

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ९ ('पौराणिक गुड़ाप')
२ ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ८ (सुश्रुत-सहिता)
३ " ५ ६ ('समालोचना')

मिश्र जी ने एसी ही भाषा का प्रयोग प्रमुख रूप से—अपनी समालोचनाओं में किया है। हाँ एक दो समालोचनाओं में काव्यमयी भाषा भी प्रयुक्त हुई है जो उनके कवि हृदय की परिचायक है। 'आनन्द कादम्बिनी' की समालोचना इस प्रसंग में द्रष्टव्य है—

रसिकराज अमृतवर्ष, प्रेमतत्व श्री बद्रीनारायण जी (मिरजापुर) की उसी 'आनन्द कादम्बिनी' का फिर से दर्शन हुआ जिसकी प्रशंसा हम क्या हैं हमारे हरिश्चन्द्र एवं श्री बालकृष्ण भट्ट जी ने स्वयं की है। अहाहा। हमारे चितचातक के आनन्द की मिति नहीं है। 'लखि नाचत मन मोर' का ठीक-ठीक अनुभव हम कर रहे हैं और सच्चे जी से प्रार्थी हैं कि हे बदरी! (मेघ) नारायण के निहोरे सदा सर्वदा भारत पर छाई रहियो और हमारे हृदय को सुलझायो रहियो पहिले की भांति। फिर न कहीं किमम्भोदवर! अस्माकं कार्पण्योक्तिम्प्रतीक्षसे? कहना पड़े। क्योंकि अब तो चन्द्रमा के अभाव में तेरा शिर पर रहना ही मंगल है। दस बिचारी नागरी का मुँह कहीं कुम्हलाने न पावे।[1]

मिश्र जी की समालोचनाएं भाषा भाव आदि की दृष्टि से बड़ी चुटीली और प्रभावपूर्ण हैं। यद्यपि उनमें समालोचनाओं की उत्कृष्टता नहीं है फिर भी उनका अपना ऐतिहासिक महत्व है। जो तत्व मिश्र जी की समालोचना में अंकुरित हो रहे थे वे ही आज की समालोचना में विकसित होकर पुष्पित और फलित हो रहे हैं। आज का समालोचना साहित्य अपनी पूर्व परम्परा का विकसित रूप है। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा के शब्दों में— आज हिन्दी का आलोचना साहित्य गर्व करने योग्य स्थिति में है उसका भविष्य आज बीते कल की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल है। किन्तु आज का आलोचना साहित्य अपनी इस स्थिति को वायु-यात्रा करके नहीं पहुंचा है उसकी यात्रा का पिछला पथ यद्यपि आज धुंधला हो गया है किन्तु आज की परिणति का सारा श्रेय उस भूले और पिछले पथ को ही है।[2] मिश्र जी का समालोचना साहित्य हिन्दी समालोचना का प्रारम्भिक साहित्य है इसलिए यदि उस हिन्दी समालोचना साहित्य का मूल कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। जब भी हिन्दी साहित्य-समालोचना का इतिहास लिखा जायगा मिश्र जी हिन्दी समालोचना-साहित्य के जन्मदाताओं में अग्रणी रहेंगे।

अनूदित साहित्य

मिश्र जी के समय में हिन्दी अनुवाद की परम्परा अपने उत्थान पर थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से प्रेरित होकर अनेक साहित्यकार इस काम में संलग्न थे।

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ७ (प्राप्ति स्वीकार')

२ डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई), पृष्ठ ३७१

उस समय संस्कृत और बंगला का प्रौढ़ साहित्य प्रचुर मात्रा में हिन्दी लेखकों के सामने था उसी का अनुवाद वे प्रमुख रूप से हिन्दी में कर रहे थे। श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने कई अंग्रेजी ग्रन्थों का भी हिन्दी में अनुवाद किया था। इन लेखकों के अनुवादों का प्रमुख उद्देश्य हिन्दी-भाषा को समृद्धिशाली बनाना था।

मिश्र जी भी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में—बाबूरामदीन सिंह की प्रेरणा से अनुवाद-क्षेत्र में अवतरित हुए और लगभग दो दर्जन बंगला-कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया। बाबू रामदीन सिंह खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर) के मालिक थे और इन्हीं के संरक्षण में मिश्र जी की समस्त कृतियों का मुद्रण और प्रकाशन होता था। अतः मिश्र जी का सम्पूर्ण अनूदित-साहित्य इन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है। मिश्र जी ने केवल बंगला कृतियों का ही अनुवाद किया है। मिश्र जी का अनूदित-साहित्य बालोपयोगी-साहित्य से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम मिश्र जी ने बाबू रामदीन सिंह की आज्ञा से बंगला के बालोपयोगी-साहित्य का अनुवाद प्रारम्भ किया था जिसकी सूचना इस प्रकार मिलती है— मेरे अनेक मित्रों की यह राय हुई है कि बालकों के पढ़ने के लिए आजकल ऐसी छोटी-छोटी नीति और धर्म की पुस्तकें छपना चाहिए जिनसे उनकी नीतिशिक्षा और धर्मशिक्षा होती रहे, क्योंकि स्कूल की वर्तमान शिक्षा में बड़ी हानि हो रही है इसलिए मैंने भारतवर्ष के प्रसिद्ध सुनीति और धर्म्म प्रचारक कुमार कृष्णप्रसन्नसेन परिव्राजक जी (श्री कृष्णानन्द स्वामी) की बंगला 'नीतिरत्नमाला' और 'पद्यामृत' को अपने परम मित्र 'ब्राह्मण' सम्पादक पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी के पास भेज दिया कि इसका उल्था कर दीजिए उन्होंने बड़ी शीघ्रता से इसका उल्था करके मेरे पास भेज दिया और उन्होंने कृपा पूर्वक यह लिखा कि इस प्रकार का जितना काम हो मैं प्रस्तुत हूँ इस प्रकार का और भी ग्रन्थ धर्म तत्व की पुस्तकें छापने का इरादा है ऐसे सज्जन लोगों की इधर बड़ी गुनग्राहकता होती है।[1] इस प्रकार मिश्र जी का अनूदित साहित्य 'नीतिरत्नावली' (नीतिरत्नमाला) और 'पद्यामृत' से ही प्रारम्भ होता है। ये दोनों कृतियाँ सन् १८९१ ई० में प्रकाशित हुई थीं। इनके मुख पृष्ठ पर लिखा था—"ब्राह्मण प्रसिद्ध प्रतापनारायण मिश्र ने श्रीमन्महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह के आज्ञानुसार अनुवाद किया। इसके बाद मिश्र जी ने इतिहास, भूगोल, कहानी आदि अनेक बालोपयोगी अन्य पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इनमें अधिकांश पुस्तकें बिहार शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम में स्वीकृत भी हो गयी थीं क्योंकि उस समय बाबू रामदीन सिंह का बड़ा

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'पद्यामृत' (१८९१ ई०) प्रकाशक के अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन से।

सम्मान था और वे एक प्रकार से बिहार शिक्षा विभाग की पुस्तकों के सर्वाधिकारी बन गये थे।[1] मिश्र जी के बालोपयोगी अनुवादों का प्रमुख उद्देश्य बालकों को शिक्षा देना रहा है। ये अनुवाद इतिहास, भूगोल विज्ञान स्वास्थ्य रक्षा नीति धर्म आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। नीति धर्म की कहानियाँ भी आदर्श चरित्र को लेकर उपस्थित हुई हैं। उदाहरण के लिए 'चरिताष्टक' प्रथम भाग के पद्मलोचन मुखोपाध्याय के चरित्र की कुछ पंक्तियाँ देखिए— "यह एक साधारण गृहस्थ के लड़के थे। इनको बहुत लोग जानते भी न थे पर उत्तम गुण इनमें पूर्ण रूप से प्रस्तुत थे। ११८५ हिजरी (१७७८ ई०) में हावड़ा जिले के बालीग्राम में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम गोकुलचन्द्र मुकरजी था जो कुलीन और प्रतिष्ठित पुरुष थे। कलकत्ते में नौकर थे। तीन चार सौ रुपया महीना कमाते थे, इससे खाने पहिनने का दुःख न था। पद्मलोचन इनके ज्येष्ठ पुत्र थे जो पाँच वर्ष की अवस्था में पढ़ने के लिए पाठशाला में बिठाले गये फिर कुछ दिन पीछे जान बाजार के फ्री स्कूल में भेजे गये। वहाँ नाना के यहाँ रह के अंगरेजी पढ़ने लगे (बहू बाजार वाले पाकड़ाशी इनके नाना का वंश है) इस स्कूल में प्रायः सभी लड़के अंगरेजों और फिरंगियों के थे उनमें से बहुतों को उन्होंने अपने गुणों से मोहित कर लिया। सब इनकी प्रीति में सुखी थे। पद्मलोचन भी अपना अवकाश का समय इन्हीं के साथ व और-और साहबों के संग बिताते थे। अंग्रेजों के साथ बातचीत करते करते बोलने का अभ्यास बहुत अच्छा हो गया और साथ ही अंग्रेजों की सी सहनशीलता देशहितपिता परिश्रम साहस, सब सद्गुण भी आ गये किन्तु पतलून पहिनना मदिरा पीना धर्म न मानना आदि अवगुण एक भी न व्यापा यह बड़े अचम्भे की बात है।"[2]

आगे चलकर मिश्र जी ने राय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के आठ-दस बंगला उपन्यासों का भी अनुवाद किया। ये अनुवाद पाठकों के मनोरंजनार्थ और हिन्दी के प्रचारार्थ किये गये थे। इनका सामान्य जनता में बड़ा आदर हुआ। इन अनुवादों में रोचकता प्रचुर मात्रा में है। उदाहरणार्थ 'युगलांगुरीय' उपन्यास का एक उद्धरण लीजिए— "दो जने उद्यान में लतामण्डप के तले खड़े थे। उस समय प्राचीन नगरी ताम्रलिप्ति के चरण धोता हुआ अनन्त नील समुद्र मृदु मृदु कलरव करता था। ताम्रलिप्ति नगरी के प्रान्त भाग में समुद्र के तट पर एक सुन्दर कोठी थी उसके निकट एक सुनिर्मित वाटिका थी। धनदास नामक सेठ उसके अधिकारी थे। सेठ की कन्या हिरण्मयी लतामण्डप में खड़ी हुई एक युवा पुरुष के संग बातें करती थी।"[3]

---

१ बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३०
२ प्रतापनारायण मिश्र 'चरिताष्टक' प्रथम भाग (१८९४ ई०) पृष्ठ५०
३ , 'युगलांगुरीय' , (१९१४ ई०) पृष्ठ २

मिश्र जी ने अपने अनुवाद बालकों तथा सामान्य-व्यक्तियों को दृष्टि में रख कर किये हैं इसलिए उनकी भाषा बड़ी वास्तविक चलती हुई तथा सरल है। कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया गया है तथा एक आध उर्दू फारसी के भी प्रचलित शब्द यत्र-तत्र आ गये हैं पर कहीं भी भाषा दुरूह या नीरस नहीं होने पायी है। मिश्र जी की भाषा सर्वत्र भावानुरूपिणी है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

'सुबोध विचारमान वैष्णवों को छोड़ के साधारण बुद्धि के वैष्णव बहुधा कहा करते हैं कि देवी तो केवल एक परमा वैष्णवी' मात्र है इसी भाँति महादेव जी को भी केवल एक वैष्णव समझते हैं, पर उनका भ्रम है। जहाँ-कहीं पुराणों में भगवती का नाम वैष्णवी लिखा है वहाँ यह अर्थ नहीं है कि विष्णुदेव की सेवा करनेवाली स्त्री किन्तु इसका तात्पर्य यह है कि जिस अनादि शक्ति का आश्रय ले के विष्णु भगवान त्रलोक्य की रक्षा करते हैं उसी का नाम वैष्णवी है जिस शक्ति के बिना विष्णुदेव का विष्णुत्व नहीं रह सकता उसे वैष्णवी शक्ति कहते हैं। इसी प्रकार उसका नाम शची-शक्ति एवं ब्राह्मी-शक्ति है। इसका अर्थ भी शिव और ब्रह्मा की सहाय करने वाली है। क्योंकि उसी महाशक्ति से त्रिदेव की उत्पत्ति है।[1]

मिश्र जी के अनुवादों की शैली भी वर्णनात्मक तथा सुबोध है। उनकी शैली में सर्वत्र उनके व्यक्तित्व की छाप दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त रोचकता तो उसका अपना गुण ही है। 'राधारानी' उपन्यास का एक उद्धरण देखिए— राधारानी की माता ने पथ्य लिया किन्तु उस रोग से मुक्त होना अदृष्ट में न था। वह अति शय धनी थी, अब अति दुखिनी हो गयी है। ये शारीरिक और मानसिक दो प्रकार के कष्ट उससे सहे नहीं हुए। रोग ने क्रम से बढ़कर शेष काल उपस्थित किया। उस समय में विलायत से संवाद आया कि प्रिवि-कौन्सिल की अपील में उनके पक्ष में निष्पत्ति हुई है अब वह अपनी सम्पत्ति पुनः प्राप्त करेगी और वासिलात का रुपया भी पावेगी और अदालत का खर्चा भी मिलेगा।[2] मिश्र जी के अनुवादों में उनकी अपनी शैली है इसी में उनकी नवीनता है। नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते हैं— इन अनुवादित पुस्तकों में भी पं० प्रतापनारायण मिश्र की अपनी शैली विद्यमान है। इनकी भाषा में भी वही प्रवाह और चुटीलापन है जो मिश्र जी की मौलिक पुस्तकों में पाया जाता है।[3]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र पंचामृत (१८९१ ई०) पृष्ठ १२ ११।
२ राधारानी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ९१।
३ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ १२१।

मिश्र जी का अनूदित साहित्य मूल ग्रन्थों का अक्षरशः अनुवाद है। मिश्र जी ने मूल ग्रन्थों की कथावस्तु, चरित्र चित्रण, पात्रों आदि में कोई परिवर्तन नहीं किया। यहाँ तक कि अध्याय परिच्छेद और खण्ड तक मूल-ग्रन्थों पर ही आधारित है। केवल भाषा-शैली बदली हुई है। उदाहरणार्थ 'कपालकुण्डला' का एक उदाहरण लीजिए— ए दिके कापालिक गृह मध्ये तन्न-तन्न करिया अनुसंधान करिया ना खड्ग ना कपाल कुण्डला के देखिते पाइया संदिग्धचित्ते सकते प्रत्यावर्तन करिलो। तथाय आसिया देखिलो जे नवकुमार तथाय नाइ। इहाते अत्यन्त विस्मय जन्मिल। कियत्क्षण परेइ छिन्नलता बन्धनेर ऊपर दृष्टि पड़िलो। तखन स्वरूप अनुभूत करिते पारिया कापालिक नवकुमारेर अन्वेषणे बाहिर होइला किन्तु विजनमध्ये पलातकेरा कोन दिके कोन् पथे गियाछे, ताहा स्थिर करा दुःसाध्य। अन्धकारवशतः काहाकेओ दृष्टिपथवर्ती करिते पारिल ना। एक जन्य वाक्य शब्द लक्ष्य करिया क्षनेक इतस्ततः भ्रमन करिते लागिल। किन्तु सकल समय कण्ठध्वनि ओ सुनिते पाओया गेल ना। अतएव विशेष करिया चारी दिक पर्यवेक्षण करिवार अभिप्राय एक उच्च बालियाड़ीर शिखर उठिन। कापालिक एक पार्श्व दिया उठिल। ताहार अन्यतम पार्श्वे वर्षार जलप्रवाहे स्तपमूल क्षयितहोइयाछिल, ताहा से जानित ना शिखरे आरोहन करिवामात्र कापालिकेर शरीरतरे सेई पतनोन्मुख स्तूपशिखर भग्न होइया अति घोर रवे भूपतित होइल। पतन काल पर्वतशिखरच्युत महिषेर न्याय कापालिक आ तत्सगे पड़िया गेल।[1]

इसी का अनुवाद मिश्र जी इस प्रकार करते हैं— इधर कापालिक न गृह में रत्ती रत्ती अनुसंधान करके और न खड्ग और न कपाल कुण्डला को देख के संदिग्ध चित्त से सैकत की ओर लौटा। वहा देखा कि नवकुमार भी नहीं है। इससे अत्यन्त विस्मय हुआ। थोड़ी दूर पीछे ही छिन्न लताबन्धन के ऊपर दृष्टि पड़ी। तब तो अनुभव करके कापालिक नवकुमार के अन्वेषण में धावित हुआ। किन्तु विजन में वह किधर किस मार्ग होकर गया है यह स्थिर करना दुःसाध्य था। अन्धकार के कारण किसी को भी देख न सका। इसलिए वाक्य शब्द लक्ष्य करके क्षण भर इधर उधर भ्रमण करने लगा, किन्तु कण्ठध्वनि भी सुनाई न दी। अतएव अच्छी तरह चारो ओर पर्यवेक्षण करने के अभिप्राय से ऊँचे बालू के एक टीले पर चढ़ गया। कापालिक एक ओर से चढ़ा उसका दूसरा किनारा वर्षा के जलप्रवाह से खधर गया था इसे वह नहीं जानता था। शिखर पर आरोहण करते ही उसके शरीर के भार से वह पतनोन्मुख शिखर भग्न हो के अत्यन्त घोर रव पूर्वक पृथ्वी में पतित

---

१ 'बंकिमचन्द्रेर उपन्यास ग्रन्थावली' तृतीय भाग (राज संस्करण) 'कपालकुण्डला' पृष्ठ १२

हुआ। पवत शिखर से च्युत महिप की भांति कापालिक भा उसके संग गिर पड़ा।[१]"

इसके साथ ही मूल ग्रन्थ म दिये हुए अंग्रजी के उदाहरणो का भी मिश्र जी प्राय अक्षरश अनुवाद करते थे। देखिए—

"And the great lord of Luna
Fell at that deadly stroke,
As falls on mount Alvernus
A thunder - smitten oak'[२]

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

खाय प्रान हरघाय गिर्‌यो नरनायक ऐस।
गिरि पर तरुवर गिरै वजर को मार्‌यो जसे॥[३]'

मिश्र जी के अनूदित-साहित्य म उनकी अपनी मौलिकता की निहायत कमी है। केवल भाषा-शली म ही उनकी थोडी बहुत मौलिकता दिखाई पड़ती है। फिर भी मिश्र जी का आनूदित साहित्य अपने युग के लिए बडा उपयोगी था। उसम लोकहित और हिन्दी प्रचार की भावना प्रचुर मात्रा म थी। उससे बालका के चरित्र निर्माण और हिन्दी के विकास म बडी सहायता मिली। मिश्र जी के रंजनात्मक अनुवादों ने तो एक नया पाठक समुदाय ही तैयार कर दिया था। मिश्र जी के अनुवाद अपन उद्देश्य म पूरी तरह सफल हैं। अत विशिष्ट-मौलिकता के न होने हुये भी वे सराहनीय हैं।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र कपालकुण्डला (१९१४ ई०) पृष्ठ ३३ ३४
२ —वही— ३३
३ —वही— ३३

उपसंहार

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार और मिश्र जी

साहित्यकार जिस युग विशेष में पैदा होता और रहता है उस युग का कुछ न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। हाँ युग के प्रभाव की मात्रा अवश्य *साहित्यकार के व्यक्तित्व प्रतिभा और रुचि के अनुसार कम या ज्यादा हुआ करती है पर युग के प्रभाव से साहित्यकार* बिल्कुल निरपेक्ष नहीं हो सकता। इसी प्रभाव के ही कारण किसी काल विशेष के साहित्यकारों की बहुत-सी विशिष्टताएं भी प्राय एक-दूसरे से मिल जाया करती हैं। युग के प्रभाव का साहित्यकार के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो साहित्यकार जितना ही युग सापेक्ष होता है वह उतना ही लोक प्रिय और अपने काम में सफल होता है। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों पर युग का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है और इसीसे उनकी विशिष्टताएँ भी बहुत कुछ *मिलती-जुलती हैं। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार एक-दूसरे के बहुत निकट पहुंचे* दिखाई पड़ते हैं। अत इस युग के किसी एक साहित्यकार के अध्ययन के लिए पूरे युग को देखना और युग के बीच ही उसका स्थान निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। युग को साथ लेने से एक तो साहित्यकार की सम्पूर्ण विशिष्टताएँ सहज ही सामने आ जाती है दूसरे उसकी जागरुकता और अनुभूति की गहराई का भी पता लग जाता है। इसी से यहाँ पर मिश्र-साहित्य के समुचित मूल्यांकन के लिये भारतेन्दु-युग के प्रमुख साहित्यकारों के दृष्टिकोण और उनके साहित्य के बीच मिश्र जी को देखने का प्रयास किया गया है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों का सामाजिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार समाज को विकासशील देखना चाहते थे। उन्हें समाज की सकीर्णता बिल्कुल प्रिय नहीं थी। समाज में फैले हुए अनाचार, बाल्य विवाह, नशाखोरी, छुआछूत, पर्दाप्रथा, साम्प्रदायिकता, फूट आदि के वे घोर विरोधी थे। उनमें समाज के नव विकास की चेतना प्रचुर मात्रा में थी। वे देशकाल के अनुकूल समाज को आगे बढ़ाना चाहते थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जनता को समझाते हुए कहते हैं—

देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हों उनको ग्रहण कीजिए। बहुत-सी बातें जो समाज विरुद्ध मानी हैं किन्तु धर्म शास्त्रों में जिनका विधान है, उनको चलाइये। जैसे जहाज का सफर विधवा विवाह आदि। लड़कों को छोटेपन

मे ब्याह करके उनका बल वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइये। आप उनके माँ बाप हैं या उनके शत्रु हैं। वीर्य उनके शरीर मे पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लने दीजिए नोन, तेल लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए तब उनका पर काठ में डालिए। कुलीन प्रथा बहु विवाह को दूर कीजिए। लड़कियो को भी पढ़ाइए किन्तु उस चाल से नही जसे आजकल पढ़ाई जाती हैं जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखें पति की भक्ति करें और लड़को को सहज म शिक्षा दें। वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का बर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ो का नही। हिन्दू जन, मुसलमान, सब आपस म मिलिए। जाति म चाहे कोई ऊचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।' [1]

इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट भी बाल्य विवाह अनाचार आदि की भर्त्सना व्यग्य के माध्यम से बड़े अच्छे ढग से करते हैं। देखिए—'दुहिता के जन्म दिवस के पाँचवें दिन विवाह कर दिया करो ऐसा न हो कि कन्या कहा रजस्वला हो जाय नहीं तो धर्म ही नष्ट हो जायगा और इक्कीस पुरखा नरक म पड़-पड़े चिल्लाया करेंगे। महाकृपणता से कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ो पर लड़कों के ब्याह म गजिया की गंजिया लुढ़का दिया करो। घर के भीतर सात तहखाना में सदा बन्द रहो। बाहर न निकलना बाहर निकले और जात गई। दूसरी बड़ी हानि इसम यह होगी कि कही ऐसा न हो कि विदेशी सभ्यता की हवा मुन्ह लग जाय। हाथ पाँव ढीला कर अदृष्ट पर विश्वास किये चपचाप बठे रहो जिसम पुरुषार्थ की जड़ कटी रहे। आँख म पट्टी बाँधे सोते रहो। उसे खोलना नही कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें सूझने लगे और हिये की जो फूटी हैं सो खुल जायें। " काल अब बड़ा कराल आया है कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी दुर्बुद्धि का शोधन हो जाय तो फिर दुर्व्यसन खुशगर्जी फिजूलखर्ची बाल्य विवाह बैर फूट आदि बेचारे किसके सहारे रहेंगे। सम्हले रहो देखो ऐसा न हो कि औरों की देखादेखी तुम भी अवनति को दूर बहा उन्नति की सीढ़ी पर पाँव रखने लगो। खुशामद इस मूल मन्त्र के जप से कभी मुँह न मारो काम पड़ने पर हाँ म हाँ मिला दिया करो। देश चाहे सत्यानाश हो अपना मतलब ता सपन न होन पावेगा।' [2]

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली तीसरा खण्ड (२०१० वि०) पृष्ठ ९९१ (भारतवर्ष की कैसे उन्नति हो सकती है?)

२ हिन्दी प्रदीप' मई १८७८ ई० पृष्ठ ८६

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी बाल्य विवाह का विरोध इस प्रकार करते हैं— एसी अवस्था म ऐसी निर्दयता, कठोरता और अन्याय के साथ जो विवाह प्राय बाल्यावस्था म ही किया जाता है, यद्यपि उससे जो जो आपत्तियाँ आती हैं वर्णन उनका सर्वथा असम्भव है, पर तो भी यह तो प्रसिद्ध है कि ऐसे ब्याह स आपस की प्रीति और मल कैसे उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है। अन्याय प्रकृति का प्रतिकूल होना हर अवस्था म दुख का विषय है किन्तु इस स्थान पर धर्माधम तथा शास्त्राज्ञा का कुछ भी विचार नहीं करते। [१]

प्रेमघन' जी सामाजिक मामलो में अधिक नहीं रम पर जितना लिखा है प्रभावपूर्ण लिखा है। इसके साथ राधाचरण गोस्वामी ने भी समाज के नवोत्थान के लिए जनता का विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। लेकिन बालकृष्ण भट्ट आदि की तरह सामाजिक मामलो मे अधिक उग्र और स्पष्ट नही हो सके। कारण कि ये गोस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य और गद्दी क अध्यक्ष थे तथा धार्मिकता भी इनम पर्याप्त थी।[२] इसलिए ये बराबर अपनी सीमाओ का ध्यान रखकर चल हैं। इनके विचार बहुत कुछ भारतेन्दु से मिलते है। भारतेन्दु की तरह नम्रनीति का ही इन्होने पालन किया है। इसके अतिरिक्त अन्य भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों—अम्बिका दत्त व्यास ठाकुर जगमोहन सिंह लाला श्री निवासदास आदि ने सामाजिक मामलो म अधिक रुचि नहीं दिखाई। ये लोग प्रमुख रूप से स्वान्त सुखाय रचनाएँ लिखते थे।

प्रतापनाप नारायण मिश्र सामाजिक मामलों मे बहुत आगे थे। इनके विचार बडे उग्र तथा स्वच्छन्द थे। ये समाज की कुरीतियो की जी खोलकर भर्त्सना करते थे। भलमंसी' पर किया गया इनका व्यग्य देखिए— यदि भलमंसी यही है कि नाना भाँति के क्लेश और हानि सहना पर पुरानी लकीर के एक अंगुल भी बाहर न होना, बिरादरी म दो दिन की वाह-वाह के लिए ऋण मात्र के सैकड़ों की आतिशबाजी छिन भर में फूँक के संतान के माथे कर्ज मढ़ जाना, केवल नाई और पुरोहित की प्रसन्नता के लिए साठ बरस और आठ बरस के वर कन्या की जोडी मिलाना तथा दोनो का जन्म नशाना पाँच बरस की विधवा का यौवन काल मे व्यभिचार एव भ्रूणहत्या टुकुर-टुकुर देखते रहना, बरंच छिपाने का यत्न करना पर विधवा विवाह का नाम लेने वालों से मुह बिचकाना भूलो मर जाना पर अपना पराया धन लगा के छोटा मोटा धधा तथा दस-पाँच की नौकरी न करना, लड़कियों को जवान बिठला रखना

---

१ प्रमघन-सवस्व द्वितीय भाग (२०१७ वि०), पृष्ठ १८७ (विधवा विपत्ति वर्षा)।

२ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल' (प्रथम सस्करण) पृष्ठ १५०

उनका मनोवेदनाजनित शाप सहना पर बराबर वाल अथवा कुछ अठारह बीस विधुर बराज के साथ विवाह न करना, दहेज की दुष्ट प्रथा के मारे नई पौध की उन्नति मिट्टी म मिलाना, बध-बाधव होटलो में खाया करें विधर्मिनी स्त्रियों के मुँह म मुँह मिलाया करें अथवा कोटि कोटि कुकर्म कर कर जेल म जाया करें, कुछ चिन्ता नही पर विद्या पढ़ने और गुण सीखने के लिए विलायत हो आवें तो उन्हें जाति म न मिलाना। एक कल्पित शब्द के पीछे बुद्धि की आँखो म पट्टी बाँधना अपने हाथो म कुल्हाडी मारना देख सुन क, सोच समझ क जान बूझ के, अनर्थ करना और दुःख पर दुःख सहते रहना ही यदि भलमसी है तो ऐसी भलमसी को दूर ही स नमस्कार है।"[1]

मिश्र जी के विचार बड़ नवीन तथा वैज्ञानिक थे। वे पुरानी बातो को परम्परा के रूप मे ग्रहण करके उपयोगिता के रूप म लेते थे। उन्होंने सामाजिक मामलों में—अपने युग के सभी साहित्यकारो से अधिक दिलचस्पी दिखाई है और सबसे अधिक समाजोपयोगी साहित्य लिखा है। इसी से डॉ० देवीशंकर अवस्थी लिखते हैं—"इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा कि समसामयिक जीवन के प्रति जितनी सघन जागरूकता पं० प्रतापनारायण मिश्र में प्राप्त होती है, उतनी भारतेन्दु म भी नही मिलती।"[2] वस्तुत मिश्र जी का सामाजिक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक तथा स्तुत्य है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों का राजनीतिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। इसलिए इस युग के अधिकांश साहित्यकार देशभक्त थे। उनमे राष्ट्रीय चेतना का प्राधान्य था। वे यदि राजभक्ति भी दिखलाते थे तो देशभक्ति से ही अनुप्राणित होकर। अंग्रेजों की शोषण नीति की वे खुलकर भर्त्सना करते थे। डॉ० हरदेव बाहरी लिखते हैं—"इन कवियो की भावुकता और स्वच्छन्द वृत्ति का प्रदर्शन, इनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और व्यापक भावनाओं की अभिव्यंजना स होता है। ये भारत की दरिद्रता और अंग्रेजों द्वारा किय गये आर्थिक शोषण पर बराबर दुःख प्रगट करते रहे हैं, जनता से संगठित होने को कहते रहे हैं और सरकार से शासन सम्बन्धी सुधारो की माँग भी जोर स करते रहे हैं।"[3] भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों को यह स्पष्ट ज्ञात था कि अंग्रेजों स भारत का हित न होगा—अंग्रेज तो केवल भारत के शोषण के लिए राज्य करते हैं। इसी

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या २ 'भलमंसी' प्रतापनारायण मिश्र

२ डॉ० देवीशंकर अवस्थी आलोचना और आलोचना (१९६१ ई०) पृ० १३७ (पं० प्रतापनारायण मिश्र और उनका युग)

३ डॉ० हरदेव बाहरी हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास (१९४७ ई०) पृ० १६३

लिए वे अंग्रेजो के काले कारनामे जनता को दिखाकर उनमें राष्ट्रीय चेतना उभाड़ने का प्रयत्न करते थे। इस युग के देशभक्त साहित्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण भट्ट बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र अग्रगण्य हैं। भारतेन्दु जी प्रारम्भ म अंग्रेजों के प्रशंसक थे। पर जब उन्हें उनकी शोषण नीति का पता चला तब वे उनके विरोधी हो गये और उनकी भर्त्सना करनी प्रारम्भ की। भारतेन्दु जी की निम्नलिखित मुकरियाँ देखिए—

'भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि क तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन म अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहिं अगरेज॥ [१]

इसी प्रकार पुलिस की निन्दा करते हैं—

रूप दिखावत सरबस लूटै।
फदे मैं जो पड़ै न छूटै॥
कपट कटारी जिय मैं हुलिस।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस॥ [२]

भट्ट जी भारतेन्दु की अपेक्षा अधिक उग्र थे। इन्होंने बहुत स्पष्ट और खुलकर अंग्रेजों की आलोचना की है। एक उदाहरण देखिए—'इंगलैंड हिन्दुस्तान स पचास गुना अधिक धनी है वहाँ भी सेना का इतना खर्च नहीं होता जितना यहाँ होता है। क्यों नहीं देशी लोगो को सेना की अफसरी दी जाती ? यहाँ के लोगों को यदि अफसरी दी जाती तो क्या विलायत से बड़ी-बड़ी तलब लेकर साहब लोगों के बुलाने की जरूरत होती ? क्यो प्रति वर्ष गवर्नमेण्ट दार्जिलिंग शिमला और नैनी ताल गर्मियो म जाया करती है। हाईकोर्ट के जज यहाँ की गर्मी सह सकते हैं तो क्या लेफ्टिनेण्ट और गवर्नर जनरल नहीं सह सकते ? कमिश्नरी के ओहदे पर जब तक रहे तब तक गर्मी जाड़ा सब कुछ सहते रहे। बोर्ड के मेम्बर होते ही मिजाज बदल जाता है। बिना नैनीताल की ठण्डी हवा का मजा उठाए साफ रहता ही नहीं। ऐसी-ऐसी अनीति देख हम भी यही निष्कर्ष निकालते हैं कि भूखो के हाथ की रोटी छीन, दुखियों के तन के वस्त्र उतार लोगों के प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपये से इंगलैंड की प्रथम जठराग्नि को आहुति देगी। उस रुपये से अंग्रेज सिविलियनों और सिपाहियो को शराब पिलायी जायगी।—और कृत्रिम उदार वचनों म फुसलावेगी कि तुम हमको प्राणों से भी अधिक प्यारे हो।

---

१ भारतेन्दु ग्रंथावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ८११
२ भारतेन्दु-ग्रन्थावली दूसरा भाग (२०१० वि०) ८११

तुम्हारे उपकार के लिए तुम्हारे ही सुख के लिए हम अपने सुखमय शीतल देश को छोड़कर यहाँ की भयानक लू सहते हैं।—तुम क्यों हमसे रुष्ठ हो क्यों दुष्टों के बहकाने म पड़ते हो? हमारी सेवा करो, हमारे दास बनो हमारा चरणामृत लो, हमारा नाम जपा यही तुम्हारा धर्म है यही तुम्हारा सुख है। [1]

'प्रमघन जी राष्ट्रीय मामलो मे अधिक मुखर नही हुए। फिर भी कहीं कहीं उनकी उक्तियाँ बड़ी चुटीली हैं। टैक्सों का विरोध करते हुए वे लिखते हैं—

'रहैं बिलायत जो हुरसाय भारत सों धन रोज कमाय।
धन करैं जो मजे उड़ाय तिसका टिक्कस भी छूट जाय॥
यह अचरज देखो सो आय, सोचत बुद्धि बिकल हो जाय॥"[2]

इसी प्रकार बर्मा—युद्ध के विषय म लिखी हुई इनकी पंक्तियाँ देखिए—

'अंग्रेजन के हिन बित जाय, ब्रह्मा मे बाजे मरराम।
बेचारे योधा धरि धाय, कब किये भारत में साय।
करे हकीमी गोरा जाय खर्चा भारत सीस बिसाय॥ [3]

मिश्र जी का राजनीतिक दृष्टिकोण भट्ट जी की ही तरह उग्र और स्पष्ट था। वे भी जमकर अंग्रेजो की भर्त्सना करते थे। इन्होंने अंग्रेजों द्वारा लगाये गये टैक्सों तथा मुसलमानो के साथ किय गय पक्षपातों आदि की तो कटु आलोचना की ही है साथ ही जनता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भी आमन्त्रित किया है। मिश्र जी ही स्वतंत्रता का नारा बुलन्द करने वाले सर्वप्रथम साहित्यकार थे। वे स्पष्ट कहते हैं—

'सबसु लिए जात अंग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बात का करतो हैं कहूँ टटकन पाज टरतो हैं॥
अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन से आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई।
जोगी काक मीत बलवर केहि के भाई॥
सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लाते खाव।
राजा कर सो न्याव है पाँसा परै सा दाव॥' [4]

मिश्र जी क राजनीतिक विचार भारतेन्दु से भी बढ़ चढ़ थे। भारतेन्दु जी मिश्र जी की तरह उग्र और स्पष्ट नहीं हो सके। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं—

---

१ हिन्दी प्रदीप' माघ १८८६ ई० पृष्ठ ७-८।
२ डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ १५३
३ —वही— १६
४ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक (१८९६ ई०) , २

लिए वे अंग्रेजों के काले कारनामे जनता को दिखाकर उनमें राष्ट्रीय चेतना उभारने का प्रयत्न करते थे। इस युग के देशभक्त साहित्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र अग्रगण्य हैं। भारतेन्दु जी प्रारम्भ में अंग्रेजों के प्रशंसक थे। पर जब उन्हें उनकी शोषण नीति का पता चला तब वे उनके विरोधी हो गये और उनकी भर्त्सना करनी प्रारम्भ की। भारतेन्दु जी की निम्नलिखित मुकरियाँ देखिए—

> "भीतर भीतर सब रस चूसै।
> हँसि हँसि के तन मन धन मूसै॥
> जाहिर बातन में अति तेज।
> क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज॥"[1]

इसी प्रकार पुलिस की निन्दा करते हैं—

> रूप दिखावत सरबस लूटै।
> फंदे में जो पड़ै न छूटै॥
> कपट कटारी जिय मैं हुलिस।
> क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस॥[2]

भट्ट जी भारतेन्दु की अपेक्षा अधिक उग्र थे। इन्होंने बहुत स्पष्ट और खुलकर अंग्रेजों की आलोचना की है। एक उदाहरण देखिए—"इंगलैंड हिन्दुस्तान से पचास गुना अधिक धनी है वहाँ भी सेना का इतना खर्च नहीं होता जितना यहाँ होता है। क्यों नहीं देशी लोगों को सेना की अफसरी दी जाती? यहाँ के लोगों को यदि अफसरी दी जाती तो क्या विलायत से बड़ी-बड़ी तलब लेकर साहब लोगों के बुलाने की जरूरत होती? क्यों प्रति वर्ष गवर्नमेण्ट दार्जिलिंग शिमला और नैनीताल गर्मियों में आया करती है। हाईकोर्ट के जज यहाँ की गर्मी सह सकते हैं तो क्या लेफ्टीनेण्ट और गवर्नर जनरल नहीं सह सकते? कमिश्नरी के ओहदे पर जब तक रहे तब तक गर्मी जाड़ा सब कुछ सहते रहे। बोर्ड के मेम्बर होते ही मिजाज बदल जाता है। बिना नैनीताल की ठण्डी हवा का मजा उठाए साफ रहता ही नहीं। ऐसी एसी अनीति देख हम भी यही निष्कर्ष निकालते हैं कि भूखा के हाथ की रोटी छीन, दुखियों के तन के वस्त्र उतार लोगों के प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपये से इंगलैड की प्रबल जठराग्नि को आहुति देगी। उस रुपये से अंग्रेज सिविलियनों और सिपाहियों को शराब पिलायी जायगी।—और कृत्रिम उदार वचनों से फुसलावेगी कि तुम हमको प्राणों से भी अधिक प्यारे हो।

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ८११
२ भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) ८११

तुम्हारे उपकार के लिए तुम्हारे ही सुख के लिए हम अपने सुखमय शीतल देश को छोड़कर यहां की भयानक लू सहते हैं।—तुम क्यों हमसे रूठते हो क्यों दुष्टों के बह काने में पड़ते हो ? हमारी सेवा करो, हमारे दास बनो, हमारा चरणामृत लो, हमारा नाम जपो यही तुम्हारा धर्म है यही तुम्हारा सुख है। '[१]

'प्रेमघन जी राष्ट्रीय मामलों में अधिक मुखर नहीं हुए। फिर भी कहीं कहीं उनकी उक्तियाँ बड़ी चुटीली हैं। टक्सा का विरोध करते हुए वे लिखते हैं—

'रहै विलायत जो हरखाय भारत सों धन रोज कमाय।
धन कर जो मजे उड़ाय तिसका टिक्कस भी छुट जाय॥
यह अचरज देखो तो आय सोचत बुद्धि विकल हो जाय॥'[२]

ईसी प्रकार वर्मा—युद्ध के विषय म लिखी हुई इनकी पंक्तियाँ देखिए—

अंग्रेजन के हित चित लाय ब्रह्मा में बाजे अरराय।
बेचारे धोबा धरि धाय, कैद किये भारत में लाय।
करें हकीमी गोरा आय खर्चा भारत सीस बिसाय॥ [३]

मिश्र जी का राजनीतिक दृष्टिकोण भट्ट जी की ही तरह उग्र और स्पष्ट था। ये भी जमकर अंग्रेजों की भर्त्सना करते थे। इन्होंने अंग्रेजों द्वारा लगाये गये टैक्सों तथा मुसलमानों के साथ किये गये पक्षपातों आदि की तो कटु आलोचना की ही है साथ ही जनता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भी आमन्त्रित किया है। मिश्र जी ही स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द करने वाले सर्वप्रथम साहित्यकार थे। वे स्पष्ट कहते हैं—

'सर्वसु लिए जात अंग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बात का करती हैं कहुँ टटकन गाज टरती हैं॥
अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलन्दर केहि के भाई॥
सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लात खाव।
राजा करै सो न्याव है पांसा परै सो दाव॥ [४]

मिश्र जी के राजनीतिक विचार भारतेन्दु से भी बढ़े चढ़े थे। भारतेन्दु जी मिश्र जी की तरह उग्र और स्पष्ट नहीं हो सके। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं—

---

१ हिन्दी प्रदीप' मार्च १८८६ ई० पृष्ठ ७-८।
२ डॉ० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ १५३
३ —वही— , १६
४ प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक (१८९९ ई०) ' २

भारतेन्दु जी ने घटाटोप अन्धकार को नष्ट करने में कसर नहीं की किन्तु मौजी और भोले होने के कारण वे राजनतिक दूरदर्शिता प्राप्त नहीं कर सके। यह कमी प्रतापनारायण मिश्र म नही थी। वे अग्रेजों की चालों का भडाफोड बराबर करते रहे।'[1] मिश्र जी में जाति-ममता और देश प्रेम कूट-कूट कर भरा था। इसीलिए उन्होंने जो कुछ लिखा प्राय इन्हीं भवनाओं से परिपूर्ण है। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी राजनीतिक मामलों में अपने युग के किसी भी साहित्यकार से पीछे नहीं रहे।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो का साहित्यिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युगीन सम्पूर्ण साहित्य स्वान्त सुखाय और परान्त सुखाय-दो भागो मे बाँटा जा सकता है। स्वान्त सुखाय साहित्य ईश्वर भक्ति और शृगार भावना की अभिव्यक्ति है और परान्त सुखाय साहित्य हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। स्वान्त सुखाय साहित्य में पुरानापन अधिक है और परान्त सुखाय साहित्य मे नवीनता की प्रमुखता है। परान्त सुखाय साहित्य मे ही उस युग की सच्ची समाणता दिखाई पडती है। स्वान्त सुखाय लिखने वालो मे बदरीनारायण चौधरी प्रमघन, लाला श्री निवासदास, ठाकुर जगमोहनसिंह अम्बिकाप्रसाद व्यास, गोविन्द नारायण मिश्र आदि तथा परान्त सुखाय लिखने वालो में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बाल कृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि अग्रगण्य हैं। वैसे स्वान्त सुखाय लिखने वालो ने परान्त सुखाय तथा परान्त सुखाय लिखने वालो न स्वान्त सुखाय रचनाएँ भी की हैं पर उक्त नामोल्लेख प्रमुखता को दृष्टि में रखकर किया गया है। प्रतापनारायण जी म सुधारक भावना भारतेन्दु भट्ट और गोस्वामी जी से अधिक है। इसलिए मिश्र जी मे इनकी अपेक्षा पुरानापन कम और नवीनता अधिक है। मिश्र जी का प्राय सम्पूर्ण साहित्य सुधार भावना से ही आप्लावित है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो ने प्रमुख रूप से हिन्दी और राष्ट्रीयता के प्रचार को दृष्टि म रखकर साहित्य रचना की है। इसलिए इनका साहित्य बडा सुगम तथा उपयोगी है। स्वान्त सुखाय रचनाएँ भी हिन्दी क विकास और मानव भावनाओं के शोधन म बडी सहायक हुई हैं। हास्य और व्यग्य का प्रयोग इस युग के साहित्यकारों ने विशेष रूप से किया है। सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक क्षेत्र की अनीतियो का भडाफोड व्यग्य के माध्यम से ही किया गया है। उस युग के व्यग्य लेखको म प्रतापनारायण मिश्र सर्वश्रेष्ठ हैं। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों ने कविता, नाटक निबन्ध आदि—साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है और सभी में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

---

१ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर (१९५७ ई०) पष्ठ १०४

भारतेन्दु-युग की कविता

इस युग की कविता में शृंगार—भावना, ईश्वर भक्ति और देशभक्ति का प्राधान्य है। शृंगार भावना रीतिकालीन परम्परा का प्रतीक है। इस युग के प्राय सभी कवियों ने शृंगारिक कविताएँ लिखी हैं। बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ठाकुर जगमोहनसिंह और अम्बिकादत्त व्यास का तो अधिकांश कविताएं शृंगारिक ही हैं। इन कवियों ने प्रमुख रूप से राधा और कृष्ण को ही अपनी शृंगारिक कविताओं का आलम्बन बनाया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी पर्याप्त शृंगारिक कविताएँ लिखी हैं। एक उदाहरण लीजिए—

"कहा कहौं प्यारे जू बियोग में तिहारे चित
बिरह-अनल लूक भरकि भरकि उठै।
कैसे क बिताऊँ बिन जोबन के हा—हा काम
कर लै कमान मोप तरकि तरकि उठै॥
भूल नाहिं हसनि तिहारी 'हरिचन्द' लखी
बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै॥
बेधि बेधि उठत बिसौले मन-बान मेरे
हिय म कँटीली भौंह करकि करकि उठै॥"[1]

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के शृंगारिक वर्णन बड़े अनूठे हैं। इनके वर्णनों में स्वाभाविकता और कवित्व-शक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य है। एक छन्द देखिए—

"आनन इन्दु अमन्द चुराय चकोर चित ललचाय न टालो।
ठोढ़ी गुलाब प्रसून दुराय मलिन्दन लोचन लोभ न सालो॥
है घन प्रेम सदा बरसो रस के बस, बानि अनीति समालो।
रूप अनूप देहु दिखाय दया करि, हाय न घूँघट घालो॥"[2]

ठाकुर जगमोहनसिंह की कविताओं म अनुभूति की गहराई और सजीवता प्रचुर मात्रा में है। उनका सम्पूर्ण काव्य स्वानुभूतिपरक है। देखिए, एक बाला अपने मायके में प्रीति का निर्वाह किस प्रकार करती है—

पु मायके मे नव जोबनी बाला सनेह सब रिहि भाँति दुराय।
कहूँ अगरावति चोर अधीर समीर उड़ यो गहिके लपटाय॥
कबू गृह काज के ब्याज चढ़ी, उत ऊँचे अटा निरख पिय आय।
बिलास सहास प्रभाव भरी जगमोहन प्रीति दुकी दरसाय॥"[3]

---

१ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ १४८
२ 'प्रेमघन-सर्वस्व प्रथम भाग (१९९६ वि०) पृ० २०१
३ किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ ४०४

अम्बिकादत्त व्यास की भी शृंगारिक कविताएँ बड़ी सुन्दर हैं। एक नायिका पिचकारी भरे, छिपती हुई प्रिय पर रंग डालने जा रही है। इसका चित्र वे बड़े अच्छे ढंग से खींचते हैं—

'धरती धरती डरती पद को घुघुरू नहिं नेकु बजावती हो।
मुरी झाँकती भौंह चलावती हो नकबेसर भूमि झुमावती हो॥
कवि अम्बिकादत्तहिं हेरि चित छिपती सी हहा मुसकावती हो।
कर मे पिचकारी लिए किनकौं तुम रंग भिगावन आवती हो॥'[1]

प्रतापनारायण मिश्र भी शृंगारिक भावनाओं से अछूते नहीं रहे। इन्होंने भी कुछ शृंगारिक कविताएँ लिखी हैं जो बड़ी स्वाभाविक और सरस हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कवित्त देखिए—

'छनक सजौहैं ससरौहैं ह्वै छनक मन,
छनक हसौहैं ह्वै अनन्द उमहत हैं।
हाँ हाँ नहीं रस भरे बैन परताप छन
कहिं आवे एक छन सुख हो रहत हैं॥
मन्द मुसकान भौंह नासिका की मुरि आनि
वेलिये म स्वाविस सुधाहूं सों महत हैं।
गोरस के देत ज्यों ज्यों हठति पियारी त्यों-त्यों,
जो रस चहत लाल सो रस लहत हैं॥'[2]

ईश्वर भक्ति विषयक कविताएँ लिखने वालों में भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्र उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु जी की ईश्वर भक्ति विषयक रचनाएँ संख्या में बहुत-अधिक हैं। इसमें एक सच्चे भक्त की पुकार और दैन्य भावना समाहित है। भारतेन्दु के आराध्य राधा और कृष्ण हैं। इसी युगलमूर्ति का गुणानुवाद उन्होंने गाया है। उनका दैन्य भाव निम्नलिखित पद में देखिए—

'अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ।
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत पितु-मोह मिटाओ॥
और छोड़ाइ सबै जग वैभव नित ब्रज बास बसाओ।
जुगल-रूप रस अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ॥
प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि तन की सुधि बिसराओ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम प्रवाह बहाओ॥

---

१ किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि (१९५६ ई०) पृ० ४०४
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५ 'स्फुट कविता' प्रतापनारायण मिश्र

श्री वल्लभ-पद-कमल अमल में मेरी भक्ति दृढ़ाओ ।
हरीचन्द को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ ॥''

मिश्र जी प्रेमोपासक थे । इनमें भी भारतेन्दु की-सी ही अनन्यता है । इनकी दैन्य भावना भारतेन्दु से पूरी तरह प्रतिद्वन्द्विता करती दिखाई पड़ती है । उदाहरणार्थ एक कवित्त लीजिए—

जबते निहारी तव मूरति पियारी, माई—
तबते हमारी बुद्धि करति न सबूर की ।
देखे बिन हाय काहू विधि सों रह्यो न जाय,
मन अकुलाय सोचि बातें दूर-दूर की ॥
अहो प्राणनाथ 'परताप' तव हाथ बिक्यो,
उचित न याके हाय गहनि गरूर की ।
गरजो बिचारो सो तो अरजी करोई चाहे,
मानिबो न मानिबो है मरजी हुजूर की ॥ [2]

देशभक्ति से सम्बन्धित कविताएँ लिखने वालों में प्रतापनारायण मिश्र उस युग में प्रमुख हैं यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और राधाचरण गोस्वामी ने भी कुछ देशभक्ति विषयक कविताएँ लिखी हैं पर वे मिश्र जी की तुलना में बहुत कम हैं । साथ ही उनमें मिश्र जी की कविताओं की सी तीव्रता एवं प्रभावोत्पादकता भी नहीं है । मिश्र जी सच्चे देशभक्त थे । उन्हें भारत की पराधीनता से अत्यधिक दुख था । वे जब भारतीयों को होली मनाते देखते थे तब तो और भी दुखी हो जाते थे । उनकी 'कैसी होरी' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं—

कैसी होरी मचाई अहो प्रिय भारत भाई ।
आलस अगिनि बारि सब फूँक्यो विद्या विभव बड़ाई ।
हाय आपने नाम रूप की निज कर धूरि उड़ाई ॥
रहे मुख कारिख लाई ।
आपस में गारी बकि-बकि कै कीन्हीं कौन भलाई ।
महा मूढ़ता के मद छाके हित अनहित बिसराई ॥
लाज सब धोय बहाई ।
सरबस खोय परेहो परबस तहू न लाज हिराई ।
भावी वर्तमान दुख सिर पर तापै शंक न राई ॥
बुद्धि कैसी बौराई ।[3]''

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ५६ ।
२ कविवचनसुधा वर्ष १४ में प्रकाशित ।
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३७-३८ ।

अम्बिकादत्त व्यास की भी शृंगारिक कविताएँ बड़ी सुन्दर हैं। एक नायिका पिचकारी भरे, छिपती हुई प्रिय पर रंग डालने जा रही है। इसका चित्र वे बड़े अच्छे ढंग से खींचते हैं—

'धरती धरती डरती पग को घुघुरू नहिं नेकु बजावती हो।
झुकी झाँकती भौंह पसारती हो नकबेसर झूमि झुमावती हो॥
कवि अम्बिकादत्तहिं हेरि चितै छिपती सी हहा मुसकावती हो।
कर मे पिचकारी लिए किनको तुम रंग भिगावन आवती हो॥'[1]

प्रतापनारायण मिश्र भी शृंगारिक भावनाओ से अछूते नही रहे। इन्होंने भी कुछ शृंगारिक कविताएँ लिखी हैं जो बड़ी स्वाभाविक और सरस हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कवित्त देखिए—

छनक लजौहैं सतरौहैं ह्वै छनक मन
छनक हसौहैं ह्वै अनन्द उमहत हैं।
हाँ हाँ नहीं रस भरे बैन परताप छन
कहि आवै एक छन मुख ही रहत हैं॥
मन्द मुसकान भौंह नासिका को मुरि जानि
देखिबे मे स्वादित सुधाहूँ सौं महत हैं।
गोरस के देत ज्यौं ज्यौं हठति पियारी त्यों-त्यों
जो रस चहत लाल सो रस लहत हैं॥'[2]

ईश्वर भक्ति विषयक कविताएँ लिखने वालो मे भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्र उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु जी की ईश्वर भक्ति विषयक रचनाएँ संख्या मे बहुत-अधिक हैं। इसमे एक सच्चे भक्त की पुकार और दन्य भावना समाहित है। भारतेन्दु के आराध्य राधा और कृष्ण हैं। इसी युगलमूर्ति का गुणानुवाद उन्होंने गाया है। उनका दन्य भाव निम्नलिखित पद मे देखिए—

'अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ।
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत पितु-मोह मिटाओ॥
और छोड़ाइ सब जग-बैभव नित ब्रज बास बसाओ।
जुगल-रूप रस अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ॥
प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि तन की सुधि बिसराओ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सौं प्रेम प्रवाह बहाओ॥

---

१ किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि (१९२६ ई०) पृ० ४०४
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ५ स्फुट कविता' प्रतापनारायण मिश्र

श्री वल्लभ पद-कमल अमल में मेरी भक्ति दृढ़ाओ।
हरीचन्द' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ॥ १

मिश्र जी प्रेमोपासक थे। इनमें भी भारतेन्दु की-सी ही अनन्यता है। इनकी दैन्य भावना भारतेन्दु से पूरी तरह प्रतिद्वन्द्विता करती दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ एक कवित्त लीजिए—

जबते निहारी तव मूरति पियारी, भई—
तबते हमारी बुद्धि बरिनि सबूर की।
देखे बिन हाय काहू बिधि सों रहो न जाय,
मन अकुलाय सोचि बातें दूर-दूर की॥
अहो प्राणनाथ 'परताप' तब हाय बिकयो,
उचित न याके हाय गहनि गरूर की।
गरजी बिचारो सो तो अरजी करोई चाहे
मानिबो न मानिबो है मरजी हुजूर की॥'२

देशभक्ति से सम्बन्धित कविताएँ लिखने वालों में प्रतापनारायण मिश्र उस युग में प्रमुख हैं वैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन और राधाचरण गोस्वामी ने भी कुछ देशभक्ति विषयक कविताएँ लिखी हैं पर वे मिश्र जी की तुलना में बहुत-कम हैं। साथ ही उनमें मिश्र जी की कविताओं की सी तीव्रता एवं प्रभावोत्पादकता भी नहीं है। मिश्र जी सच्चे देशभक्त थे। उन्हें भारत की पराधीनता से अत्यधिक दुख था। वे जब भारतीयों को होली मनाते देखते थे तब तो और भी दुखी हो जाते थे। उनकी 'ऐसी होरी' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं—

ऐसी होरी मचाई अहो प्रिय भारत भाई।
आलस अगिनि बारि सब फूक्यो विद्या विभव बड़ाई।
हाय आपने नाम रूप की निज कर धूरि उड़ाई॥
रहे मुख कारिख लाई।
आपस में गारी बकि-बकि के कीन्हो कौन भलाई।
महा मूढ़ता के मद छाके हित अनहित बिसराई॥
लाज सब धोय बहाई।
सरबस खोय परेहो परबस तहूँ न जात ढिठाई।
भावी वर्तमान दुख सिर पर ताको नेक न राई॥
बुद्धि ऐसी बौराई।'३

१ भारतेन्दु-ग्रन्थावली दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ १६।
२ 'कविवचनसुधा' वर्ष १४ में प्रकाशित।
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३७-३८।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी होली गीत लिखे हैं पर वे उनमें देश प्रेम के भाव नहीं भर सके। उनके होली गीत केवल शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति में ही सहायक हुए हैं। उदाहरण के लिए एक होली-गीत देखिए—

"रग मति डारो मोपै सुनो मोरी बात।
बड़ी जुगति हौं सोहि बताऊँ क्यों इतने अकुलात॥
यी वृषभानु-नन्दिनी ललिता दोऊ या मग जात।
तुमहु जाइ माधुरी कुञ्ज मैं पहिले हि क्यों न दुरात॥
वे उत औचक आइ परें तब कीजौ अपनी घात।
'हरीचन्द' क्यों इतहि खरे तुम बिना बात इठलात॥"[1]

मिश्र जी की कविताएँ उत्कट देश प्रेम से युक्त हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी के देश प्रेम ने ही उनकी कविताओं को प्राणवान बना दिया है।

भारतेन्दु-युग के कवियों ने नागरी प्रचार पर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं जो बड़ी उत्कृष्ट हैं। इन कविताओं में भी प्रकारान्तर से देश प्रेम की ही अभिव्यक्ति हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी की उन्नति पर पढ़े गये व्याख्यान के कुछ दोहे देखिए—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन॥
करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सबको मूल॥'[2]

मिश्र जी भी हिन्दी के बड़े हिमायती थे। इन्होंने कई कविताएँ हिन्दी प्रचार पर लिखी हैं। 'भारत रोदन' के कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं—

'धन गयो बल बस गयो गइ विद्या अरु मान।
रही सही भाषा हती सोऊ आहुति आन॥
"सचिहु अरबी अरब की फारसि फारसि केर।
अंग्रेजी इंगलैण्ड की यामें हेर न फेर॥
आय देश की नागरी सब गुणागरी आय।
यामें कुछ संदेह नहिं पै न सुनत कोउ हाय॥'[3]

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ५७०
२ —वही— , ७३१ ३८
३ ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११, भारत रोदन' प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु-युग की कविता की सच्ची सप्राणता देशभक्ति विषयक कविताओं में ही दिखाई पड़ती है। इन कविताओं में तत्कालीन देश-दशा का स्पष्ट चित्र खींचा गया है। इससे उस युग के कवियों की जागरूकता का पता चलता है। डॉ० रामविलास शर्मा सामयिक विषयों पर लिखे साहित्य को ही उस युग का सजीव और टिकाऊ साहित्य मानते हैं। उनका कहना है— "अगर हम भारतेन्दु-युग के समूचे साहित्य पर नजर डालें तो देखेंगे कि उसका टिकाऊ हिस्सा वह नहीं है जो सामयिकता से दूर है जो मध्यकालीन विषय और रूपों को ही साहित्य की पराकाष्ठा मानता है बल्कि उसका सबसे टिकाऊ और सजीव हिस्सा वह है जो पुराने रूपों में सामयिकता की नयी विषय वस्तु भर रहा था और नयी साम्राज्य विरोधी चेतना के अनुसार साहित्य के नये रूप भी गढ़ रहा था।"[1] इसके अनुसार मिश्र जी की कविताओं का महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है और मिश्र जी अपने युग के अद्वितीय कवि सिद्ध हो जाते हैं।

भारतेन्दु-युग के नाटक

इस युग के नाटक मौलिक और अनूदित—दो रूपों में मिलते हैं। मौलिक नाटकों का सम्बन्ध प्रमुख रूप से तत्कालीन राष्ट्र और समाज से है। इनमें अंग्रेजों की शोषण नीति, भारतीयों की अकर्मण्यता, गोवध, बाल्य-विवाह, वृद्ध विवाह, समाज में फैले हुए मतमतान्तर, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ आदि की भर्त्सना की गयी है। इन नाटकों का उद्देश्य प्रायः सुधारात्मक रहा है। अनूदित नाटक अधिकांश पौराणिक काल से सम्बंधित है। ये संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं। इनमें अस्वाभाविकता और पुरानापन अधिक है। कुछ अनूदित नाटक बंगला और अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद रूप में भी प्रस्तुत किये गये हैं जो अपना पृथक अस्तित्व रखते हैं।

भारतेन्दु युग के नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने मौलिक और अनूदित—दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। इससे इनमें नवीनता और प्राचीनता का समुचित संयोग दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने युग में सबसे अधिक नाटक लिखे। इनके कुल १७ नाटक प्राप्त हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—विद्यासुन्दर, रत्नावली, पाखंड विडंबन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, कर्पूरमंजरी, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, भारत जननी, नीलदेवी, दुर्लभ बन्धु, अंधेर नगरी और सतीप्रताप। इन नाटकों में सरसता और सरलता पूरी मात्रा में है। दर्शकों का मनोरंजन करने में ये नाटक पूर्ण

1 डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग (१९५६) ई० पृष्ठ १७४

समय हैं। अभिनेय दृश्य की भी भारतेन्दु के नाटकों म कमी नही है। भारतेन्दु प्रगतिशील नाटककार थे इसलिए इनके नाटकों म समाजहित और राष्ट्रप्रेम के भाव उत्कर्ष पर पहुँचे दिखाई पड़ते हैं। भारत-दुर्दशा, नीलदेवी आदि उनके सफल सामाजिक तथा राष्ट्रीय नाटक हैं। भारत-दुर्दशा मे भारत का अतीत गौरव दिखाते हुए तत्कालीन पतित समाज का सजीव चित्र खींचा गया है। यद्यपि कहीं-कहीं राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है फिर भी ये नाटक भारतीयो को स्फूर्ति और शक्ति देने म पूर्ण सफल हैं। भारतभाग्य के कथन की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

हा। भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान-बूझकर सोता है, उसे कौन जगा सकेगा? हा दैव। तेरे विचित्र चरित्र हैं जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नगे पाँव बन बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के-लड़कियो के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उनका नाम लेवा और पानी देवा कोई नही बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह स भरे पूरे थे आज उन घरों मे सू ने दिया बालने वाला भी नहीं छोड़ा। हा। जिस भारतवर्ष का सिर व्यास वाल्मीकि कालिदास पाणिनि शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियो के नाममात्र से अब भी सारे ससार से ऊचा है, उस भारत का यह दुर्दशा। जिस भारतवर्ष के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम-रूस तक माना जाता था उस भारत की यह दुर्दशा। जिस भारत म राम, युधिष्ठिर, नल हरिश्चन्द्र रंतिदेव शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गये हैं उसकी यह दशा। [१]

भारतेन्दु का नाटकीय दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। इन्ही के नाटकीय आदर्शों को उस युग के प्राय सभी नाटककारो ने अपनाया है।

बालकृष्ण भट्ट के नाटको म पुरानापन अधिक है। इनके अधिकांश नाटक पौराणिक हैं। नलदमयन्ती या दमयन्ती स्वयंवर वेणुसंहार या पृथुचरित्र तथा बृहन्नला इनके पौराणिक नाटकों म प्रसिद्ध हैं। इन नाटको का मूल उद्देश्य अतीत भारत का चित्र उपस्थित करना रहा है। मौलिक नाटकों में आचार विडम्बन पतित पंचम और नई रोशनी का विष उल्लेखनीय हैं। इनम समाज मे फले हुए आडम्बरा बाल्य विवाह, अंग्रेजी पढ़ान आदि के दुष्परिणाम दिखाये गये हैं। 'नई रोशनी का विष' नाटक म पाश्चात्य सभ्यता के अवगुण और परिणाम दिखाकर उनसे सम्बंधित पात्रो से पश्चाताप भी कराया गया है। उदाहरणार्थ भानुदत्त का निम्नलिखित कथन देखिए—

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ४९५

दो एक भूल पिता जी मुझसे बन पड़ी जिनकी वजह से मैंने बहुत-बहुत सी तकलीफ उठाया। अब उन सब कामों को आपके सामने कहकर कानों में अपने को नहीं घसीटा चाहता। इससे प्रार्थना करता हूँ कि उनका अपने मुँह से कहने की शरम से मुझे बचाए रखिए और यद्यपि नई रोशनी के विष का स्वाद मुझसे अधिक किसी ने न चक्खा होगा। पर हम यह भी कह सकते हैं कि मुझसे अधिक उसके लिए किसी ने ऐसा पश्चाताप भी न किया होगा। [1]

इस प्रकार से पश्चाताप कराकर, दर्शकों में नई रोशनी के प्रति घृणा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

अम्बिकादत्त व्यास ने ललिता नाटिका, भारत सौभाग्य, गोसंकट, कलियुग और घी, वेणी संहार आदि नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों में राजभक्ति का स्वर विशेष तीव्र है। 'भारत सौभाग्य' नाटक में महारानी विक्टोरिया के राज्य की खूब बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा की गयी है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में—'जहाँ 'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु ने देश पर दुख प्रकट किया था, वहाँ कुछ ऐसे आशावादी लोग भी थे जिन्हें अंग्रेजी शासन में रामराज्य मिल गया था और चारों ओर सुख ही सुख दिखाई देता था। अम्बिकादत्त व्यास का 'भारत-सौभाग्य' नाटक इसी प्रकार का है। सौभाग्य से ऐसे नाटक और नाटककार अधिक नहीं थे।' [2] श्री निवासदास ने तप्तासंवरण, प्रहलाद चरित्र, रणधीर प्रेममोहिनी आदि नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों में भी भट्ट जी का-सा पुरानापन है। ये अपने नाटकों में पुराने कवियों के कवित्त तक रखने में नहीं हिचकते तथा अभिनेयता की उपयुक्तता का भी ध्यान इन्हें नहीं रहता। राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु-युग के अच्छे नाटककारों में हैं। इनके 'बूढ़े मुँह मुहासे' और 'तन मन धन श्री गुसाईं जी के अर्पण' प्रहसन विशेष सफल हैं। इनमें तत्कालीन समाज का सजीव चित्र खींचा गया है। साथ ही इनमें प्रयुक्त व्यंग्य भी बड़े मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारत-सौभाग्य, प्रयाग रामागमन, वारांगना रहस्य और वृद्ध-विलाप नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों में भी समाज का चित्र उत्कृष्ट है। लेकिन अभिनेयता की दृष्टि से इनके नाटक सफल नहीं कहे जा सकते।

प्रतापनारायण मिश्र ने मौलिक नाटक अधिक लिखे हैं। अनूदित नाटक तो उनका केवल एक संगीत शाकुन्तल ही है और वह भी अनुवाद न होकर महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का छायानुवाद है। मिश्र जी ने अपने मौलिक नाटकों में समाज के यथार्थ चित्र खींचे हैं। इनके 'कलिकौतुक रूपक' और 'भारत

---

१ हिन्दी प्रदीप अगस्त १८८८ ई० पृष्ठ १४

२ डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ६७

प्रतिपादन बडे सामान्य ढग से किया गया है। उनमे गठन और क्रम बद्धता की बड़ी कमी है तथा शैली भी साहित्यिकता से दूर है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और गोविन्दनारायण मिश्र के निबन्ध कुछ अच्छे हैं पर इनकी भाषा-शैली बड़ी गढी हुई चमत्कारपूर्ण है। इससे इनके निबन्धों में स्वाभाविकता नही रह जाती। 'प्रेमघन के त्रिवेणी तरग' निबन्ध की कुछ पक्तियाँ देखिए—

'कहीं स्वामी के दुख से दुखी हो अपनी तीक्ष्णता पर श्री लक्ष्मण जी का चेतनावस्था प्राप्त करना निर्भर जान और भी वेगवान बन मार्ग के कारणोप स्थित विलम्बों से और भी व्यग्रता से शीघ्रता धर हिमालय पहुच मृतसंजीवनी को न पहिचान धवलागिरि को शिर पर धारण कर रात्रि भर के परिश्रम की सफलता से प्रसन्न हो थके महावीर मानो अक्बर-दुर्ग रूपी लका गढ़ की त्रिवेणी परिखा मे प्रात काल फिर भी अपने घोर गर्जन मे राक्षसों को डरपाने को गहरी नींद मे सो रहे हैं और अपने बोझ से कई हाथ पृथ्वी मे धँस गये से जान पड़ते हैं। इनके दर्शन करने को नीचे उतरते भक्त लोग खाद्य सामग्रियों को चढ़ाते माना प्रात काल उनके जलपान के अर्थ इसे प्रस्तुत करते।'[1]

गोविन्दनारायण मिश्र तो और भी आलकारिकता के पीछे पड जाते हैं। इनके निबन्धों का समझने के लिए बडी दिमागी कसरत करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पक्तियाँ देखिए—

सरद् पूनों के समुदित पूरनचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मन भाई के भी मुँह मसि मल पूजनीय अलौकिक पदनखचंद्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन और कलकित कर दरसाती लजाती सरस-सुधा धौली अलौकिक सुप्रभा फैलाती अशेष मोह-जडता प्रगाढ़-तम-तोम सटकाती मुकाती निज भक्तजन-मनवांछित वरामय भुक्ति-मुक्ति सुचारू चारो मुक्त हाथों से मुक्ती लुटाती मुक्ताहारी नीरक्षीर विचार सुचतुर-कवि-कोविद राज राहिय-सिंहासन-निवासिनी मंदहासिनी त्रिलोक प्रकाशिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणों से प्यारे पुत्रा की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली सुजन-मन-मोहिनी नवरस भरी सरससुखद विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।'[2]

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु-युग के श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। इन्होने अपने युग मे सबसे अधिक निबन्ध लिखे हैं। इनके अधिकाश निबन्ध विचारात्मक हैं। इनके से विचारात्मक निबन्ध उस युग मे कोई नही लिख सका। इन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अपने

---

१ 'प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग (२००७ वि०), पृष्ठ ३९।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५१८

लिखे गये है। जो थोड़े वहुत साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित है उनम भी कहीं-कही
देशभक्ति की छाप लगी दिखाई देती है। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं— 'उस
युग के निबन्धो को एक साथ पढ़ने से एक अत्यन्त उदार और स्वाधीन चेतना की
छाप पाठक के हृदय पर रह जाती है। निबन्ध को तब के लेखको ने एक ऐसा रोचक
और उपयोगी माध्यम बनाया था जिसके द्वारा वह देश मे एक नवीन मानव धर्म
का प्रचार कर सकते थे। मुल्ला पंडित वदिक कमकाण्ड तीर्थ व्रत पूजा सभी
पर इन लेखको ने व्यग्य किया है। यह उदार चतना किसी एक लेखक की अपनी
नहीं है, यह बड छोटे सभी लेखको मे पाई जाती है। युग भावना के अत्यन्त शक्ति-
शाली होने का सबसे बडा प्रमाण यह है कि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द जसे
व्यक्ति भी उसके प्रभाव से बचे न रह सके।'[1] लोकभावना स अनुप्राणित होन क
कारण उस युग क निबन्ध बड़ सरल तथा प्रभावोत्पादक हैं। भारतेन्दु युग के
निबन्धकारो ने अपनी बात को सरस और प्रभावपूर्ण बनाने क लिए व्यग्या का
प्रयोग बहुतायत से किया है। वे समाज या राष्ट्र स सम्बन्धित कटु से-कटु बात
व्यग्य के माध्यम से सहज ही कह जाते है। उस युग क निबन्धो म निबन्धकारो के
अपने निजी दृष्टिकोण प्रकाशित हुए हैं। प्रत्येक विषय पर निबन्धकार अपनी स्वय
की अनुभूत बातें कहते चलते हैं। इससे भारतेन्दुयुगीन निबन्धो म लेखक का
व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों म— भारतेन्दु-युगीन
निबन्धकारो म निबन्ध की असली आत्मा विद्यमान मिलती है। अधिकाश निबन्ध
आत्मानुभव की अभिव्यक्ति के रूप म हैं। उसम वस्तु या वर्ण्य विषय क प्रति लेखक
का अपना निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। इस विशेषता के कारण हम देखत
हैं कि निबन्धकार का व्यक्तित्व निबन्धो के भीतर झाँकता हुआ दिखलाई
देता है।[2]

भारतेन्दु-युग क निबन्धकारों मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण भट्ट प्रताप
नारायण मिश्र बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, गोविन्दनारायण
मिश्र अम्बिकादत्त व्यास आदि क नाम लिए जाते हैं। पर वास्तविक निबन्ध रचना
का स्वरूप बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओ म ही मिलता है
(इसका सम्यक विवेचन निबन्ध क अध्याय म हो चुका है) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास क निबन्ध निबन्ध न होकर लेख हैं।
इनम निबन्ध क तत्व बहुत-कम मिलते हैं। इनक निबन्धा (लेखों) म विषय का

---

१ डॉ० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ १०
२ रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र हिन्दी साहित्य का उद्भव और
विकास' (१९५६ ई०) पृ० २५५

दुर्दशा रूपक' उस युग के सर्वश्रेष्ठ सामाजिक एवं राष्ट्रीय नाटक हैं। भारत दुर्दशा रूपक' भारतेन्दु कृत भारत दुर्दशा' के अनुकरण पर लिखा गया है। लेकिन इसमें भारतेन्दु की 'भारत-दुर्दशा से राष्ट्रीय भाव अधिक उभरे हुए तथा स्पष्ट हैं। इसमें राजभक्ति न होकर शुद्ध देशभक्ति है। उदाहरणार्थ एडीटर का निम्नलिखित कथन देखिए--

जहाँ नित्य वेद पुरान ध्वनि को घोष नभ पहुँचत रह्यो।
तहँ निलज गीत गमार गावे जात सुन पथक्त हियो॥
जहँ नारि नर निज धर्म कर्म अनेक व्रत चित धारते।
तहँ आज सम्पद पुष्ट बाढ़े सकल महिंतिन मारते॥
जहँ शिव दधीचि, बली बलो, क्षितिनाथ लीला कर गये।
तहँ दुष्ट नादिरशाह अरु अवरंग अति पापी भये॥
अब सबहि निज निज धर्म छोड़ स्वतन्त्र मारग में चले।
तेहि पाप बारम्बार होत अकाल भारत बसमले॥''[1]

मिश्र जी के नाटकों म भारतेन्दु और भट्ट जी क नाटकों की अपेक्षा यथार्थ का अनुरोध और अभिनेयता अधिक है तथा चरित्र चित्रण भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। वैसे संख्या और विषय विस्तार में मिश्र जी के नाटक भारतेन्दु और भट्ट के नाटकों स पीछे है। मिश्र जी ने अपने नाटकों में भारतेन्दु के नाटकादर्शों को विशेष रूप से अपनाया है। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं—' मिश्र जी के आदर्श भारतेन्दु थे और उन्ही का प्रभाव इनके नाटकों म भी देखा जाता है परन्तु पात्र एव उनके वर्णन का स्वरूप भारतेन्दु से बढ़कर हुआ है।[2] अम्बिकादास व्यास श्री निवासदास, राधा चरण गोस्वामी और प्रेमघन ने भी यद्यपि उत्कृष्ट नाटक लिखे हैं पर इनके नाटक भी अभिनेयता और राष्ट्रीयता में मिश्र जी के नाटकों की बराबरी नही कर पाते। मिश्र जी के नाटक संख्या म कम होते हुए भी बड़े महत्व के हैं। भारतेन्दु के बाद नाटकीय तत्वों का समुचित विकास मिश्र जी के नाटकों म ही दिखाई पड़ता है। मिश्र जी भारतेन्दु-युग क अप्रतिम नाटककार हैं।

भारतेन्दु-युग के निबन्ध

कविता और नाटकों की ही भांति भारतेन्दु-युग के निबन्धो में भी युग की सक्रान्ति समायी हुई है। अधिकांश निबन्ध सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर ही

---

१ प्रतापनारायण मिश्र भारत-दुर्दशा रूपक (१९०२ ई०) तीसरा अंक पहिला दृश्य

२ नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ' हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर (१९५७ ई०) पृष्ठ २८०।

लिखे गये हैं। जो थोड़े बहुत साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित हैं उनमें भी कहीं-कहीं देशभक्ति की छाप लगी दिखाई देती है। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं— "उस युग के निबन्धों को एक साथ पढ़ने से एक अत्यन्त उदार और स्वाधीन चेतना की छाप पाठक के हृदय पर रह जाती है। निबन्ध को तब के लेखकों ने एक ऐसा रोचक और उपयोगी माध्यम बनाया था, जिसके द्वारा वह देश में एक नवीन मानव धर्म का प्रचार कर सकते थे। मुल्ला पण्डित वैदिक कर्मकाण्ड तीर्थ व्रत, पूजा, सभी पर इन लेखकों ने व्यंग्य किया है। यह उदार चेतना किसी एक लेखक की अपनी नहीं है, वह बड़े छोटे सभी लेखकों में पाई जाती है। युग भावना के अत्यन्त शक्तिशाली होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द जैसे व्यक्ति भी उसके प्रभाव से बच न रह सके।"[1] लोकभावना से अनुप्राणित होने के कारण उस युग के निबन्ध बड़े सरल तथा प्रभावोत्पादक हैं। भारतेन्दु युग के निबन्धकारों ने अपनी बात को सरस और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए व्यंग्य का प्रयोग बहुतायत से किया है। वे समाज या राष्ट्र से सम्बन्धित कटु-से-कटु बात व्यंग्य के माध्यम से सहज ही कह जाते हैं। उस युग के निबन्धों में निबन्धकारों के अपने निजी दृष्टिकोण प्रकाशित हुए हैं। प्रत्येक विषय पर निबन्धकार अपनी स्वयं की अनुभूत बातें कहते चलते हैं। इससे भारतेन्दुयुगीन निबन्धों में लेखक का व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों में— भारतेन्दु-युगीन निबन्धकारों में निबन्ध की असली आत्मा विद्यमान मिलती है। अधिकांश निबन्ध आत्मानुभव की अभिव्यक्ति के रूप में हैं। उसमें वस्तु या कथ्य विषय के प्रति लेखक का अपना निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। इस विशेषता के कारण हम देखते हैं कि निबन्धकार का व्यक्तित्व निबन्धों के भीतर झाँकता हुआ दिखलाई देता है।[2]

भारतेन्दु-युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन,' राधाचरण गोस्वामी, गोविन्दनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास आदि के नाम लिए जाते हैं। पर वास्तविक निबन्ध रचना का स्वरूप बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओं में ही मिलता है (इसका सम्यक् विवेचन निबन्ध के अध्याय में हो चुका है)। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास के निबन्ध निबन्ध न होकर लेख हैं। इनमें निबन्ध के तत्व बहुत कम मिलते हैं। इनके निबन्धों (लेखों) में विषय का

---

१ डॉ० रामविलास शर्मा भारतेन्दु-युग (१९५६ ई०) पृष्ठ ९०

२ रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' (१९५६ ई०) पृ० २५५

प्रतिपादन बड़ सामान्य ढग से किया गया है। उनमे गठन और क्रम-बद्धता की बड़ी कमी है तथा शैली भी साहित्यिकता से दूर है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और गोविन्दनारायण मिश्र के निबन्ध कुछ अच्छे हैं पर इनकी भाषा शैली बडी गढी हुई चमत्कारपूर्ण है। इससे इनके निबन्धों में स्वाभाविकता नहीं रह जाती। प्रेमघन' के त्रिवेणी तरग' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'कही स्वामी के दुःख से दुःखी हो अपनी तीक्ष्णता पर श्री लक्ष्मण जी का चेतनावस्था प्राप्त करना निर्भर जान और भी वेगवान बन मार्ग के कारणोप स्थित विलम्बों से और भी व्यग्रता से दौड़ना धर हिमालय पहुच मृतसजीवनी को न पहिचान धवलागिरि को सिर पर धारण कर रात्रि भर के परिश्रम की सफलता से प्रसन्न हो थक महावीर मानो अकबर दुर्ग रूपी लका गढ़ की त्रिवेणी परिखा में प्रात काल फिर भी अपने घोर गजन से राक्षसो को डरपाने को गहरी नीद म सो रहे हैं और अपने बोझ से कई हाथ पृथ्वी में धँस गये से जान पड़ते हैं। इनके दर्शन करने को नीचे उतरते भक्त लोग खाद्य सामग्रियों को चढ़ाते मानो प्रातःकाल उनके जलपान के अर्थ इसे प्रस्तुत करते।'[1]

गोविन्दनारायण मिश्र तो और भी आलकारिकता के पीछे पड जाते हैं। इनके निबन्धो को समझने के लिए बडी दिमागी कसरत करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

सरद् पूनो के समुदित पूरनचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मन भाई के भी मुँह मसि मल पूजनीय अलौकिक पदनखचंद्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन और कलकित कर दरसाती लजाती सरस-सुधा धौली अलौकिक सुप्रभा फैलाती अशेष मोह जड़ता प्रगाढ-तम-तोम सटकाती मुकाती निज भक्तजन-मनवांछित वरामय मुक्ति-मुक्ति सुचारु चारो मुक्त हाथो से मुक्ती लुटाती मुक्ताहारी नीरक्षीर विचार सुचतुर-कवि-कोविद राज राहिय-सिंहासन निवासिनी मदहासिनी त्रिलोक प्रकाशिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणो से प्यारे पुत्रो की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली सुजन-मन मोहिनी नवरस भरी सरससुखद विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।'[2]

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु-युग के श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। इन्होने अपने युग म सबस अधिक निबन्ध लिखे हैं। इनके अधिकाश निबन्ध विचारात्मक हैं। इनके से विचारात्मक निबन्ध उस युग मे कोई नहीं लिख सका। इन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग अपने

---

१ प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३९।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५१८

निबन्धों में अधिक किया है। इनके निबन्धों की प्रमुख शैली विवेचनात्मक है। एक उदाहरण लीजिए—

अब यह सिद्ध हुआ कि सहानुभूति के लिए कुछ अनुभव अवश्य चाहिए। ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जायगा सहानुभूति या हमदर्दी भी बढ़ती जायगी। लड़के किसी तरह की पीड़ा का अनुभव पहले अपने ऊपर करते हैं फिर दूसरे अपने साथी पर उसी तरह की पीड़ा देख अपने ही समान उसे भी पीड़ित जान उनके साथ सहानुभूति करने लगते हैं। ज्यों-ज्यों उनका अनुभव बढ़ता जाता है दूसरों के सुख दुःख के सब रंग ढंग को अपने सुख के सब रंग ढंग के साथ तुलना कर उनकी सहानुभूति भी दूसरों के साथ अधिक बढ़ती जाती है। जैसे जिसने कभी किसी तरह का इम्तहान नहीं दिया वह दूसरा के पास या फेल होने के सुख दुःख का अनुभव भी नहीं कर सकता। केवल इतना अलबत्ता कहेगा कि मेहनत कम किया नहीं तो जरूर पास हो जाता। [१]

प्रतापनारायण मिश्र रंजनात्मक निबन्ध लिखने वाला में थे। इनके निबन्धों में स्वाभाविकता एवं सरसता भट्ट जी के निबन्धों से अधिक है। मिश्र जी अपने निबन्धों में पाठकों के बहुत समीप पहुँचे दिखाई देते हैं। उनके और पाठकों के बीच कोई दूरी नहीं है। वे पाठकों से बड़ी आत्मीयता से बात करते हैं। मिश्र जी के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनके 'आप' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

अब तो आप समझ गए न कि आप क्या हैं? अब भी न समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारी के कौन हैं? हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी छदाम की समझ किसी पसारी के यहाँ से मोल ले आइए, फिर आप ही समझने लगिएगा कि आप को हैं? कहाँ के हैं? कौन के हैं? यदि यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आप से बाहर हो जाइए तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह लेंगे ... छाव। आप न समझो तो आमा को के पड़ी छ। ऐं। अब भी नहीं समझे? वाह रे आप। [२]

मिश्र जी ने अपने निबन्धों द्वारा जन-साहित्य का सृजन किया है। उस समय जनता की रुचि हिन्दी की ओर अधिक नहीं थी इसलिए मिश्र जी ने सुगम साहित्य की रचना कर जनता की रुचि को हिन्दी की ओर आकृष्ट किया। मिश्र जी के निबन्ध युगानुरूप हैं, इनसे देश और मिश्र समाज का बड़ा हित हुआ। इसके साथ ही निबन्ध के वास्तविक गुण भी ओ के निबन्धों में पूरी तरह विद्यमान हैं। डॉ०

---

१ हिन्दी प्रदीप अक्टूबर १८९१ ई० पृष्ठ १६

१ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ आप' प्रतापनारायण मिश्र

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं— 'विषय प्रतिपादन-शैली और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा वे *अवर्णनीय रसात्मकता की सृष्टि किए बिना नहीं रहते। यह बात हमें भट्ट जी के निबन्धों में नहीं मिलती।* वैसे भाषा, प्रयोग आदि की दृष्टि से मिश्र जी में चाहे जो दोष आ गए हों किन्तु निबन्धकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्ट की अपेक्षा हमें उन्हीं में अधिक होते हैं।'[1]

भट्ट जी और मिश्र जी की अपनी अलग-अलग मान्यताएं थीं। मिश्र जी जनसामान्य को छोड़ना नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने ग्रामीण कहावतों और मुहावरों का प्रयोग अपने निबन्धों में स्वच्छन्दता से किया है। भट्ट जी परिष्कृत बुद्धि वालों के लिए अपने निबन्ध लिख रहे थे इसलिए उनमें नागरिकता अधिक है। भट्ट जी के निबन्ध परिष्कृत भाषा के अनुरोध में कुछ अस्वाभाविक भी हो गये हैं। नरेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में— यद्यपि भट्ट जी ने हिन्दी खड़ी बोली के गद्य को परिष्कृत करने में बहुत बड़ा भाग लिया है, किन्तु उनके गद्य पर संस्कृत का प्रभाव कम नहीं। उनका पांडित्य गद्य को कहीं कहीं भारी अवश्य बना देता है। हिन्दी गद्य का स्वतन्त्र और स्वाभाविक विकास शुद्ध रूप से प० प्रतापनारायण मिश्र में ही देखने को मिलता है।[2] मिश्र जी के निबन्धों में परिहासात्मकता की प्रधानता है। इन्होंने हास्य और व्यंग्य की योजना अपने निबन्धों में विशेष रूप से की है। ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ रचनात्मकता निबन्धकार हैं। इनके से स्वाभाविक और सच्चे निबन्ध उस युग में कोई दूसरा निबन्धकार नहीं लिख सका।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों की भाषा शैली

भारतेन्दु-युग भाषा-शैली की दृष्टि से बड़ा धनी है। उस युग की भाषा शैली की विविधता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं— 'यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु-युग में भाषा की रक्षा और साहित्य को संस्कृत के अनुरूप निर्मित करने के उत्साह तथा अभिव्यंजन की विविध प्रकार की शैलियों के विधान तथा मस्ती के जैसे दर्शन हुए हिन्दी में आगे चलकर फिर कभी नहीं हुए। आज हिन्दी का प्रसार पहले की अपेक्षा अधिक है किन्तु उस प्रकार की बहुरंगी छटा के दर्शन दुर्लभ हैं।[3] भाषा की दृष्टि से भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—पहले, जन सामान्य के अनुकूल सरल भाषा लिखने

1 डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९५४ ई०) पृष्ठ १९८४०

2 नरेन्द्र चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर (१९५७ ई०) पृष्ठ १५९

3 आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र वाङ्मय विमर्श (२०१४ वि०) पृष्ठ १११

वाले, दूसरे संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने वाले और तीसरे, काव्यमयी या चमत्कारपूर्ण भाषा लिखने वाले। प्रथम श्रेणी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास आदि आयेंगे। इनकी भाषा बड़ी स्वाभाविक, चलती हुई—हास्य और व्यंग्य से युक्त है। इनकी भाषा में लेखकों ने सरसता और सरलता पर विशेष ध्यान दिया है। भारतेन्दु की भाषा का एक उदाहरण लीजिए—

हे स्त्री देवी! संसार रूपी आकाश में गुब्बारा (बलून) हो क्योंकि बात बात में आकाश में चढ़ा देती हो पर जब धक्का दे देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है अथवा पर्वत के शिखरों पर हाड़ चूर्ण हो जाते हैं जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो जिस समय रसना रूपी एंजिन तेज करती हो एक घड़ी भर में चौदहों भुवन दिखला देती हो काम क्षेत्र में तुम इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ हो बात पड़ने पर एक निमिष में उसे देशान्तर में पहुँचा देती हो, तुम भवसागर में जहाज हो बस अधम को पार करो।[1]

भारतेन्दु-युगीन अधिकांश साहित्य इसी भाषा में लिखा गया है। उस युग की सच्ची सप्राणता इसी भाषा में दिखाई देती है। जनसामान्य में राष्ट्रीय चेतना फैलाने में यह भाषा बड़ी सहायक हुई है। उस युग का जन-साहित्य इसी भाषा में लिखा गया है। इस भाषा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'वह जनता की भाषा है जिसमें अत्यधिक ग्राम-सम्पर्क के चिह्न भले हों नागरिक बनाव सिंगार और टीपटाप का अभाव है। उस पर अवधी और ब्रजभाषा की गहरी छाप है और जितनी ही गहरी यह छाप होगी भाषा उतनी ही सबल होगी। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी का जन्म एक बुद्धि और बहिष्कार की इस भावना से हुआ है कि उसमें से विदेशी शब्द निकाल दिये जाएँ और संस्कृत के शब्द ठूँस दिये जायें उनसे निवेदन है कि भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों ने ही हिन्दी को उसका आधुनिक रूप दिया है। एक बार उनकी रचनाओं को पढ़कर देखिए कि उनकी भाषा में विदेशी शब्द अपनाये गये हैं या उनका बहिष्कार किया गया है।'[2]

द्वितीय श्रेणी में बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम् शब्द बहुतायात से प्रयुक्त हुए हैं। यह भाषा कुछ अस्वाभाविक और बनावटीपन लिए हुए है। इसमें सरसता और सरलता की बड़ी कमी है उदाहरणार्थ बालकृष्ण भट्ट की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'वेद जिनके हृदय की भाषा थी व सात मनु और याज्ञवल्क्य के समान

---

१ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' 'भारतेन्दु-युग' (२०१० वि०) पृष्ठ ८४६

२ डॉ० रामविलास शर्मा तीसरा भाग (१९५६ ई०) पृष्ठ १९६

का आभ्यन्तरीन भेद वर्ण विवेक आदि के झगड़ा म पड समाज की उन्नति या अवनति की तरह-तरह की चिन्ता म नही पडे थे कणाद या कपिल के समान अपने अपने शास्त्र के मूलभूत बीज सूत्रा को आगे कर प्राकृतिक पदार्थों के तत्व की खान म दिन रात नही डूबे रहते थे, न कालिदास आदि कवि सम्प्रदायानुसार वे लोग कामिनी के विभ्रम और लावण्य लीला लहरों म गोते मार मार प्रमत्त हुए थे। प्रात काल उदितोमुख सूर्य की प्रतिमा देख उनके सीधे सादे जी ने बिना कुछ विशेष छानबीन किये इसे अज्ञान और अजेय शक्ति समझ और इसके द्वारा अनेक प्रकार का लाभ देख कानन स्थित विहगकूजन समान कलकल रव से प्रकृति के प्रभात वन्दना का साम गाने लगे। जलभार पूर्ण श्यामला मेघमाला का नवीन सौन्दर्य देख पुलकित गात्र हो कृतज्ञता उपहार स्तोत्र का पाठ करने लगे। [१]

तृतीय श्रेणी म बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन गोविन्दनारायण मिश्र आदि प्रमुख है। इनकी भाषा म चमत्कार और पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। अलकारिकता लाने के लिए विचारों और भावों को भी तोड़ा-मरोडा गया है। यह भाषा नितान्त अस्वाभाविक और व्यवहारिकता से दूर है। उदाहरण के लिए गोविन्दनारायण मिश्र की भाषा देखिए—

परन्तु मदमति अरसिका के अयोग्य मलिन अथवा कुशाग्रबुद्धि चतुरा के स्वच्छ मलहीन मन को भी यथोचित शिक्षा स उपयुक्त बना लिए बिना उनपर कवि की परम रसीली उक्ति छवि-छबीली का असवृत नखशिख लौ स्वच्छ सर्वांग-सुन्दर अनुरूप यथार्थ प्रतिविम्ब कभी न पड़गा। स्वच्छ दर्पण पर ही अनुरूप, यथार्थ, सुस्पष्ट प्रतिविम्ब प्रतिफलित होता है। उससे साम्हना होते ही अपनी ही प्रतिबिम्बित प्रतिकृति मानों समता की स्पर्द्धा मे आ उसी समय साम्हना करने सामने-सामने आ खडी होती है। [२]

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार प्रथम श्रेणी के लेखकों की भाषा ही अधिक प्रगतिशील और युगानुरूप है। प्रतापनारायण मिश्र प्रथम श्रेणी के लेखको म अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं इनकी भाषा सबसे अधिक चलती हुई सजीव स्वाभाविक और स्वच्छन्द है। सरसता के लिए कहावतों और मुहावरों तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उन्होंने बहुतायत से किया है। यह भाषा अपनी तरलता और सरलता के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यह पाठको को बहुत शीघ्र अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। एक उदाहरण लीजिए—

---

१ हिन्दी प्रदीप' जुलाई १८८७ ई० पृ १६ १७

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास (२००६ वि०) पृष्ठ ५१७

"भला हमारी बातों में तुम्हारे मुंह से हि हि हो निकला । इस ठोकड़ा स सटके हुए मुँह के दाँतों के समान दो तीन दाँत तो निकल और नहीं तो मसखरपन ही का सही, मजा तो आया। देखो आँखें मिट्टी क तेल की रोशनी और बुल्हिया के क एनक की चमक स चौंधिया न गई हों तो देखो । छत्तीसौ जात बरन अजात क जूठे गिलास की मदिरा तथा भक्ष्य अभक्ष्य की गन्ध स अक्किल भाग न गयी हो तो समझो। हमारी बातें सुनन म इतना फल पाया है तो मानन म न जान क्या प्राप्त हो जायगा। इसी से कहते हैं, भैया मान जाव राजा मान जाव मुन्ना मान जावो। आज मन मार क बैठने का दिन नहीं है । पुरखा क प्राचीन सुख सम्पति का स्मरण करने का दिन है। इसस हँसो बोलो, गाओ, बजाओ त्योहार मनाओ और सबस कहते फिरो—होली है।[1]

मिश्र जी की भाषा म बनावटीपन बिलकुल नहीं है। उनकी भाषा बड़ी साफ सुथरी और रोचक है। त्रिपाठी बन्धु लिखते हैं— हिन्दी गद्य की भाषा को कृत्रिमता के गड्ढ म स निकाल कर उसे प्रौढ़ सुबोध रोचक तथा सजीव बनाने का काम प० प्रतापनारायण मिश्र न किया। उन्होंने उनम रहस्य और व्यंग्य क रासायनिक संयोग स एक परिमार्जित शैली का निर्माण किया।[2] मिश्र जी की भाषा शैली म उनकी अपनी विशिष्टता है। वे स्वयं अपनी शैली क जन्मदाता हैं।

मिश्र जी भारतेन्दु-युग क प्रमुख साहित्यकार हैं। इनकी सी विलक्षण प्रतिभा और स्वच्छन्दता उस युग क किसी साहित्यकार म नहीं मिलती। इनके विचार भाव और भाषा म एक अजीब निरालापन दिखाई देता है। य बड़ निर्भीक दूर दर्शी और स्पष्टवादी साहित्यकार थ। लोक कल्याण की भावना उनक रग रग म समायी हुई थी। उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' के ममत्व म अनुप्राणित है। इन्होंने अल्पावस्था म ही अपनी बहुमुखी प्रतिभा स सम्पूर्ण युग को आकृष्ट कर लिया था। उनकी छाप उस युग क प्रत्यक साहित्यकार पर दिखाई देती है। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते हैं—'प० प्रतापनारायण मिश्र न अपन युग का सफल प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र भाषा हिन्दी और राष्ट्र को उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर किया। मिश्र जी न एक मिशनरी की भाँति हिन्दी और राष्ट्र की सेवा तन मन और धन से की। उन्हें अपने मिशन पर पूर्ण विश्वास था और साथ ही साथ उसे पूर्ण करने की योग्यता और क्षमता भी थी। उनम उत्कट क्रान्ति का आत्मबल और मनोयोग था जिसके सहारे व किसी भी विषमता से टक्कर मारा सन को

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ८ 'होली है' प्रतापनारायण मिश्र।

२ लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी एवं रमाकान्त त्रिपाठी कानपुर क कवि' (१९४६ ई०) पृष्ठ ९०।

सदा कमर कस रहते थे।[1] मिश्र जी ने साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है और सभी में अच्छी सफलता प्राप्त की है। समग्ररूप से देखने पर उस युग में भारतेन्दु के बाद मिश्र जी की टक्कर का कोई साहित्यकार नहीं दिखाई पड़ता। बालमुकुन्द गुप्त स्पष्ट लिखते हैं—'हिन्दी साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द्र के उदय होने के थोड़े ही दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदय हुआ था जिसकी चमक-दमक को देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने लगे थे। उस चन्द्र के अस्त हो जाने के पश्चात् इस तारे की ज्योति और भी बढ़ी। बड़े हर्ष के साथ कितनों ही के मुख से यह ध्वनि निकलने लगी कि यही उस चन्द्र की जगह लेगा। पर दुःख की बात है कि ऐसा होने से पहले ही कुछ दिन बाद यह उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया। इसका नाम पं० प्रतापनारायण मिश्र था।[2] मिश्र जी कुछ बातों में भारतेन्दु से भी बढ़कर थे जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है। मिश्र जी स्वयं भी कहते हैं—कानपुर में उसे (ब्राह्मण सम्पादक को) दावा भी है कि हरिश्चन्द्र की बराबरी करना तो पाप है पर उसी कवियों अर के महराज के मंत्री हम भी हैं। रसा की हमसरी करना तो बरहमन है गुनाह पर उस शहे सुखरा के वज़ीर हम भी हैं।[3]' मिश्र जी ने बड़ी तन्मयता से साहित्य और समाज की सेवा की है। उनका ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्व है ही आज की दृष्टि से भी उनके विचार साहित्य और कर्मठता अनुकरणीय है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी भारतेन्दु-युग में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

परवर्ती साहित्यकारों पर मिश्र जी का प्रभाव

मिश्र जी ने सामयिक साहित्यकारों के साथ ही परवर्ती साहित्यकारों को भी अपने प्रदेय से प्रभावित किया। मिश्र जी की साहित्यिक मान्यताएँ इतनी विशिष्ट और सुलझी हुई थीं कि अनेक साहित्यकारों ने तो उन्हें ज्यों-का-त्यों अपनाया। कुछ ने तो उनके विचारों तक का अनुकरण किया। उनकी भाषा-शैली का प्रभाव तो कई वर्तमान साहित्यकारों तक में देखने को मिल जाता है। जो साहित्यकार जितना ही प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी होता है वह उतना ही अपने युग तथा परवर्ती साहित्यकारों को प्रभावित करता है। मिश्र जी की परवर्ती साहित्यकारों पर इतनी गहरी छाप है कि वस्तुतः उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होने लगता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख साहित्यकारों पर पड़े मिश्र जी के, प्रभाव को दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा।

---

१ दैनिक प्रताप (कानपुर) २८ अक्टूबर, १९५६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र का व्यक्तित्व' लक्ष्मीकांत त्रिपाठी।

२ 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १।

३ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'कानपुर कुछ कुमगुनाया है' प्रतापनारायण मिश्र

बाबू राधाकृष्णदास पर प्रभाव

राधाकृष्णदास यद्यपि मिश्र जी के समय में ही साहित्य-क्षेत्र में आ चुके थे परन्तु इन्होंने अधिकांश साहित्य मिश्र जी की मृत्यु के बाद लिखा है। इन पर मिश्र जी का प्रभाव पूरी तरह दिखाई पड़ता है। भाषा शैली तो बहुत-कुछ मिलती-जुलती है ही, भावों में भी बहुत-कुछ साम्य है। इन्होंने मिश्र जी की हास्य और व्यंग्यात्मक शैली का विशेष रूप से अनुकरण किया है। मिश्र जी के 'होली है' निबन्ध के ही आधार पर इन्होंने भी अपना 'होली है' निबन्ध लिखा है जिसमें बड़ी समानता है। मिश्र जी के 'होली है' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए— 'तुम्हारा सिर है। यहाँ दरिद्र की आग के मारे होला (अथवा हार—भुना हुआ हरा चना) हो रहे हैं इन्हें होली है हैं।—हम पुराने समय के बंगाली भी तो नहीं हैं कि तुम ऐसे मित्रों की जबरदस्ती से होरी (हरि) बोल के घात हो जाते। हम तो बीसवीं शताब्दी के अभागे हिन्दुस्तानी हैं जिन्हें कृषि, वाणिज्य, शिल्प सेवादि किसी में भी कुछ तत्व नहीं हैं।—ऐसी दशा में हम होली सूझती है कि दिवाली।'[1]

इन्हीं से बाबू राधाकृष्णदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलाइए—'अहा हा! आज होली है नहीं नहीं भारत के भिक्षा की झोली है नहीं नहीं क्षत्रियों की होली है अजी वाह अच्छा कहा यह तो बुड्ढों के खेलने की गोली है भारतवर्ष का दुर्दशा के छिपाने को लाल गुलाल की खोली है नहीं भारतवर्ष के असभ्यता प्रदान की यह बहुत ठठोली है।'[2]

बालमुकुन्द गुप्त पर प्रभाव

गुप्त जी मिश्र जी से अत्यधिक प्रभावित थे। इन्हें कालाकाँकर में हिन्दोस्थान के सम्पादन काल में मिश्र जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। वहीं इन्होंने मिश्र जी से हिन्दी गद्य और कविता लिखना सीखा था। ये मिश्र जी को अपना गुरु मानते थे।[3] मिश्र जी की ही आदर्शों का इन्होंने विधिवत् पालन किया है। इनके 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में मिश्र जी की ही व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। ये मिश्र जी की शैली के अनुकरण में अत्यन्त सफल हैं। कविता में तो इन्होंने मिश्र जी के विचारों तक का अनुकरण किया है। मिश्र जी के 'लोकोक्ति शतक' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

> 'सबमु सिए आल अगरेज, हम केवल लेक्चर के तेज।
> श्रम बिन बातें का करती हैं, कहूँ टटरन गाज टरती हैं॥'[4]

---

१. ब्राह्मण खण्ड ९, संख्या ८, 'होली है' प्रतापनारायण मिश्र।
२. 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ९३
३. डा० नत्थनसिंह गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त (१९६९ ई०) पृष्ठ २९
४. प्रताप नारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २

इनसे गुप्त जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलाइए और देखिए कितना सादृश्य है—

'गाइते सेवचर हैं लिखते लेख अब बतलाइये।
देश हित के वास्ते क्या क्या करें फरमाइये ॥ [1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पर प्रभाव

हरिऔध' जी पर भी मिश्र जी का अच्छा प्रभाव पड़ा है। हरिऔध जी ने अपने 'प्रियप्रवास' में पवनदूत की कल्पना मिश्र जी के अनुकरण पर ही की है। मिश्र जी का निम्नलिखित कवित्त उनके पवनदूत का प्रेरक है—

'पीत पट अग अंक जास गुंज माल राज
चन्द्रिका मयूर चूड़वशी कर वहियो।
मकराकृत कुण्डल प्रताप शुभ कानन में
देखि देखि आभा अपन नन साम सहियो ॥
हा हा समीर बीर तो सों है निहोर एक,
नेक वा विदवासी के पास ह्व बहियो।
मोप कृपा करि बहु भाँति तू पायन परि,
मेरी गोपाल जी सों अगोपाल कहियो। [2]

हरिऔध जी की संस्कृतनिष्ठ भाषा भी मिश्र जी की भाषा से बड़ा साम्य रखती है। मिश्र जी की संस्कृत निष्ठ भाषा की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'तीव्र त्रैताप तापित परित्राणरत सर्वदा साधु सकष्टहर्त्ता।
सर्वथा सेव्य सम्पूर्ण सशय शमन माध्य भगवान भुवनैकभर्त्ता ॥
आप्त आनन्दमय अखिल ऐश्वर्यपति सत्य सौजन्यप्रिय सृष्टि स्रष्टा।
सर्वथा शक्तिसम्पन्न शुभहृदयाम्भोधिदेवाधि पति दिव्य द्रष्टा ॥[3]

इनके साथ ही हरिऔध जी की भी कुछ पंक्तियाँ लीजिये और देखिए आश्चर्यजनक समानता है—

नाना भाव विभाव हाव कुशला आमोद आपूरिता।
लीला लोल कटाक्ष पात निपुणा भ्रूभंगिमा पंडिता ॥
वादित्रादि समोद वादन-परा आभूषणाभूषिता।
राधा थीं सुमुखी विशाल-नयना आनन्द-आंदोलिता ॥ [4]

---

१ बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ६९२
२ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १८४ ८५ (कवित्त)
३ —वही— (प्रेम पुष्पावली)
४ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रिय प्रवास (२०१३ वि०) पृ० ३७

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर प्रभाव

द्विवेदी जी पर मिश्र जी का प्रभाव आल्हा के क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के ही अनुकरण पर इन्होंने अपना 'सरगौ नरक ठिकाना नाहिं' आल्हा लिखा है। मिश्र जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

'देवी गये आदि अविद्या जिनकी लीला अपरम्पार।
हिन्द वासिनी बोतल धारिनि दुइ पद मदहा पर असवार॥
बड़े-बड़े पंडित बड़े बड़े भूपति तुम्हरे बिना मोल के दास।
बालक बुढ़वा अरु नारिन के हिरदे बैठी करो बिलास॥
गाजी पीर मारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जनम भूमि को जसु गावतु हौं भूले अच्छर देव बताय॥"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से द्विवेदी जी के आल्हे की कुछ पंक्तियाँ मिलाइये—

देवि सारदा तुमको सँवारौं मनियाँ देव महोबे क्यार।
तुमहीं रक्षक हौ सब जग के बेड़ा खेइ लगायो पार॥
आपन कथा सुनावौं तुमका सुनिये ज्वानौ कान लगाय।
अब सुधि आव उन बातन का जियरा कलपि-कलपि रहिजाय॥
एक्का एक्कु पड़ हम लागेन पर लागि नित हम प मार।
धिन-धिन मैहाँ लाला डौंक कबुवा आपन हाय निकार॥
छड़ी तड़ातड़ हम प बरस लागी नित कम से कम बीस।
अटई बड़ा तऊ न छ्योड़ा भया अस हम रहेन सबीस॥'[2]

शिवनाथ शर्मा पर प्रभाव

शर्मा जी ने भी मिश्र जी की शैली का बहुत-कुछ अनुकरण किया है। इन्होंने मिश्र जी की 'तृप्यन्ताम्' कविता के आधार पर अपनी 'तृप्यन्ताम्' कविता लिखी है। मिश्र जी की तृप्यन्ताम् कविता का एक छन्द देखिए—

नारिन की तौ कौन कथा है जहाँ नरहि सब विधि सों बाम।
तुमहिं प्रसन्न करन को समरथ कैहि महँ देखि परै कहि ठाम॥
सायन आरापन महि ज्ञान दुलित दुखित हम हैं बसु आम।
हाँ बकरा को रक्त लेहु अब रहहु देवि। नित तृप्यन्ताम्॥'[3]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ६ 'कानपुर माहात्म्य' प्रतापनारायण मिश्र
२ रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भागीरथ मिश्र 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' (१९५६ ई०), पृष्ठ १७५
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ३ 'तृप्यन्ताम्' प्रतापनारायण मिश्र

शर्मा जी के भी तृप्यन्ताम् की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'बने समालोचक के रूप, सुन्दरताहु बने कुरूप।
नकल करें उच्छिष्ट समान, लिखा करिबे के हित जान॥
पुनि लिखिबे को रह्यो न काम, बस अब कोरी तृप्यन्ताम्॥'[1]

इन साहित्यकारों के अतिरिक्त सरदार पूर्णसिंह प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक', प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि पर भी मिश्र जी की भाषा-शैली का प्रभाव पड़ा है। सरदार पूर्णसिंह ने मिश्र जी की व्यंग्यात्मक शैली को विशेष रूप से अपनाया है। इनके 'पवित्रता' आदि निबन्ध इसके प्रतीक हैं। प्रेमचन्द की भाषा मिश्र जी की भाषा से बहुत-कुछ मिलती है। ग्रामीण शब्दों से जैसा मोह मिश्र जी को था, वैसा ही प्रेमचन्द में भी दिखाई पड़ता है। 'कौशिक' जी की विजयानन्द दुबे के नाम से लिखी 'दुबे जी की चिट्ठियाँ' और प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'छब्बे जी का खरीता' भी मिश्र जी की परम्परा का ही द्योतक है। इसमें मिश्र जी की जैसी व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही भगवतीचरण वर्मा प० रमाशंकर अवस्थी (वर्तमान-सम्पादक) दयाशंकर दीक्षित देहाती जी आदि पर भी मिश्र जी की शैली का बहुत-कुछ प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार मिश्र जी के विचार और भाषा-शैली का परवर्ती साहित्यकारों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। मिश्र जी का साहित्यिक प्रेम बड़ा प्रभावशाली और प्रेरक है। उसमें मिश्र जी का मनमौजी फक्कड़ स्वतन्त्र और निर्भीक व्यक्तित्व पूरी तरह समाया हुआ है। मिश्र जी देश हितैषी साहित्यकार थे। इसलिए उनके साहित्य में लोक-कल्याण और साहित्यिकता का सुन्दर सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है। उनका साहित्य उनके युग का प्रतिबिम्ब है। मिश्र जी ने साहित्य और राष्ट्र की तन, मन और धन से सेवा की है। उन्होंने अपनी कर्मठता और साहित्य-सेवा से जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार किया तथा हिन्दी को गतिशीलता देकर उसे नयी दिशा की ओर मोड़ा। मिश्र जी द्वारा ही हिन्दी नये साँचे में ढाली गयी है और उसे शक्ति प्राप्त हुई। मिश्र जी हास्य और व्यंग्य के अवतार थे। उनकी जिन्दादिली और मसखरेपन ने साहित्य को बड़ा सजीव और रोचक बना दिया है। मिश्र जी के साहित्य में उनकी शैली का विशेष महत्व है। उनकी शैली की सी तरलता और रोचकता हिन्दी के किसी भी साहित्यकार की शैली में नहीं मिलती। मिश्र जी ऐतिहासिकता के साथ ही अपनी विशिष्ट और निराली शैली के लिए सदैव स्मरण किये जाएंगे। मिश्र जी का-सा प्राणवान साहित्य हिन्दी में मिलना दुर्लभ है।

---

१ शिवनाथ शर्मा 'मिस्टर व्यास की कथा' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १४८

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

मिश्र जी का अप्रकाशित साहित्य

मिश्र जी अर्थाभाव के कारण अपना सम्पूर्ण साहित्य पुस्तकाकार नहीं निकलवा सके थे। उनका अधिकांश साहित्य तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होकर रह गया था। आगे चलकर कुछ साहित्यकारों ने (जिनका उल्लेख कृतियों के अध्याय में हो चुका है) पत्र-पत्रिकाओं से संग्रह कर उनका आंशिक साहित्य प्रकाशित कराया पर परिश्रम और शोध के अभाव में सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित नहीं हो सका। यहाँ पर हम उन कविताओं, लेखों निबन्धों और समालोचनात्मक टिप्पणियों की सूची दे रहे हैं जिनको अभी तक पुस्तकाकार रूप प्राप्त नहीं हुआ। यह साहित्य हम शोध-काल में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त हुआ है।

अप्रकाशित कविताएँ

१—चाहे गाना समझो चाहे रोना (लावनी)	ब्राह्मण	खण्ड २	संख्या ९–१०
२—कलयुग ही कलयुग छाय रह्यो	'ब्राह्मण',	२	११
३—सामयिक प्रार्थना	'ब्राह्मण',	२	९ १० १२
४—प्रेम प्रमाद (इस अंक के केवल एक कजरी और पाँच पद प्रकाशित होने से रह गये)	'ब्राह्मण'	खण्ड ३	संख्या ११
५—प्रेम प्रमाद (दस पद)	'ब्राह्मण'	३	१२
६—मंगलाचरण	'ब्राह्मण'	४	१
७—स्फुट कविता (ग्यारह सवैया)	'ब्राह्मण'	४	७
८—हाय! हाय!! हाय!!! (अयोध्यानाथ की मृत्यु पर लिखा गया शोक गीत)	'ब्राह्मण'	खण्ड ८	संख्या ६
९—अनोखो तू ही तो हरिहार (तीन पद)	'ब्राह्मण',	८	८
१०—वह छवि बिसरत नाहिं बिसारी	'ब्राह्मण',	८	८
११—विशेष प्रार्थना	'ब्राह्मण'	८	११
१२—वर्षारम्भे मंगलाचरण	'ब्राह्मण'	९ ,,	१

१३—स्फुट कविताएँ (पन्द्रह कविताएँ) 'कविवचन-सुधा' वर्ष १४

१४—समस्यापूर्तियाँ (पाँच समस्या पूर्तियाँ) 'रसिकवाटिका' १८९१ ई० (पहली क्यारी)

अप्रकाशित लेख एवं निबन्ध

१—असेसर	'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या २	
२—स्यापा	—वही— , १ ,, २	
३—क्यूरिस डिवशन बिल	—वही— , १ ,, २	
४—ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र	—वही— ,, १ , ५–६	
५—शालिग्राम जी का कचहरी मे जाना ठीक है कि नही	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७	
६—फक्कड़ और भंगड़	ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९	
७—तीन दवावत जिबस को पातक राजा रोग	ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १०	
८—न भूतो न भविष्यत	ब्राह्मण खण्ड १ संख्या १०	
९—सूचना	—वही— १ , १२	
१०—भविष्यतवाणी	—वही— ,, २ , २	
११—दूसरी पेशीनोई	—वही— २ २	
१२—जरूर पढ़िये	—वही— , २ ३	
१३—सुनो भाई	—वही— २ ५	
१४—श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	—वही— २ , ८	
१५—क्षमा कीजिए	—वही— २ , ९–१०	
१६—वियोग वार्ता	—वही— २ , ९–१०	
१७—'गपशप'	—वही— , २ , ९–१०	
१८—भारत का सर्वोत्तम गुण	—वही— २ ११	
१९—प्रयाग हिन्दू समाज का महोत्सव	—वही— २ , ११	
२०—प्रिय वियोग सम दुख जग नाही	—वही— २ , ११	
२१—प्रश्नोत्तर	—वही— , २ ,, ११	
२२—विशेष सूचना	—वही— २ , १२	
२३—प्रश्नोत्तर	—वही— ३ , १	
२४—अति सर्वत्र वर्जयते	—वही— ,, ३ , २	
२५—अखण्डनीय सिद्धान्त	ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ३–४ ५	

२६—विविध (कलयुगी सत्य टॉय-टॉय फिस एक अकिल क पुतले चिट्ठी लिखते हैं बुद्धिमानों विचार के कहना सरकार से कोई पूछे चरा अकिल दौड़ाओ, दूध लावो तो एक पैसा दें, कोई युद्ध कर दे तो दो पैसा इनाम दें, मतलब की बातें, खेत का लटका) ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ३–४

२७—खुदा से शिकवा हमें किस कदर है क्या कहिए ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ५

२८—ख्वाब के ख्वाब में अंगरेजी बाजों की धूम है —वही— ३ , ५

२९—मोहरम से खुदा बचाये
३०—दगल — ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ७
३१—सच्चे जी से धन्यवाद — —वही— , ३ , ७
३२—भारत-दुर्दशा की दुदशा — —वही— ३ , ८
३३—हमारे यहा की रामलीला — —वही— , ३ , ८
३४—हाथी चल ही जाते हैं कुत्ते भौंका करत हैं — —वही— , ३ , ९-१०
३५—खरी बात शहिदुल्ला कहें सबके जी स उतरे रहें — —वही— „ ३ , ९-१०
३६—भारतेन्दु का दालभात में मूसलचन्द — —वही— „ ३ ९-१०
३७—भ्रम है — —वही— ३ , ९-१०
३८—धर्मोत्सव — —वही— „ ३ , ११
३९—धन्यवाद — —वही— , ३ „ ११
४०—आपबोती — —वही— ४ , १
४१—जुबिली — —वही— ४ , १
४२—चर्बी मिलायी — —वही— , ४ , १
४३—घुटकुसा — —वही— ४ १
४४—कानपुर रत्नहानि — —वही— , ४ २
४५—अग्रज बहादुर — —वही— , ४ , ३
४६—रामलीला और मुहर्रम — —वही— , ४ „ ४
४७—कानपुर कुछ कुनमुनाया है — —वही— ४ ३-४
४८—जरूर देखो — —वही— „ ४ , ५
४९—जातीय महासभा — —वही— ४ „ ६
५०—नेशनल कांग्रेस मद्रास — —वही— , ४ ६
५१—सुनने लायक बात — 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ७
५२—नेशनल कांग्रेस — —वही— ४ ८-९
५३—हमारे यहां की कोई बात व्यर्थ नहीं है — —वही— ४ , १०
—वही— „ ४ १० ११
५४—हमारे दयालु — „ ५ २-४
५५—हमारे अनुग्राहक — —वही— , ४ „ १२
५६—अपूर्व रहस्य — —वही— , ५ ४
५७—सुनिये तो — —वही— ५ , ५
५८—कांग्रेस कर्तव्य — —वही— „ ५ ७
५९—बधाई है — —वही— „ ५ , ७
६०—हमारे कलक्टर साहब — —वही— , ५ ९
—वही— , ५ , १०

६१—प्रश्नोत्तर	'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १०
७२—होम करत हाथ जलता है	—वही— ,, ५ , १२ तथा
	—वही— , ६ २
६३—देखिए ! देखिए !! अवश्य देखिए !!!	—वही— ६ ४
६४—धन्यवाद	—वही— ६ ,, ९
६५—एक कथा (प्रारम्भिक अंश)	—वही— , ६ , ११
६६—सूचना ! सूचना !! सूचना !!!	—वही— ६ , १२
६७—और सुनिये	—वही— ७ , १
६८—एक सलाह	—वही— , ७ ,, ३
६९—लेजिसलेटिव कौंसिल के मम्बरों की नियुक्ति का प्रबंध	—वही— , ७ , ५
७ —हमारे उत्साह दाता	—वही— ७ , ११
७१—क्या हम यह मान लें	—वही— ८ , ४-५
७२—आसदर्न	—वही— , ८ , ७
७३—गपशप—	—वही— ८ , ८
७४—असर इसको कहते हैं	—वही— ८ ८
७५—सच्चा विज्ञापन	—वही— , ८ , ८
७६—दूध की उत्पत्ति	—वही— ८ , १०
७७—सिद्धान्त वाक्यावली	—वही— ८ १०
७८—गपशप	—वही— ८ ११
७९—'निणय शतक'	—वही— , ९ १
८ —जरा मन लगा के पढ़िये	—वही— ९ , ३
८१—रामायण रमण	—वही— ९ ६
८२—गपशप	—वही— ९ ८
८३—मंगल समाचार	—वही— • , ९

अप्रकाशित समालोचनात्मक टिप्पणियाँ

मिश्र जी की १२ समालोचनात्मक टिप्पणियाँ 'प्रतापनारायण मिश्र' (स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी) नामक पुस्तक में सकलित हैं। उनके अतिरिक्त प्राप्त टिप्पणियों की सूची इस प्रकार है—

१—समालोचना (भाषा दीपिका की समालोचना)	'ब्राह्मण', खण्ड १, संख्या २
२—समालोचना (हितप्रबोध की समालोचना)	—वही— १ ७
३—समालोचना (नीत्योपदेश की समालोचना)	—वही— १ , ८
४—समलोचना (बाग़पाठ शृंगार चन्द्रिका और गुमस्ते बेनजीर की समालोचना)	—वही— १ ९

५—प्राप्ति स्वीकार (हिन्दोस्थान पत्र की समालोचना)	—ब्राह्मण खण्ड	१ संख्या	१०
६—समालोचना (दिनकर प्रकाश की समालोचना)	—वही—	, २	१
७—समालोचन (कान्यकुब्ज प्रकाश, तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक, स्त्रीशिक्षा की समालोचना)	—वही—	२	२
८—समालोचना (प्रेम तरंग काश्मीर कीर्ति की समालोचना)	—वही—	२	५
९—प्राप्ति स्वीकार (श्री भारतेन्दु शताब्दी की आलोचना)	—वही—	३ ,,	७
१०—आलोचना (संयोगिता स्वयंवर की आलोचना)	—वही—	३	१२
११—समालोचना (दुर्गाशतक और सन्ध्याविधि की समालोचना)	—वही—	४	२
१२—समालोचना	—वही—	, ४ ,	६
१३—समालोचना (सती नाटक पद्मावती वीरनारी नाटक की समालोचना	ब्राह्मण' खण्ड	४ संख्या	८
१४—समालोचना (गौरक्षाम दीपिका की समालोचना)	—वही—	, ५	१२
१५—प्राप्ति स्वीकार	—वही—	,, ६	७
१६—समालोचना (तन मन धन गुसाईं जी के अपण भारत सौभाग्य हास्य तरंग की समालोचना)	—वही—	६ ,	८
१७—प्राप्ति स्वीकार (मनुस्मृति रत्नावली निस्सहाय हिन्दू की समालोचना?	—वही—	६ ,	१०
१८—प्राप्ति स्वीकार (भाग्यवती की समालोचना)	—वही—	, ७ ,	४
१९—प्राप्ति स्वीकार	—वही—	७	५
२०—प्राप्ति स्वीकार	—वही—	७ ,,	९
२१—प्राप्ति स्वीकार	—वही—	७	११
२२—प्राप्ति स्वीकार (चतुर्भुज मिश्र कृत 'आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड की समालोचना)	—वही—	८	८
२३—प्राप्ति स्वीकार (भारोधम की समालोचना)	—वही—	८ ,	११
२४—प्राप्ति स्वीकार (विस्ता भार्य नाटक की समालोचना)	—वही—	९	१
२५—समालोचना	—वही—	९ ,	९

परिशिष्ट २

सहायक ग्रन्थों की सूची

१—अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, डॉ० एस० पी० खत्री २००४ वि०
२—अभिज्ञानशाकुन्तलम कालिदास १९५५ ई०
३—आधुनिक हिन्दी साहित्य डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय १९५४ ई०
४—आधुनिक काव्यधारा डॉ० केशरीनारायण शुक्ल २००७ वि०
५—आधुनिक साहित्य आचार्यनन्ददुलारे वाजपेयी २०१३ वि०
६—आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त १९५४ ई०
७—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रथम संस्करण
८—आधुनिक हिन्दी साहित्य अज्ञेय, प्रथम संस्करण
९—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास कृष्णाकर शुक्ल, प्रथम संस्करण
१०—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास श्रीकृष्ण लाल १९९३ वि०
११—आधान शान्तिप्रिय द्विवेदी १९५७ ई०
१२—आत्मकीर्ति (प्रथम खंड) अनु प्रतापनारायण मिश्र १९८६ वि०
१३—आत्मकीर्ति (द्वितीय खंड) अनु प्रतापनारायण मिश्र १९ ८ ई
१४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त एस० पी० खत्री प्रथम संस्करण
१५—आलोचना और आलोचना डॉ० देवीशंकर अवस्थी १९६१ ई०
१६—इण्डियन नेशनल इवोलूशन अम्बिकाचरण मजूमदार १९१७ ई०
१७—कपालकुण्डलला अनु० प्रतापनारायण मिश्र द्वितीय संस्करण
१८—कलिकौतुक रूपक प्रतापनारायण मिश्र १८९० ई०
१९—कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष नारायण प्रसाद अरोड़ा १९४७ ई
२०—कानपुर के कवि लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी एवं रमाकान्त त्रिपाठी १९४६ ई०
२१—कानपुर का इतिहास लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी तथा नारायण प्रसाद अरोड़ा १९५० ई
२२—कान्यकुब्ज वंशावली नारायण प्रसाद मिश्र, १९५९ ई०
२३—काव्य के रूप डॉ० गुलाबराय १९५८ ई०
२४—खड़ीबोली का आन्दोलन डॉ० शितिकंठ मिश्र १९१३ वि
२५—खड़ीबोली-काव्य में अभिव्यंजना डॉ० आशा गुप्त १९६१ ई

२६—खड़ीबोली हिन्दी साहित्य का इतिहास ब्रजरत्नदास प्रथम संस्करण
२७—गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त, डॉ० नत्थनसिंह १९५९ ई०
२८—गोविन्द निबन्धावली, गोविन्दनारायण मिश्र १९९७ वि०
२९—चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन भागलपुरी कार्य विवरण, दूसराभाग
३०—चरिताष्टक (प्रथम भाग) अनु० प्रतापनारायण मिश्र १८९४
३१—तवारीख जिला कानपुर लाला दरगाहीलाल १८४७ ई०
३२—तृप्यन्ताम् प्रतापनारायण मिश्र, १९४१ ई०
३३—तेरहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण, दूसरा भाग
३४—तेरहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति के सभापति प० महावीर प्रसाद द्विवेदी का वक्तव्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग १९२३ ई०
३५—दृष्टिपात विष्णुदत्त अग्निहोत्री १९५५ ई०
३६—दि डिस्कवरी आफ इण्डिया, जवाहरलाल नेहरू १९६० ई०
३७—दि इंग्लिश एस एण्ड एसेइस्ट ह्याऊवाल्कर
३८—नया साहित्य नये प्रश्न आचार्यनन्ददुलारे वाजपेयी १९५९ ई०
३९—नाट्यशास्त्र, भरतमुनि २००९ वि०
४०—नाटक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र १८८३ ई०
४१—*निबन्धकार भट्ट गोपाल पुरोहित २००६ वि०*
४२—निबन्ध-नवनीत, अभ्युदय प्रेस प्रयाग १९१९ ई०
४३—पत्र-सम्पादन-कला नन्दकुमारदेवशर्मा, १९३९ ई०
४४—पत्रकार कला विष्णुदत्त शुक्ल १९३७ ई०
४५—पत्र और पत्रकार, कमलापति शास्त्री तथा पुरुषोत्तमदास टंडन प्रथम संस्करण
४६—पचामृत, अनु० प्रतापनारायण मिश्र, १८९१ ई०
४७—पचांग १९५१ वि० सुन्दर दीक्षित
४८—प्रतापनारायण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) सं० विजयशंकर मल्ल २०१४ वि०
४९—प्रतापनारायण मिश्र सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी १९४७ ई०
५०—प्रताप लहरी सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा सत्यभक्त १९४९ ई०
५१—प्रताप समीक्षा, सं० प्रेमनारायण टंडन १९३९ ई०
५२—प्रताप पीयूष सं० रमाकान्त त्रिपाठी, १९३३ ई०
५३—प्रिय प्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध २०१३ वि०
५४—प्रेम पुष्पावली प्रतापनारायण मिश्र १८८३ ई०

५५—प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय १९९९ वि०
५६—प्रेमघन-सर्वस्व (द्वितीय भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय २००७ वि०
५७—बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली (प्रथम भाग) झाबरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी २००७ वि०
५८—बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ, झाबरमल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी २००७ वि०
५९—बडला स्वागत प्रतापनारायण मिश्र १८८९ ई०
६०—बंकिमचन्द्र के उपन्यास ग्रन्थावली (तृतीय भाग) बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय राज संस्करण
६१—ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली डा० कपिलदेव सिंह प्रथम संस्करण
६२—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास, डा० वी० डी० महाजन तथा डा० आर० आर० सेठी, १९६० ई०
६३—भट्ट निबन्धावली भाग, १ सं० धनंजय भट्ट 'सरल' द्वितीय संस्करण
६४—भट्ट निबन्धावली भाग २ सं० धनंजय भट्ट सरल' द्वितीय संस्करण
६५—भारत का सवैधानिक इतिहास, डा० वी० डी० महाजन तथा डा आर० आर० सेठी १९५७ ई०
६६—भारत का वहत् इतिहास (तृतीय भाग) श्री नेत्र पाण्डे सन् १९५४ ई०
६७—भारतीय पत्रकार कला, सं० रोलण्ड ई० वूल्सले २०१० वि०
६८—भारतीय राजनीतिक, रामगोपाल २०११ वि०
६९—भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि किशोरीलाल गुप्त, १९५९ ई०
७ —भारत दुर्दशा रूपक प्रतापनारायण मिश्र १९०२ ई०
७१—भारतेन्दु-युग, डा रामविलास शर्मा १९५६ ई०
७२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला भाग) सं० ब्रजरत्नदास २००७ वि०
७३—भारतेन्दु-ग्रन्थावली (दूसरा भाग) स० ब्रजरत्नदास २०१ वि०
७४—भारतेन्दु-ग्रन्थावली (तीसरा भाग) सं० ब्रजरत्नदास २०१० वि०
७५—भारतेन्दु कालीन नाट्य साहित्य डा० गोपीनाथ तिवारी प्रथम संस्करण
७६—भारतेन्दु के निबन्ध, डा केसरीनारायण शुक्ल २० ८ वि०
७७—भारतेन्दु युगीन निबन्ध शिवनाथ २०१० वि०
७८—भारतेन्दु कालीन व्यंग्य परम्परा ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय २०१३ वि०
७९—भारतेन्दु मण्डल ब्रजरत्नदास प्रथम संस्करण
८ —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र डा० रामविलास शर्मा प्रथम संस्करण

८१—मन की लहर प्रतापनारायण मिश्र, १८८५ ई०
८२—महारानी पद्मावती राधाकृष्णदास, द्वितीय संस्करण
८३—मानस विनोद, प्रतापनारायण मिश्र, १८८६ ई०
८४—मिश्रबन्धु-विनोद, (तृतीय भाग) मिश्र बन्धु १९७० वि०
८५—मिस्टर व्यास की कथा शिवनाथ शर्मा प्रथम संस्करण
८६—मेरे गुरुजन, नारायणप्रसाद अरोड़ा, १९५४ ई०
८७—युगलागुरीय अनु० प्रतापनारायण मिश्र द्वितीय संस्करण
८८—रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, द्वितीय संस्करण
८९—राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म रामरतन भटनागर, प्रथम संस्करण
९०—राधाकृष्ण-ग्रन्थावली, (प्रथम खण्ड) स० श्यामसुन्दर दास, १९३० ई०
९१—राधारानी, अनु० प्रतापनारायण मिश्र द्वितीय संस्करण
९२—रामचरितमानम, गोस्वामी तुलसीदास, ग्यारहवां संस्करण (गीता प्रेस गोरखपुर)
९३—लावनी का इतिहास स्वामी नारायणानन्द सरस्वती १९५३ ई०
९४—लाफ्टर, हेनरी बर्गसन
९५—लोकोक्ति शतक प्रतापनारायण मिश्र १८९६ ई०
१०६—वाङ्मय—विमर्श विश्वनाथ प्रसाद मिश्र २०१४ वि०
१०७—विश्वधर्म—दर्शन सांवलिया बिहारी लाल वर्मा १९५३ ई०
१०८—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत प्रथम भाग डा० गोविन्द त्रिगुणायत प्रथम संस्करण
१०९—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त द्वितीय भाग डा० गोविन्द त्रिगुणायत १९५९ ई०
१००—शैली, करुणापति त्रिपाठी, प्रथम संस्करण
१०१—शव सर्वस्व प्रताप नारायण मिश्र १८९० ई०
१०२—समाचार पत्रों का इतिहास अम्बिका प्रसाद वाजपेयी २०१० वि०
१०३—समीक्षा-शास्त्र, डा० दशरथ ओझा तृतीय संस्करण
१०४—स्टाइल, वाल्टर रैल
१०५—सारस्वत, डा० मुंशीराम शर्मा २०१७ वि०
१०५—साहित्य सुषमा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्रथम संस्करण
१०७—साहित्य चिंतन डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण
१०८—साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द, २००७ वि०
११०—साहित्यकारों के संस्मरण सं० प्रेमनारायण टंडन १९५३ ई०
१११—सिद्धांत और अध्ययन गुलाबराय प्रथम संस्करण

५५—प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय १९९६ वि०
५६—प्रमघन-सर्वस्व (द्वितीय भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय २००७ वि०
५७—बालमुकुन्द गुप्त-निबंधावली (प्रथम भाग) झावरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी, २००७ वि०
५८—बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ झावरमल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी, २००७ वि
५९—बैठला स्वागत प्रतापनारायण मिश्र, १८८९ ई०
६०—बकिमचन्द्र उपन्यास ग्रंथावली (तृतीय भाग) बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय राज सस्करण
६१—ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली डा० कपिलदेव सिंह प्रथम संस्करण
६२—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास, डा० वी० डी० महाजन तथा डा० आर० आर सेठी १९६० ई०
६३—भट्ट निबंधावली भाग, १ सं० धनजय भट्ट 'सरल' द्वितीय संस्करण
६४—भट्ट निबंधावली भाग २, स० धनजय भट्ट सरल' द्वितीय सस्करण
६५—भारत का सवैधानिक इतिहास डा० वी० डी महाजन तथा डा आर० आर० सेठी १९५७ ई०
६६—भारत का वृहत् इतिहास (तृतीय भाग) श्री नेत्र पाण्डे सन् १९५४ ई०
६७—भारतीय पत्रकार कला स० रोलैण्ड ई० वूल्सल २०१० वि०
६८—भारतीय राजनीतिक, रामगोपाल २०११ वि०
६९—भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि किशोरीलाल गुप्त, १९५६ ई०
७ —भारत दुर्दशा रूपक प्रतापनारायण मिश्र १९०२ ई०
७१—भारतेन्दु-युग, डा० रामविलास शर्मा १९५६ ई०
७२—भारतेन्दु ग्रंथावली (पहला भाग) सं ब्रजरत्नदास, २००७ वि०
७३—भारतेन्दु-ग्रंथावली (दूसरा भाग) स० ब्रजरत्नदास २०१० वि०
७४—भारतेन्दु-ग्रन्थावली (तीसरा भाग) स० ब्रजरत्नदास २०१० वि०
७५—भारतेन्दु कालीन नाट्य साहित्य डा० गोपीनाथ तिवारी प्रथम सस्करण
७६—भारतेन्दु के निबन्ध डा० केसरीनारायण शुक्ल २ ०८ वि०
७७—भारतेन्दु युगीन निबन्ध शिवनाथ २ १० वि
७८—भारतेन्दु कालीन व्यंग्य परम्परा ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय २०१३ वि०
७९—भारतेन्दु मण्डल ब्रजरत्नदास प्रथम संस्करण
८०—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र डा० रामविलास शर्मा प्रथम संस्करण

८१—मन की लहर प्रतापनारायण मिश्र १८८४ ई०
८२—महारानी पद्मावती राधाकृष्णदास, द्वितीय संस्करण
८३—मानस विनोद प्रतापनारायण मिश्र, १८८६ ई०
८४—मिश्रबन्धु-विनोद, (तृतीय भाग) मिश्र बन्धु १९७० वि०
८५—मिस्टर व्यास की कथा, शिवनाथ शर्मा प्रथम संस्करण
८६—मेरे गुरुजन, नारायणप्रसाद अरोड़ा, १९५४ ई०
८७—युगलांगुलीय, अनु० प्रतापनारायण मिश्र द्वितीय संस्करण
८८—रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, द्वितीय संस्करण
८९—राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जनरलिज्म, रामरतन भटनागर, प्रथम संस्करण
९०—राधाकृष्ण-ग्रन्थावली, (प्रथम खण्ड) सं० श्यामसुन्दर दास १९३० ई०
९१—राधारानी, अनु० प्रतापनारायण मिश्र द्वितीय संस्करण
९२—रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, ग्यारहवां संस्करण (गीता प्रेस गोरखपुर)
९३—लावनी का इतिहास, स्वामी नारायणानन्द सरस्वती १९५३ ई०
९४—लापटर हुनरी वगसन
९५—लोकोक्ति शतक प्रतापनारायण मिश्र १८९६ ई०
१०६—वाँग्मय—विमर्श विश्वनाथ प्रसाद मिश्र २०१४ वि०
१०७—विश्वधर्म—दर्शन सांवलिया बिहारी लाल वर्मा १९५३ ई०
१०८—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत प्रथम भाग, डा० गोविन्द त्रिगुणायत प्रथम संस्करण
१०९—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त द्वितीय भाग, डा० गोविन्द त्रिगुणायत १९५९ ई०
१००—शैली, करुणापति त्रिपाठी, प्रथम संस्करण
१०१—शैव सर्वस्व प्रताप नारायण मिश्र १८९० ई०
१०२—समाचार पत्रों का इतिहास अम्बिका प्रसाद वाजपेयी २०१० वि०
१०३—समीक्षा-शास्त्र, डा० दशरथ ओझा तृतीय संस्करण
१०४—स्टाइल, वाल्टर रेल
१०५—सारस्वत डा० मुंशीराम शर्मा २०१७ वि०
१०५—साहित्य सुषमा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्रथम संस्करण
१०७—साहित्य चिंतन डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण
१०८—साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द २००७ वि०
११०—साहित्यकों के संस्मरण, सं० प्रेमनारायण टंडन, १९४३ ई०
१११—सिद्धान्त और अध्ययन, गुलाबराय प्रथम संस्करण

११२—सुबाल शिक्षा (प्रथम भाग) प्रतापनारायण मिश्र १८९१ ई०
११३—सौ अजान और एक सुजान बालकृष्ण भट्ट, ग्यारहवां संस्करण
११४—संगीत शाकुन्तल, प्रतापनरायण मिश्र, १९०८ ई०
११५—संस्कृति के चार अध्याय रामधारी सिंह 'दिनकर' १९५६ ई०
११६—हठी हम्मीर नाटक प्रतापनारायण मिश्र प्रथम संस्करण
११७—हमारे गद्य निर्माता प्रेमनारायण टण्डन, चतुर्थ संस्करण
११८—हास्य के सिद्धान्त तथा हिन्दी साहित्य प्रेमनारायण दीक्षित १९४७ ई०
११९—हिन्दी काव्य विमर्श गुलाबराय प्रथम संस्करण
१२०—हिन्दी का गद्य साहित्य रामचन्द्र तिवारी, प्रथम संस्करण
१२१—हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा प्रथम संस्करण
१२२—हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास डा० हरदेव बाहरी, १९५७ ई०
१२३—हिन्दी कोविद रत्नमाला प्रथम भाग डा० श्यामसुन्दर दास, द्वितीय संस्करण
१२४—हिन्दी गद्य मीमांसा, रमाकान्त त्रिपाठी १९३२ ई०
१२५—हिन्दी गद्य शैली का विकास डा० जगन्नाथ शर्मा २०१२ वि०
१२६—गद्य की प्रवृत्तियां सं० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रथम संस्करण
१२७—हिन्दी गद्य के निर्माता प० बालकृष्ण भट्ट (जीवन और साहित्य) डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा १९५८ ई०
१२८—हिन्दी गद्य साहित्य शिवदान सिंह चौहान तथा विजय चौहान प्रथम संस्करण
१२९—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास डा० सोमनाथ गुप्त १९५७ ई०
१३०—हिन्दी-नाटक-साहित्य ब्रजरत्नदास २० १ वि०
१३१—हिन्दी नाटककार जयनाथ 'नलिन' प्रथम संस्करण
१३२—हिन्दी निबन्धकार जयनाथ नलिन' १९५४ ई०
१३३—हिन्दी निबन्ध प्रभाकर माचवे, प्रथम संस्करण
१३४—हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' द्वितीय संस्करण ।
१३५—हिन्दी भाषा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र १८९७ ई०
१३६—हिन्दी भाषा बाबू बालमुकुन्द गुप्त १९६४ वि०
१३७—हिन्दी भाषा की उत्पत्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी १९०७ ई०
१३८—हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास चतुर्सेन शास्त्री, १९४९ ई०
१३९—हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास राधाकृष्णदास १८९४ ई०
१४०—हिन्दी भाषा और साहित्य डा० श्यामसुन्दरदास १९९४ वि०

१४१—हिन्दी म निबन्ध साहित्य, जनार्दन स्वरूप अग्रवाल प्रथम संस्करण
१४२—हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल २००६ वि०
१४३—हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर, नरेश चन्द्र चतुर्वेदी, १९५७ ई०
१४४—हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा डॉ० रामअवध द्विवेदी, २ १३ वि०
१४५—हिन्दी साहित्य और साहित्यकार सुधाकर पाण्डेय १९६१ ई०
१४६—हिन्दी साहित्य म हास्यरस डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी १९५७ ई०
१४७—हिन्दी साहित्य कोश स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, २०१५ वि०
१४८—हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय १९५६ ई०
१४९—हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० रमाशंकर शुक्ल रसाल प्रथम सस्करण
१५०—हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी २००९ वि०
१५१—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र १९५६ ई०
१५२—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास डॉ० गुलाबराय १९६० ई०
१५३—हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डॉ० गोविन्दराम शर्मा १९६१ ई०
१५४—हिन्दी साहित्य, डा० श्यामसुन्दरदास नवाँ सस्करण
१५५—हिन्दी साहित्य का इतिहास मिश्रबन्धु प्रथम सस्करण
१५६—हिन्दी साहित्य मे निबन्ध, ब्रह्मदत्त शर्मा प्रथम सस्करण
१५७—हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी नन्ददुलार वाजपयी १९९९ वि०
१५८—हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास रामनरेश त्रिपाठी १९८० वि०
१५९—हिन्दी साहित्य एक अध्ययन, डॉ० रामरतन भटनागर, १९४८ ई०

पत्र-पत्रिकाएँ

१—आनन्द कादम्बिनी
२—आलोचना
३—कविवचन सुधा
४—कान्यकुब्ज हितकारी
५—क्षत्रिय पत्रिका
६—धर्मयुग
७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
८—ब्राह्मण
९—भारतमित्र
१०—भारतेन्दु
११—भारतोद्धारक

१२—माधुरी
१३—रसिक-वाटिका
१४—रामराज्य
१५—विशाल भारत
१६—वीर भारत
१७—समालोचक
१८—सम्मेलन पत्रिका
१९—सम्मेलन कार्य विवरण
२०—सरस्वती
२१—साप्ताहिक प्रताप
२२—साप्ताहिक हिन्दुस्तान
२३—सारसुधानिधि
२४—साहित्य सन्देश
२५—सुधा
२६—हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
२७—हिन्दी अनुशीलन
२८—हिन्दी प्रदीप
२९—हिन्दोस्थान